Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

जन-ज्ञान

मासिक

आर्यसमाज शताब्दी अंक

चैत्र सुदि प्रतिपदा संवत २०३२.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वैदिक सत्संग पद्धति के मार्गदर्शक
महर्षि दयानन्द सरस्वती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

दयानन्द संस्थान
नई दिल्ली का प्रकाशन

जन - ज्ञान

(मासिक)

सम्पादक
—राकेशरानी

□

दूरभाष : ५६६६३९

—पता
१५९७, हरध्यानसिंह मार्ग
निकट ३१-नाईवाला
करौल बाग, नई दिल्ली-५

□

वार्षिक मूल्य १५)
विदेश में—३ पौंड
(हवाई डाक से)
२ पौंड : समुद्री डाक से
आजीवन—२५१)

□

वर्ष ८ : अंक ६
सृष्टि संवत्
१,९६,०८,५३,७५

वैशाख—संम्वत् २०३१
अप्रैल—१९७५

इस अंक का—४)

आर्यसमाज शताब्दी

बधायी ! अभिनन्दन !!

आज से सौ वर्ष पहले,
वर्षारंभ के पवित्र दिन
चैत्र सुदि प्रतिपदा को
बम्बई महानगरी में,
भारत के प्रहरी द्वार पर
आर्यसमाज संगठन को
गुरुदेव देव दयानन्द ने
स्थापित किया था।
१०० वर्ष बीत गए,
इतिहास बदल गए,
भाव-छन्द-अर्थ-राह
सब कुछ ढल गयर
नये साँचे में।
अज्ञान-पाप-ताप को
यज्ञाग्नि में स्वाहा कर
विजय ध्वजा फहराता
आर्यसमाज बढ़ता गया।
आर्यसमाज चढ़ता गया,
रुका नहीं, झुका नहीं,
बदला नहीं—थका नहीं,
वेद ज्योति हाथ ले,
धर्म-ज्ञान शक्ति से,
जयी मंत्र बोलता……
आर्यसमाज चलता रहा—
देश हो गया स्वतन्त्र,
भाग गए पाप तंत्र,
ज्ञान रूप प्रगट हुआ—
जयी आर्य धर्म का,
प्रहरी वेद-ज्ञान का,
आर्य शक्ति के प्रतीक जय !
धर्म-दीप दान जय !
बधायी उन्हें जो जीत गए,
अभिनन्दन उनका, जो शहीद हुए
या चले गए।
आओ प्रण करें—
आर्यसमाज शताब्दी पर—
दयानन्द का काम पूरा करेंगे।
उसी के लिए हम जीएंगें-मरेंगे।

—भारतेन्द्र

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१२ अप्रैल १९७५ को आर्यसमाज स्थापना शताब्दी
महोत्सव अपने परिवार मोहल्ले में दीपमाला
यज्ञ कर त्योहार की तरह मनाएँ

अपने परिवारों पर निरंतर एक वर्ष तक ओ३म का झण्डा फहराएं

अगले वर्ष तक किसी भी सप्ताह सुविधानुसार प्रत्येक
आर्यसमाज अपने नगर में अवश्य आर्यसमाज
स्थापना शताब्दी महोत्सव मनाएं

अपने धन का प्रयोग अपने ही क्षेत्र में करें

धन का दुरुपयोग न हो इसके लिए यह आवश्यक है
कि आप अपने नगर-जिले और प्रान्त को
सुदृढ़ करें। अपनी प्रतिनिधि सभाओं को
शक्तिशाली बनाएँ और अपने स्थान
के कोने कोने में वैदिक धर्म की
जय का स्वर गुँजाएँ

पूरी शक्ति से अपने क्षेत्र को वेद-दयानन्द मय करने का व्रत लीजिए

भारतेन्द्र नाथ
मंत्री
सार्वभौम आर्य समाज शताब्दी परिषद नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१२ अप्रैल १९७५ : **अंक में पढ़िए :** चैत्र सुदि प्रतिपदा
संवत् २०३१

आर्यसमाज शताब्दी विशेषांक मूल्य ४)

१—सम्पादकीय
२—वेदोपदेश : प्रसुव यज्ञ भारतेन्द्रनाथ ७
३—में हृदय मंदिर से लिख रहा हूँ ५
४—ऋषि दयानन्द की वेदार्थ प्रणाली—स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती ११
५—आर्यसमाज शताब्दी : सिंहावलोकन डा० भवानीलाल भारतीय १७
६—वैदिक सिद्धांत—स्व० पं० चमूपति ४१
७—आर्यसमाज के स्वर्ण सिद्धांत—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ४८
८—आर्य कौन ?— आचार्य शिवपूजन सिंह, कानपुर ११०
९—राष्ट्र निर्माण में आर्यसमाज का योगदान—पं० धर्मवीर एम० ए० १५४
१०—आर्यसमाज के गौरव—बनारसी सिंह
विरजानन्द दंडी : गुरुदत्त विद्यार्थी : लेखराम श्रद्धानन्द : १६१
दर्शनानन्द : महात्मा हंसराज : सर्वदानन्द : नारायण स्वामी
रामचन्द्र देहलवी : स्वतन्त्रानन्द :
हिन्दी आन्दोलन के शहीद
हैदराबाद धर्मयुद्ध के शहीद—
११—कविताएँ २१९
१२—महर्षि दयानन्द का दार्शनिक दृष्टिकोण— २५७
प्रो० रत्नसिंह एम० ए० २७३

आत्म निवेदन

अपने ३ वर्ष के छोटे से जीवन में "दयानन्द-संस्थान" आर्यसमाज का सबसे अधिक शक्तिशाली प्रचारक संस्थान बन गया है। यह प्रभु की कृपा और ऋषि दयानन्द के अनुयायियों के स्नेह का परिणाम है।

धरती पर वैदिक विचारधारा की विजयपताका फहराने के लिए हम कृत संकल्प हैं। अपने प्राणों की अन्तिम साँस तक हम दयानन्द के दिव्य स्वप्न साकार करने में लगे रहेंगे।

आर्यसमाज शताब्दी दिवस पर हम वेद-धर्म की ज्योति का आलोक भूमण्डल के प्रत्येक प्रांगण में पहुँचाने का व्रत लेते हैं।

★

—भारतेन्द्रनाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी के पवित्र ऐतिहासिक दिन

हम ऋषि दयानन्द के अनुयायी

यज्ञ की पवित्र वेदी पर संकल्प करते हैं

१—पूरे बल से वैदिक विचार धारा को अपने क्षेत्र में फैलाएँगे।

२—अपने परिवार को पूर्णतया आर्य बनाएँगे।

३—अपने घर पर सदा ओ३म् ध्वज फहराएँगे।

४—प्रतिदिन 'वेद' का स्वाध्याय १५ मिनट अवश्य करेंगे। अपने घर में 'वेद' अवश्य लाएँगे।

५—फूट—पार्टी बाजी से बच कर पदों के लिए नहीं लड़ेंगे।

६—प्रतिमास कम से कम २ सत्यार्थ प्रकाश और ५ ऋषि जीवन बांटेंगे।

७—साप्ताहिक सत्संगों में सपरिवार जाएँगे।

८—अपने नाम के साथ जन्म गत जाति सूचक शब्द नहीं लगाएँगे।

९—अपने सभी व्यवहारों में सत्य का पालन करेंगे।

१०—महर्षि दयानन्द के आदेशों का पूर्ण पालन करेंगे।

यह संकल्प सभी यज्ञोपरान्त सामुहिक रूप में पढ़ें।
और इसे जीवन में धारण करने का
व्रत लें।

मँत्री सार्वभौम
शताब्दी परिषद दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शताब्दी : विजय संकल्प

आर्यसमाज को स्थापित हुए चैत्र सुदि प्रतिपदा को (१२ अप्रैल १९७५) पूरे सौ वर्ष हो जाएँगे। सारा संसार इस ऐतिहासिक दिन को हर्ष, उल्लास, उमंग और नयी शक्ति से मना रहा है ? क्यों........

क्या इसलिए नहीं कि आर्यसमाज ने मानव मात्र को अमृत दिया और उसके वीर सैनिक स्वयं विष पीकर शहीद हो गए। आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द से लेकर—आज तक आर्यसमाज के वीरों ने अपना बलिदान इसलिए दिया कि धरती का जहर समाप्त हो सके।

अमृत बाँटना साधारण कार्य नहीं है। अज्ञान को चुनौती देना भी सब के बस की बात नहीं है। केवल प्रभु पुत्र आर्य ही अपने प्राणों की आहुति देकर अज्ञान को मिटाने का व्रत ले सकते हैं।

आर्यसमाज ने पिछले १०० वर्ष में धरती को एक नयी दिशा दी, एक ऐसा मार्ग बताया, जिस पर चलकर दुःख अशान्ति समाप्त हो जाती है। मत-वाद संप्रदाय, देशकाल से ऊपर उठकर आर्यसमाज ने धर्म का शाश्वत रूप प्रगट किया है।

आर्यसमाज न कोई मत है न सम्प्रदाय, यह तो एक पवित्र यज्ञाग्नि है जिसका कार्य अन्धकार-अज्ञान, पाप-ताप समाप्त करना है। आयसमाज संसार को एक धर्म, एक मार्ग, एक राष्ट्र के रूप में ढालते हुए वेद के शब्दों में 'यत्र विश्वं भवत्येक नीडम्' संसार एक घोंसला बन जाए, की कल्पना को साकार रूप देना चाहता है। हम सभी मनुष्य एक पिता के पुत्र होने के नाते सारे दुःख, सारे सुख बाँट लें, तो फिर दुःख कहाँ रहेगा ?

आर्यसमाज की मान्यताएँ, ज्ञान-विज्ञान तर्क-युक्ति की कसौटी पर पूर्ण हैं। आर्यसमाज का मार्ग वह मार्ग है जिसे जान कर कोई भी उस पर चलने से इन्कार नहीं कर सकता। इसी अजेय शक्ति के बल पर आर्यसमाज संसार के मन और मस्तिष्क पर छायी जहरीली विचारधाराओं को समाप्त कर एक ऐसी विचार लहर बहाना चाहता है जो शान्ति का अमृत बरसाने में समर्थ है।

संसार के सभी मतवाद मनुष्य के चलाए हुए हैं। आर्यसमाज की इच्छा है कि ये मनुष्यों के चलाए मत-वाद जो भटकाने वाले हैं, समाप्त हों और सभी परमात्मा के दिखाए ज्योतिर्मय प्रकाश में अपनी जीवन यात्रा पूर्ण करें।

महान् है आर्यसमाज ! दिव्य थे इस के संस्थापक महर्षि दयानन्द ! आर्यसमाज शताब्दी का ऐतिहासिक अवसर आज पुनः उस यज्ञाग्नि को प्रज्वलित करने के लिए जीवन की आहुति चाहता है जैसी १८७५ में स्थापना के बाद आर्य शहीदों ने दी थी।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
खून की स्याही से शांति के भवन का इतिहास बनाना आज की सबसे प्रबल मांग है। धरती के सारे मतवादों को समाप्त करने का व्रत लेकर हम आर्य-समाज शताब्दी मना रहे हैं।

हम दयानन्द के अनुयायी तब तक संघर्ष करते रहेंगे, बलिदान देते रहेंगे जब तक मनुष्य और मनुष्य के मध्य छोटी-सी भी दीवार रहेगी।

विजय हमारी अनुचर है, हम सदा जीते हैं और जीतेंगे। संसार के प्रत्येक मन मंदिर पर, सभी पूजा स्थलों पर "ओ३म्" पताका लहराने का हमारा सपना पूरा होगा! देव दयानन्द की जय! आर्यसमाज की जय!! धर्म की जय! का नाद करते हुए चल रहे हैं, चलते रहेंगे।

आर्यसमाज का उज्ज्वल-ज्योतिर्मय स्वरूप सभी को ज्ञान-सत्य-धर्म की आशा से ज्योतित कर रहा है।

प्रभु का धन्यवाद! १०० वर्ष बीत गए, अब नए चरण में युग का नया रूप देने का हमारा अभियान आरम्भ होता है।

आर्यसमाजों में अपार उत्साह

यह हर्ष का विषय है कि अधिकांश आर्यसमाजें पूरे बल से शताब्दी की तैयारियां कर रही हैं। सर्वत्र उत्साह बर्धक समाचार प्राप्त हो रहे हैं।

सभी ने अपने-अपने क्षेत्र की सुधि लेकर शताब्दी के कार्य को रचनात्मक रूप दिया है। हम उन आर्यसमाजों का अभिनन्दन करते हैं--जो गुरुदेव देव दयानन्द के दिव्य स्वप्नों को मूर्त रूप देने में लग गयी हैं। जिन बड़ी समाजों की निद्रा अभी तक भी भंग नहीं हुयी, उनसे हमारा आग्रह है कि वे अपना कर्तव्य समझें। विवादों से ऊपर उठकर आर्यसमाज की जय के स्वर गुंजाएँ।

आज या फिर कभी नहीं, इस तथ्य को हम जितना शीघ्र समझ लें, उतना ही श्रेयस्कर है।

प्रस्तुत अंक

इस बीच साहित्य और वेद के कार्य के बोझ से दबे हुए हम--यह शताब्दी अंक जिस रूप में निकालना चाहते थे, नहीं निकाल सके, इसका हमें खेद है।

फिर भी जितना, जैसा बन पड़ा आपके हाथ में है। आप सभी का आशीर्वाद स्नेह-सहयोग जिस तरह मिल रहा है, उसके लिए धन्यवाद किन शब्दों में करें?

ऐसा प्रतीत हो रहा है कि सारा आर्य जगत् संस्थान की ओर आशा भरी निगाहों से देख रहा है--प्रभु हमें शक्ति दे कि हम सभी की कामना पूर्ण कर सकें--

—राकेशरानी

अप्रैल १९७५ से
अप्रैल १९७६ तक किसी भी
एक सप्ताह में अपने यहाँ धूम-धाम से
आर्यसमाज स्थापना शताब्दी
सप्ताह मनाएँ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रसुव यज्ञम् !

ओ३म् देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय दिव्यो गन्धर्वः
केत-पूः केतं नः पुनातु । वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ।। यजु०—अ० ३०-१

अर्थ—हे (सवितः देवः) उत्पादक ईश्वर ! (भगाय) ऐश्वर्य के लिए (यज्ञं) सत्कर्म की (प्रसुव) प्रेरणा करो ! (दिव्यः) दैवी गुणों से युक्त (गं-धर्वः) वाणी का पोषक और (केत-पूः) ज्ञान से पवित्र करने वाला (नः) हम सब के (केत) ज्ञान को (पुनातु) पवित्र करे। तथा (वाचस्पति) वाणी का स्वामी (नः वाच) हम सब की वाणी को (स्वदतु-स्वादयतु) स्वाद से युक्त अर्थात् मीठी बनाए।

भावार्थ—परमेश्वर सबको सत्कर्म करने की तथा सत्कर्म का संरक्षण करने की बुद्धि दे। अपने उत्तम ज्ञान से पवित्रता करने वाला ज्ञानी हम सब के ज्ञान की पवित्रता करे, तथा उत्तम वक्ता हम सब की वाणी को मधुर बनाए। जिससे हम सब की उन्नति हो सके।

उक्त आशय इस मंत्र का है। उन्नति चाहने वाले मनुष्यों के अन्दर जिन-जिन गुणों के विकास की आवश्यकता है, उन गुणों का उल्लेख उक्त मंत्र में है—**(१) सत्कर्म की प्रेरणा (२) सत्कर्म का संरक्षण (३) ज्ञान से पवित्रता और (४) वाणी का माधुर्य।** यह चार सद्गुण हैं जिनसे मानव मानवता के पथ पर अविराम गति से चलता रहता है।

आइए, अब हम इस मंत्र पर गहराई से विचार करें—प्रथम शब्द हैं, "देव सवितः" "सविता देव" परमेश्वर की ही शक्ति का नाम है। देखिए—**"सविता वै देवानां प्रसविता"** (शत० ब्रा० १।१।२।१७)

सारे देवों (सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, वायु, अग्नि, आदि) का उत्पन्न कर्ता परमेश्वर है। सब देवों की उत्पत्ति करने वाली शक्ति "सविता" है। "सविता" का वर्णन तैत्तिरीय ब्राह्मणों में भी देखें।

सविता प्रसविता दीप्तो दीपयन दीप्यमानः ।।

(तैति ब्रा० ३।१०।१।२)

"सविता" सबका उत्पादक है, वह स्वयं तेजस्वी है, और सभी को प्रकाशित करता है। 'सविता' का मूल अर्थ 'परमेश्वर' है। 'सु' धातु से 'सविता' शब्द बनता है। **प्रसव, ऐश्वर्य, प्रेरणा** यह तीन अर्थ इस धातु के हैं। **उत्पन्न करना,**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रभुत्व करना और प्रेरणा करना यह तीन भाव 'सविता' शब्द में निहित हैं। सबको धर्म की प्रेरणा करने वाला परमेश्वर ही 'सविता' है।

मानव अपने अंतस् की समस्त भावनायें साथ ले जब उन्नति पथ की ओर अग्रसर होता है तो वह उस समय अपनी शक्तियों की वृद्धि के लिए प्रार्थना करता है। सर्व जगत् को प्रेरणा देने वाले प्रभु से। वह चाहता है उसे नित नई प्रेरणा मिलती रहे, निरंतर मिलती रहे, इसी निरंतर प्रेरणा प्राप्ति की महती भावना 'सविता' शब्द से ध्वनित है। **'प्रसुव-यज्ञम्' 'यज्ञ की प्रेरणा करो'** यह इस मंत्र की पहली प्रार्थना है। अत्यन्त उच्च कार्य का नाम यज्ञ है। 'यज्ञ' का अर्थ ही 'श्रेष्ठतम कर्म' की प्रेरणा करो! यह उपदेश उक्त वाक्य से मिलता है। प्रत्येक मानव हृदय में उच्च, पवित्र कर्म करने की प्रेरणा व भावना होनी चाहिए। सर्वत्र उत्साह की प्रेरणा से सभी कर्म करते रहें, इसी में संसार चक्र की उन्नति का मूल छिपा है। अतः मानव ने प्रेरणादायक शक्ति के भंडार से जहां निरन्तर प्रेरणा प्राप्त करते रहने की प्रार्थना की, वहां यह भी चाहा कि उस प्रेरणा का लक्ष्य निरन्तर पवित्र व उच्चतम कर्म करना हो।

निरन्तर पीड़ामय संसार की काली घटाओं में भी वैदिक धर्मी, आस्तिक व्यक्ति हिम्मत नहीं हारता अपितु निरन्तर बढ़ते रहने की इच्छा लेकर वह सभी दुखों को, कष्टों को पी लेना चाहता है, और पर दुःखहरण ही उच्च कर्म है, यज्ञ धर्म है।

"प्रसुव यज्ञपति भगाय"

(भगाय) ऐश्वर्य के लिए यज्ञपति की प्रेरणा करो! 'भग' शब्द का अर्थ है—उन्नति, अभ्युदय, महानता आदि। अर्थात् संसार में ऐसी जितनी भी विभूतियां हैं जिनको पाकर मानव महान् बन जाता है। उसके हृदय में संतोष व आनन्द की सरिता प्रवाहित होने लगती है। उन सभी को 'भग' कहा जा सकता है। भक्त भगवान् से उसको समीपतम समझ प्रार्थना करता है कि वह प्रेरणादायक प्रभु हमारे हृदय में यज्ञ की (शुभ कर्मों की) प्रेरणा निरंतर अविराम गति से करता रहे और यज्ञ के स्वामी को (शुभ पथ पर चलने वालों को) सदैव सत्कर्मों का प्रवाह प्रवाहित करते रहने की प्रेरणा देता रहे।

नाना प्रकार के कष्टों और पीड़ाओं से घिरे हुए पृथ्वीतल पर शांति और आनंद की सरिता प्रवाहित करने के लिए यह आवश्यक है कि हम मन वचन और कर्म से शुभ सोचें, शुभ करें, और शुभ प्रेरणाएं दूसरों को दें। जब हम ऐसा चाहते हैं तो हम सभी के नियन्ता, सृष्टि के मूलाधार से यही कहते हैं कि जितने भी ऐश्वर्य, प्रकाश और आनंद प्राणीमात्र के कल्याणमय भोग के लिए उसने पृथ्वी पर प्रदान किए हैं वह हमें मिलते रहें और हम अविरल गति से प्रेम की मंदाकिनी बहाते हुए उसी की राह पर, उसके ही होकर चलते रहें।

"दिव्यो गन्धर्वः केत-पूः केतं नः पुनातु।"
"गाँ वाचं धारयतीति गं-धर्वः।"

उत्तम वाणी का धारण करने वाला जो उत्तम वक्ता होता है उसका नाम गंधर्वः होता है। अतः इस पद का भावार्थ हुआ कि दिव्य गुण युक्त वक्ता अपने ज्ञान से हम सभी के ज्ञान को पवित्र करे।

हम चाहते हैं कि संसार यज्ञमय हो। सुख और शांति की राह पर चले।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हम यह भी इच्छा रखते हैं कि धरतीतल के सारे मानव शुभ प्रेरणा युक्त हों, कर्म करने वाले हों, वह एक राह पर चलें और वह राह प्रभु की राह हो। पर संसार के अन्य मतावलम्बी अपनी बात (विचार) मनवाने के लिए साम, दाम, दण्ड, भेद का आश्रय लेते हैं। पर वेद ज्ञान की अलौकिकता, अपूर्वता देखिए, कितना महान् आदर्श है। शांति पथ का कितना मनोहर आलम्बन है कि वह दिव्य गुण वक्ता जो अपनी राह पर, धर्म मार्ग पर, यज्ञ प्रकाश की ओर हमें ले जाना चाहता है, अपने ज्ञान से हमें ज्ञान युत करे। लाठी से नहीं, धन लालच से भी नहीं, अपितु अपने अगाध सत्य ज्ञान से वह सभी के हृदय का अंधकार अज्ञान हटा दे। ताकि हम भी अपने ज्ञान नेत्रों को खोल उसी सत्य पथ के राही बन सकें, जिस पर वह चल रहा है।

पर हो सकता है कि हमें (ज्ञान) वाणी से देने वाला भी कड़वी, तीखी, बातें कहकर हमारा उपहास उड़ा कर, हमें राह बताना चाहे। आज तो संसार में चारों ओर होता भी ऐसा ही है। सभी अपनी बातों को मनवाने के लिए नाना आडम्बरों का आश्रय, झूठ, छल कपट की भाषा में लेते हैं और अनाचार पापाचार की आग फैलाते हैं, तो सच्चा उपाय भ्रांत को राह बताने का कौन सा हो।

वेद कहता है—**"वाचस्पतिः वाचं नः स्वदतु।"** "वाणी का स्वामी हम सभी की वाणी को मीठी बनाए।" हम जो कुछ भी कहना चाहें वह मीठा हो। हृदय में प्रेम भरा हो और वही प्रेम का मधुर अस्त्र लेकर हम विश्वविजय करने निकलें। यह है वेद का सन्देश। वाणी में मिठास न होने से संसार के सारे झगड़े फिसाद तथा द्वेष उत्पन्न होते हैं। अथर्ववेद १।३४ में भी वेद कहता है— **जिन्हया अग्रे मधु मे, जिन्हया मूले मधुलकम्**। मेरी जिह्वा के अग्र भाग में माधुर्य है। मेरी जिह्वा के मूल में मधुरता है।

अतः तात्पर्य यह है कि हम संसृति की सारी अनुभूतियों को प्रेरणामय यज्ञमय बनाने के लिए प्रेम का आश्रय लें। भिन्न-भिन्न पथ में पथिकों को एक राह पर लाना हमारा कर्त्तव्य है। संसार को यज्ञमय, त्यागमय बनाना हमारी चाह है। पर हमारी यह चाह भी है कि इस सारे उद्योग के लिए हम प्रभु का ज्ञान साथ लेकर सत्य धर्म और प्रेम का सम्बल न छोड़ें। प्रभु का प्रकाश हमारे पथ की ज्योति बने, प्रेरणा देता रहे। संसार स्वर्गधाम बने और फिर चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश हो।

आओ, आर्यसमाज शताब्दी पर हम वेद ध्वजा सर्वत्र फहराकर चहुँओर धर्म यज्ञ सम्पन्न करें।

★

प्रत्येक परिवार में वेदभाष्य
पहुंचाकर कर्तव्य पालन करें

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रत्येक आर्य समाज ३००) व्यय कर

३०००ट्रैक्ट

शताब्दी के अवसर पर बांटे

आप निम्न ट्रैक्टों में से कोई से ३००० ट्रैक्ट मंगा सकते हैं—

१–निमन्त्रण आर्यसमाज का ।
२–आर्य समाज के सौ वर्ष ।
३–आर्य समाज क्या मानता है ?
४–आर्य समाज के दस नियम ।
५–आर्य समाज की मान्यताएं ।
६–सुख का मार्ग ।

इन ३००० ट्रैक्टों का लागत मूल्य है ४५०) । हम १५०) आप से इसलिए कम ले रहे हैं कि आप शताब्दी के अवसर पर अधिक-से-अधिक प्रचार कर सकें ।

३००० ट्रैक्टों से कम के आर्डर १५) सैकड़ा की दर से ही भेजे जायेंगे ।

३०००) भेजकर तीन हजार ट्रैक्ट मंगाएँ

समय थोड़ा है : शीघ्र से शीघ्र १२ अप्रैल को शताब्दी मनाने की तैयारियां करें ।

स्वामी जी के रंगीन चित्र ११×१८ इंच काग़ज पर केवल २००) हजार । ३०) सैकड़ा मंगाइए ।!

अपने क्षेत्र के हर कोने में चित्र लगाइए ।

दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मैं हृदय मन्दिर से लिख रहा हूँ~

हमारा सौवाँ जन्म दिन

हम सौ वर्ष के हो गये। १०० वर्षों में सत्य-ज्ञान-न्याय धर्म की पताका फहराते हम बढ़ते गए। जहाँ भी हम गए विजय ने पुष्प मालाओं से हमारा स्वागत किया। मनुष्य मात्र को हमने शाँति का संगीत सुनाया! अमरता के गीत, प्राणों में पवित्र अमृत सा बरसाते रहे, हम बढ़ते रहे। १८७५ से १९७५ तक की हमारी—आर्यसमाज की यात्रा इतिहास की गौरवमयी गाथा है!

इन १०० वर्षों में हमने संसार को प्रकाश दिया, किन्तु दुर्भाग्यवश हमारे विकास और प्रसार के लिए जिन संगठनों का निर्माण हुआ था, उनमें कीचड़ ने प्रवेश कर गंगा के पवित्र जल को गंदला कर हमारी प्रभा को धूमिल करने का प्रयास किया। देव दयानन्द द्वारा संस्थापित आर्यसमाज के साथ यह सबसे बड़ी विडम्बना है।

आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि हम आर्यसमाज को और आर्यसमाज के प्रतिनिधि संगठनों को अलग-अलग कर के देखें। "आर्यसमाज" उतना ही महान् और पवित्र है जितना संसार में सत्य-धर्म और प्रभु का ज्ञान पवित्र है। उसके चरणों में प्रत्येक बुद्धिमान विवेकी व्यक्ति का सिर झुक जाएगा। किन्तु आर्यसमाज के प्रचार के लिए जो संगठन बने थे उनमें प्रायः अयोग्य, स्वार्थी, पदलोलुप और व्यापारी मनोवृत्ति के व्यक्ति अधिकार जमाये बैठे हैं। फूट-द्वेष-ईर्ष्या से ओत-प्रोत इन व्यक्तियों ने इन संगठनों की लालिमा को कालिमा में बदलने का जो अपराध किया है, उसे इतिहास कभी क्षमा नहीं करेगा।

हम चाहते हैं कि संसार के लोग ऋषि दयानन्द के मन्तव्यों-ग्रन्थों के आधार पर आर्यसमाज को समझें। आर्यसमाज के स्वर्णिम नियमों को आर्यसमाज समझें और गुरुदत्त—लेखराम—श्रद्धानन्द—हंसराज—दर्शनानन्द—नारायण स्वामी की पावन परम्परा के पूज्य महात्माओं की पृष्ठभूमि में आर्यसमाज को परखें।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि ऋषि के आर्यसमाज के जो भी दर्शन करेगा, उसका जीवन बदल जायेगा। वह पूत पावन बनकर सच्चे अर्थों में धर्म की गरिमा को समझ जायेगा।

हम शताब्दी मना रहे हैं ऋषि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज की और बधायी देते हैं।' उन दयानन्द के वीर अनुयायियों को, जिन्होंने हमारे आवाहन पर शताब्दी की ज्योति जगायी!

आर्यसमाज की शताब्दी जीवन के प्रेरक संगीत की शताब्दी है। यह शताब्दी है सत्य की, प्रतिष्ठावान् धर्म के उद्धार की, ज्ञान के मंगलमय गान की! यह पर्व मानवता के उद्धार का पर्व है। इस पर्व को जिन्होंने शान-मान से मनाया, वे सचमुच

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऋषि के भक्त हैं, हम उन सभी का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

हमें विश्वास है कि युग प्रवर्तक दयानन्द का तप-त्याग-बलिदान उनके अनुयायियों के मन में जीवन की सशक्त प्रेरणा देगा, और आगे आने वाले दिनों में संसार के कोने-कोने में सत्य-धर्म का सन्देश 'वेद' की ऋचाओं के स्वर में गूंजेगा। प्रत्येक पूजा स्थल से वेद की वीणा झंकृत होगी और प्रत्येक मनुष्य परमात्मा का अमृत पुत्र बन अपने सारे भेद भुला धरती को स्वर्ग बनाने की कल्पना को साकार रूप देगा।

—भारतेन्द्रनाथ

★

घर-घर में सत्यार्थ-प्रकाश पहुँचाने के लिए

२)५० में सत्यार्थ प्रकाश

नया शताब्दी संस्करण

दयानन्द संस्थान ही भेंट कर सकता है !

पहले से बड़ा टाइप। आकर्षक आवरण

शीघ्र मँगाइए: बाँटिए

१-सत्यार्थ प्रकाश-मोटा आर्ट पेपर पर मूल्य १०१) ३० अप्रैल तक ६०)

२-सत्यार्थ प्रकाश सुनहरी जिल्द वेद साइज में मूल्य ५१)

किन्तु ३० अप्रैल तक ३०) प्रति

३ सत्यार्थ प्रकाश—उपहार संस्करण कपड़े की जिल्द	५००) सैकड़ा
४ सत्यार्थ प्रकाश—राज संस्करण सजिल्द—	४००) सैकड़ा
५ सत्यार्थ प्रकाश—अजिल्द बढ़िया कागज—	३२५) सैकड़ा
सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी संस्करण	२५०) सैकड़ा
६ सत्यार्थ प्रकाश—अंग्रेजी में—	मूल्य १५)
७ स्वामी दयानन्द जीवन चरित्र—	१००) सैकड़ा

दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यसमाज ! आर्यसमाज

राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त

आर्य समाज !

आर्य भूमि पर अरुणोदय सा, उठा उष्ण तू सज कर साज।
आर्य समाज ! आर्य समाज !!
अन्धकार था चारों ओर, देख लिया पर तूने चोर।
घर में शोर मचाया घोर, सोते स्वजनों को धिक्कार,
जगा दिया ठोकर तक मार, कि हो प्राप्तमय का परिहार।
अलस प्रमादी, अवसादी, हम थे सोने के आदी।
जागा—तू भैरववादी, लगे विवादी भी कुछ स्वर,
पर हम चौक उठे सत्वर, उतरा कुछ तो तन्द्रक ज्वर।
किया क्या तूने खण्डन मात्र ? स्वयं तथा मण्डन का पात्र।
गये गुरुकुल में वर्णी छात्र, हिन्दू-मानस-महाराष्ट्र तू
धरे राष्ट्र भाषा की लाज, आर्य समाज ! आर्य समाज ।।
शोक न कर तू कर अभिमान, कर निज वेद विजय-रसपान।
किया वीर तूने बलिदान, विधर्मियों से घर की फूट।
करा रही थी अपनी लूट, तू सतर्क हो उठा अटूट ।।
पर जो मुँह की खमते हैं, मन ही मन चढ़ जाते हैं।
छिप कर घात लगाते हैं।
सहा सभी तूने प्यारे, सिद्ध कर गये हत्यारे।
निज अविजन्य न्यारे-न्यारे। मुँह न छिपाया भय को देख
लिखा निज शोणित से लेख।
कृण्वन्तो विश्वमार्यम, जयति कृत बुद्धि कार्यम्।
शुद्धि-वितान-तजे-श्रद्धा का, दान किया तूने द्विजराज।
आर्य समाज ! आर्य समाज !!

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अधिक से अधिक "सत्यार्थप्रकाश" बाँटकर शताब्दी मनाएं

क्या आप
अपने
परिवार
में
प्रभु की
अमर
वाणी
वेद
नहीं
लाएंगे
?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१२ अप्रैल से अगले एक वर्ष तक

अपने घर पर

शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में

ओ३म् पताका लहराएँ

लागत से कम मूल्य पर झंडे देने का प्रबन्ध संस्थान ने किया है। जिसकी व्यवस्था श्री सत्यपाल जी आर्य गांधी नगर कर रहे हैं। बढ़िया कपड़ा। सुन्दर आकर्षक छपाई, मूल्य अत्यन्त कम।

१० लेने पर भी सैंकड़े का रेट देंगे।

और स्थानों से आधा

१२×१८ इंच का झण्डा=२००) सैकड़ा
१८×२७ इंच का झण्डा=३००) सैकड़ा
२४×३६ इंच का झण्डा=६००) सैकड़ा

अपना आदेश तुरन्त भेजें

आर्यसमाज शताब्दी पर

एक ऐतिहासिक प्रकाशन

विद्वान, साधक और विचारक

डा० स्वामी सत्यप्रकाश जी

की

महत्वपूर्ण कृति

Dayananda's Out line of Vedic Philosophy

पृष्ठ २५० : रायल साइज : कपड़े की सुन्दर जिल्द और मूल्य—१५)

अपना आदेश आज ही भेजिए

दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी हरिद्वार की औषधियाँ

प्रयोग करें

गुरुकुल कासारि

खाँसी की अपूर्व गुणकारी औषधि

उपयोग—किसी भी कारण से हुई खांसी, नजला, जुकाम आदि में लाभदायक है।

सेवन विधि—दिन में तीन बार छोटी चम्मच लेकर उंगली से चाटें।

आँखों के अनेक रोगों के लिए

संसार प्रसिद्ध

भीमसेनी सुरमा

चयवनप्राश

उत्तम स्वादिष्ट रसायन

शरीर को बलिष्ठ और कान्तिमय बनाता है।

शारीरिक क्षीणता एवं फेफड़ों के लए प्रसिद्ध

आयुर्वेद रसायन

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी

पो० गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी [सहारनपुर]

शाखा कार्यालय—चावड़ी बाजार, दिल्ली-६

दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

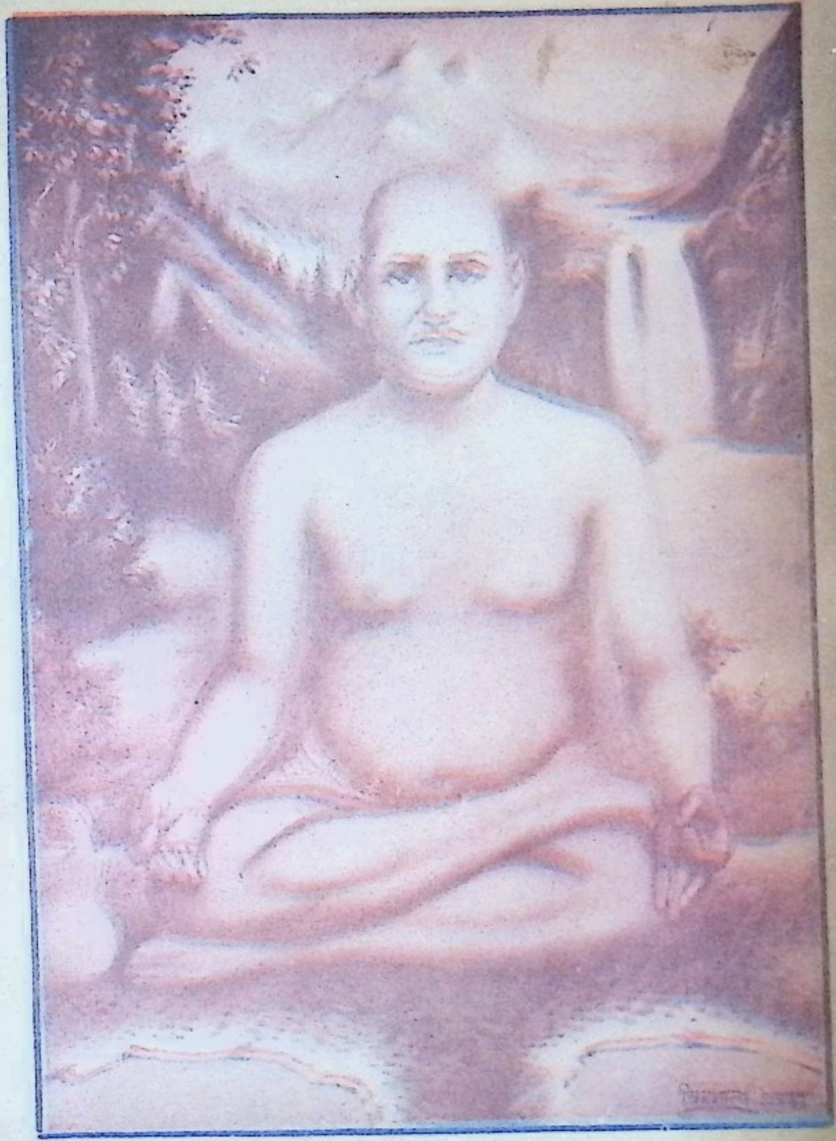

स्वामी दयानन्द जी सरस्वती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऋषि दयानन्द की वेदार्थ प्रणाली

ऋषि दयानन्द अपने समय में अपने ढंग के अकेले थे। अकेले बिल्कुल अकेले, सौ में अकेले, हजार में अकेले, लाख में अकेले, करोड़ में अकेले, दुनिया के दो अरब मनुष्यों में अकेले। बस साथी था तो वह भगवान् था जिसने उन्हें सारे विश्व से निराले होकर वेद के सच्चे अर्थ समझाने की सामर्थ्य दी।

उन्हें किस-किसका सामना करना पड़ा ?

भारत में अन्ध-विश्वास तो थे ही, किन्तु वेद के अर्थ को विपरीत करने में उनके सामने जो सबसे बड़ा अंध-विश्वास खड़ा था, वह विकासवाद का अंधविश्वास था। इस घोर अंधविश्वास को पश्चिमी विज्ञान तथा पश्चिम की कुटिल राजनीति दोनों का समर्थन प्राप्त था। पश्चिमी विकासवादी कहते थे, 'प्राचीन आर्या मूर्खाः प्राचीनत्वात् अस्मदीय प्राचीन पुरुषवत्।' इस हेत्वाभास भरे अनुमान को देखकर हंसी भी आती थी और रोना भी। हंसी इसलिए आती थी मानो कोई किसी सती को कह रहा हो 'सति पत्यौ त्वं विधवा स्त्रीत्वात् प्रतिवेशिनीवत्।'

वेद में कितनी ही बुद्धिमत्तापूर्ण बात लिखी हो किन्तु उसका अर्थ उलटा ही होना चाहिये, नहीं तो समझ लो कि वेद का पाठ विकृत हो गया है। वेद में बुद्धि पूर्वक बात हो ही नहीं सकती, क्योंकि मानव के वैदिक पूर्वज हमारी अपेक्षा बन्दर के अधिक समीप थे। यदि आप इस विकासवाद के अंधविश्वास का खेल देखना चाहें तो अथर्ववेद के इस मंत्र का सायण तथा ग्रिफ़िथ का अनुवाद देख लीजिये।

मुग्धा देवा उत शुनायजन्त उत गोरंगैः पुरुधा यजन्त।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्रणो वोचस्तमिहेह ब्रवः॥

अथर्व कां ७ सू० ५ मंत्र ५

इसका सायणकृत भाष्य इस प्रकार है—

ते देवा यजमानाः मुग्धाः कार्याकार्यविवेकरहिता इत्यर्थः॥

कुत्ते से ! इस विषय का कोई उपाख्यान जो इस विचित्र यज्ञ का वर्णन करता हो, उपलब्ध नहीं है। मुग्धाः यह असम्भव प्रतीत होता है कि मुग्धाः (बौखलाये हुए मोह वशीभूत) यह पाठ यहां ठीक हो। यहाँ तो तृतीयाविभक्ति के किसी नाम की आवश्यकता थी, क्योंकि प्रकरण ऐसा ही है। विक्टर हेनरी महाशय ने मूर्ध्ना यह पाठ कल्पित कर लिया है। जिसका अर्थ है सिर से, जिससे तात्पर्य दधीचि की ग्रीवा पर लगे हुए घोड़े के सिर से है जोकि बर्गेन महाशय के मतानुसार अग्नि वा सोम का प्रतीक है।

ग्रिफ़िथ का अनुवाद देखिये—

With dog the gods, perplexed, have paid oblation, and with cow's limbs in sundry sacrifices.

Invoke for us, in many a place declare him who with his mind hath noticed this our worship.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

देवों ने परेशान होकर कुत्ते की भेंट अर्पित की और गऊ के अंगों के साथ छोटी भेंटें दी। अनेक स्थानों पर उसको हमारे लिये जगाओ जिसने हमारी इस भेंट पूजा को देखा है।

अनुवाद तो सायण का है परन्तु इस पर ग्रिफ़िथ की टिप्पणी देखने योग्य है—

With dog: no legend referring to this extraordinary sacrifice has survived. Perplexed: it seems impossible that mugdhas (perplexed, infatuated) can be the right reading here. A substantive in the instrumental case is required by the context. M. Victor Henry reads murdhna, with the head, that is, with the horse's head given to Dadhyach, which, according to M. Bergaine (Religion, Vedic, 11 page 458) symbolizes Agni or soma.

इस प्रकार कुत्ते की यज्ञ भेंट करने वाली कोई दन्तकथा हमें उपलब्ध नहीं होती। इस मन्त्र में 'मुग्धा' का पाठ असम्भव प्रतीत होता है। प्रकरणानुसार यहाँ तृतीया विभक्ति होनी उचित प्रतीत होती है, इसलिये यहाँ मुग्धाः के स्थान पर 'मूर्ध्ना' घोड़े का सिर दधीचि को भेंट में दिया जाना सम्भव हो सकता है। श्री मौशियर बर्गेन (Religion Vedic 11 Page 458) पृ० ४५८ जो कि अग्नि और सोम हो सकता है।

यह देखिये विकासवाद की करामात। क्योंकि ग्रिफ़िथ साहब की विचार-धारा से मंत्र मेल नहीं खाता इसलिये मंत्र ही बदल डालना चाहिये।

सुनते हैं कि गवर्गण्ड के राज्य में एक मनुष्य को फांसी हुई। फांसी का फंदा उसके गले में पूरा नहीं आया। हुक्म हुआ कि जिसके गले में पूरा उतरे उसी को फांसी टांग दो, यही हाल यहाँ है। हमारे विकासवाद का फन्दा इस मंत्र के गले में पूरा नहीं उतरा, तो बस नया मन्त्र बनाकर उसी को अथर्ववेद का मन्त्र समझ लो। यह है विकासवाद का अंधविश्वास।

इस वाद का आज के युग में इतना आतङ्क है कि इसके विरुद्ध कुछ बोलना उपहास को निमन्त्रण देना है, परन्तु हमारी समझ में नहीं आता कि इसमें जान क्या है?

विकासवाद का मूलाधार है प्राणयात्रा जन्य परिवर्तन, प्राण की रक्षा के लिये जिसे नंगे पांव चलना पड़े उसके पैर का चमड़ा धीरे-धीरे मोटा तथा शीतोष्णादि द्वन्द्व सहन समर्थ हो जाता है। जिसे नंगे पैर न चलना पड़े उसका चमड़ा नरम पड़ता जाता है। परन्तु यह नियम एक सीमा तक ही चलता है।

सींग, पूंछ, पंख आदि जो अंग मनुष्य के पास नहीं हैं, उन सबकी उसे आवश्यकता है। यदि न होती तो नाना प्रकार के शस्त्र, नाना प्रकार के नौका विमानादि तथा चामर और बिजली के पंखे आदि वह क्यों बनाता है। परन्तु आज तक उसके यह अंग क्यों प्रकट नहीं हुए। जो जातियां सहस्रों वर्षों से नदी के किनारे रहती हैं और केवल मछली मारकर जीवन निर्वाह करती हैं, उनका सद्यो जात शिशु तैरना क्यों नहीं जानता? क्या करोड़ों वैज्ञानिक अंधविश्वास वश हम पर रौब डालने के लिये हाथ उठाकर चिघाड़-चिघाड़ कर कहेंगे कि उन्हें तैरने की आवश्यकता नहीं रही इसलिये वे तैरना भूल गये। तो भी इस बात पर अंध श्रद्धा के सिवाय किसी दूसरे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

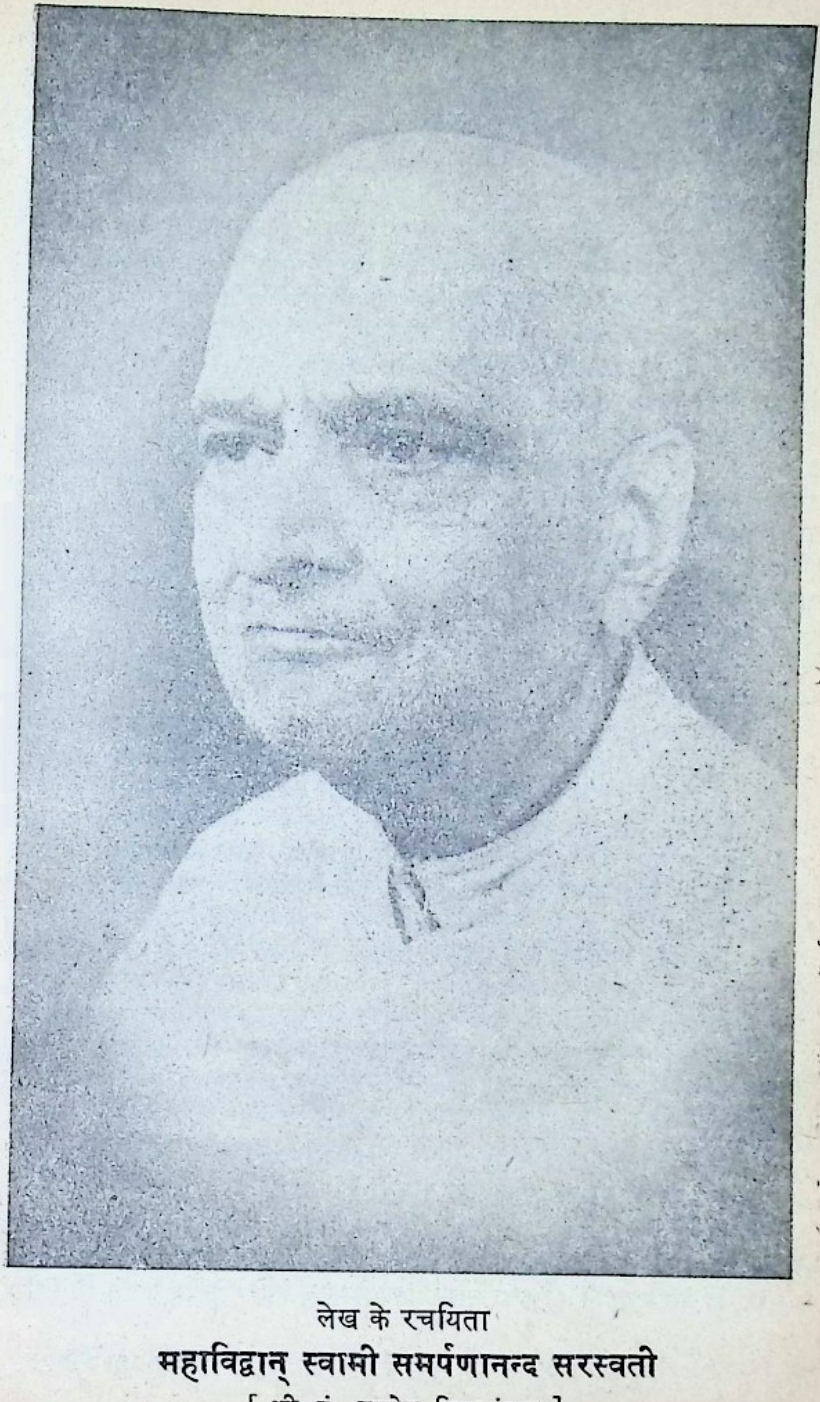

लेख के रचयिता
महाविद्वान् स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती
[श्री पं० बुद्धदेव विद्यालंकार]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आधार पर विश्वास किया जा सकता है ? कदापि नहीं ।

दूसरी ओर जो भैंस सहस्रों वर्ष से राजपूताने में रहती है, जिसे कभी डूबने योग्य पानी में तैरने का अवसर वर्षों में एक आध बार आता होगा, उसका सद्यो जात शिशु पानी में घुसते ही क्यों तैरने लगता है ?

मानव जगत् तथा मानवेतर जगत् का यह पर्वताकार भेद आँखों से कैसे परे किया जा सकता है ? इसे आंखों से परे करने का एक ही उपाय है । विकासवादियों के भय के मारे आँखें बन्द करले । बस फिर तो अन्धकार के सिवाय कुछ नहीं । परन्तु जब तक मस्तिष्क में तर्क की एक चिनगारी भी शेष है कोई आँखें कैसे मूंद ले ।

अब लीजिये कछुए को । यह विचित्र जन्तु है । इसे जरा उलट दीजिये, बस फिर एक पग भी नहीं चल सकता । इसलिये यदि कोई मोटर कार उलट जाये तो अंग्रेजी में कहा जाता है:—The car has turned turtle. परन्तु इससे भी विचित्र बात यह है कि इस जन्तु की पीठ पत्थर से भी अधिक कठोर है । दूसरी ओर इसका पेट अति सुकुमार है। हम पूछना चाहते हैं कि इस जानवर की पीठ कब और कहाँ रगड़े खा-खा कर कितने करोड़ वर्ष में इतनी कठोर हो गई ? तब क्या यह पीठ के बल चलता था, और फिर इसका पेट बराबर नरम है यह कितने करोड़ वर्ष में कठोर होगा और अब यह पीठ के बल चलना एकदम क्यों भूल गया ? वह करोड़ों वर्षों की आदत एकदम कहाँ रफूचक्कर हो गई ? इसके पेट की सुकुमारता को देख कर तो कहा जा सकता है कि इसे पैरों के बल चलते मुश्किल से कुछ हजार वर्ष हुए होंगे, वह करोड़ों वर्षों की पीठ के बल चलने की आदत कुछ हजार वर्ष में कहाँ भाग गई और इसके पैर तो अभी तक पत्थर के समान कठोर नहीं हुए ।

अब एक और जीव श्रेणी लीजिये । इन में से मैं मोर और कोयल को लेता हूं । प्राण रक्षा के निमित्त परिश्रम करने से मोर के पञ्जे तीक्ष्ण हो गये हों । डैने बलवान् हो गये हों । चोंच कठोर हो गई हो । यह सब कुछ तो समझ में आता है, परन्तु यह सुन्दर पूंछ के चन्दे कहाँ से आ गये । मोर के कण्ठ तथा पूंछ की सुन्दरता तथा कोयल के कण्ठ की काकली का जन्म कैसे हुआ ? इस लम्बी सुन्दर पूंछ का सौन्दर्य कहाँ से आया और नृत्य कला मोर ने कहाँ से सीखी ? उत्तर मिलता है कि सौन्दर्य पर ही मोहित हो कर मोरनी मोर की ओर आकृष्ट होती है इसलिये यह उसकी प्राण रक्षा के लिए आवश्यक है । वाहजी वाह यह भी एक रही । पहले सुन्दर पूँछ बनी तब मोरनी आकृष्ट हुई, परन्तु प्रश्न तो यह है कि सुन्दर पूंछ बनी कैसे ? चेतना-हीन प्रकृति में इस सुन्दर कला कृति का विकास कैसे हुआ ? उत्तर एक ही हो सकता है तर्क की आंख मूंद लो और विकासवादी महामहोपाध्याय जी के आगे हाथ जोड़कर कह दो सत्य वचन महाराज, नहीं तो आर्यसमाजी कह कर तुम पर धरती से मिटा दिये जाने का फतवा लगा दिया जायेगा । परन्तु हम तो टलने वाले नहीं ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मानव तथा मानवेतर जगत् में एक स्पष्ट भेद है ।

मानव बिना सिखाए कुछ नहीं सीखता ।

मानवेतर को जन्म से बहुत सी सिद्धियां प्राप्त हैं, जिन्हें सीखने में मानव को सैंकड़ों वर्ष लग जाते हैं । कबूतर को उड़ने की सिद्धि, भैंस को तैरने की सिद्धि, रेशम के कीड़े को रेशम बनाने की तथा मधुमक्षिका को मधु तथा मधुकोष बनाने की सिद्धि,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ये सिद्धियाँ इन जीवों को जन्म से प्राप्त हैं इसीलिए यह पशु अर्थात् द्रष्टा कहलाते हैं।

दूसरी ओर मनुष्य मनु अर्थात् मननशील कहलाता है। मनुष्य में जो अपत्य प्रत्यय है, यह आलङ्कारिक है अर्थात् मनन की सन्तान अन्यथा मनुष्य तथा मनु पर्यायवाची हैं जैसा कि ऐतरेय ब्राह्मण के इस प्रमाण से सिद्ध है।

होता मनुवृतोऽयं हि सर्वतो मनुष्यैर्वृतः
ऐतरेय १० अध्याय २ खण्ड।

हमने देख लिया कि यह विकासवाद एक थोथी, सारहीन, निराधार, तर्क-विरुद्ध जर्जर कल्पना मात्र है। किन्तु यही आज एक दीवार बनकर हमारे और सच्चे वेदार्थ के बीच खड़ी है। इस दीवार को तोड़ दो।

अदृष्टवाद अथवा अपूर्ववाद

वेद का सच्चा अर्थ जानने में बाधक दूसरा वाद नवीन मीमांसकों का अदृष्टवाद अथवा अपूर्ववाद है। वेदवाणी की महिमा गान करते हुए पतञ्जलि महाराज ने कहा है—

एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग्भवति।

अर्थात्—वेदवाणी का एक शब्द भी ठीक जानकर और उसे भली प्रकार प्रयोग में ले आवें तो वह कामधेनु है। इन मीमांसकों ने इसमें से सुप्रयुक्तः यह कड़ी उड़ा दी है। सम्यग् ज्ञातः का अर्थ ये करते हैं सम्यगुच्चारितः, इसीलिए इन्होंने यज्ञों का खूब विध्वंस किया और उसके साथ ही वेद का भी खूब विध्वंस किया। यज्ञ प्रक्रिया का मूलतत्त्व जानने के लिये हमें दो शब्दों को समझना होगा।

तेज एव श्रद्धा सत्यमाज्यम् (शत. ११. २. ४. १)

अहुयतैव सत्यं श्रद्धायाम्।

अब इन मीमांसकों के कहे अनुसार उदात्तानुदात्त स्वरित का ठीक विचार करके सम्यक् मंत्रोच्चारण पूर्वक घृत अग्नि में डाल दिया तो बस यज्ञ का पूरा-पूरा फल मिल जाएगा, क्योंकि इस कर्म से एक में एक अदृष्ट अथवा अपूर्व पैदा होता है, फिर उस क्रिया कलाप का प्रत्यक्ष फल उस यज्ञ से चाहे बिल्कुल विपरीत क्यों न हो, किन्तु अदृष्ट का जादू सब विघ्नों को पार करके मनुष्य को इष्टसिद्धि तक पहुंचा देता है। यह अदृष्टवाद ही समस्त अंध विश्वासों का प्राण है। भारत का सारा अधःपतन इसकी कृपा से हुआ।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार अग्नि प्रतीक है। श्रद्धा उसका प्रत्यायनीय है, प्रतीक प्रत्यक्ष है, प्रत्यायनीय अदृष्ट है, अर्थात् अग्निहोत्र में जब अग्नि जला कर उसमें घृत की आहुति करते हैं तो इस स्थूल क्रिया के पीछे श्रद्धा में सत्य की आहुति यह सूक्ष्म भावना छिपी है यह अदृष्ट है इसको जान कर जीवन में आचरण करने से मनुष्य का कल्याण होता है। किन्तु इसके विपरीत यह मध्यकालीन मांसलप्रज्ञ मीमांसक लोग विधिपूर्वक मन्त्रोच्चारण द्वारा अग्नि में घृत डालते ही यज्ञ पूरा हो गया और उसी समय यजमान के परलोक बैङ्क में अदृष्ट का चैक जमा हो गया। यहाँ सम्यग् ज्ञातः के पश्चात् सुप्रयुक्तः का कुछ काम नहीं। बस सम्यगुच्चारितः से काम पूरा हो गया। मीमांसकों के अदृष्ट का प्रतीक मात्र से सम्बन्ध है। प्रत्यायनीय से कुछ नहीं, इसीलिए

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शतपथ ब्राह्मणादि समस्त ग्रन्थों के भाष्य उपहसनीय दीखते हैं।

वर्तमान युग के एक दृष्टान्त से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

कम्यूनिस्ट झण्डे पर हंसिया और हथोड़े का चित्र बना है। यह हंसिया और हथौड़ा प्रतीक हैं। हंसिया का प्रत्यायनीय है किसान और हथौड़े का प्रत्यायनीय है मजदूर।

अब यदि कहा जाय कि हंसिया हथौड़े की रक्षा करो। हंसिया हथौड़े के अपमान से राष्ट्र का नाश हो जाता है तो इसका अर्थ हुआ कि राष्ट्र के किसान मजदूरों की रक्षा करो, इनके अपमान से राष्ट्र का नाश हो जाता है, तब तो बिल्कुल ठीक है। परन्तु इसको न समझ कर कोई मनुष्य हथौड़े को नमस्कार करके फूल चढ़ाने लगे, तो उसे तो कुछ भी न मिलेगा और यदि हथोड़े को पैर से लात मारे तो थोड़ा सा पैर के तले में दर्द होकर रह जायगा, और तो इस अपमान का कुछ फल न होगा।

इस प्रकार हंसिया हथौड़े का अदृष्ट किसान और मजदूर हैं। परन्तु मीमांसकों के विचारानुसार हंसियायै स्वाहा कर घृत की आहुति अग्नि में डालते ही एक अदृष्ट पैदा हो जाता है, बस फिर कल्याण में क्या देर है।

इस अदृष्ट शब्द के ठीक न समझने से कितना भयङ्कर परिणाम हुआ यह कह कर नहीं बताना पड़ेगा। हम अपनी बात को पुष्ट करने के लिये यहां शतपथ ब्राह्मण का एक प्रमाण उपस्थित करते हैं जो बिल्कुल पर्याप्त होगा।

तद्धैतज्जनको वैदेहः याज्ञवल्क्यम् पप्रच्छ वेत्थाग्निहोत्रं याज्ञवल्क्या ३ इति। वेद सम्राडिति। किमिति पय एवेति।२। यत् पयो न स्यात् केन जुहुआ इति। व्रीहियवाभ्यामिति यद् व्रीहियवौ न स्याताम् केन जुहुया इति या आरण्या ओषधय इति। यदारण्या औषधयो न स्युः केन जुहुया इति वानस्पत्येनेति यद्वानस्पत्यं न स्यात् केन जुहुआ इत्यद्भिरिति यदापो न स्युः केन जुहुया इति।३। स होवाच न वा इह तर्हि किंचनासीदथैतदहूयतैव सत्यं श्रद्धायामिति। वेत्थ याज्ञवल्क्याग्निहोत्रं धेनुश्शतन्ते ददामीति होवाच।४।

॥शत ११. २. २ से ४ तक।

सो यह इस प्रकार हुआ कि एक समय वैदेह जनक ने याज्ञवल्क्य से पूछा—हे याज्ञवल्क्य ! अग्निहोत्र का तत्त्व जानते हो ?

याज्ञ०—हां सम्राट् जानता हूँ।
जनक—किस पदार्थ से हवन करते हो ?
याज्ञ०—दूध से।
जनक—यदि दूध न मिले तो काहे से हवन करोगे ?
याज्ञ०—जौ चावल से।
जनक—यदि जौ चावल न मिले तो किससे हवन करोगे ?
याज्ञ०—तो जो कोई जंगली अनाज मिलेगा उससे।
जनक—यदि जंगली अनाज न मिले तो किससे हवन करोगे ?
याज्ञ०—तो जंगली फलों से।
जनक—यदि जंगली फल न मिलें तो किससे हवन करोगे ?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

याज्ञ०—जल से।

जनक—यदि जल न मिले तो किससे हवन करोगे ?

तो इस पर याज्ञवल्क्य बोले—जब केवल वेद ही था, और यह सब क्रिया-कलाप कुछ नहीं था, तब भी हवन होता ही था। वह हवन सत्य का श्रद्धा में होता था। इस पर जनक ने कहा कि हां याज्ञवल्क्य तुम यज्ञ को ठीक जानते हो, मैं तुम्हें सौ गाय देता हूँ।४।

इसीलिये इसी प्रकरण में प्रथम कांड में लिखा है कि—

वाग्ह वा एतस्याग्निहोत्रस्याग्निहोत्री। मन एव वत्सस्तदिदं मनश्च वाक्च समानमेव सन्तानेव तस्मात् समान्या रज्वा वत्सं च मातरं चाभिदधाति तेज एव श्रद्धा सत्यमाज्यम् ।१।

इस अग्निहोत्र की दूध देने वाली गाय वाणी है, मन उसका बछड़ा है। सो यह मन और वाणी एक समान होते हुए भी पृथक् से हैं। इसलिये एक रस्सी से गाय और बछड़े को बांधता है। यहाँ श्रद्धा अग्नि है और सत्य घृत है। यहां स्पष्ट है कि गाय वाणी का प्रतीक है और बछड़ा मन का प्रतीक है। रस्सी दोनों के घनिष्ठ सम्बन्ध का प्रतीक है, अग्नि श्रद्धा का और घृत सत्य का प्रतीक है।

इस पर कहा जायगा कि तब तो यह अग्निहोत्रादि यज्ञ एक प्रकार के नाटक हुए, जिनमें शूर्प अग्निहोत्रहवणी पुरोडाशादि अभिनय करने आते हैं, तो उसका उत्तर हाँ में है।

भरतनाट्यशास्त्र में लिखा है यजुर्वेदादभिनयम्। नाट्यशास्त्र में भरत मुनि ने अभिनय यजुर्वेद से लिया इसीलिये अब तक नाटक में अभिनय कर्ताओं को पात्र कहा जाता है। यज्ञों में जो काम पात्रों से लिया जाता था यह नाट्य में स्त्री पुरुषों से लिया गया किन्तु नाम वही पात्र रहा यही नहीं स्वयं शतपथ ब्राह्मण में अग्निहोत्र को काव्य कहा गया है। ऊपर जो काव्य उद्धृत किया गया है उसी प्रसंग में याज्ञवल्क्य अपने से प्राचीन किसी ऋषि के श्लोकों का उद्धरण देकर अथवा स्वयं निर्मित श्लोक उद्धृत करके कहते हैं।

तदप्येते श्लोकाः। किंस्विद् विद्वान् प्रवसत्यग्निहोत्री गृहेभ्यः कथमस्य काव्यम्। कथसंततोऽग्निरिति। कथंस्विदस्यानपप्रोषितं भवतीत्येवैतदाह ।५। यो जविष्ठो भुवनेषु स विद्वान् प्रवसन् विदे तथा तदस्य काव्यम् तथा सततोऽग्निरिति। मनएवैतदाह मनसैवानपप्रोषितं भवतीति ।६।

जब अग्निहोत्री विद्वान् प्रवास में ही घर से बाहर हो तब क्या होगा ? प्रवास में रहते हुए भी अग्निहोत्र की दृष्टि से अप्रवास हो वह कैसे होगा ? उसके काव्य का क्या बनेगा, अग्नि अविच्छिन्न कैसे रहेगा ? ।५। इस प्रश्न का उत्तर अगली कण्डिका में है, जो इस संसार में सबसे तीव्र गति वाला है। वह विद्वान् ज्ञान देने के लिये प्रवास में साथ है, उसी के द्वारा काव्य की रक्षा होगी, अग्नि अविच्छिन्न रहेगा। सो यह इशारा मन की ओर है, मन के द्वारा प्रवास, अप्रवास हो जायगा। क्योंकि श्रद्धारूप अग्नि मन में है और अग्निहोत्र रूप काव्य उसके मन में उसके साथ है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस प्रतीक प्रत्यायनीय के रहस्य को न समझकर मध्यकालीन मीमांसकों ने विचित्र धांधली मचाई है। कात्यायन श्रौत सूत्र में लिखा है—"अवकीर्णिनो गर्दभेज्या।"

अर्थात् जो ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य व्रत भङ्ग कर बैठे उसे गर्दभेज्या करनी चाहिये। अब स्पष्ट है कि ब्रह्मचर्य व्रत भङ्ग करने वाले का प्रायश्चित्त अभीष्ट है, इसलिये मूर्खता का प्रतीक गधा चुना गया। साथ ही यह भी बताया गया कि यदि तू गधे से कठिन परिश्रम करना तथा जो मिले खाकर प्रसन्न रहना यह सीखेगा तो फिर ब्रह्मचर्य भङ्ग न करेगा। यही प्रायश्चित्त का भाव है। प्रायश्चित का अर्थ है प्र=अग्रे, अयः=गमनम्, चित्तम्=दृढ़ निश्चयः अर्थात् अग्रे गमनाय दृढ़ निश्चयः इस प्रकार हुआ। तूने भूल की, गर्दभेज्या द्वारा तुझे दण्ड मिल गया, अब कमर कसके उठ और "आगे बढ़ने का दृढ़ निश्चय" कर। अब तक यह गर्दभेज्या भारत के ग्राम ग्राम में प्रचलित है। जब कोई ब्रह्मचर्य सम्बन्धी अपराध करता है, तो उसे गधे पर चढ़ाया जाता है। इस यज्ञ का स्थान भी वही शास्त्रोक्त है अर्थात् चौराहा सो ब्रह्मचर्य का अपराधी गधे पर चढ़ कर चौराहे पर घूमे यह तो प्रायश्चित्त हुआ, किंतु यह भी तब होगा जब प्रायश्चित्ती इसके भाव को ठीक जान कर, उसे सुप्रयुक्त भी करेगा। केवल रीति निर्वाह मात्र से कुछ लाभ न होगा। यहां गधा तो मूर्खता, अध्यवसाय और स्वल्पाहार का प्रतीक मात्र है। गधे पर चढ़ना तो दृष्ट है, अदृष्ट भावना तो गधे से कुछ सीखना है और कुछ भूलना है। मूर्खता का परित्याग, अध्यवसाय और तप का ग्रहण, यह इस प्रतीक का प्रत्यायनीय है। परन्तु अब मध्यकालीन मीमांसकों की लीला देखिये।

जो ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य भंग करे वह गधे को काटकर चौराहे में हवन करे।

भला पूछिये तो सही कि यह प्रायश्चित्त क्या हुआ, एक पाप को दूर करने के लिये उससे भी बड़ा पाप कर डाला, ब्रह्मचारी ने तो व्रत भङ्ग किया और गधा बेचारा निरपराध मारा गया। परन्तु बोलिये मत अदृष्ट उत्पन्न हुआ अपूर्ण उत्पन्न हुआ। कहीं कोई मीमांसक आप पर भी प्रहार न कर बैठे।

जरा आगे और लीला देखिये। गधा मारा गया उसका बटवारा भी हो गया। एक भाग होता को, एक अध्वर्यु को, एक उद्गाता को एक यजमान को मिला। परन्तु सबसे बढ़िया भाग तो ब्रह्मा जी को मिलना चाहिये। सो देखिये चौराहे में से कुछ दबाए लिये चले आ रहे हैं। आप उत्सुकता से पूछेंगे वह क्या है? सो सुनिये। "शिश्नात् प्राशित्रा वदानम्," अर्थात् ब्रह्मा जी को गधे का ...... मिले। जब घर पहुंचेंगे तो ब्रह्मा जी की पत्नी और बच्चे यह प्रसाद पाकर कितने प्रसन्न होंगे, वाह वाह कैसे उछलेंगे। बोलो मत, अदृष्ट उत्पन्न हुआ है।

इस पर आप पूछेंगे कि तम ही कहो कि इस सूत्र का अर्थ क्या है? तो सो सुनिये। इस प्रकार उपस्थेन्द्रिय का दुरुपयोग करने वाले बालक को चतुर्वेदविद् ब्रह्मा, जो इस विज्ञान का विशेषज्ञ हो, उसकी शरण में ले जावें और उसकी देखरेख में रह कर इस इन्द्रिय का पूर्ण सुधार करें, जिससे फिर भूल न हो, तब प्रश्न होगा कि फिर वह ब्राह्मण खावें क्या? उत्तर यह है कि इस सुधार के विज्ञान से ही उनकी जीविका भी चलेगी, जिस प्रकार नेत्र विशेषज्ञ नेत्र की कमाई खाते हैं इसी प्रकार शिश्न विशेषज्ञ शिश्न सुधार की कमाई खावेंगे और यह श्रद्धा पूर्वक उन तक पहुंचाना यजमान का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कर्तव्य है इसलिए इसे यज्ञ का अंग बनाया । इस प्रकार हुआ "शिश्नात् प्राशित्रा वदानम्" सो इस प्रतीक प्रत्यायनीय के मर्म को न जान कर अदृष्टवादियों ने जो वेद का विध्वंस किया उससे ऋषि दयानन्द ने हमारा उद्धार किया.। धन्य हो दयानन्द !

विनियोगवाद

अब वेदार्थ ज्ञान का तीसरा महाविघ्न विनियोगवाद हमारे सामने आता है। विनियोग किसको कहते हैं? अन्यत्रोपात्तानां वाक्यानाम् यथास्थानमुपयोगी विनियोगः जो वाक्य किसी एक ग्रन्थ के विशेष प्रकरण में पड़े हों उनको प्रसङ्गानुसार किसी वैसे ही प्रकरण में इस ढङ्ग से प्रयोग करना जिससे वे उस प्रसङ्ग में फब जावें, यही विनियोग कहलाता है। जैसे गीता का यह वाक्य 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुवं जन्म मृतस्य च। तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ अ० २ श्लोक २७ जो पैदा हुआ है उसकी मृत्यु अवश्य होगी, जो मरा है उसका जन्म अवश्य होगा। इसलिए अवश्यम्भावी बात पर तुम्हें शोक करना उचित नहीं।

यदि किसी उपदेशक द्वारा किसी ऐसे अवसर पर पढ़ दिया जाये जहां किसी जवान पुत्र की देश सेवा के कार्य में मृत्यु हो गई तो वह इसका ठीक विनियोग होगा।

परन्तु किसी कन्या के विवाह पर कन्या की विदाई के समय यह वाक्य पढ़ा जावे, तो इसका अनुचित उपयोग होगा। यह विनियोग नहीं दुर्नियोग होगा। अब किसी वाक्य का विनियोग हुआ है अथवा दुर्नियोग इसका निर्णय करने का उपाय यह है कि पहले उस वाक्य का ठीक अर्थ जानकर पीछे विनियोग को देखना चाहिये कि विनियोज्य वाक्य का विनियोग ठीक अर्थ के अनुकूल है या नहीं। किन्तु इसके ठीक विपरीत मध्यकाल के मीमांसकों ने विनियोग वाक्यों का अर्थ निश्चय करके वेद को उसके पीछे चलाया, उदाहरण के लिये मैं यजुर्वेद ३७ अध्याय १२ मंत्र को लेता हूं।

मन्त्र इस प्रकार है।

अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः ।
पुत्रवती दक्षिणत इन्द्रस्याधिपत्ये प्रजाम्मे दाः ॥
सुषदा पश्चाद् देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः ।
आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषम्मे दाः ॥
विधृतिरुपरिष्टाद् बृहस्पतेराधिपत्ये ओजो मे दाः ।
विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि मनोरश्वासि ॥

पति पत्नी की प्रशंसा में पत्नी से कहता है, हे पत्नि, मेरा धर्म है कि मेरे रहते कोई तेरी ओर आंख न उठा सके और तुझे सदा उचित आदर से देखे। इस प्रकार अनाधृष्टा तू अग्नि के राज्य में मुझे आयु देने वाली हो, मेरी दक्षिण दिशा में अर्थात् वीर्य्य शक्ति सम्पन्न होने की दशा में तू पुत्रवती होकर इन्द्र के राज्य में मुझे प्रजा देने वाली हो, उचित रूप से घर की देख रेख के लिए घर में बैठने वाली सुषदा होकर तू मेरे घर रूपी सवितृ मण्डल में मुझे आंख देने वाली हो। चारों ओर का ठीक ठीक गृह वृत्तान्त मुझे सुनाने वाली हो अतएव आश्रुति बन कर तू उत्तर दिशा में अर्थात् मेरे वामाङ्ग में धाता के राज्य में मेरी गृहलक्ष्मी की पोषक बन, मेरे सिर पर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

धारने योग्य विधृति अर्थात् छत्र रूप बन कर तू बृहस्पति के राज्य में अर्थात् मेरे मस्तिष्क में ओज भरने वाली बन। तू सब नाष्ट्रा अर्थात् व्यभिचारादि द्वारा हमारा जीवन नष्ट करने वाली दुराचारिणी स्त्रियों से मेरी रक्षा कर सो किस प्रकार ? कि—

मनोरश्वासि=अन्तःकरणस्य व्यापिका भवसि।

भावार्थ—तू मेरे मनमें इस प्रकार व्याप जाती है कि किसी दुराचारिणी के लिए उसमें स्थान ही नहीं रहता।

यह इस मन्त्र का ऋषि दयानन्द कृत अर्थ है। कितना स्पष्ट, कितना प्रकरणानुकूल, कितना युक्ति सङ्गत। मन्त्र में पड़ा हुआ पुत्रवती शब्द पुकार-पुकार कर कह रहा है, कि इसमें पत्नी का वर्णन है। इसका विनियोग पृथिवी में हुआ है। सो इस में कुछ अयुक्त बात नहीं। विवाह संस्कार में पति पत्नी से कहता है "द्यौरहं पृथिवीस्त्वम्' हे पत्नी मैं द्यौ हूँ तू पृथिवी है। यहां पति को बताने वाला द्यौः शब्द स्त्रीलिंग है। इसका चमत्कार दिखाने का यहां प्रसङ्ग नहीं वह यथास्थान दिखाया जायगा। किन्तु यहां पृथिवी कह कर वेदवाणी ने स्पष्ट रूप से पत्नी का वर्णन किया है। अब यदि मूल के पुत्रवती शब्द के पीछे पृथ्वी को चलाकर इस मन्त्र का अर्थ समझा जाय तो वह कितना शिक्षाप्रद तथा उत्साह वर्धक गृहस्थाश्रम में हमारा दर्शन बनता है। वेद की महिमा इससे कितनी स्पष्ट दिखती है। परन्तु मध्यकालीन भाष्यकारों ने वेद के पीछे विनियोग को न चलाकर विनियोग के पीछे वेद को चलाया है।

उनका व्यवहार ठीक इसी प्रकार है जैसे कोई तैयार कपड़ों की दूकान पर जाकर एक पाजामा मांगे। जब वह पहिन कर देखे तो पता लगे कि पाजामे की टांगे छोटी हैं। तब बड़ी टांगों वाला पाजामा दिखाने के स्थान में दूकानदार ग्राहक से माँग करे कि कृपा कर के टांग कटा कर आ जाइए पाजामा आपको पूरा आ जायगा। विनियोग के पीछे मूल को चलाना, पजामे के पोछे टांग को कटाने के सदृश घोर अत्याचार तथा पराकाष्ठा की मूर्खता है। किन्तु इसी मूर्खता का साम्राज्य मध्यकालीन मीमांसकों के द्वारा किए गए भाष्यों में दीखता है। ऊपर वर्णित मन्त्र का महीधर भाष्य देखिए।

हे पृथिवी, जो तू पूर्व दिशा में राक्षसों से अनाधृष्टा है, अग्नि के आधिपत्य में मुझे (यजमान को) आयु दे। जो तू दक्षिण दिशा में इन्द्र के आधिपत्य में पुत्रवती है सो तू मुझे संतान दे, जो तू पश्चिम दिशा में सुषदा अर्थात् जिसमें सब भली प्रकार बैठें ऐसी है सो सविता देव के आधिपत्य में मुझे नेत्र दे। हे पृथिवी, जो तू उत्तर दिशा में ब्रह्मा के आधिपत्य में आश्रुति है अर्थात् ब्राह्मणों के वेद श्रवण से युक्त है, सो तू मुझे धन की पुष्टि दे। जो तू ऊपर की दिशा में बृहस्पति के आधिपत्य में विधृति है सो मुझे ओज दे। हे महावीर पात्र के दक्षिण ओर की भूमि तू सब नाशकारक पिशाचादि से हमारी रक्षा कर, हे महावीर के उत्तर भाग की भूमि तू राजा मनु की घोड़ी है।

इसी प्रकार पशुयाग में जो मन्त्र पढ़े जाते हैं उनका ऊट पटांग अर्थ इसलिए किया गया कि इनका विनियोग पशु संज्ञपन में है। अब यदि मूल मन्त्र के पीछे विनियोग को चलाते तो इन भाष्यकारों को पशु शब्द का भी ठीक अर्थ ज्ञात हो जाता और संज्ञपन का भी, परन्तु इन विनियोग के दास मन्दमति लोगों ने पशु और संज्ञपन दोनों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शब्दों के साथ जो लीला की है उस पर रोयें अथवा हंसें यह कहना कठिन है। हंसी इसलिए आती है कि यह अर्थ बिल्कुल असम्भव है। पशु के माता पिता से अनुमति मांगना, फिर उनका अपने बच्चे को मारने की अनुमति देना। फिर मरे हुए बच्चे की वाक् प्राण आदि की शुद्धि सब ही नितान्त असम्भव है। उधर रोना इसलिए आता है कि इन ज़ड़मति लोगों ने वेद जैसी अमूल्य निधि को सारे संसार का उपहास पात्र बना डाला है। प्रथम तो संज्ञपन शब्द का मारना अर्थ सम्भव ही नहीं और यदि कदाचित् व्याकरण द्वारा यह उत्पन्न भी हो सकता हो तो सम्यक् ज्ञान देना इस प्रसिद्धार्थ को छोड़कर प्रकरण विरुद्ध असम्भव अर्थ को मन्त्रों पर क्यों लादा जाय, यह बिल्कुल समझ में नहीं आता। संज्ञपन शब्द के अर्थ का निर्णय करने में निम्न बातें विचारणीय हैं।

संज्ञपन का अर्थ मारना करने में मरे हुए पशु को यज्ञ में डालना पड़ेगा किन्तु शतपथ स्पष्ट करता है कि—

जीवमेव देवानां हविरमृतममृतानाम्

शत. ३. ८. २. ४.

देव लोग जीवित हैं मुर्दे नहीं हैं इसलिये उनकी हवि भी सजीव ही हो सकती है मुर्दा नहीं।

इसलिए स्पष्ट है कि पशुयाग में जो मंत्र दिये गये हैं वे जीवित पशु के ही अंगों में प्राण संचार करने वाले हैं, न कि मुर्दे के, और यह आहुति जीवन काल में ही दी जाती है। यतः प्राण संचार से पशु के अंग और भी सजीव हो उठते हैं।

कहा जा सकता है कि पशुयाग में जो पशु अङ्ग-अङ्ग विभक्त करने का वर्णन है सो यह भी जीवित का ही होना चाहिये। क्योंकि शतपथ ने स्पष्ट कह दिया है, जीव वै देवानां हविः, जिंदा देवताओं की हवि जिंदा ही हो सकती है मुर्दा नहीं।

अब प्रश्न यह होगा कि क्या यह भी सम्भव है पशु जिंदा भी रहे और उसके अङ्ग-अङ्ग विभक्त हो जावें? तो इसका उत्तर हां में है। इस गोरखधन्धे को सुलझाने से पहले हम पशु शब्द का अर्थ खोलकर दिखलाना चाहते हैं। पशु का अर्थ है बालक। क्योंकि बालक में मनन शक्ति पीछे प्रादुर्भूत होती है, आरम्भ में उसका जीवन निसर्ग बुद्धि (Instinct) से चलता है पशु जीवन भर (Instinct) निसर्ग बुद्धि से ही दीखते हैं किंतु मनुष्य मनन शक्ति की औलाद है, उसकी मनन शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है सो वह पशु (पश्यतीति पशुः,) इस अवस्था से निकल कर मनु होता जाता है।

अथर्व वेद में मन्त्र आया है—

वितिष्ठन्ताम् मातुरस्या उपस्थात् नानारूपाः पशवो जायमाना

अथर्व का. १४. अनु. २. मन्त्र २६.

इस मन्त्र में नववधू के स्वागत में आशीर्वाद दिया गया है कि इस माता की गोद से पशु जन्म ले उन्हें प्रतिष्ठा लाभ हो।

इस मन्त्र के अनुवाद में ग्रिफिथ जैसे कट्टर पन्थी को भी पशु का अर्थ babies करना पड़ा है। यजुर्वेद में भी लिखा है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

देवा यद् यज्ञम् तन्वाना अबध्नन् पुरुषम् पशुम् ।

यजु ३१. ५१

विद्वान जो पवित्र यज्ञ करते हैं उसमें पुरुष पशु को बांधते हैं। यह तो हुई पुरुष सामान्य की बात अब जो घोड़ा, गधा आदि पशुओं के नाम आते हैं वे ब्राह्मण क्षत्रियादि गुण वाले पुरुषों के नाम हैं। देखिए—

क्षत्रं वा अन्वश्वो वैश्यं च शूद्रं चनुरासभी ब्राह्मणमजः

शत ६. ४. ४. १४

घोड़ा क्षत्रिय के अनुकूल गुण वाला है, वैश्य शूद्र गधे के और ब्राह्मण बकरे के गुण वाला।

सो जो छाग अर्थात् बकरी का बच्चा है यह गुरुकुल में प्रवेशार्थी छोटे बालक का नाम है। क्योंकि वह ऐसा नम्र तथा भोला भाला है। इसी लिए अंग्रेजी भाषा में भी Innocent as a lamb यही उपमा दी जाती है।

इस बालक को जब व्यायाम की शिक्षा दी जाती है तो उसका एक-एक अङ्ग अलग दिखने लगता है और वह जिंदा भी रहता है। इस प्रकार का बालक ही देवताओं की हवि होता है अर्थात् राष्ट्र के जिस विभाग के लिए उसे तैयार करना हो उसके लिए उपयोगी होता है। बेडौल शरीर वाला अर्थात चर्बी से लदा हुआ अथवा अस्थिपञ्जर मात्र बालक यज्ञ अर्थात संगठन के किसी काम का नहीं उसकी चर्बी पेट से कटकर व्यायाम के द्वारा जगी हुई प्राण शक्ति द्वारा जहां उसकी आवश्यकता है वहीं पहुंचनी चाहिये। यही चर्बी के हवन का भाव है। इस प्रसंग में कालिदास का यह श्लोक लीजिये।

उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रम् सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्
वभूव तस्याश्चतुरस्त्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन

कुमारसम्भवः १. ३१

कालिदास पार्वती के शैशव से यौवन में प्रवेश का वर्णन कर रहे हैं।

जिस प्रकार चित्रकार की तूलिका चित्र में एक एक अङ्ग को विभाग करके अलग अलग दिखा देती है, जिस प्रकार सूर्य की किरणों से कमल की पंखुड़ी खिल जाती है उसी प्रकार नवयौवन ने पार्वती के अङ्ग अङ्ग का विभाग करके उसे सुन्दर बना दिया। अब यहां क्या आप यह अर्थ करेंगे कि नवयौवन ने छुरी लेकर पार्वती के अङ्ग-अङ्ग काट डाले। इसी प्रकार कालिदास का एक श्लोक और लीजिये। मृगया की प्रशंसार्थ अभिज्ञान शाकुन्तलम् में वे लिखते हैं कि—

"मेदश्छेद कृशोदरं लघु भवत्युत्थान योग्यं वपुः", अर्थात् मृगया से चर्बी कट जाती है और शरीर हलका और फुर्तीला बन जाता है। अब यहां क्या यह अर्थ किया जायगा कि मृगया छुरी लेकर पेट की चर्बी काट डालती है, कदापि नहीं, तो चर्बी जाती कहां है, अग्नि के अर्पण हो जाती है। किसी डाक्टर से पूछ लीजिये, वे आपको बता देंगे कि व्यायाम से चर्बी ईंधन के समान जल कर छंट जाती हैं। यही चर्बी की अग्नि में आहुति है।

जब तक शतपथ का "जीवमेव देवानां हविः" जिन्दा ही देवताओं का हवि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हो सकता है मुर्दा नहीं, यह वाक्य विद्यमान् है तब तक करोड़ों पण्डित भी इकट्ठे होकर यज्ञ में पशु हिंसा सिद्ध नहीं कर सकते।

इसके अतिरिक्त सारे वैदिक वाङ्मय में पशुयाग वादी एक स्थान पर भी पशुं मारयन्ति अथवा प्राणै "वियोजयन्ति" ऐसा वाक्य नहीं दिखा सकते। हां इसका उल्टा तो अवश्य उपस्थित है।

तन्नाह जहि मारयेति मानुषं हि तत् संज्ञपयान्वगन्नति तद्धि देवत्रा स यदा हान्वगन्निति एर्तहि एष देवाननु गच्छति तस्मादाहान्वगन्निति ।।शत० ३८।२।१४।।

पशु के संज्ञपन काल में जहि, मारय, यह शब्द नहीं कहे जाते क्योंकि वह मनुष्यों का व्यवहार है। उस समय शब्द बोले जाते हैं संज्ञपन, अन्वगन् क्योंकि संज्ञपन के द्वारा यह देवों का अनुगामी बन जाता है। इसीलिये कहा अन्वगन्।

यह सचमुच बड़ी विचित्र बात है कि पशुयाग में संज्ञपन और आलम्भन शब्दों का ही व्यवहार होता है, मारण का कहीं नहीं। इसका कारण अवश्य विचारना चाहिये। बात स्पष्ट है पशुयागवादियों की यह तो हिम्मत नहीं हुई कि वे नये ग्रन्थ बना डालें। उन्होंने वैदिक साहित्य के शब्दों के ही अर्थ बदल डाले। उदाहरण के लिये हम इस लेख में संज्ञपन शब्द को लेंगे। यह संज्ञपन शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक ज्ञा धातु से णिच् प्रत्यय और उसके पश्चात् ल्युट् प्रत्यय करने से बना है।

इसमें पहले सम्+ज्ञा का अर्थ देखते हैं। इसका अर्थ है भली प्रकार जानना और पहचानना, चारों वेदों में यह शब्द और किसी अर्थ में नहीं आया, इसका निम्न उदाहरण पर्याप्त होगा।

संगच्छध्वम् संवदध्वम् संवो मनासि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्व्वे सञ्जनाना उपासते ।।
।।अ० १० । १९१।२।।

ऐ मनुष्यो! तुम संगठित होकर चलो परस्पर संवाद (Harmony) से चलो। तुम्हारे मन परस्पर एक दूसरे को समझते हों, तुम्हारे अन्दर Perfect mutual understanding हो। जिस प्रकार तुम्हारे पूर्व विद्वान् लोग अपने-अपने कार्य-भाग की उपासना परस्पर संज्ञान पूर्वक करते आये हैं।

मन्त्र का अर्थ इतना निर्विवाद है कि इसमें टिप्पणी की आवश्यकता ही नहीं। इस अर्थ में सब सहमत हैं।

अब संज्ञपित को लीजिये। यह संज्ञा का हेतुमद्भाव का रूप है। इसका अर्थ हुआ सम्यक् ज्ञान अथवा भली प्रकार परिचय कराना। फलतः उत्तम शिक्षा देना। इसी से संज्ञपन शब्द बना।

अब इस संज्ञपि का प्रयोग भी देखिये। मन-वाणी के झगड़े में वाणी कहती है, कि हे मन मैं तुझ से बड़ी हूँ। इसके लिये वाणी यह युक्ति देती है।

अथह वागुवाच अहमेव त्वच्छ्रेयोऽस्मि यद्वै त्वं वेत्थ अहं तद् विज्ञपयामि अहं संज्ञपयामीति ।।
।।शत० १/५/७/१०।।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस पर वाणी बोली, मैं ही तुझसे बड़ी हूँ। क्योंकि जो कुछ तू जानता है उसे मैं ही विज्ञापित करती हूँ। मैं समझाती हूँ। यहां सायण भाष्य (तथाकथित) में भी सम्यक् प्रतिपादयामि यही अर्थ किया गया है।

यह प्रसंग प्रथम काण्ड का है। पशुयागवादियों का प्रसंग तीसरे काण्ड में है। पता नहीं लगता कि जिस शब्द का अर्थ प्रथम कांड में सम्यक् ज्ञान देना है उसका अर्थ तीसरे काण्ड में मारना किस प्रकार हो गया।

कहा जा सकता है कि एक शब्द के दो अर्थ हैं, सो प्रकरण के बल से वहां ऐसा अर्थ कर दिया गया होगा। सो प्रथम तो इस शब्द का दूसरा अर्थ जबरदस्ती के बिना किया ही नहीं जा सकता। परन्तु यदि दुर्जनतोष न्याय से इसके दो अर्थ मान भी लिए जावें, तो अब देखना चाहिये कि प्रकरण क्या कहता है ?

पशुयागवादियों के मतानुसार

बकरी के बच्चे को जब संज्ञपन अर्थात् मारने के लिए ले जाते हैं तो उसे फांसी लगाकर मारते हैं, उस समय मन्त्र पढ़ते हैं। "ऋतस्य त्वा देव हविः पाशेन प्रति-मुञ्चामि" (यजु० ८/६) अर्थात् हे देवताओं की हविः तुझे हम ज्ञान के पाश से बांधते हैं। यह गला घोटना खूब ज्ञान का पाश हुआ। अब कहिये प्रकरणानुसार सम्यक् ज्ञान देना अर्थ हुआ अथवा गला घोटना। फिर मन्त्र पढ़ते हैं—

अनुत्वा माता मन्यतामनुपितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः
यजु० ६/९॥

हम अब तुझे मारेंगे। अब तेरे माता पिता, सहोदर भाई और टोली के मित्र सब इस शुभकार्य में अनुमति दें।

भला विचारिये कि पहले तो बकरी के बच्चे का उस प्रकरण में कहीं वर्णन नहीं, फिर यदि यहां छाग मान भी लें तो यह वर्णन छाग के समान विनीत बालक का हुआ, जो ब्राह्मण गुण वाला है। भला बकरी के बच्चे के माता पिता आदि का प्रथम तो पता ही किस प्रकार लगेगा ? फिर वे अनुमति किस प्रकार देंगे ? फिर यदि उनमें अनुमति देने की शक्ति होती, तब वे तो यजमान को ही स्वर्ग पहुँचाने को कहेंगे, अपने बच्चे को नहीं।

आगे चलिये। यजमान की पत्नी मरे हुऐ बकरे के अंग स्पर्श करके मन्त्र पढ़ती है।

वाचं ते शुन्धामि प्राणन्ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रन्ते शुन्धामि नाभिन्ते शुन्धामि मेढ्रन्ते शुन्धामि पायुन्ते शुन्धामि चरित्रां स्तेशुन्धामि।
॥यजु० ६/१४

हे बकरी के बच्चे ! मैं तेरी वाणी को शुद्ध करती हूँ, प्राण को शुद्ध करती हूँ, चक्षु को शुद्ध करती हूँ, कान को शुद्ध करती हूँ, नाभि को शुद्ध करती हूँ, उपस्थेन्द्रिय को शुद्ध करती हूँ, गुदा को शुद्ध करती हूं, तेरे चरित्रों को शुद्ध करती हूँ। भला यह चरित्र शुद्धि तो जीवित बकरे की भी असम्भव है, मरे की तो कहना ही क्या ?

फिर अगले मन्त्र में मरे बकरे को आशीर्वाद देते हैं—

वाक् त आप्यायताम् प्राणस्त आप्यायताम् चक्षुस्त आप्यायताम् श्रोत्रंत आप्यायाताम्। अजु० ६/१६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हे मरे हुए बकरे तेरी वाणी फले फूले, तेरे प्राण फलें फूलें, तेरे चक्षु फलें फूलें, तेरे कान फलें फूलें।

(शमहोभ्यः) तेरे दिन सुख शान्ति से बीतें। अब यदि संज्ञपन के दो अर्थ भी मान लें तो देखिये कि प्रकरण में सङ्गत अर्थ कौन सा है।

संज्ञपन का अर्थ विद्यादान मानने से अर्थ यों हुआ, हे विनीत बालक, आज घर से गुरुकुल के लिये विदाई देते समय हम तुझे ज्ञान के पाश से बांधते हैं, माता पिता, सहोदर भाई, टोली के साथी सब तुझे प्रसन्न होकर गुरुकुल के लिये विदा करें। गुरुपत्नी कहती है—मैं तेरी वाणी को शुद्ध करती हूँ, तेरे प्राण शुद्ध करती हूँ, तेरे नेत्र शुद्ध करती हूँ, नाभि शुद्ध करती हूँ, कान शुद्ध करती हूँ, लिंग शुद्ध करती हूँ, गुदा शुद्ध करती हूँ, अतः इन सब इन्द्रियों की शुद्धता तथा सदुपयोग सिखाकर मैं तेरा चरित्र शुद्ध करती हूं। फिर स्नातक होने के समय उसे आशीर्वाद दिया जाता है तेरी वाणी फले फूले, तेरे प्राण फले फूलें, तेरे कान फलें फूलें, तेरे नेत्र फलें फूलें, तेरे दिन सुख से बीतें।

अब एक ऐतरेय ब्राह्मण का भी प्रमाण लीजिए—

ता भृगुरपश्यदापो वै स्पर्धन्त इति। ता एतयर्चा समज्ञपयत्।

॥ ऐतरेय ८ अध्याय २ खण्ड ॥

वसतीवरी और धना नाम की दो आपः में झगड़ा हो गया। इस झगड़े को भृगु ऋषि ने देखा सो उसने उन्हें आपस में एक मत कर दिया। यहां स्वयं सायण ने भी झख मार कर समज्ञपयत् का अथ संज्ञानम् परस्परमैकमत्यम् प्रापयत् इस प्रकार किया है। फिर पशु के सम्बन्ध में इसका अर्थ किस प्रकार बदल गया।

इस प्रकार यह बिल्कुल स्पष्ट है कि इस शब्द का अर्थ षड्यन्त्र द्वारा जान-बूझ कर बिगाड़ा गया है।

अब यह स्पष्ट हो गया कि इस विनियोग वाद ने वेद की कैसी दुर्दशा की है। इन तीन वेद विघातक वादों अर्थात (१) विकास वाद (२) अदृष्ट वाद (३) विनियोग वाद से ऋषि दयान्द ने वेद को मुक्त करके सारे संसार के लिए मोक्ष का रास्ता खोल दिया। क्योंकि जब संसार के मोक्ष का उपाय बताने वाला वेद ही स्वयं दास बन गया था तो संसार का मोक्ष किस प्रकार हो सकता था?

यहाँ तक हमने वेद विघातक तीन वादों का वर्णन किया। अब हम ऋषि दयानन्द की वेद भाष्य प्रणाली के आधारभूत तीन वादों का वर्णन आरम्भ करते हैं। वे तीन वाद निम्नलिखित हैं—

(१) यौगिक वाद (२) समकक्ष वाद (३) विज्ञाताश्रय वाद।

यौगिकवाद

सब से पहले यौगिक वाद को लीजिए। वेद के शब्दों का अर्थ लौकिक शब्दों की अपेक्षा व्यापक है। यह सब को मानना ही पड़ता है, यदि ऐसा न मानें तो—

अश्वा भवत वाजिनः गावो भवत वाजिनीः

अथर्व १-४-४

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यहां वाजि और वाजिनी शब्द का क्या अर्थ करेंगे ?

घोड़े घोड़े हो जावें और गौवें घोड़ी हो जावें ! कदापि नहीं ।

यहां सायण को भी वाज इति बलनाम यह निरुक्त प्रमाण दे कर अश्वा: बल-युक्ता भवथ: और गाव: प्रभूत क्षीरा भवथ: ऐसा अर्थ करना पड़ा । यदि अश्वादि शब्दों का रूढ़ अर्थ लेंगे तो ।

आविद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कैरथेभियति ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः

ऋ० १-८२--१

अश्वपर्ण शब्द जो रथ का विशेषण है सो कैसे बनेगा ।

अश्वा: आशु गामिन: पर्णा येषाम् ऐसा अर्थ करना ही पड़ेगा सो अश्व का अर्थ यहाँ शीघ्रगामी के अतिरिक्त क्या होगा ।

इसी प्रकार यदि कण्वादि नाम वेद में व्यक्ति विशेष में रूढ़ हों तो उनमें प्रत्यय नहीं लग सकता क्या दुनिया में कभी देवदत्त देवदत्ततर तथा देवदत्ततम अथवा Nepolian, Nepolianer, Nepolianest का प्रयोग भी देखने में आता है ? कभी नहीं ! किन्तु ऋग्वेद १--३१--२ में त्वमग्ने प्रथमो अंगिरस्तम: ऐसा प्रयोग है और इस प्रकार का प्रयोग ११ स्थलों पर देखने में आता है ।

ऋग्वेद १.४८.४ में कण्वतमो नृणाम् यह प्रयोग है जिसका अर्थ मनुष्यों में मेधावितम इस प्रकार करना पड़ता है । इसी प्रकार ऋग्वेद १०।१५५।५ में अग्नि: कण्व-तम: कण्वसखा ऐसा पाठ है जिसका अर्थ बुद्धिमानों का मित्र तथा सबसे बड़ा बुद्धि-मान् ऐसा करना पड़ता है ।

यह यौगिकवाद ऋषि दयानन्द ने चलाया हो सो ही बात नहीं, इस विषय में सायण की लीला भी देखिये ।

उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद् भुवि सुतं सोमं न हस्तिभिरापड्-भिर्धावतम् नरा विभ्रता वर्चनानसम् ।

यहां सायण ने हस्तिभि: का अर्थ किया है अश्वै: सो किस प्रकार वह भी देखिये इदानीं हस्तिभि: हन्तिवद्भि इन्तेर्गति कर्मणो हस्त शब्द: गमन साधन पादवद्-भरित्यर्थ पद्भि: पादचतुष्टयोपेतैरश्वै: । अर्थात् गमन क्रिया का साधन होने से हस्त नाम पाद का हुआ इसलिये हस्ती का अर्थ पैर वाले घोड़े इस प्रकार हुआ । अच्छा ! फिर आगे पड़े हुये पड्भि: का क्या बनेगा यह सायण ही जाने । इस प्रकार सायण यदि हाथी का घोड़ा बना दे तो उस पर खैंचातानी का दोष नहीं लगता । बात तो इतनी है कि इस सूक्त का विनियोग आश्विवेदता की स्तुति में है । बलिहारी है विनियोग की ।

अब हम यौगिकवाद पर होने वाले एक आक्षेप का भी समाधान कर देना चाहते हैं । लोगों का प्रश्न है कि यदि गच्छतीति गौ: अर्थात् जो चले उसका नाम गौ । ऐसा माना जाए तो लट्टू, घड़ी, नदी, घोड़ा, खच्चर, रेल गाड़ी, मोटर, बाईसिकिल, सबका नाम गौ होना चहिये ! नहीं ? यह ठीक नहीं ! यौगिकवाद का यह तात्पर्य कदापि नहीं ।

किसी शब्द का यौगिक अर्थ जानने का प्रकार यह है कि वेद में वह कहां

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

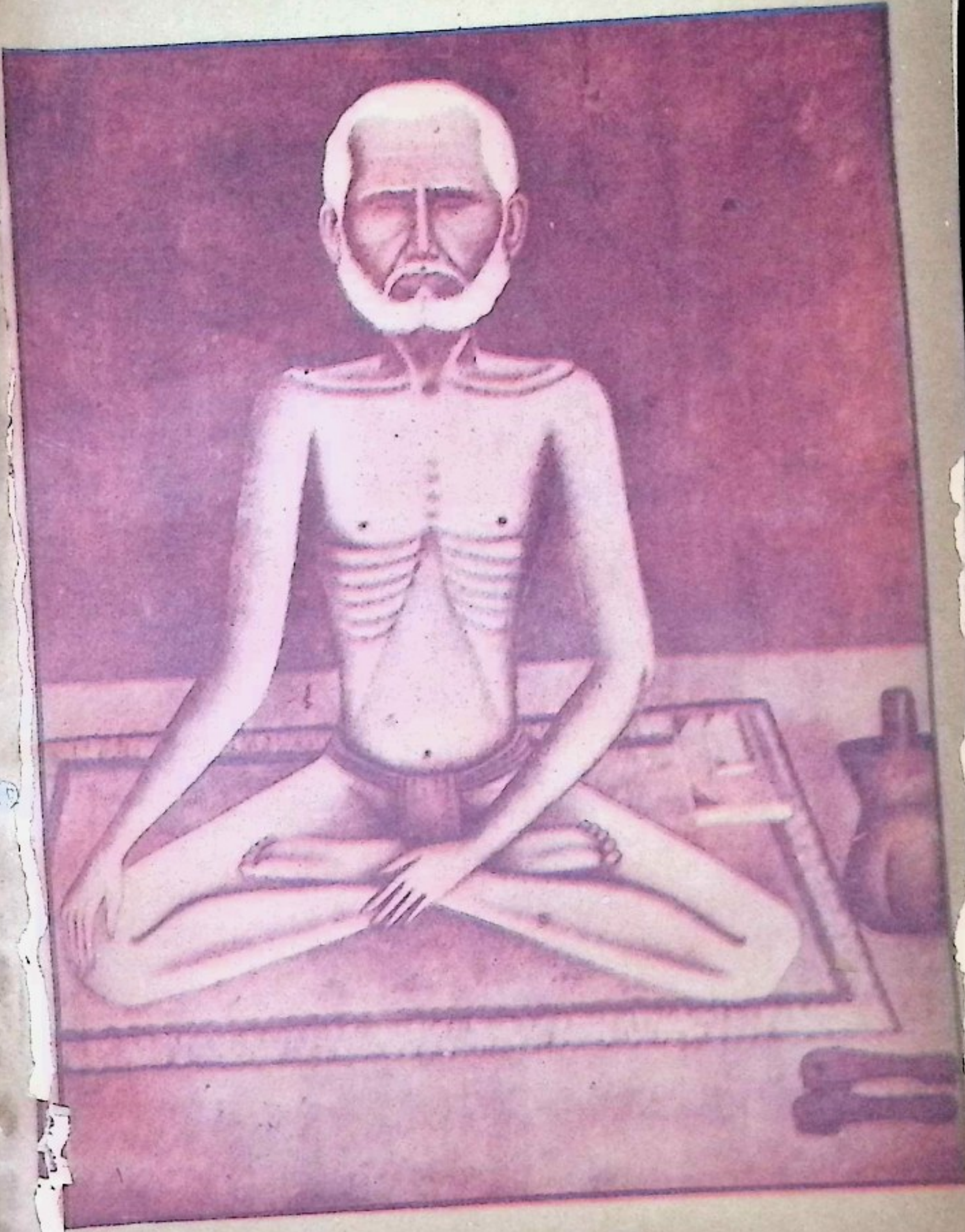

श्री गुरु विरजानन्द सरस्वती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कहां किस-किस प्रकरण में प्रयुक्त हुआ है यह देखकर ऐसा अर्थ ढूंढ़ निकालना जो उन सब अर्थों का अपने अन्दर समावेश करता हो। जैसे गौ शब्द वेद में धरती, वाणी, इन्द्रिय, स्त्री तथा गाय इन अर्थों में आया है। तो गौ का अर्थ हुआ प्रिय वस्तु को उत्पन्न करने के लिए गति करना। गाय दूध को उत्पन्न करने के लिये विचरती है, स्त्री संतान को, इन्द्रिये ज्ञान अथवा विषय सुख को, वाणी अर्थ को, धरती अन्न को। इसी प्रकार ऋ धातु को ले लीजिये यद्यपि व्याकरण में ऋ गतौ इस प्रकार अर्थ दिया है। परन्तु ऋ धातु का अर्थ जानने के लिये इसके प्रयोगों को देखना होगा। ऋ धातु से ऋतु शब्द वना है जिसका अर्थ है शीतोष्णादि अवस्था विशेष के लिए नियत काल। ऋतु का अर्थ है सत्य अर्थात् अन्यूनानतिरिक्त यथार्थ ज्ञान। जिसका उल्टा अनृत न्यून अथवा अतिरिक्त ज्ञान हुआ इससे ऋ धातु का अर्थ है परिमित। गति यह आशय वेद में स्वयम् अत्यन्त स्पष्ट कर दिया गया है। मन्त्र इस प्रकार है—

तेनो अर्वन्तो हवन श्रुतो दृवविश्वे श्रृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः।

वे हमारी आवाज सुन कर इशारे पर चलने वाले मितद्र अर्वा हमारी बात सुने यहां अर्वन्तः के अर्थ को मितद्रवः ने बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है। वे इतने सधे हुए घोड़े हैं कि दौड़ने के समय द्रुत गति में भी नाप के साथ चलते हैं।

इन्हीं अर्थात् सधे हुऐ घोड़ों के कारण आर्यों ने अरब देश का नाम अरब रक्खा। अरबी भाषा में इस अर्व नाम का कुछ अर्थ ज्ञात नहीं, क्योंकि यह शब्द संस्कृत भाषा का है और इस देश का नाम आर्य-भाषा-भाषी लोगों ने ही रक्खा। आज भी इस के घोड़े through bried के नाम से पुकारे जाते हैं।

इसी ऋ धातु से अर्य्य शब्द बना है जिसका अर्थ पाणिनि के अनुसार स्वामी अथवा वैश्य है (अर्य्यः स्वामिवैश्ययोः अ. ३ पा. १ सू. १०३) इस शब्द को देखकर पाश्चात्य विद्वानों ने खूब धांधली मचाई है। उनका कहना है कि ऋ धातु से अर्य्य शब्द बना। वैश्य का काम कृषि गोरक्षा वाणिज्य है, इसलिए ऋ धातु का अर्थ है खेती करना। इसकी पुष्टि वे अंग्रेजी भाषा के arrable land अर्थात् खेती योग्य भूमि इस शब्द से करते हैं। किन्तु यह उनकी भूल है। वैश्य अर्थ इसलिए कहलाता है कि उसके साथ हर बात नाप तोल में की जाती है। आप मां के साथ मचल सकते हैं मां लड्डू खायेंगे। हो सकता है मां आप के हाथ में ताली दे दे जा जितने जी में आएं खाले। परन्तु हलवाई से आप मचल नहीं सकते। जहां आपने कहा कि आज लड्डू खायेंगे और उसने तराजू पकड़ी कि बोलो कितने तोलूं सो अर्य्य का अर्थ हुआ मित्या प्राप्तव्यः। जिसके साथ नाप तोल में ही बात की जाय, स्वामी भी अर्य्य इसीलिये कहलाता है क्योंकि वह सेवक के काम को नाप तोल कर उसके अनुसार वेतन देता है, अंग्रेजी भाषा में जो खेती के योग्य भूमि को arrable कहते हैं वह भी इसलिए कि उसे ठीक नापना पड़ता है निरुक्त में लिखा है "अर्य्यः ईश्वर पुत्रः" अर्थात् अर्य्य का अर्थ है सबसे बड़े स्वामी परमात्मा का पुत्र अर्थात् जिस प्रकार परमात्मा का हर कार्य याथातथ्य पर अवलम्बित है (याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः) यजु. अ. ४० मं.८ जो उसके गुण, कर्म, स्वभाव अपने अन्दर धारण करे अर्थात् जिसका पूर्णतया नपा तुला जीवन हो वही आर्य है इस शब्द को एक जाति वाची शब्द मानकर योरोपियन लोगों ने जो बवण्डर खड़ा किया है वह आज दक्षिण देश में अपने रंग दिखा रहा है दुःख तो यह है कि पण्डित जवाहरलाल सरीखे सच्चे देश-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भक्त तथा पुरुष भी इस क्षेत्र में योरोपियन धूर्तों के चक्र में फंस कर इतने अन्धे हुए हैं कि इस भूल को नहीं सुधारते। आपने देखा कि एक शब्द के साथ किया गया अत्याचार कैसे कैसे गुल खिलाता है। सो वेद के शब्द यौगिक हैं और यौगिकवाद का अर्थ अन्धाधुन्धवाद नहीं किन्तु सर्वार्थ समावेशवाद है।

इस विषय में ऋषि दयानन्द का पक्ष सत्य की चट्टान पर खड़ा है और वह समय दूर नहीं है जब विदेशी धूर्तों के जहाज इस चट्टान से टकरा कर अवश्य चकनाचूर होंगे। हो सकता है कि मेरे धूर्त शब्द पर कई लोग आपत्ति करें किन्तु पण्डित गुरुदत्त जी आदि विद्वानों द्वारा सत्यज्ञान कराये जाने पर भी जिन्होंने राजनैतिक स्वार्थवश आर्य द्रविड़ का झगड़ा कराने के लिए आर्य जैसे पवित्र शब्द की मट्टी पलीद की उन्हें धूर्त न कहूं तो फिर क्या कहूं। परमात्मा हमारे देश के इतिहासविदाभासों का इनके चंगुल से कब उद्धार करेगा ?

समकक्षवाद

अब हम यौगिकवाद के साथ ही लगे हुये एक और वाद की ओर आते हैं, यह है समकक्षवाद। उपनिषत् में कहा है—"अनन्ता वै वेदा:" स्कन्द आदि भाष्यकारों ने भी आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक तीन अर्थ मन्त्रों के बताये हैं। वस्तुत: यह तीन ही क्यों, वेद के एक ही मन्त्र के अनन्त अर्थ हो सकते हैं। परन्तु इन सब अर्थों में एक व्यवस्था काम कर रही है। "सच पूछिये तो पुरुष सूक्त वेद की कुञ्जी है। इस ब्रह्माण्ड में जो सूर्य चन्द्रादि देव हैं उनकी कल्पना मनुष्य शरीर में करके फिर उनका प्रतिनिधि मानव समाज में ढूंढ़ना यही पुरुष सूक्त का सार है। भाव यह है कि इस संसार में जितने भी प्रकार के यंत्र विज्ञान द्वारा बनाये जा सकते हैं वे सब मनुष्य की किसी न किसी इन्द्रिय की सहायता के लिये ही तो हैं उन यंत्रों में प्राण, चिन्तन, मननादि शक्तियां नहीं हैं, इसलिये वे मनुष्य से कुछ कम ही काम करेंगी अधिक नहीं कर सकतीं। हां मात्रा में वे मनुष्य शक्ति को बहुगुणित कर सकती हैं सो हम जिस विद्या की भी खोज करना चाहें उसे एक पुरुष कल्पना करके पुरुष के अंग उसमें खोज द्वारा उत्पन्न कर दिये जावें। सो अग्नि सोमादि जो देवता ब्रह्माण्ड में हैं वे ही मनुष्य शरीर में हैं। उन्हीं को हमें सर्वत्र उत्पन्न कर देना है। उदाहरण के लिये मैं अग्नि तथा सोम को लेता हूँ। शतपथ में लिखा है:—

द्वयं वा इदं तृतीयमस्ति आर्द्रं चैव शुष्कञ्च यच्छुष्कं तदाग्नेयम् यदार्द्रं तत् सौम्यम् ॥

॥शत० १।६।२।२३ ॥

फिर अगली कण्डिका में लिखा है—

सूर्य एवाग्नेयः चन्द्रमाः सौम्योऽहरेवाग्नेयं रात्रिः सौम्या।

इससे स्पष्ट है कि ब्रह्माण्ड में सूर्य के उदय होने पर शुष्कता आती है, वह आग्नेय है। चन्द्रोदय पर ओस पड़ती है, आर्द्रता आती है वह सौम्य है। जहाँ शुष्कता है वहाँ अग्नि है। जहां आर्द्रता है वहाँ सोम है। बस यह ब्रह्माण्ड आर्द्र तथा शुष्क इन दो में बंटा हुआ है, तीसरा नहीं। अब रोटी में आटा आग्नेय है। जल व घृत सौम्य है। शरीर में पित्त आग्नेय है। कफ सौम्य है। इसीलिये सुश्रुत में मानव शरीर को अग्नीषोमीय कहा है। ऐतरेय ब्राह्मण अध्याय ६ खण्ड ३ में।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नाग्नीषोमीयस्य पशोरश्नीयात् पुरुषस्य वा एषोऽश्रातियोऽग्नीषोमीस्य पशोरश्नाति ।।

इसी प्रकार चरक शरीर स्थान पञ्चाध्याय का आरम्भ इस प्रकार होता है।

पुरुषोऽयं लोक सम्मितः। तस्य पुरुषस्य पृथिवी मूर्त्तिः आपः क्लेदः तेजोऽभिसन्तापः वायुः प्राणः वियत्सुषिराणि, ब्रह्मान्तरात्मा, यथा खलु ब्राह्मी विभूतिर्लोके तथा पुरुषेऽन्तरात्मनो विभूतिः ब्रह्मणो विभूतिर्लोके प्रजापतिरन्तरात्मनो विभूतिः पुरुषे सत्त्वम्। यस्त्विन्द्रो लोके स पुरुषेऽहङ्कारः आदित्यस्त्वादानम् सोमः प्रसादः।

इसी प्रकार सूत्र स्थान अध्याय ६ में लिखा है—

विसर्गः सोम्यः आदानम् पुनराग्नेयम् ।।

इस प्रकार हमने देखा कि दिन, रात, सूर्य, चन्द्र, ग्रीष्म, वर्षा, कफ, पित्त इन सब को अग्नि तथा सोम कहा गया है। किन्तु इसमें इतना स्पष्ट है कि एक क्षेत्र में अग्नि का एक ही अर्थ होगा और उस पर यह नियम लागू होगा कि—

यदेव शुष्कम् तदाग्नेयम् यदार्द्रम् तत् सोम्यम् ।।

इस प्रकार लोक में अग्नि अग्नि है, जल सोम है, आकाश में सूर्य अग्नि है, चन्द्र सोम है, यह नहीं कि आकाश में चन्द्र का नाम अग्नि हो जाय। शरीर में पित्त अग्नि है तो कफ सोम है। हम शुष्कम् और आर्द्रम् के नियमानुसार जब किसी एक क्षेत्र में अग्नि और सोम का अर्थ पता लगा लें तो दूसरे हर क्षेत्र में उनके समकक्ष अग्नि और सोम कहलावेंगे। इसका नाम समकक्षवाद है। इस प्रकार हम यदि वेद के किसी एक क्षेत्र के अर्थ ठीक ठीक जान लें तो हर क्षेत्र में उन शब्दों का अर्थ जानना सुगम हो जायेगा। इस बात को हम मानचित्र के दृष्टान्त से भली प्रकार समझ सकते हैं। हम एक मानचित्र के छोटे बड़े अनेक मानचित्र बना सकते हैं परन्तु उनमें कलकत्ता और दिल्ली की दूरी का अनुमान सदा एक रहेगा।

समकक्षवाद का एक सुन्दर उदाहरण शतपथ में क्रतु दक्ष शब्दों की व्याख्या में मिलता है—

क्रतुदक्षौ हैवास्य मित्रा वरुणौ एतन्न्वध्यात्मं स यदेव मनसा कामयत इदं मे स्यादिदं कुर्वीयेति स एव 'क्रतुरथ यदस्मै तत् समृध्यते स दक्षो मित्र एव क्रतुर्वरुणो दक्षो ब्रह्मैव मित्रः क्षत्रं वरुणोऽभिगन्तैव ब्रह्मकर्त्ता क्षत्रियः ।।

।। शत० ४।१।५।१ ।।

क्रतु और दक्ष का अर्थ है मित्र और वरुण। अपने अन्दर देखने पर इनका अर्थ होगा कि जो मन में सोचता है मुझे यह प्राप्त हो, उसके लिये मैं यह करूँ वह क्रतु है और जब उसका वह संकल्प फल समृद्ध होता है तब वह दक्ष कहलाता है (दक्ष समृद्धौ) [illegible] क्रतु दक्ष वरुण है। ब्राह्मण मित्र है क्षत्रिय वरुण है, क्योंकि मार्गदर्शक विधान [illegible]ने वाला ब्राह्मण है जो आगे चलता है वह ब्रह्म है। उस कार्य को करने वाला क्ष[illegible]य है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इन्हीं मित्र वरुण को प्रथम काण्ड में—

"प्राणोदानौ वै मित्रावरुणौ"

॥ शत० १।६।३।१२॥

इस प्रकार आधिदैवत पक्ष में जो प्राण उदान हैं वही अधिराष्ट्र अर्थ में मित्र तथा वरुण हैं। वही अध्यात्म क्षेत्र में संकल्प तथा प्रयत्न हैं। इन तीनों क्षेत्रों में इनका नाम ऋतु दक्ष अथवा मित्र वरुण है। सो मित्र तथा वरुण एक क्षेत्र में एक ही हैं किन्तु क्षेत्र भेद से वह संकल्प तथा प्रयत्न, ब्राह्मण तथा क्षत्रिय, प्राण तथा उदान तीनों है। हाँ, उनमें समकक्ष भाव है एक अभिगन्ता है दूसरा कर्त्ता।

इसी प्रकार छान्दोग्य द्वितीयाध्याय दशम से इक्कीसवें खण्ड तक हिङ्कार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन इन पाँच संगीत के अंगों को भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में समकक्षवाद के आधार पर दिखाया गया है।

संगीत के आरम्भ में जो राग का मन ही मन में आह्वान किया जाता है, गुनगुनाया जाता है वह हिङ्कार है। राग की स्थायी प्रस्ताव है, तान। अलाप का फैलाव उद्गीथ है, धीरे-धीरेसमाप्ति की ओर मुड़ने के लिये उतार का नाम प्रतिहार है, और सुन्दर समाप्ति का नाम निधन है। यह पांच अंग मानसिक क्षेत्र में अग्नि प्रज्वालन, स्त्री सहवास, सूर्योदय, मेघ वृष्टि, ऋतुपरिवर्तन, द्यौः पृथिवी, पशुमण्डल शरीर रचना, चन्द्रोदय, अग्नि, वायु, आदित्यादि देव मण्डल इन ११ क्षेत्रों में दिखाया गया है। इन प्रकरणों से समकक्षवाद बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। वेद में जो अनन्त विद्या भरी है उसका यही रहस्य है। हम यदि समाजशास्त्र में अग्नि सोम इन्द्र आदि के अर्थ ठीक ठीक जान लें, तो यन्त्र विद्या में उनके समकक्ष क्या हैं, यह जानकर यन्त्र विद्या भी उन्हीं मंत्रों द्वारा मानी जा सकती है। यह बात यौगिक वाद के सहारे ही खड़ी रह सकती है। यदि हम जान लें कि अग्नि का अर्थ अग्रणी है, तब तो यह सब अर्थ ठीक समझे जा सकते हैं, परन्तु यदि हम अग्नि का रूढ़ अर्थ अङ्गारों से जलने वाली अग्नि ले लें तो फिर हम वेद का रहस्य कुछ नहीं जान सकते, यह समकक्षवाद ही है जिसके सहारे वेद समस्त विद्याओं का बीजरूप ज्ञान देने वाला कहाता है।

अब हम इस वाद माला के अन्तिम वाद विज्ञाताश्रय वाद पर आते हैं।

विज्ञाताश्रयवाद

विज्ञाताश्रय वाद यह नाम नया है, वैसे यह कोई नई बात नहीं है। किसी अज्ञात वस्तु का स्वरूप जानने के लिए हमें ज्ञात वस्तुओं का आश्रय लेना पड़ता है।

मान लीजिए कि कोई नौकर अंग्रेजी के ऑयल शब्द का अर्थ नहीं जानता। यदि कोई अंग्रेज टूटी फूटी हिन्दी जानता है किन्तु आयल शब्द की हिन्दी भूल गया है वह अपने नौकर से कहता है कि इस दीवे में बत्ती है पर ऑयल नहीं रहा। तुम इसमें बोतल में से ऑयल डाल लाओ जिससे रोशनी हो जाय। इसमें बत्ती है पर ऑयल नहीं है तो नौकर झट समझ जाता है कि ऑयल तेल को कहते हैं। वह साहब से पूछता है, साहब तेल डाल लूं। अंग्रेज झट कहता है हां तेल, तेल हम भूल गया था। तो यहाँ यह विज्ञाताश्रय वाद के सहारे उसने ऑयल शब्द का अर्थ जान लिया। उसे दीया, बत्ती, जलाना, रोशनी इन शब्दों का अर्थ ज्ञात था केवल ऑयल शब्द के अर्थ का ज्ञान नहीं था सो उसने दीया, बत्ती, जलाना, रोशनी इन विज्ञात शब्दों के आश्रय से ऑयल

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस अज्ञात शब्द का अर्थ जान लिया। इस विज्ञाताश्रय वाद के सहारे हम वेद के सब विवादास्पद शब्दों के ठीक अर्थ का निर्णय कर सकते हैं ।

उदाहरण के लिए वैदिक शब्द मरुत् को ले लीजिए। हमारे विचार से मरुत् का अर्थ सैनिक है। पौराणिक भाष्यकार तथा उनके पिछलग्गू योरोपियन विद्वान् इसका अर्थ पवन का देवता करते हैं। सो इस विवाद का निर्णय नृ शब्द से हो सकता है। ऋग्वेद में मरुत् देवता के ३७ सूक्त हैं, इनमें १८ स्थलों पर इनको नरः कहा गया हैं। इस शब्द ने सायण के लिए कठिनाई उत्पन्न कर दी। जिन्हें वह देवता कहता है उन्हें वेद नर कहता है। इससे बचने के लिए सायण ने उसी यौगिकवाद का आश्रय लिया जिसकी आज सर्वत्र हंसी उड़ाई जाती है। वह कहता है, नरः मेधानाम् इतस्ततो नेतार इत्यर्थः परन्तु इस विवाद का अन्तिम निर्णय मृ धातु करती है। मृ धातु का अर्थ प्राण वियोग सर्ववादि सम्मत है। इधर सायणादि सब पौराणिक भाष्यकार देवों को अमर बताते हैं, उधर वेद में चार स्थलों पर इन मरुतों को मर्याः अथवा मर्त्ताः कहा गया है। अब यहाँ तो यौगिक अर्थ भी सायण का साथ नहीं देता उधर मरुत् शब्द स्वयं इस मृ धातु से बना है (मृग्रोरुतिः उणादिः १ पाद ८४ सूत्र) इस प्रकार मृ धातु के विज्ञातार्थ के सहारे मरुत् एक प्रकार के मनुष्य हैं यह निर्णीत हुआ। फिर उनका उत्तम शस्त्र धारण करना, पंक्ति बाँध कर चलना, कन्धे पर हथियार रखना आदि सारा वर्णन एक सैनिक का चित्र खेंच कर रख देता है। इसका विशेष वर्णन विस्तार के भय से नहीं दिया जाता। फिर इनको अनेक स्थानों पर 'रुद्रस्य मर्याः' 'रुद्रस्य पुत्राः' 'रुद्रस्य सूनवः' आदि विशेषणों से लक्षित किया गया है जिससे रुद्र का अर्थ सेनापति स्पष्ट हो गया। जो यजुर्वेद रुद्राध्याय में दिए गए सेनान्ये (यजु० अ० १६ म० २६) इस विशेषण से बिल्कुल मेल खा जाता है। ऋषि दयानन्द ने रुद्र का अर्थ सेनापति किया है सो उसकी इस प्रकार बड़े प्रबल प्रमाणों से पुष्टि होती है।

इस प्रकार हमने 'मृ' धातु के सहारे मरुत् का अर्थ जाना। फिर मरुत् के सहारे रुद्र का अर्थ जाना। इस प्रकार पूर्व विज्ञातार्थ शब्दों के आश्रय से हम उत्तरोत्तर अविज्ञातार्थ शब्दों का अर्थ ठीक निश्चय कर सकते हैं, यह विज्ञाताश्रयवाद ही वेद का ठीक अर्थ निश्चय करने की वैज्ञानिक कुञ्जी है। इसको छोड़कर जो पाश्चात्य लोगों ने भाषोत्पत्ति शास्त्र (Philology) के नाम से लाल बुझक्कड़ों की-सी लीला की है उसका कुछ भी मूल्य नहीं है।

मृ धातु का अर्थ वेद में तथा लौकिक संस्कृत में मरना है। इस सत्य को करोड़ भाषातत्त्वविद् किसी प्रकार भी नहीं पलट सकते। परन्तु योरोपियन भाषातत्त्वविद् तो हमें निरुक्त, निघण्टु तथा समस्त भाषा के कोषों को तिलाञ्जलि देने को कहते हैं। Vedic Age नामक पुस्तक जो विद्या भवन की ओर से प्रकाशित हुई है उसमें लिखा है—

Shiva and Vedic god Rudra have been identified. It is just likely that the name of the red god of Dravidian speakers the most important divinity in their pantheon was first rendered in Aryan speech as Rudra.
(S. K. Chatterji, Vedic Age)

इस विचित्र पुस्तक Vedic Age में एस० के० चैटर्जी श्रीमुख से कहते हैं कि वैदिक देवता शम्भु तामिल चम्पू है जिसका अर्थ है तांबा। तांबा लाल रंग का होता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है सो रुद्र देवता भी लाल रंग का होता है सो रुद्र शब्द पहले रुधिर था वह तामिल लाल रंग का देवता था। क्योंकि रुधिर अर्थात् खून का रंग लाल होता है इसलिए लाल देवता का नाम रुधिर हुआ और पीछे से वही आर्यों का रुद्र देवता हो गया। बलिहारी है इस सूझ की। शम्भू शब्द शम् और भू दो शब्दों से बना है यह हम भली प्रकार जानते हैं, फिर हम उसे तामिल चम्पू से क्यों मिलाएँ, क्योंकि ! श्री चैटर्जी ने ऐसा करने का नादिरशाही हुक्म सादिर किया है, पहले हम उसका नाम रुधिर रक्खें, फिर आर्यों के देवता रुद्र से उसे मिला दें। ऐसा हम क्यों करें ? इस प्रकार का कोई नियम अभी तक हमारी संसद् (पार्लमेण्ट) ने नहीं बनाया। बना भी दे तो फिर हमें उसके विरुद्ध घोर सत्याग्रह करना होगा। यदि इन महाशय को सर्व सम्मति से लाल बुझक्कड़ शिरोमणि की उपाधि दे दी जाय तो कुछ अनुचित नहीं होगा। वह विचित्र पुस्तक जो देश का लाखों रुपया बर्बाद करके श्री के० एम० मुन्शी ने प्रकाशित करवाई है, जिसकी चारों ओर धूम है हमें तो संदेह है, कि कभी चण्डू-खाने में भी किसी ने ऐसा असम्बद्ध प्रलाप किया होगा। किन्तु आज इसी का नाम स्कॉलरशिप और ओरिजिनैलिटी है। फिर जब यह पुस्तक देश देशान्तरों में जावेगी तो लोग वेद के सम्बन्ध में कितने घोर अज्ञान के गढ़े में गिरेंगे। विदेशी ही क्यों हमारे देश में भी सब विश्वविद्यालयों में यह पुस्तक बड़े आदर के साथ पढ़ाई जाती है। निस्सन्देह हमें इतना कट्टरवादी नहीं होना चाहिये कि हमारी धर्म्म पुस्तक पर कोई युक्तिहीन प्रहार करे तो हम उसका उत्तर युक्तियों के सिवाय किसी अन्य प्रकार से दें। किन्तु हमें इतना आत्म विहीन भी नहीं होना चाहिये कि हमारी धर्म पुस्तक का ऐसा युक्तिहीन उपहास विश्वविद्यालयों में पाठ्य पुस्तकों के रूप में पढ़ाया जाय। इसी प्रकार के कपोल कल्पित इतिहासों का परिणाम वह आर्य द्रविड़ संघर्ष है जो इस समय दक्षिण को विलोडित कर रहा है और जिसका दुष्परिणाम न जाने क्या होगा ? क्या देश के शासक चेतेंगे ? क्या आर्यसमाज के अधिकारी चेतेंगे ? क्या आर्य जनता चेतेगी ?

यह तो हुई एक राह चलती बात, परन्तु इस प्रकार के अनर्गल प्रलाप करने वालों का मुख तो तब बन्द होगा जब हम वेदों का इस प्रकार युक्तिसङ्गत भाष्य प्रकाशित कर सकेंगे। इसके लिये आवश्यक है कि पहले सब वैदिक देवताओं पर विज्ञाताश्रयवाद की शैली से अनुसन्धान हो। मैं जब आर्य प्रतिनिधि सभा के अनुसन्धान विभाग का अध्यक्ष था तो मैंने यह कार्य प्रारम्भ कराया था। एक पुस्तक ऋभु देवता के सम्बन्ध में निकली भी थी, जिसे पण्डित भगवद्दत्त जी वेदालंकार ने बड़े परिश्रम से लिखा था। वे अब भी गुरुकुल में यथाशक्ति वेद की सेवा कर रहे हैं।

बीच में एक बार श्री रा० ब० बद्रीदास जी जागे थे तब कुछ हलचल हुई थी वैदिक देवता सम्बन्धी १६० के लगभग शब्दों पर १०० विद्वान् लगें तो यह कार्य हो। इतने विद्वान् तो राज्य की ओर से भी नहीं लग सकते। यह कार्य तो इस प्रकार हो सकता है कि एक निर्देशक के अधीन यह कार्य आरम्भ हो। भिन्न-भिन्न आर्य कालिजों तथा गुरुकुलों के अर्पण एक एक देवता कर दिया जाय। बहुत बड़े देवता जिनका वर्णन सहस्रों मन्त्रों में है, कुछ पूरा समय देने वाले कार्यकर्त्ताओं के अर्पण हो। मैं यह योजना यह मान कर लिख रहा हूँ कि ये सब कार्यकर्त्ता अवैतनिक हों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परन्तु इन्हें एकत्र करने के लिये भी तो कुछ व्यय होगा वह कौन करे ? किन्तु इस समय तो इस सङ्गठन के लिये जितना धन अपेक्षित है वह भी हमारे पास नहीं है। सारे आर्य जगत् के सहयोग के बिना यह कार्य असम्भव है। आर्य जनता में इस कार्य के लिये जोश भी है परन्तु अति दुस्साध्य रोग है तो आर्य समाज के वर्तमान नेताओं का है। तो क्या हम निराश हो जावें, कदापि नहीं, यदि आर्य जनता इसी प्रकार लगी रही तो आर्य नेता भी सीधे मार्ग पर आ ही जावेंगे।

निराश होने के लिए सचमुच कोई कारण नहीं। इन पिछले ३० वर्षों में हमने प्रगति की है। आज से ३० वर्ष पहले वेद के विषय में हमें जितना ज्ञान था उससे हम बहुत आगे बढ़ गए हैं। ऋषि दयानन्द के पश्चात् सबसे पहले पं० शिवशंकर जी काव्यतीर्थ ने अपने अपूर्व सूझ के ग्रन्थ लिखे। उसके पश्चात् पं० सातवलेकर जी ने जो कार्य किया उसे याद न करना घोर कृतघ्नता होगी। उसके पश्चात् वेद को सच्चे अर्थों में लोकप्रिय बनाने का सबसे अधिक श्रेय यदि किसी को दिया जा सकता है तो वैदिक विनय के लेखक आचार्य अभय देव जी को। श्री चमूपति जी तथा श्री स्वामी वेदानन्द जी को भी इस प्रसंग में भुलाया नहीं जा सकता। पं० चमूपति जी तो कभी-कभी एसी ऊंची उड़ानें लेते थे, जिन्हें याद करके आज भी दिल भर आता है। फिर भला चतुर्वेद भाष्यकार श्री पं० जयदेव जी शर्मा विद्यालंकार को मैं कैसे भुलाऊं। उनके भाष्य में यत्र-तत्र कुछ स्थलों से किसी को भले ही मतभेद हो, परन्तु उन्होंने चारों वेदों का एक सरल भाष्य जनता के हाथ में पहुँचा दिया है। और नाही मैं श्री क्षेमकरण दास जी त्रिवेदी को भुला सकता हूँ जिन्होंने वृद्धावस्था में संस्कृत पढ़ना आरम्भ करके अथर्व वेद भाष्य द्वारा नवयुवकों के सामने एक अपूर्व आदर्श रक्खा। पं० चन्द्रमणि जी का निरुक्त भाष्य भी भुलाने योग्य वस्तु नहीं है। श्री पं० प्रियरत्न जी आर्ष (स्वा० ब्रह्ममुनि जी) ने भी ४० के लगभग ग्रन्थ लिखे, यह क्या कोई छोटी सेवा है। पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति ने भी वैदिक समाज शास्त्र आदि ग्रन्थ लिखकर अच्छी सेवा की है। श्री पं० प्रियव्रत जी वेद वाचस्पति ने भी वेदों के राजनैतिक सिद्धान्त नामक एक विशाल ग्रन्थ लिखना आरभ किया था। श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु तथा उनके प्रिय अन्तेवासी श्री युधिष्ठिर जी मीमांसक ने व्याकरण की दृष्टि से ऋषि के यजुर्वेद भाष्य में बहुत से स्थलों में समाधान करने का यत्न किया है, वे भी धन्यवाद के पात्र हैं। श्री आचार्य विश्वश्रवाः जी भी वेद भाष्य के कार्य में संलग्न है और ब्रह्मचारी उषर्बुध जी से भी बहुत आशाएं हैं,। अन्य भी कई नाम मुझसे छुट गए होंगे उन सबसे मेरा एक ही निवेदन है वह है 'मौलौ प्रणामाञ्जलिः।''

वेद की सेवा करने वालों की एक और श्रेणी है जिन्हों ने अपने ढंग से ऋषि दयानन्द के दुर्ग को अभेद्य बनाने में बड़ा भाग लिया है। वह क्षेत्र है ऐतिहासिक पक्ष द्वारा वेद पर आक्षेपों के समाधान का क्षेत्र। उस क्षेत्र के अग्रदूत और अपने समय के सिद्ध हस्त सेनानी आचार्य रामदेव जी को मैं कैसे भुला दूं, जिन्होंने वैदिक मैगजीन द्वारा वेद का नाद देश देशांतरों में पहुंचाया। वे संस्कृत नहीं के तुल्य जानते थे तथापि अपने विशाल और व्यापक अध्ययन तथा प्रौढ़ विचार शक्ति के द्वारा वह कभी कभी वैदिक मन्त्रों की ऐसी व्याख्या करते थे जो अच्छे-अच्छे पण्डितों को चकित कर सकती थी, जिसका उदाहरण ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् इस मन्त्र की वह व्याख्या है जो आज भी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वैदिक मैगजीन के पुराने स्तबकों में पढ़ने को मिल सकती है। इस क्षेत्र में श्री भगवद्दत्त जी बी० ए० रिसर्च स्कालर भी ऋषि दयानन्द के पक्ष को पुष्ट करने का विशाल प्रयत्न कर रहे हैं। यद्यपि उनकी बहुत सी स्थापनाओं से सहमत होना कठिन प्रतीत होता है तथापि उनका दृष्टि विन्दु ऋषि के पक्ष का यथाशक्ति समर्थन करने का है। इसलिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। इसमें तो सन्देह नहीं कि तिथि क्रम के सम्बन्ध में विदेशी विद्वान् भी उनका लोहा मानने लगे हैं। यदि सन्देह है तो इस विषय में कि भारतीय इतिहास की पुरानी परम्पराओं को कहाँ तक पुष्टि मिलती है तथापि उनका प्रयत्न अभिनन्दनीय है।

आज संस्कृत पढ़ने का तथा वेद मन्त्र याद करने का तथा उनके अर्थ जानने का चाव आर्यसमाज में पहले से बहुत अधिक है तथा दिनोंदिन बढ़ रहा है। आज उन घरों की संख्या भी सहस्रों में है जिनमें संध्या, अग्निहोत्र नियम से होते हैं। वेद के परायण यज्ञ भी समाजों में प्रायः होते रहते हैं। बस यदि कोई मोह निद्रा में लीन है, तो आर्य समाज के नेता लोग, सो उनके प्रति भी हम निराश क्यों हों। आर्य जनता की सम्मिलित आवाज उन्हें भी जगा कर रहेगी। उस अखण्ड ब्रह्मचारी का तप कभी निष्फल नहीं जा सकता। दुनिया बदल रही है और बदल कर रहेगी, धरती बदलेगी, आकाश बदलेगा, प्रजा बदलेगी, राजा बदलेगा, नदी, पर्वत, समुद्र सब हमें रास्ता देंगे, यहाँ तक कि आर्यसमाज के नेता भी बदल कर ही रहेंगे। वेद का नाद संसार में गूंज कर ही रहेगा।

और यदि मेरे इस निबन्ध से आप प्रसन्न हुए हैं तो आप से यही वरदान माँगता हूँ कि एक बार महता कण्ठेन मिल कर बोलिये—

ऋषि दयानन्द की जय ! वैदिक धर्म की जय !

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यसमाज शताब्दी—सिंहावलोकन

लेखक—डा० भवानीलाल भारतीय, एम० ए०, पीएच० डी०

भारत में आर्यसमाज संस्थापना की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—शताब्दियों की राजनीतिक पराधीनता ने भारतीय समाज को विकारग्रस्त बना दिया था। राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक उत्पीड़न तथा आत्मबोध के अभाव ने भारतवासियों में जिस हीन भावना को जागृत किया उसका सहज ही उन्मूलन होना कठिन था। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक पहुँचते-पहुँचते स्थिति और भी भयावह बन गई। मुगल साम्राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने के पश्चात् उत्पन्न राजनीतिक अस्थिरता ने देश के नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों को विघटित कर दिया। अराजकता, असुरक्षा तथा अस्थायित्व के भाव भारतीय जन समाज में पनपने लगे और ऐसा प्रतीत होता था कि यदि शीघ्र ही शासन की स्थिरता, सामाजिक सुरक्षा तथा वैयक्तिक और समष्टिगत अधिकारों की रक्षा का आश्वासन नहीं मिला तो देश का भविष्य अंधकारपूर्ण हो जायगा।

विदेशी शासन से उत्पन्न पराधीनता के भावों ने हिन्दू समाज को विकारग्रस्त ही नहीं बनाया, हिन्दुओं के धार्मिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मानदण्डों की भी अपूरणीय क्षति की। सहस्राब्दियों पूर्व के वैदिक, औपनिषदिक तथा रामायण महाभारत कालीन समाज में लोगों की इहलोक और परलोक के प्रति जो स्वस्थ दृष्टि थी वह तो अतीत की वस्तु हो ही गई, मौर्य और गुप्त युगीन भौतिक समृद्धि तथा वैभव, कलात्मक अभिरुचि, साहित्य, संगीत, काव्य और स्थापत्य के क्षेत्र में महती उपलब्धियाँ और बृहत्तर भारत के समुद्रपारीय देशों पर भारत की सांस्कृतिक विजय के तथ्य भी अब केवल इतिहास में लिखने योग्य ही रह गये। धर्म, समाज और सामान्य जनजीवन के क्षेत्र में पराधीनता की काली घटाओं ने जिन आपत्ति, विपत्ति और अभिशापों की उपल-वृष्टि की उससे जनता के दुःख और कष्ट ही बढ़े। धर्म के नाम पर थोथा कर्मकाण्ड, नैतिकता के नाम पर मिथ्या और मूढ़ विश्वासों का प्रचलन तथा सुसंगत सामाजिक विधान के स्थान पर कठोर वर्जनायें और नियंत्रण इस युग की कतिपय विकृतियाँ थीं। लोगों का चिन्तन इतना विकारग्रस्त एवं दूषित हो गया था कि वैचारिक उदारता के स्थान पर कट्टर संकीर्णता तथा अनुदारता के भावों का ही प्रसार हुआ। फलतः समाज में बाल विवाह का प्रचलन, विधवाओं पर अत्याचार, बहुविवाह की स्वीकृति, स्त्रियों की शिक्षा पर प्रतिबंध तथा उन्हें पर्दे के पीछे रक्खे जाने की प्रथा, जन्म के आधार पर स्पृश्यास्पृश्य की भावना तथा कन्या वध, सती दाह आदि नारी वर्ग के प्रति असीम अत्याचारों का विधान स्वीकृत हुआ। इन सामाजिक कुरीतियों ने हिन्दू समाज की एकता को विशृंखल कर दिया जिसका एक अवश्यम्भावी परिणाम हुआ सहस्रों जातियों और उपजातियों की संकीर्ण काराओं में बंध कर समाज का छिन्न-भिन्न और अस्त-व्यस्त हो जाना।

इसी समय भारतवासियों का पश्चिम से सम्पर्क हुआ। यूरोपीय राष्ट्रों ने धीरे-धीरे भारत में अपना राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित किया। पुर्तगाली, फ्रान्सीसी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और अंग्रेजी उपनिवेशों की स्थापना इस देश में हुई। राष्ट्रों की इस होड़ में अंग्रेज जाति ही सर्वाधिक शक्तिशाली प्रमाणित हुई और अंग्रेजों को ही भारत में साम्राज्य स्थापित करने का अवसर मिला। अंग्रेजी शिक्षा, शासन तथा सभ्यता से प्रभावित होने वाला भारत का सर्वप्रथम प्रान्त बंगाल था। अठारहवीं शताब्दी का वह धूमिल संध्या काल था। नवयुग के आगमन की ज्योतिवेला सन्निकट थी।

विदेशी संस्कृति से भारत का सम्पर्क और उसका दूषित प्रभाव—अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना के साथ साथ पाश्चात्य सभ्यता की भी आंधी आई और उसने भारतीय जनमानस को बुरी तरह झकझोर दिया। भारतवासी राजनैतिक दृष्टि से तो दास बने ही, उनकी नैतिक, सामाजिक और आर्थिक दशा भी शोचनीय हो गई। देश एक अभूतपूर्व सांस्कृतिक संकट से गुजर रहा था। पश्चिम के इस सम्पर्क का भारतवासियों पर द्विविध प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव को श्रेयस्कर तथा स्पृहणीय इस अर्थ में कहा जा सकता है कि इससे भारतवासियों में स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व के भावों का उदय हुआ। इस समय तक यूरोप में राष्ट्रवाद का जन्म हो चुका था। धार्मिक संकीर्णता के भाव समाप्त हो रहे थे। फ्रान्स की राज्य क्रान्ति तथा अमेरिका के स्वातन्त्र्य युद्ध ने लोगों में प्रजातंत्र के भाव उत्पन्न किये और व्यक्तिगत स्वाधीनता का उद्घोष हुआ। उधर इंगलैण्ड तथा यूरोप के अन्य देशों में औद्योगिक क्रान्ति हुई जिसने समाज के ढांचे में प्रभावी परिवर्तन किये। लोगों के सोचने की दृष्टि बदली तथा युग के दार्शनिक, विचारक और चिंतक यह अनुभव करने लगे कि मध्यकालीन संकीर्णता और कट्टरता का युग समाप्त हो गया है तथा विज्ञान एवं बुद्धिवाद पर आश्रित नवीन युगबोध का उदय हो रहा है।

यूरोपीय राष्ट्रों के सम्पर्क, विज्ञान के रेल, तार, डाक आदि नूतन आविष्कारों के प्रसार तथा पश्चिमी शिक्षा ने हमारे अंधविश्वासों और रूढ़िगत कदाचारों पर निर्मम प्रहार किया और हमें उदार तथा व्यापक दृष्टि अपनाने के लिये विवश किया। भारतवासियों में राष्ट्रीय भावों का उदय हुआ, उन्होंने समष्टिगत दृष्टि से सोचने का प्रयत्न किया, फलतः वैयक्तिक वैचारिक स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करने की प्रेरणा भी उन्हें मिली। इस सबका यह परिणाम निकला कि शताब्दियों से प्रचलित गतानुगतिकता, रूढ़िवाद एवं कुरीतियों के बंधनों से मुक्त होने के लिये उनका मन व्याकुल हो उठा।

यह सब कुछ होने पर भी यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इस विदेशी सम्पर्क का हम पर सर्वथा अनुकूल प्रभाव ही नहीं पड़ा, हम में अन्धानुकरण, परमुखापेक्षिता तथा स्वाभिमान शून्यता के भाव बढ़ने लगे। यद्यपि समाज में एक ऐसा वर्ग भी था जो अंधविश्वास, परम्परा पालन तथा वैचारिक जड़ता से चिपके रहने में ही अपना हित समझता था, पश्चिमी सम्पर्क से प्रभावित नवयुवक वर्ग ने प्रत्येक स्वदेशी वस्तु को हेय मानकर प्रत्येक बात में अपनी अनुकरण वृत्ति को मुख्यता देते हुए विदेशी वर्ग की ओर सतृष्ण नेत्रों से देखने में ही अपनी सार्थकता मान रक्खी थी।

पश्चिमी शिक्षा का प्रभाव—पश्चिमी शिक्षा तथा ईसाई धर्म प्रचारकों के प्रचार कार्य ने हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमान को और भी कुचल डाला। विजयी राष्ट्रों की यह सदा की प्रवृत्ति रही है कि पराजित राष्ट्र को न केवल राजनीतिक दृष्टि से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ही पंगु बनाया जाय, अपितु भाषा, भाव और आचार-विचार का दासत्व भी उन पर थोप दिया जाय। इसके लिये सर्वप्रथम वे पराजित राष्ट्र पर अपनी शिक्षा प्रणाली थोपते हैं। इसका सुनियोजित परिणाम थोड़े समय के भीतर ही प्रकट होने लगता है। अंग्रेजों ने भी भारत में यही किया। इन्होंने भारत को राजनीतिक दृष्टि से तो दास बनाया ही उनकी यह भी चेष्टा रही कि शिक्षा, सभ्यता, धर्म और विचारों की दृष्टि से भी भारतवासी अपने शासकों का मुंह जोहने वाले बन जायें। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये उन्होंने अंग्रेजी ढंग के स्कूल और कालेज स्थापित किये तथा उनमें पश्चिमी शिक्षा प्रणाली का प्रारम्भ कर भारतवासियों को हीन सत्त्व, स्वाभिमान शून्य तथा पाश्चात्य जीवन प्रणाली का अनुगामी बनाया। लार्ड मैकॉले द्वारा निर्धारित इस शिक्षा योजना ने भारतीयों के स्वात्मबोध को सर्वथा नष्ट कर दिया। जिस शिक्षा का उद्देश्य ही एक ऐसा वर्ग उत्पन्न करना था जो आचार-विचार, बुद्धि और मन से अंग्रेज होने का दम भरे। उससे अधिक आशा रखना ही व्यर्थ था। मैकॉले के उस प्रसिद्ध पत्र की वहु उद्धृत पंक्तियों का उपर्युक्त भाव यह स्पष्ट सूचित करता है कि इस शिक्षा नीति के क्रियान्वयन में उसका मूल उद्देश्य क्या था ?

लार्ड मैकॉले को अपनी शिक्षा विषयक नीति की सफलता में पूर्ण विश्वास था। तभी तो अपने पिता को १८३६ ई० में लिखे गये एक पत्र में उसने यह विश्वास व्यक्त किया कि जो भी हिन्दू अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण कर लेता है वह अपने धर्म के प्रति सच्ची श्रद्धा और विश्वास खो वैठता है। कुछ केवल दिखावे के रूप में उसे मानते हैं, कतिपय अन्य ईसाई हो जाते हैं। यह मेरा सुनिश्चित विश्वास है कि यदि शिक्षा की हमारी यह योजना पूरी तरह काम में लाई गई तो अब से तीस वर्ष पश्चात् वंगाल के कुलीन वर्ग में कोई मूर्तिपूजक (हिन्दू) नहीं रहेगा।

इस प्रकार सरकारी शिक्षण सस्थाओं में जहाँ अंग्रेजी शिक्षा के कीटाणु भारतवासियों के जात्यभिमान और अस्मिता को नष्ट कर रहे थे वहाँ विदेशी शासकों की सहानुभूति और संरक्षण पाकर ईसाई धर्म प्रचारक भी धर्म प्रचार की ओट में उन्हें अधिकाधिक पश्चिमाभिमुख बनाने का प्रयास कर रहे थे। इन तथाकथित धर्म प्रचारकों ने जनमानस को हीन भाव ग्रस्त तथा दुर्वल ही बनाया।

पुनर्जागरण के आन्दोलनों का प्रादुर्भाव—ऐसी परिस्थिति में देश में धार्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के आंदोलनों का उदय होना स्वाभाविक ही था। नवोदय के आंदोलनों का उद्देश्य था भारतीय समाज में व्याप्त रूढ़िवादिता की व्याधि को समाप्त कर भारत की युवक शक्ति को पाश्चात्य सभ्यता के विनाशकारी प्रभाव से बचाते हुए देश की अस्मिता को सुरक्षित रखना। इन आन्दोलनों द्वारा समाज में प्रचलित बाल, अनमेल और वृद्ध विवाह, विधवा विवाह निषेध, पर्दा प्रथा, समुद्र यात्रा अस्वीकार आदि सामाजिक रूढ़ियों और कदाचारों को उन्मूलित करने की चेष्टा की गई। समाज के क्षेत्र में ही नहीं, धर्म के क्षेत्र में भी मूल्यों का पुनर्विवेचन किया गया। उसे युग के अनुसार ढालने का प्रयास तो हुआ ही, साथ ही इस बात पर भी विचार किया गया कि क्या बाह्याचारों, रूढ़ियों और स्थूल कर्मकाण्डों को ही धर्म की संज्ञा दी जा सकती है, अथवा धर्म के उदात्त एवं महनीय तत्त्व और ही हैं जो सत्य, अहिंसा, क्षमा, करुणा, सर्वभूतहित जैसे दिव्य गुणों में विद्यमान रहते हैं।

भारतीय समाज को रूढ़िमुक्त बनाने का एक उपाय यह भी था कि देश-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वासियों का ध्यान भारत के उस सुदूर अतीत की ओर खींचा जाय जो अत्यन्त प्रोज्ज्वल, सत्त्वप्रधान तथा वर्चस्व पूर्ण था। नवोदयवादियों ने यही किया। प्राय: सभी नवोत्थानवादी नेताओं ने अतीत की स्वर्णिम पृष्ठभूमि पर ही नव निर्माण की बात कही। भारतीय नव जागरण के पितामह राजा राममोहन राय ने उपनिषदों में व्याख्यात अध्यात्म तत्त्व को अपने मनन और चिन्तन का आधार बनाया। पुनर्जागरण के सर्वाधिक शक्तिशाली ज्योतिर्धर महर्षि दयानन्द ने भी वेदों की ओर लौटने की बात कही। वेदों की सुदृढ़ आधार भूमि पर ही उन्होंने हिन्दू समाज को संगठित करने का प्रयास किया। उन्होंने आर्य समाज की स्थापना कर भारतीय पुनर्जागरण को एक निश्चित दिशा प्रदान की।

आर्यसमाज के सिद्धान्त, कार्य और उपलब्धियाँ—विक्रम की बीसवी शताब्दी में विज्ञान और बुद्धिवाद के आधार पर पुरातन आर्य धर्म और भारतीय संस्कृति की मान्यताओं का पुनर्मूल्यांकन करने के लिये जिन सुधार आन्दोलनों का भारत में जन्म हुआ, उनमें आर्यसमाज अन्यतम था। महर्षि दयानन्द ने अपने भक्तों और मित्रों के आग्रह पर चैत्र शुक्ला प्रतिपदा सं० १९३२ वि० के दिन गिरगांव बम्बई में पारसी डा० माणेक जी के उद्यान में आर्यसमाज की स्थापना की। समाज के सिद्धांतों और विधान को २८ नियमों में निबद्ध किया गया। प्रारम्भ में ही महादेव गोविन्द रानाडे, गोपाल राव हरि देशमुख, सेवकलाल कृष्णदास, गिरधरलाल दयालदास कोठारी आदि कई प्रतिष्ठित पुरुष आर्यसमाज के सभासद् बनें। बम्बई के अनन्तर १८७७ ई० में लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना हुई। यहाँ रा० ब० मूलराज तथा लाला साईंदास जैसे कर्मठ सहयोगी आर्यसमाज के संस्थापक को मिले। यहीं पर आर्यसमाज के नियमों और उद्देश्यों को उसके विधान से पृथक् किया गया और संगठन सम्बन्धी संवैधानिक धाराओं को उपनियमों के रूप में पृथक् किया गया। स्वामी दयानन्द के जीवनकाल में ही आर्यसमाज का सार्वत्रिक प्रचार हुआ, देश के सभी भागों में उसकी शतशः शाखायें स्थापित हुईं और सहस्रों व्यक्ति आर्यसमाज के सभासद् बने।

पुनरुत्थानवादी दृष्टि लेकर चलने वाला आर्यसमाज अपने सम-सामयिक (पूर्ववर्ती ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज तथा परवर्ती थियोसोफिकल सोसाइटी तथा रामकृष्ण मिशन) आन्दोलनों की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील एवं यथार्थवादी सिद्ध हुआ। आर्यसमाज ने वेदों के आधार पर धर्म के सिद्धान्तों की नवीन व्याख्या की और बताया कि धर्म का अभिप्राय केवल रूढ़िगत विचारों का अनुसरण करते हुए क्रिया काण्डों के पालन में ही नहीं है, अपितु धर्म उन उदात्त गुणों की समष्टि का नाम है जो मनुष्य के नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान में सहायक होते हैं। आर्यसमाज की यह भी मान्यता रही है कि भारत के मूल निवासी आर्यों ने अपने ग्रन्थों में धर्म और नैतिकता के जिन सिद्धान्तों को सूत्रित किया था वे सर्वकाल और सर्वदेशों में उपयोगी हैं। अतः आर्यसमाज वेदों और उपनिषदों तथा अन्य ऋषि-प्रोक्त ग्रन्थों में प्रतिपादित उस नैतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा का धर्म के नाम पर प्रचार करना चाहता है जिसमें विश्व बंधुत्व तथा मानव प्रेम के सूत्र गुंफित हैं।

आर्यसमाज ने अपने सिद्धान्तों को देश और काल सापेक्ष नहीं बनाया। उसके छठे नियम के अनुसार संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य बताया

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गया है और मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आत्मिक उन्नति को सर्वोपरि लक्ष्य ठहराया गया है। मानव ही नहीं अपितु प्राणिमात्र के हित को अपना ध्येय मानते हुए भी आर्यसमाज की शिक्षाओं का राष्ट्र हित से कोई विरोध नहीं है। अपितु पुनर्जागरण के अध्येता विद्वानों का यह निश्चित मत है कि आर्य-समाज के द्वारा देश का जो व्यापक हित साधन हुआ है उसे ही उसकी लोकप्रियता तथा सफलता का मूल कारण समझा जाना चाहिये। ब्राह्मसमाज आदि संस्थायें जहां एक स्पष्ट राष्ट्रीय नीति के अभाव में काल कवलित हो गई वहाँ आर्यसमाज ने धर्माचरण तथा राष्ट्र सेवा को सदा अभिन्न समझा। देश के राष्ट्रीय जागरण और स्वाधीनता प्राप्ति के पुनीत कार्य में आर्यसमाज के अनुयायियों का उल्लेखनीय योग-दान रहा है।

(अ) **आर्यसमाज और समाज सुधार**—इतिहास के अध्येताओं ने आर्यसमाज का उल्लेख समाज सुधार क्षेत्र में कार्य करने वाली प्रमुख संस्था के रूप में किया है। आर्यसमाज के सुधार आन्दोलन ने उत्तर भारत के जन-जीवन को किस प्रकार और कहां तक प्रभावित किया है, इसका यथार्थ मूल्यांकन अभी होना शेष है। विवाह प्रथा में समुचित सुधार, वर्णाश्रम व्यवस्था की वैज्ञानिक व्याख्या, अस्पृश्यता निवारण, नारी शिक्षा आदि कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें आर्यसमाज का कर्तृत्व अपने वस्तुनिष्ठ रूप में अभिव्यक्त हुआ है। विशेषतः हिन्दू समाज में व्याप्त अस्पृश्यता के अभिशाप का दूर करने तथा दलित एवं पिछड़ी जातियों को उच्च वर्ग के लोगों के समान स्तर पर लाने के लिये आर्यसमाज के प्रयास सर्वथा श्लाघनीय रहे हैं। स्वयं महात्मा गांधी ने ऋषि दयानन्द की निर्वाण अर्द्ध शताब्दी के अवसर पर यरवदा कारागार से प्रेषित अपने सन्देश में कहा था—"ऋषि दयानन्द ने हमारे लिये जो मूल्यवान् विरासतें छोड़ी हैं उनमें अस्पृश्यता के विरुद्ध उनका उद्घोष सर्वप्रमुख है।"

यद्यपि यह कहना कठिन है कि समाज सुधार का कार्य पूर्णतया समाप्त हो गया, तथापि यह निश्चित है कि जनसामान्य में समाज सुधार के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करना तथा लोगों के दृष्टिकोण में उदारता एवं प्रगतिशीलता संचरित करना आर्यसमाज की एक उल्लेखनीय उपलब्धि रही। आज भी सामाजिक वैषम्य समाप्त नहीं हुआ है, जात पांत के दलदल से निकल कर हिन्दू समाज अपने आपको सुसंगठित इकाई के रूप में प्रस्तुत नहीं कर सका है, फिर भी आर्यसमाज ने जो कुछ किया उसका महत्त्व सुस्थिर है। महर्षि दयानन्द ने जिस अज्ञान, अन्याय और अभावों से रहित, अंधविश्वास एवं मूढ़ आचार विचारों से सर्वथा मुक्त समाज की कल्पना की थी, उसे चरितार्थ करने के लिये आर्यसमाज को एक बार पुनः तत्परता के साथ सुधार और संस्कार का कार्य अपने हाथ में लेना होगा। आज परिस्थितियाँ परि-वर्तित हो चुकी हैं। आज से पचास वर्ष पूर्व अछूतोद्धार तथा नारी-शिक्षा के लिये जहाँ आर्यसमाज को शास्त्रार्थ, उपदेश और बहस-मुबाहिसे करने पड़ते थे वहाँ आज यह कार्य जन शिक्षण तथा शासन के नियमों के अधीन हो रहा है। परन्तु यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि नये नये मतों, पन्थों, आडम्बरों तथा अंधविश्वासों का क्षितिज पूर्वापेक्षया अधिक व्यापक ही हुआ है। महर्षि दयानन्द का स्वप्न तभी पूर्ण होगा जब आर्यसमाज वर्तमान युग में व्याप्त नाना साम्प्रदायिक बाह्याडम्बरों एवं मूढ़ विश्वासों को समाप्त कर सकने में समर्थ हो सकेगा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(आ) आर्यसमाज और राष्ट्रीयता—आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द ने अन्य धर्माचार्यों से सर्वथा भिन्न अपने राजनैतिक एवं राष्ट्रीय विचारों को स्पष्ट रीति से अभिव्यक्त किया। वे मूलतः राष्ट्रवादी थे। उनकी राष्ट्रीय संवेदना की प्रशंसा करते हुये योगी अरविंद ने एक स्थान पर लिखा है—He had the national instinct and he was able to make it luminous अर्थात् दयानन्द में राष्ट्रीय चेतना थी और वे उसे उद्दीप्त कर सके थे। सुप्रसिद्ध फ्रैन्च विद्वान् रौमां रौलां का भी यह दृढ़ विश्वास था कि दयानन्द भारत के पुनर्जागरण का अग्रदूत था और उसने भारत की राष्ट्रीय चेतना को जगाने में अद्भुत कार्य किया। होम रूल लीग की अध्यक्षा श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने तो यहाँ तक लिख दिया था कि ऋषि दयानन्द ने ही प्रथमतः 'भारत भारतवासियों के लिये' (India for Indians) की घोषणा की।

अपने संस्थापक के स्वातन्त्र्य प्रेम तथा देशभक्ति के भावों से प्रेरणा लेकर आर्यसमाज ने अपने शैशव काल से ही भारत के स्वाधीनता संग्राम में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान किया। यद्यपि आर्यसमाज, एक विशुद्ध धार्मिक आन्दोलन होने तथा सार्वभौम और सार्वकालिक संरचना को सुरक्षित रखने के कारण, किसी देश विशेष की सामयिक राजनीति में प्रत्यक्षतः भाग नहीं लेता तथापि उसके अनुयायियों ने भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में सर्वात्मना भाग लेकर अपने आचार्य की भावनाओं का ही आदर किया है। श्यामजी कृष्ण वर्मा, लाला लाजपतराय, सूफी अम्बा प्रसाद, गेंदालाल दीक्षित, भगतसिंह, रामप्रसाद बिस्मिल आदि क्रान्तिकारी देशभक्त आर्यसमाज से ही प्रेरणा लेकर देश के लिये आत्म-त्याग और बलिदान करने में समर्थ हुये थे। आज भी आर्यसमाज के साधारण सदस्य देशभक्ति और राष्ट्र सेवा में किसी से पीछे नहीं हैं। आर्यसमाज शताब्दी समारोह अमृतसर में भाषण देते हुए पंजाब के मुख्य मंत्री ज्ञानी जैलसिंह ने ठीक ही कहा था कि जितने देश भक्त आर्यसमाज ने उत्पन्न किये हैं उतने किसी अन्य संस्था ने नहीं।

(इ) आर्यसमाज और शिक्षा—शिक्षा के क्षेत्र में भी आर्यसमाज का योगदान कम नहीं है। आर्यसमाज के संस्थापक ने अपने ग्रन्थों में शिक्षा विषयक जिस नीति का प्रवर्तन किया था उसे पुष्पित और पल्लवित करने का प्रयत्न कालान्तर में हुआ। डी. ए. वी. कालेज आन्दोलन का सर्वत्र प्रसार इस बात का द्योतक है कि आर्यसमाज ने शिक्षा विषयक पौरस्त्य और पाश्चात्य, शास्त्रीय और वैज्ञानिक दोनों दृष्टिकोणों के समन्वय का प्रयास किया है। महान् शिक्षा शास्त्री स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा गुरुकुल की स्थापना इस तथ्य का सूचक है कि दयानन्द निर्दिष्ट शिक्षा पद्धति केवल कल्पना मात्र अथवा अव्यावहारिक न होकर सर्वथा वास्तविक एवं व्यवहारोपयोगी है। वस्तुतः रवीन्द्रनाथ ठाकुर की विश्व भारती, वाराणसी की काशी विद्यापीठ तथा असहयोग आंदोलन के युग में स्थापित अन्य राष्ट्रीय शिक्षण संस्थायें मूलतः गुरुकुलों के आदर्श पर ही स्थापित की गईं थीं।

आज भी आर्यसमाज प्रति वर्ष करोड़ों रुपया स्वसंचालित शिक्षण संस्थाओं पर व्यय करता है। उसकी पर्याप्त शक्ति और श्रम गुरुकुलों, विद्यालयों तथा कालेजों के संचालन में लगता है, परंतु इन शिक्षण संस्थाओं का आनुपातिक लाभ आर्यसमाज को नहीं मिल पाता। अतः आवश्यकता इस बात की है कि एक समन्वित शिक्षा पद्धति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के रूप में आर्यसमाज अपनी शिक्षा नीति का पुनर्निर्धारण करे। इसमें प्राचीन आश्रम प्रणाली के अनुरूप छात्रों के वैयक्तिक चारित्रिक गुणों का समुचित विकास जिस प्रकार अभीष्ट है, उसी प्रकार नवीन ज्ञान, विज्ञान और तकनीकी शिक्षा के महत्त्व को भी स्वीकार किया जाना आवश्यक है। आर्यसमाज की शिक्षण संस्थाओं में विद्यार्थी की मातृभाषा तथा राष्ट्र भाषा हिन्दी को शिक्षा के माध्यम के रूप में सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई थी। अतः आर्यसमाज अपने संस्थापक के शिक्षा विषयक आदर्शों को वास्तविक रूप में क्रियान्वित करना चाहे तो यह अत्यन्त उपयुक्त होगा कि वह आर्ष ज्ञान के भाण्डागार संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन और अध्यापन के साथ-साथ भौतिक विज्ञान (स्वामी दयानन्द के शब्दों में पदार्थ विद्या) की सभी शाखाओं के अध्ययन अध्यापन की एक समन्वित प्रणाली पर बल दे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्व० पं० चमूपति जी एम० ए०

वैदिक-सिद्धान्त

आत्मा-परमात्मा—सृष्टि की उत्पत्ति—ज्ञान का आरम्भ—मुक्ति और साधन—सुख-दुःख की समस्या

मैं क्या हूं ?

पुराना प्रश्न—मैं क्या हूँ ? यह प्रश्न धर्म ने किया है, तर्क ने किया है, और विज्ञान ने भी किया है। उपनिषद् में आत्मा को 'प्रतिबोधविदितम्' कहा है; कोई बोध हो, उसमें बोध वाले का बोध साथ लगा रहता है। मैं देखता हूँ—इसमें देखने के साथ 'मैं' का भाव भी है। यह वृक्ष है—मैं न होऊं तो वृक्ष होने की साक्षी क्या ? सब साक्षियों में अपनी साक्षी का सहभाव है। प्रत्येक चेष्टा अपनी चेष्टा होती है। प्रत्येक प्रत्यय (Cognition) अपना प्रत्यय (Cognition) होता है। इसी अपना वा आप को संस्कृत में 'आत्मा' कहते हैं।

प्रयत्न ज्ञान

ऋग्वेद मं० १० सू० १६४ मं० ३७ में यह पहेली प्रस्तुत आत्मा के लिंग की है—

न विजानामि यदि वेदमस्मि निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि।

अर्थः—मैं नहीं जानता, क्या मैं यही हूँ (जो दीखता हूं अर्थात् शरीर) ? मैं तो सन्नद्ध (प्रयत्न के लिए उद्यत) होकर मनसा मनन शक्ति (न्याय दर्शन के शब्दों में ज्ञान) द्वारा चरामि गति करता हूँ।

शरीर जड़ होने से न स्वयं प्रयत्नवान् है, न ज्ञानवान्। न ही उसमें स्वतन्त्र ज्ञानपूर्वक मति (मनसा चरणम्) करने का सामर्थ्य है।

इच्छा द्वेष

इसके विरीत आत्मा

आपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्येना सयोनिः।

ऋ० १, १६४, ३८

स्वयं अमरण-धर्मा है परन्तु मरणधर्मा शरीर के साथ एक स्थानी होकर (स्वधया) अपनी इच्छा से जकड़ा हुआ किसी वस्तु की ओर जाता और किसी वस्तु से परे हटता है। अर्थात् इसमें राग और द्वेष का भाव है। लोहा भी जड़ चुम्बक की ओर खिचता है, परन्तु उस खिचने में उसकी अपनी इच्छा नहीं होती, इच्छा हो तो कभी भी न खिचे। आत्मा में राग और द्वेष की शक्ति है जिसका विकास और प्रयोग वह स्वतन्त्रता से कर सकता है, जो चुम्बक अथवा लोहा नहीं कर सकता। इससे सिद्ध हुआ कि राग और द्वेष 'आत्मा' ही के चिह्न हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

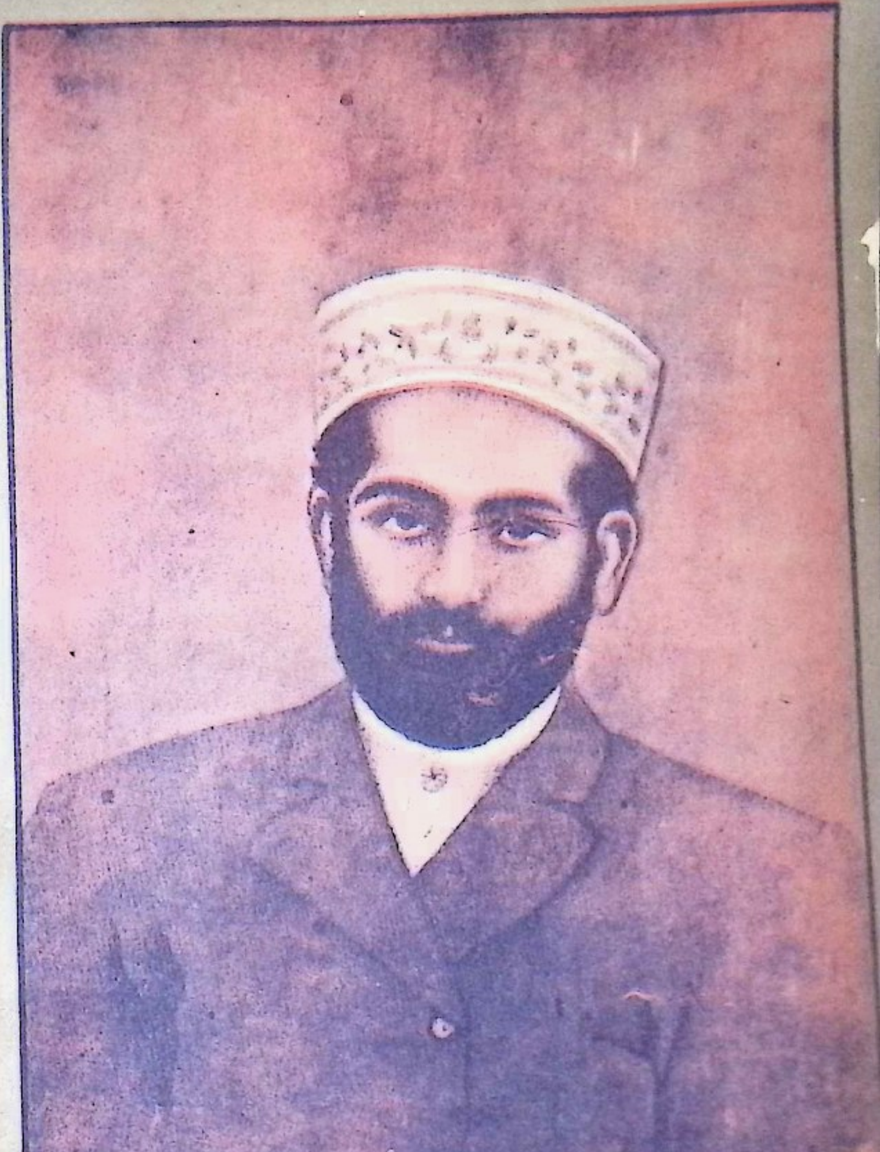

मुनिवर गुरुदत्तजी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सुख दुःख

इच्छा और द्वेष सुख दुःख का फल हैं। जिस वस्तु से सुख हो उसकी इच्छा होती है, जिससे दुःख हो उससे द्वेष होता है। सुख दुःख शरीर मात्र के ज्ञापक नहीं हो सकते। अचेतन को सुख दुःख का भान क्या ?

ऋ० १, १६४, १ में आत्मा को अश्नः अर्थात् सुख दुःख भोक्ता कहा है।

इस प्रकार उपरिलिखित तीन मन्त्रों में आत्मा के छः लिंग बताए गए।

अन्य लिंग

सुख दुःखेच्छा द्वेष प्रयत्न ज्ञानानि आत्मनो लिङ्गम् ।

—न्याय

ये लिंग वे है जिनमें सदा आत्मा का संकल्प साथ रहता है। संकल्प न हो तो सहसा न दुःख होता है न सुख। न राग, न द्वेष, न प्रयत्न, न ज्ञान। मन का संयोग न होने मात्र से ही ये लिङ्ग सिद्ध नहीं होते। इन लिङ्गों के अतिरिक्त कुछ लिङ्ग ऐसे हैं जो आत्मा के होने मात्र से स्वतः—बिना मनोयोग—सिद्ध होते हैं। इनका वर्णन अथर्ववेद के निम्नलिखित मन्त्र में आया है।

यदेजति पतति यच्चतिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद्भुवत् ।
तद्दाधार पृथ्वी विश्वरूपं तत्संभूय भवत्येकमेव ॥ ऋ० १०, ८, ११

जो (भुवत्) अपनी सत्ता मात्र से कंपन, पतन, ठहराव (गति), प्राण लेना, न लेना (प्राणापान), आंख झपकाना (निमेषोन्मेष) आदि चेष्टाएं करता है, उसने (विश्वरूपम्) सर्वेन्द्रिय प्रत्यय वाले (रूप्यते प्रतीयत इति रूपम्) पार्थिव शरीर का धारण किया है और जिसमें उन प्रत्ययों की संभूति हो कर सब ज्ञान एक हो जाता है। (इन्द्रियान्तर्विकारः)

इस मन्त्र में वैशेषिक दर्शन कथित प्राणापान, निमेषोन्मेष, गति, इन्द्रियान्तर्विकार इन लिंगों का वर्णन किया है।

इन्द्रियों के प्रत्ययों का एकीकरण

यही नहीं न्यायसूत्र के 'सव्यदृष्टस्येतराभिज्ञानात्' (बाईं आंख का देखा हुआ दाईं आंख से पहिचाना जाता है।) का भी समावेश इस मन्त्र के 'संभूय' शब्द में समझना चाहिए।

इसी विषय को ऋ० १, १६४, १५ में अधिक स्पष्ट किया है यथा—

साकञ्जानां सप्तथमाहुरेकजं षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति ।

७ प्रकार का एक साथ ज्ञान देने वाली इन्द्रियों (दो कान, दो नासिकाएं, दो नेत्र, एक मुख) को, जिनमें से ६ (कान, नथुने, नेत्र) यम (जोड़े) हैं, एक ज्ञानसाधन बना कर प्रकट होने वाले को (आत्मा) कहते हैं।

जिस बात को वेद ने स्पष्ट खोलकर कहा था, उसी को दर्शनकार ने सूत्र बना कर कहा। यदि एक पदार्थ को देखें और पहली बार देखते समय एक आंख विकृत हो, और दूसरी बार देखते समय दूसरी, तो एक आंख का देखा हुआ दूसरी आंख पहचानती है। प्रतीत यह होता है कि आंखों से भिन्न किसी और व्यक्ति ने एक आंख का देखा हुआ संभाल रक्खा था, वह अब दूसरी आंख द्वारा स्मरण किया। वही और व्यक्ति 'आत्मा' है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

फिर कहा है —

वि यस्तस्तम्भ षडिमा रजांस्यजस्यरूपे किमपि स्विदेकम् ।

ऋ० १, १६४, ६॥

अर्थः—जिसने छः (यम) भौतिक इन्द्रियों को अलग-अलग करके ठहरा रक्खा है, उस अजन्मा आत्मा के ज्ञान में, किसी इन्द्रिय का कोई ज्ञान हो, (अन्य इन्द्रियों द्वारा प्राप्त किये ज्ञान के साथ) एक हो जाता है।

इस मन्त्र में केवल विविध इन्द्रियों के प्रत्ययों का एकीकरण ही नहीं, किन्तु व्यक्तियों के बोध को क्रमबद्ध करने से जाति का ज्ञान Classification, प्रत्यक्ष Perception, अनुमान Inference, उपमान Comparison, शब्दादि प्रमाणों द्वारा प्राप्त सारा ज्ञान-कलाप किसकी विभूति है, यह रहस्य खोला गया है।

ये क्रियाएं स्वतः चलते यन्त्र की नहीं

ये सब लिंग जीते शरीर में होते हैं, मृत में नहीं। प्राण तथा निमेष को कपाटी (Valve) आदि के समान किसी भौतिक यन्त्र मात्र की क्रिया नहीं कहा जा सकता क्योंकि यान्त्रिक क्रिया का स्वयं यन्त्र निरोध नहीं कर सकता, परन्तु शरीर की इच्छा होने पर शरीर की उक्त क्रियाओं का निरोध हो सकता है। तभी तो 'प्राणत्' के साथ 'अप्राणत्' कहा, 'एजति' के साथ 'तिष्ठति' कहा। यही भाव दर्शनकार ने इन सब चिह्नों को 'आत्मा' के लिंग कहकर व्यक्त किया है। तात्पर्य्य यह कि इनका अस्तित्व आत्मा के विना संभव नहीं, परन्तु आत्मा इनके बिना भी रहता है। ये लिंग हैं—धर्म नहीं।

शरीर आदि आत्मा नहीं

वेद ने उपर्युक्त मन्त्र में आत्मा के ज्ञापक चिह्नों का वर्णन किया है। ये चिह्न केवल शरीर के नहीं हो सकते। इस ओर प्रश्न द्वारा संकेत तो किया ही था, परन्तु अब स्पष्ट कहते हैं —

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।

ऋ० १, १६४, १

इस सुन्दर वृद्ध हो जाने वाले दानादनशील शरीर का भर्ता* (अनादित्रयी में) मध्यम-स्थानीय भोग-धर्मा (आत्मा) है।

शरीर परिणामी है

शरीर दानादनशील है, अर्थात् इसके परमाणु प्रतिक्षण क्षीण होते और उनके स्थान में नए परमाणु आते रहते हैं। इसलिये यह कभी वाम सुन्दर है और कभी पलित वृद्ध। वैज्ञानिक लोग बताते हैं कि इस अणु-परिवर्तन के कारण मनुष्य का शरीर प्रत्येक ७ से १२ वर्ष के अन्दर सारे का सारा नया हो जाता है। जब मेरा शरीर इस जीवन में इतनी बार सम्पूर्ण बदल जाता है तो मैं एक कैसे हूँ? वेद कहता है, भोगधर्मा शरीर नहीं, कोई और शरीरी है।

मन आत्मा नहीं

आत्मा न शरीर है और न इन्द्रिय—यह ऊपर के प्रमाणों से स्पष्ट हो गया।

*भ्राता भरतेः। निरुक्त

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मन की गणना भी इन्द्रियों ही में करनी चाहिये क्योंकि वह भी एक करण है। 'तत्संभूय भवत्येकमेव' ने मन को आत्मा न होने दिया क्योंकि मन अयुगपत् ज्ञान होने से प्रत्ययों की सम्भूति का आधार नहीं हो सकता।

आत्मा नित्य है

इस प्रकार आत्मा की पृथक् सत्ता सिद्ध हो गई। अब उसके कुछ गुणों का वर्णन किया जाएगा। आत्मा को दार्शनिकों ने सत् और चित् कहा है। अर्थात् वह नित्य और ज्ञानधर्मा है। आत्मा की नित्यता में श्रुति भगवती का कथन है :—

अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः। ता शश्वन्ता ॥ १ १६४. ३८.

अर्थात् अमरण-धर्मा (आत्मा) मरणधर्मा (शरीर) के साथ एकस्थानीय है, और वे दोनों (शरीर और आत्मा) नित्य हैं।

शरीर शाश्वत है पर मर्त्य। आत्मा शाश्वत भी है और अमर्त्य भी। इस विषय का अधिक विस्तार आगे करेंगे।

आत्मा अल्पज्ञ है

आत्मा का चित् होना ऊपर प्रमाणित हो चुका है। ज्ञानी है पर सर्वज्ञ नहीं। न इसका कोई विशेष ज्ञान अवश्य स्थायी है। इसी भाव को सामने रखकर वेद किसी जिज्ञासु के मुख से कहता है :—

अचिकित्वांश्चिकितुषश्चिदत्र कवीन्पृच्छामि । ऋ० १-१६४-६ ।

अर्थ:—न जानता हुआ मैं जानने वालों से पूछता हूं। ज्ञान को आत्मा का लिंग कहने से भी यही अभिप्राय था। आत्मा में ज्ञान और अज्ञान इकट्ठे रहते हैं, अर्थात् किसी विषय का ज्ञान, किसी का अज्ञान।

अणु

आत्मा के सम्बन्ध में अब एक बात और रही, वह यह कि इसका परिमाण क्या है? वेद स्पष्ट कहता है :—

वालादेकमणीयस्कमुतैकं नैव दृश्यते । अ० १०. ८. २५.।

एक (आत्मा) बाल से भी सूक्ष्म अणु है। दूसरा (परमात्मा) मापा नहीं जा सकता अर्थात् विभु है।

विभु और मध्यम के दोष

परिमाण तीन प्रकार के माने जा सकते हैं:—विभु, मध्यम और अणु। विभु जो सर्वत्र में हो, मध्यम जो शरीर मात्र में व्यापक हो, अणु छोटे से छोटा। कौन सा शरीर किस 'आत्मा' का है, इसका निश्चय विभु होने की अवस्था में नहीं हो सकता, क्योंकि सब विभु सब शरीरों में होंगे। ऐसी अवस्था में सब आत्माओं का सब शरीरों से सम्बन्ध क्यों नहीं? सब मनों, सब इन्द्रियों से प्रत्येक विभु का संयोग होना चाहिए। विपक्षी कहता है, पूर्व जन्म के कर्मों के फल रूप में प्रत्येक विभु आत्मा, का शरीर विशेष से सम्बन्ध होता है, दूसरे शरीरों से उस का सम्बन्ध नहीं होता। इस अदृष्ट में विशेष को कारण कहते हैं, जिसकी कल्पना अणु पक्ष में नहीं करनी पड़ती। विभु पक्ष में कल्पना गौण है। इसलिए यह पक्ष त्याज्य है। मध्यम हो तो प्रत्येक शरीर के साथ इसका परिमाण बदलेगा अर्थात् जीव का अपना परिमाण कोई

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

न रहेगा। जिस शरीर में जाएगा, उसी का परिमाण इसका परिमाण बन जाएगा और जिस पदार्थ का परिमाण बदले वह विनाशी होता है। यह आपत्ति आयेगी। अणु होने में इन दोषों में से किसी की संभावना नहीं। अणु छोटे से छोटे शरीर में चला जाएगा और अपनी शक्तियों से दीप की नांई अपने से बड़े शरीर का द्योतन और अधिष्ठान करेगा।

सार

जीते शरीर में कुछ ऐसी चेष्टाएँ होती हैं जो जड़ शरीर लिंग नहीं कर सकते, जैसे सुख-दु:ख की अनुभूति, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न और ज्ञान। इन्हीं को न्याय दर्शनकार ने 'आत्मा' के लिंग कहा है। वैशेषिककार ने इनके अतिरिक्त प्राणापान, निमेषोन्मेष, गति, इन्द्रयान्तर्विकार (अर्थात् एक इन्द्रियपथ आंख के अनुभव से दूसरे इन्द्रिय यथा रसना में विकार होना, जैसे खट्टे पदार्थ के देखने मात्र से मुँह में पानी आना) ये भी आत्मा के लिंग कहे हैं। जब तक शरीर में आत्मा है तब तक ये लिंग रहते हैं, आत्मा न हो तो ये भी नहीं होते। अतः यह इस शरीर से भिन्न आत्मा के चिह्न हैं। इन्हीं लिंगों को वेद में अश्नः ऋ० १. १६४. १. सुख-दु:ख भोक्ता, अपाङ् प्राङेति ऋ० १. १६४. ३८. किसी वस्तु की ओर जाता है (इच्छा), किसी से दूर (द्वेष), सन्नद्धो मनसा चरामि ऋ० १. १६४. ३७. प्रयत्नवान् होकर ज्ञान पूर्वक विचरता हूँ, प्राणत् अप्राणत् प्राण लेता है और नहीं लेता, निमिषत् आंख झपकाता है, एजति पतति तिष्ठति कांपता है, ठहरता है, विश्वरूपं संभूय भवत्येकमेव सारे इन्द्रिय-जन्य बोधों का एकीकरण कर एक बोधाधार है अ० १०. ८. ११ इन शब्दों में कहा गया है। इन लिंगों के समान चेष्टाएँ भौतिक पदार्थ में भी पाई जाती हैं। Airpump की कपाटी फेफड़े की भांति वायु को धकेलती रहती है। लोहा चुंबक की ओर वैसे ही खिचता है जैसे आत्मा अपने प्रिय की ओर, परन्तु इन क्रियाओं में आत्मा जैसी स्वतन्त्रता, स्वेच्छा, नहीं कि जब चाहा प्राण न लिया, जिसकी ओर आज खिचे, कल उस से दूर भी हट गए। इस प्रकार यह लिंग आत्मा की अभौतिक सत्ता को जताते हैं।

अपरिणामी

शरीर तो प्रत्येक ७वें से १२वें वर्ष के अन्दर सम्पूर्ण बदल जाता है। तो वह स्थिर व्यक्ति कौन है जो इस बदलते शरीर में अपरिणामी रहता है? वेद ने ऋ० १. १६४. १. में शरीरों को कभी वाम सुन्दर और कभी पलित वृद्ध कहा है, क्योंकि यह होता दानादनशील है। परमाणुओं को खींचता तथा निकालता रहता है। इसका भ्राता भरणकर्ता भोग-धर्मा आत्मा है।

अमत्य

आत्मा के गुण हैं सत् और चित् अर्थात् नित्यता और ज्ञान। वेद ऋ० १. १६४. ३८. में शरीर और आत्मा को शश्वन्ता नित्य कहता है परन्तु फिर वहीं अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः कह कर स्पष्ट कर दिया है कि शरीर (प्रकृतिरूप में) नित्य है पर मर्त्य—मरणधर्मा है, परन्तु 'आत्मा' नित्य भी है और अमर्त्य भी।

अल्पज्ञ

आत्मा का धर्म ज्ञान है परन्तु वह ज्ञान शक्ति मात्र है। किसी विशेष विषय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का ज्ञान प्रयत्न से आता है अचिकित्वांश्चिकितुषः............पृच्छामि ऋ० १. १६४. ६. 'मैं अज्ञानी ज्ञानियों से पूछता हूं।' यही जीव की अल्पज्ञता है।

अणु

जीव का परिमाण वेद कहता है :—बालादेकमणीयस्कं अ० १०. ८. २५. एक बाल से भी सूक्ष्म है। विभु हो तो किस शरीर का कौन आत्मा है, इसका निश्चय न होगा। एक शरीर से एक ही आत्मा का सम्बन्ध क्यों हो, इसके लिए नियामक कारण नहीं होगा, क्योंकि सब विभु सब शरीरों में होंगे। मध्यम हो तो प्रत्येक शरीर के साथ इसका परिमाण बदलेगा और परिमाण बदलने वाला विनाशी होता है। इस से अनित्यता का दोष आएगा। इसलिए 'आत्मा' का अणु होना ही युक्तियुक्त है।

२—परमात्मा

विश्वात्मा

आत्मा और परमात्मा का विचार आपस में इतना मिला हुआ है कि शास्त्रों में प्रायः इन दोनों की विवेचना साथ-साथ की गई है। कई स्थलों पर यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि यहां आत्मा का वर्णन है या परमात्मा का? प्रसिद्ध लोकोक्ति है :—यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे। जैसे शरीर में चेतना देखकर उसमें किसी आत्मसत्ता का विचार उठता है, वैसे ही ब्रह्माण्ड में किसी नियामक व्यवस्थापक शक्ति का भान पाकर परमात्मा की सत्ता का अनुमान होता है।

परमात्मा जीव नहीं

विश्व का आत्मा (परमात्मा) इन शरीरियों में से एक नहीं हो सकता, क्योंकि शरीरी बहुत हैं और इन की शक्ति सीमाबद्ध है। यह न तो सारे जगत् में व्यापक है, न इनका ज्ञान ही पूरा है। न यह बारी-बारी से शासन कर सकते हैं, और न समूह रूप से शासक हो सकते हैं। ब्रह्माण्ड की व्यवस्था स्थिर है, वह व्यवस्थापक की स्थिरता चाहती है। यदि मुक्तों का शासन माना जाए तो यह बढ़ते घटते रहते हैं। बन्धनावस्था से मुक्तावस्था में भोग का परिवर्तन तो होता है क्योंकि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वहाँ आनन्द ही आनन्द मिलता है, परन्तु स्वरूप नहीं बदलता कि अल्प शक्ति सर्वशक्ति हो जाय। इसलिये आत्मा किसी अवस्था में परमात्मा नहीं हो सकता। वेद ने आत्मा के विषय में कहा है—

अवः परेण पर एना वरेण। ऋ० १, १६४, १७-१८

जीव से सूक्ष्म

अर्थ—इस अवर (प्रतीयमान् जगत्) से बड़ा है उस बड़े (परमात्मा) से छोटा है। पर सूक्ष्म को भी कहते हैं (जो प्रतीति में परे हो) प्रमाण के लिए उपनिषद् का यह मन्त्र देखो—

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥ उपनिषद्

ऋषि दयानन्द का यह कथन कि परमात्मा आत्मा से और आत्मा प्रकृति से अधिक सूक्ष्म हैं, इसी वैदिक विचार पर आश्रित है।

परमात्मा सिद्धि : जगत् का प्रवर्तक Cosmological Argument

परमात्मा की सिद्धि की जो युक्तियां आधुनिक तथा पुरातन तर्क में प्रयोग में लाई गई हैं उनका बीज वेद में है। संसार को देखकर पहला प्रश्न यह होता है कि इसका विकास कैसे होता है ? विकास में नियम है, निश्चय है। सम्पूर्ण जगत् की प्रवृत्ति बुद्धिपूर्वक हुई प्रतीत होती है। इस विषय का विशेष विचार 'उत्पत्ति' प्रकरण में करेंगे। यह बुद्धि प्रकृति की नहीं, और जैसे हम ऊपर कह चुके हैं, किसी आत्मा या आत्मसमूह की भी नहीं। विभु आत्मा परमात्मा की ही है॥

पादोऽस्येहाभवत्। ततो विश्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि। यजु० ३१.४.

उस चतुष्पाद् पुरुष का एकपाद (बहिः प्रज्ञ) इस संसार में प्रकट हुआ। उससे चेतन अचेतन सारा जगत् प्रवृत्त हुआ।

आर्य धर्म परमात्मा को जगत् का निमित्त कारण मानता है, उपादान नहीं। उपादान मानने से चेतन से अचेतन और अचेतन से विकसित होने की समस्या का कोई सुलझाव नहीं हो सकता। इस अंश में हमारी प्रवृत्ति की युक्ति पश्चिमीय युक्ति से, जो क्रिश्चियन मत पर आश्रित है, भिन्न है। पाश्चात्य तर्क यहां ठहर जाता है। हमारी यही युक्ति आगे चलती है।

धारक

प्रवृत्ति के पश्चात् धृति का प्रश्न है। संसार के विविध पदार्थ एक दूसरे की आकर्षण आदि शक्तियों से स्थिर हैं। परन्तु यह आकर्षण भी तो बुद्धि-पूर्वक कार्य कर रहा है। सूर्य ने पृथ्वी को और पृथ्वी ने सूर्य को आकर्षण करना किसी की नियामकता से स्वीकार किया है। इनमें यह धर्म कैसे आया ? इस धर्म का संकेत ज्ञानस्वरूप सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी की ओर है। वेद कहता है—

स्कंभेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः। स्कंभ इदं सर्वमात्मन्वद्यत्प्राणन्निमिषच्च यत्॥ अ० १०.८.२.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थ—धारणकर्ता परमात्मा में आकाश और पृथ्वी (सूक्ष्मतम भूत आकाश और स्थूलतम भूत पृथ्वी का नामनिर्देश कर सारे भूतों की ओर संकेत है) अलग-अलग थमे हुए खड़े हैं। उसी धारण कर्ता में प्राण लेने और आँख झपकाने वाला आत्मवान् जगत् है। अर्थात् चेतन अचेतन का आधार प्रभु है।

निवर्त्तक

जहां प्रवृत्ति है धृति है, वहां निवृत्ति भी है। प्रत्येक पदार्थ अपने मूल से परिणाम पाकर कार्य रूप धारण करता है और उससे पीछे फिर उसी कारण में लीन हो जाता है। जैसे पानी से बादल और बादल से फिर पानी बनता है। यह चक्र जैसे अलग-अलग पिंडों में देखने में आता है, ऐसे ही ब्रह्माण्ड की मर्यादा में भी दृष्टिगोचर होता है। कम से कम इसका अनुमान इसी प्रकार हो सकता है। यह क्षय या निवृत्ति भी उसी व्यापक बुद्धि के अधीन है।

कालेनोदेति सूर्यः काले निविशते पुनः। अ० १६. ५४. १

अर्थ—संख्या कर्ता परमात्मा से सृष्टिकाल में सूर्य उत्पन्न होता है और प्रलय-काल में उसी में लीन हो जाता है।

प्रवृत्ति और निवृति दो विरोधी धर्म हैं। इनका समय और मर्यादा-पूर्वक-व्यवहार में आना जड़ प्रकृति द्वारा असम्भव है। प्रकृति का स्वतन्त्र धर्म या प्रवृत्ति ही हो सकता है या निवृत्ति। संसार स्वतन्त्र हो तो उस की गति यान्त्रिक (Mechanical) होनी चाहिए, अर्थात् वह बनता जाए या विगड़ता। या सृष्टि ही सृष्टि होती जाए या प्रलय ही प्रलय हो। सृष्टि होते-होते प्रलय और प्रलय होते-होते सृष्टि की प्रवृत्ति कौन करता है? कोई नियामक शक्ति ही। वह नियामक चेतन होना चाहिये और उसकी चेतनता का प्रभाव विश्वव्याप होना आवश्यक है।

वेदान्तदर्शन में उपरिलिखित सारे प्रकरण को एक सूत्र में कहा है—**जन्माद्यस्य यतः** १. १. २. अर्थात् ब्रह्म वह है जिससे इस (जगत्) का जन्म, धारण, और विनाश होता है।

अंग्रेजी में इस युक्ति को (Cosmological Argument) कहते हैं। परन्तु पाश्चात्य तर्क में सृष्टि और प्रलय की चक्रपरम्परा का विचार न होने से इस युक्ति का अभिप्राय केवल प्रवृत्ति की युक्ति रहता है।

रचयिता Teleological Argument

दूसरी युक्ति रचना या (design) की है। इसे अंग्रेजी भाषा में Teleological Argument कहते हैं। बुद्धि पूर्वक धृति का वर्णन करते हुए हम इस युक्ति की ओर संकेत कर चुके हैं, परन्तु तार्किकों की परिभाषा को दृष्टि में रखते हुए इस युक्ति पर संक्षेप से अलग विचार कर लेने में हानि नहीं।

प्रत्येक विज्ञान (Science) बताता है कि संसार की स्थिति नियमों पर है। इन्हीं नियमों का संग्रह-भूत ही तो विज्ञान है। इन्हीं नियमों के आश्रय से सब कलाओं, सब धन्धों का व्यवहार चलता है। यदि कृषक बीज के पृथ्वी में डाले जाने के पीछे उसके विशेष सिंचन आदि संस्कारों के अनन्तर उसके फल-स्वरूप में परिणत

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

होने में सन्देहवान् हो तो कृषिकला में प्रवृत्त ही न हो। यही नियम Science of Agriculture कृषि विज्ञान कहलाते हैं। यही अवस्था और विज्ञानों की है। विज्ञान नाम है नियमों का। ब्रह्माण्ड में भौतिक पदार्थों से और फिर सारा भौतिक प्रपञ्च प्राणि-जगत् से एक सूत्र से बंधा हुआ है। सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो प्रत्येक क्षेत्र की रचना निराली प्रतीत होती है। कैसा कौतुक है कि इन सब रचनाओं की फिर एक व्यापक रचना है। जगत के अंग-अंग की और फिर इस सम्पूर्ण अंगी की ध्वनि है संगठन। यह संगठन यह रचना सर्वज्ञ रचयिता के बिना और किस की हो सकती है?

यो विद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् सो विद्यात् ब्राह्मणं महत्॥ अ० १०.८.३८

अर्थः—जो उस अलग-अलग प्रत्येक विज्ञान के क्षेत्र में फैले हुए सूत्र को जानता है और फिर उस सूत्र के सूत्र (व्यापक रचना) को जानता है वह परमब्रह्म को जानता है।

विज्ञानों और शास्त्रों का अपना-अपना (Synthesis) संश्लेष है। इन सब संश्लेषों (Synthesis) का एक परम संश्लेष (Highest Synthesis) है। इसे ब्रह्म-विद्या कहते हैं। इसी संश्लेष का वर्णन उपनिषदों ने इन मनमोही शब्दों में किया है कि इसके जानने से सब कुछ जाना जाता है। विज्ञान को हेय नहीं बताया किन्तु उसका ध्येय (ideal) और उत्कृष्ट कर दिया है। विज्ञान का परम संश्लेष (Highest Synthesis) और वेद का सूत्रस्य सूत्र एक है।

वेदान्त दर्शन के दूसरे अध्याय के दूसरे पाठ में इस विषय की अच्छी विवेचना की गई है। विस्तार के लिये वहां देखें।

कर्म बल संयोजक Moral Argument

तर्क की अन्तिम युक्ति धर्म की या आचार की युक्ति है। इसे अंग्रेजी में Moral Argument कहते हैं। आचार का आधार परमात्म-विश्वास है। योगी फल की आकांक्षा से ऊंचा हो जाता है परन्तु यदि कृति का फल ही न हो तो कोई कर्म करने के लिए प्रेरणा किस भाव से पाए? भलाई का फल स्वयं भलाई ही सही, सदाचार का लाभ केवल आत्मोन्नति ही हो, तो भी इस फल का सफलीकर्त्ता चाहिये।

वेद कहता है:—

सविता सत्यधर्मा अ० १०,८,४२

अर्थात् प्रेरक प्रभु का धर्म अटल है; उसने सत्य (Righteousness) को धर्म बनाया है।

सत्य धर्म है, कार्य इस प्रकार होना चाहिए। ऐसा करना कर्त्तव्य है, इसकी प्रथम प्रेरणा कहां से हुई? वरुण देवता के सब सूक्त परमात्मा के इसी गुण का प्रतिपादन करते हैं।

आर्य तर्क की विशेषता यह है कि इसने आध्यात्मिक (Metaphysical) और आधिभौतिक (Physical) नियमों को एक ही लड़ी में पिरो दिया है। वही व्यवस्था जो पृथ्वी में डाले हुए बीज को समय आने पर फल बनाती है, किये हुए कर्म को समय आने पर परिपाक भी देती है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भगवद् गीता में कहते हैं:—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।

यहां किया हुआ नष्ट नहीं होता । परिपाक का प्रतिबन्धक कोई नियम या कारण नहीं ।

इसी कारण से बादरायण मुनि ने वेदान्त में रचना और आचार की युक्ति (Teleological और Moral Argument) को एक साथ एक ही सूत्र में शास्त्रयोनित्वात् कहकर बड़ी सुन्दरता से ग्रथित किया है । हमारी परिभाषा में शास्त्र सत्य प्रतिपादित करने वाली किसी भी व्यवस्था को कहते हैं । भौतिक विज्ञान भी शास्त्र है और आध्यात्मिक विज्ञान भी । बादरायण के सूत्र का अभिप्राय यह है कि जहां इन शास्त्रों के नियमों को संसार की रचना में व्यवहार-रूप में क्रियात्मक भाव देने वाला परमात्मा है, वहां इन नियमों का प्रथम ज्ञान भी प्रभु स्वयं देते हैं । वेदान्त शास्त्र की यह नई युक्ति है जो पाश्चात्यों को नहीं सूझी । इसका विचार हम 'ज्ञान का आरम्भ' नाम के प्रकरण में करेंगे ।

पूर्णसत् Ontological Argument

इन सब युक्तियों के अतिरिक्त एक युक्ति विशेष एनसल्म ने दी थी । उसका खंडन कांट ने Ontological Argument कहकर किया था । उस युक्ति का अभिप्राय यह है कि महतो महान् का भाव मनुष्यों में है और इसका निराकरण नहीं हो सकता, इसलिये परमात्मा है । Anselm ने अपनी युक्ति को अशुद्ध रूप दिया । डेकार्ट आदि तार्किकों का नाम भी इस युक्ति के साथ संयुक्त है । अपूर्ण जीव पूर्ण की भावना करता है । यह भावना किसी काल्पनिक भ्रमात्मक भावना से भिन्न है । भ्रमात्मक भावनाओं का आधार हमारे सत्य प्रत्यय हैं । उन प्रत्ययों को विविध रूपों में संश्लिष्ट कर हम अपने भ्रमों की सृष्टि करते हैं । भूत प्रेत आदि का हमने प्रत्यक्ष नहीं किया परन्तु जिन अंगों की कल्पना हम उन भूत प्रेतों में करते हैं, यथा हाथ, पांव, दांत मुख इत्यादि वे हमारे ज्ञान में विद्यमान हैं । उन अंगों का एक अद्भुत मिश्रण हमारा भूतादि का भ्रम होता है । इसके विपरीत पूर्णता को हमने कभी नहीं देखा । तो भी उसकी ओर जाने का प्रयत्न है । दोष हटाने, न्यूनताएं मिटाने का यत्न किसी पारमार्थिक पूर्ण सत्ता की ओर संकेत करता है । हमारी सत्ता (Being) का विचार पूरा नहीं होता जब तक किसी पूर्ण सत् (Perfect Being) की भावना मात्र का ही उसमें समावेश न हो । हमारी अपूर्णता उस पूर्ण को घेर नहीं सकती, इस अंश में वह अज्ञेय है । परन्तु हमारी अपूर्णता भी तो ऊन रह जाती है, असत् हो जाती है, जब तक कि उस से भिन्न कोई पूर्ण न हो । सत्ता, ज्ञान, साफल्य, सब दृष्टियों से वह पूर्ण पूर्ण हो । पहले पूर्ण हो । उस में नञ् समास होकर अपूर्ण बने । वेद कहता है:—

न कुतश्चनोन: अ० १०, ८, ४४

वह किसी बात में ऊन नहीं ।

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते । अ० १०, ८, १५

परमात्मा परिपक्व जीव से दूर (उत्कृष्ट) है और अपरिपक्व तो उस की ओर जाता ही नहीं ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यहां यह भी सिद्ध हो गया कि परमात्मा मुक्त जीवों से भिन्न है।

अन्त: प्रत्यक्ष Intuitional Argument

यहां तर्क की समाप्ति है अंतिम युक्ति (Intuition) अन्त: प्रत्यक्ष की हैं। वेद कहता है:—

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहायत् । अ० २, १, १

अर्थ:—योगी उसे देखता है जो हृदय-देश में छिपा है। फिर कहा है:—

अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया

गृभ्णान्ति जिह्वा ससम् ऋ० ८, ७२, ३

अन्त: प्रत्यक्ष की शक्ति पर हमारे शास्त्रों ने बहुत बल दिया है। प्रत्येक विज्ञान की पूर्ण सिद्धि इसी प्रमाण से मानी है। आज फ्रांस के प्रसिद्ध दार्शनिक हेनरी बर्गसन भी अन्त: प्रत्यक्ष को Intuition नाम देकर इसी की साक्षी को चरम साक्षी मान रहे हैं।

परमात्मा का स्वरूप, ज्ञान

परमात्मा के गुणों का वर्णन आर्यसमाज के दूसरे नियम में किया गया है। वह सब वेद के आधार पर है, जैसा कि हम अभी दर्शायेंगे। परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है, सत् प्रकृति भी है, सत् चित् आत्मा भी। परमात्मा आत्मा के ज्ञान में यह भेद है कि परमात्मा ज्ञान स्वरूप है। वेद कहता है:—

सर्वं तद्राजा वरुणो विचष्टे यदन्तरा रोदसी यत्परस्तात् ।
संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी निमिनोति तानि अ० ४. १६. ५.

पृथिवी और आकाश के बीच अर्थात् भौतिक जगत् में और उसके बाहर जो कुछ होता है वह सब राजा वरुण जानता है। यही नहीं, उसके तो प्राणी प्राणी के निमेष उन्मेष तक गिने हुए हैं। आत्म हत्यारे इन निमेषों को जुए का दाव बनाते हैं।

आनन्द स्वरूप

वेद ने परमात्मा को पूर्ण कहा है। मानुषीय पूर्णता से पूर्णतर—ऐसा पूर्ण जिसकी ओर यह पूर्णताएं दौड़ती हैं और सदैव दौड़ती चली जाएंगी। ऊनता दु:ख है, पूर्णता सुख है। वेद के शब्दों में:—

स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नम: । अ०

जिसका आनन्द (स्व:) केवल है अर्थात् उस में किसी अन्य विरोधी भाव का लेशमात्र भी नहीं, उस महतो महान् परब्रह्म को नमस्कार है।

अभोक्ता

दु:ख भोग में है। अकेवल सुख और केवल तथा अकेवल दु:ख भोग कहलाते हैं। परमात्मा अभोक्ता है। वह सुख दु:ख से ऊंचा है।

अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति । ऋ १. १६८. २०

अर्थ:—एक (परमात्मा) अभोक्ता होकर साक्षी है। आत्मा का सुख लिंग है। परमात्मा का धर्म, स्वरूप। स्वरूप नित्य है, लिंग अनित्य।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

निराकारादि

इसी पूर्णता के भाव में निराकार, सर्वशक्तिमान्, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र, इन सब भावों का समावेश है। वेद में इन भावों का अलग-अलग वर्णन भी आया है, यथा:—

निराकार—अकायमव्रणम्। य० ४०. ४
सर्वशक्तिमान्—शुक्रम्। ४०, ४
अजन्मा—अजस्तद्दृशे क्व अ० १०, ८, ४
श्रृणोत्वज:। य० ३४, ५३
अनन्त—अनन्तं विततं पुरुत्र। अ० १०, ८, १२
निर्विकार—अज एकपात्। य० ३४, ५३
अनादि—सनातनम्। अ० १०, ८, २२
अनुपम—अपूर्वेणोपिता वाचः। अ० १०, ८, २३
न तस्य प्रतिमा अस्ति। य० ३२, ३
सर्वाधार—सो दृंहयत सो धारयत। अ० ४, ११, ७
सर्व-व्यापक—उरूकोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा भुवनान्यन्तः अ० ११, २, १२
सर्वज्ञ—वेद भुवनानि विश्वा। य० ३२, १०
अजर अमर

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः। तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्॥ अ० १०, ८, ४४

अभय—अभयंकर। अ० १०, २१, १
नित्य—एकपात्। ३४, ५३
पवित्र—पवमानः। अ० १०, ८, ४०
न्यायकारी—सोऽर्यमा अ० १३, ४, ४
दयालु—दयसे विजानन्। य० ३३, १८,
सर्वेश्वर—सर्वस्येश्वरः अ०। १०, ४, १,
सृष्टिकर्त्ता—य इदं विश्वं भुवनं जजान। अ० १३, ३, १५
सर्वान्तर्यामी—स ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु। य० ३२, ८

हमने केवल संकेत दे दिये हैं। पाठक इन गुणों का विस्तार स्वयं कर लें।

एक मात्र उपास्य

आर्यसमाज का दूसरा नियम परमात्मा के इस स्वरूप का वर्णन कर रहा है कि उसी की उपासना करनी योग्य है। वह वेद के इस वाक्य का अनुवाद मात्र है:—
दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः। अ० २, २, १

प्रकाश स्वरूप, ज्ञान और ज्ञेय का धर्ता (आदि मूल) संसार का एक मात्र पति ही नमस्कार के योग्य है। उसकी स्तुति प्रजाओं में करो।

पूर्ण एक ही हो सकता है, अनेक नहीं।

सार

संसार को समष्टि शरीर समझ लें तो उसमें एक व्यापक आत्मा की सत्ता प्रतीत होती है। जीवों की शक्ति परिमित है। उनमें से न कोई अकेला सारे विश्व

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का आत्मा हो सकता है और न यह सब मिलकर । परिमित मिलकर भी परिमित ही रहेंगे। वेद ने आत्मा को कहा है **अवःपरेण** ऋ० १, १६४. १७-१८ कि यह परमात्मा से निकृष्ट है। दूसरा अर्थ 'पर' का है सूक्ष्म। अर्थात् परमात्मा जीव से भी सूक्ष्म है।

परमात्मा की सिद्धि के लिये निम्नलिखित युक्तियां तार्किक-लोग देते हैं:—
(१) प्रवृत्ति की युक्ति Cosmological Argument। इस युक्ति का सार यह है कि जगत् की प्रवृत्ति किसी चेतन से हुई है, क्योंकि इसके विकास में बुद्धि-द्योतक नियम काम करते हैं। वेद कहता है :—

ततो विश्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि। यजु० ३१. ४

उस परम पुरुष से विश्व की प्रवृत्ति हुई, जड़ चेतन दोनों की।

वैदिक-धर्मी इस प्रवृत्ति के साथ धृति और निवृत्ति भी मिला देते हैं। संसार थमा काहे पर है ? पदार्थों के पारस्परिक आकर्षण पर। वह आकर्षण स्थिर क्यों है ? कौन है जो दो पदार्थों को आपस में आकर्षक भी बनाता है और आकृष्य भी ? यह पारस्परिक अनुकूलता धारक का द्योतन करती है। वेद कहता है :—

स्कंभेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः।
स्कंभ इदं यदात्मन्वद् यत्प्राणन्निमिषञ्च यत्॥ अ०.६. ११ ४५

धारण के पीछे निवृत्ति है। वेद कहता है :—

काले निविशते पुनः। अ० ११. ५४. ५

संख्याकर्ता परमात्मा में सबका लय होता है।

इन तीनों भावों, प्रवृत्ति, धृति और निवृत्ति का नियामक परमात्मा है। यदि यह केवल यान्त्रिक क्रियाएं हों तो निवृत्ति से प्रवृत्ति और प्रवृत्ति से निवृत्ति न हो सके। प्रकृति का स्वभाव तो या निवृत्ति होगा या प्रवृत्ति। उसको समय पर बदल देने वाला चेतन प्रभु है।

(२) रचना की युक्ति (Teleological Argument) इस युक्ति का आधार विज्ञान है। विज्ञान संसार के विविध-विविध अंगों में नियमों का आविष्कार करता है। इसी को रचना या Design कहते हैं। अंग-प्रत्यंग फिर आपस में आन्तरिक नियमों से मिले हैं। यथा वनस्पति-शास्त्र वनस्पति जगत् में नियमों की सिद्धि करता हैं और पशुशास्त्र Zoology पशु-जगत् में। फिर वनस्पति शास्त्र का पशु शास्त्र से सम्बन्ध है क्योंकि पशु और वनस्पति एक अटूट रस्सी से आपस में बंधे हुए हैं। इस प्रकार सब विज्ञानों के ऊपर एक व्यापक विज्ञान है। उसे **ब्रह्म विद्या** कहते हैं। वेद में इसी परम संश्लेष (highest synthesis) को सूत्रस्य सूत्रम् अ० १०, ८, ३८ कहा है।

सूत्रस्य सूत्रं यो विद्यात् सो विद्यात् ब्राह्मणं महत।

प्रत्येक विज्ञान के आधार-भूत नियमों का रचयिता भी प्रभु है, और उस विज्ञान का प्रथम बोध भी प्रभु देता है।

(३) धर्म युक्ति Moral Argument। सदाचार का आधार परमात्मा की सत्ता का विश्वास है। सदाचार परमात्मा की प्रेरणा है। उसका फल भौतिक हो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अथवा अभौतिक या निष्कामता ही, उस फल का प्रेरक सत्य धर्मा सविता। अ० १० ८, ४२ है।

आर्य विचार भौतिक नियमों तथा आचार-सम्बन्धी नियमों दोनों के सूत्रीकरण (systematisation) को शास्त्र नाम देता है। इस शास्त्र का प्रथम प्रादुर्भाव 'वेद' के रूप में होता है। आत्मा की ध्वनि conscience परमात्मा की प्रथम प्रेरणा है। धर्म-मर्यादा आरम्भ में उसी प्रभु की स्थापित की हुई है।

(४) पूर्ण की संभावना की युक्ति Ontological Argument। हम अपूर्ण हैं और पूर्णता चाहते हैं। यह पूर्णता का विचार बिना पूर्ण सत् के नहीं हो सकता। यदि हमारी भावना भ्रम मात्र भी हो तो उसका मूल सत्य प्रत्यय होना चाहिए, क्यों कि भ्रम मात्र भी सत्य का अपभ्रंश होता है। जिस आदर्श की ओर हम दौड़ते हैं और जिसके अंश मात्र का अपने उत्कर्ष में अनुभव करते हैं वह आदर्श सत् है। वही परमात्मा है।

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते। अ० १२.८.१५

अर्थात् मुक्त जीव परमात्मा नहीं होते। अमुक्त उसकी ओर आते ही नहीं।

(५) अन्तःप्रत्यक्ष की युक्ति (Intuitional Argument)। इस युक्ति का दूसरा नाम है योगी का प्रत्यक्ष।

अन्तरिच्छन्ति तं जने। ऋ० ८. ७२. ३

अर्थः—उसे जन के अन्दर ढूँढते हैं।

वेनस्तत्पश्यत्। अ० २. १. १

अर्थः—योगी उसे देखता है।

आज तत्ववेत्ता हेनरी बर्गसन भी इसी प्रत्यक्ष को परम प्रमाण मानते हैं।

परमात्मा का स्वरूप

१. परमात्मा ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानलिंगी नहीं। अतः सर्वज्ञ है,।

सर्वं तद्राजा वरुणो विचष्टे। अथर्व० ४. १६. ५

२. परमात्मा आनन्दस्वरूप है। पूर्ण को क्लेश कैसा ?

स्वर्यस्य च केवलम्

अर्थः—जिसका सुख बेलाग है।

३. दुःख केवल सुख में है अर्थात् भोग में। परमात्मा

अनश्नन्न्यो अभिचाकशीति॥

न भोगता हुआ साक्षी है।

४. आर्यसमाज का दूसरा नियम—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

५. परमात्मा एक है। पूर्ण अनेक नहीं हो सकते

यस्पतिरेक एव। अ० २. २. १

वह पति एक ही है।

६. उपास्य है :—

नमस्यो विक्ष्वीड्यः। अ० २. २. १

नमस्कार करने तथा प्रजाओं में प्रशंसा करने योग्य है।

३—सृष्टि की उत्पत्ति

विज्ञान हमारे साथ है

परमात्मा की सिद्धि में प्रवृत्ति की युक्ति (Cosmological Argument) का उल्लेख करते हुए हमने अपने पाश्चात्य विचारकों के साथ इस अंश में मतभेद प्रकट किया था कि हम परमात्मा को जगत् का निमित्त कारण मात्र ही मानते हैं, उपादान नहीं। हमारा अभिप्राय इस कथन से यह न था कि सारा पाश्चात्य जगत् इस विषय में हमारे प्रतिकूल सम्मति रखता है। विज्ञान का पक्ष हमारे साथ है। अभाव से भाव की उत्पत्ति कोई वैज्ञानिक स्वीकार नहीं करता। प्रकृति (Matter) अनादि है, आज इस विषय में आपत्ति उठाना अपने आपको विज्ञान का विरोधी '**उत त्वः पश्यन्नददर्श**' इस उपहास का निशाना बनाना है।

आर्य तर्क में तीन अनादि स्वीकार किये गए हैं। परमात्मा के अनादि होने में किसी परमात्मावादी को आपत्ति नहीं।

जीव अनादि

शेष रहे जीव और प्रकृति। विकासवादी जीते शरीर का सरल से सरल रूप (protoplasm) कललरस को ठहराते हैं। समझते हैं कि इन कललरसों की वृद्धि से संकीर्ण शरीरों का विकास होता है। परन्तु उन के सामने यह समस्या अनिवार्य बनी रहती है कि जीवन का प्रादुर्भाव अजीवन से कैसे हुआ ? जड़ पदार्थ में चेतनता कहां से आई ? जीव की अलग सत्ता मानने से ही इस गुत्थी का सुलझाव हो सकता है। ऐसे ही जो आदिम कारण केवल आत्मिक सत्ता को मानते हैं, उनके पास प्रश्न का कोई उत्तर नहीं कि आत्मा अनात्मा कैसे हो जाता है ? जैसे जड़ से चेतनता का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विकास असम्भव है, ऐसे ही चेतन से जड़ का विकास अयुक्ति-युक्ति है । आत्म तत्त्व के अतिरिक्त अनात्म-तत्त्व का अस्तित्व मानना एक अनिवार्य वैज्ञानिक आवश्यकता है।

प्रकृति भी

कोई कोई कहते हैं, परमात्मा ही प्रकृति और आत्मा को बनाता है। काहे से ? अभाव से तो नहीं । तव अपने से बनाता होगा । चेतन (प्रभु) से अचेतन (जगत्) के प्रादुर्भाव की कल्पना इस धारणा को भी अयुक्त बना देती है। रहा जीव, वह पाप की समस्या उपस्थित करता है। परमात्मा मात्र को अनादि मानने से इस शंका का किसी प्रकार समाधान नहीं हो सकता कि पाप की प्रवृत्ति किस से होती है ? जीव अपने कर्मों का स्वतन्त्र कर्त्ता है तो उसकी स्वतन्त्रता किसी दानी का दान नहीं होनी चाहिये । किसी राजनीतिज्ञ से ही पूछ लो—दान में पाई स्वतन्त्रता परतन्त्रता है। स्वतन्त्रता तो स्वभावसिद्ध ही हो सकती है। केवल परमात्मा के अनादि होने की अवस्था में पाप का मूल वीज परमात्मा ही रहेगा, और यह किसी सचेत धर्मवादी को अभीष्ट नहीं हो सकता ।

त्रित्ववाद

अनादि तो तीन ही मानने पड़ते हैं। आत्मा को अनादि मानने से विकासवादियों की यह समस्या झट सुलझ जाती है कि जीवन कहां से आता है ? प्रकृति को अनादि मानने से धर्म का विज्ञान से अज्ञान और अज्ञान से पैदा हुआ विरोध मिट जाता है। अर्थात् यह स्पष्ट हो जाता है कि आत्मा अनात्मा में परिणत नहीं होता। परमात्मा को अनादि मानने से जगत् की स्थिर, अनादि, अनन्त व्यवस्था का रहस्य खुल जाता है।

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक वेद के अनेक मन्त्र उपर्युक्त प्रकरणों में उद्धृत किये गये हैं कि परमात्मा, आत्मा, और भौतिक जगत्, यह तीन भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं, यथा:—

स्कंभेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः । स्कंभं इदं
समात्मर्वन्वद् यत्प्राणन्निमिषञ्च यत् । अ० १०, ८, २

धारण कर्ता (परमात्मा) में यह आकाश (सूक्ष्मतम भूत) से पृथिवी (स्थूलतम भूत) तक भौतिक प्रपंच स्थिर है। उसी परमात्मा में यह सब आत्मवान् जो सांस लेते और आंख झपकाते हैं, स्थिर हैं।

तीन कारण

यह तीनों अनादि, सृष्टि होने में कारण बनते हैं : (१) परमात्मा का नियन्त्रण रहता है, जैसे कुम्हार का घड़ा बनाने में, या जीव का शरीर से नख, केश आदि की उत्पत्ति में । (२) जीवों को अपने कर्मों के फल पाने होते हैं। उस फल-भोग की उपयुक्त सामग्री, चाहे मानसिक हो या भौतिक, प्राकृतिक प्रपंच से उपलब्ध होती है। प्रकृति के इसी धर्म को पुरुषार्थ कहते हैं और (३) प्रकृति इस प्रपंच का उपादान कारण है, जैसे घड़े का मिट्टी, या नखों और बालों का शरीर।

यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधिविश्वे ।
तस्येदमाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोनशद्यः पिररं न वेद । ऋ० ११६४.२२

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थ:—जिस दृश्चनस्वभाव (जगत्) में अच्छी कर्म-शक्ति वाले फल भोगी जीव रहते और बढ़ते हैं। उसका यही (बसेरा लेना और बढ़ना) भोग्य फल है।…

सुदुघा पृश्निः मरुद्भ्यः । ऋ० ५. ६०. ५

अर्थ— प्रकृति प्राणियों के लिये सम्यक् फल देने और सम्यक् जीवन-निर्वाह कराने वाली है।

सृष्टि का प्रकार

अब रहा सृष्टि का प्रकार। सांख्यकार प्रकृति को गुणों का साम्य मानते हैं। साम्य का अर्थ है अप्रतर्क्य अवस्था। वेद में आया है—

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् अ० १०. ८. ४३.

अर्थ—नौ दरवाजों वाला पुण्डरीक (शरीर) तीन गुणों से घिरा हुआ है।

यह तीन गुण क्या हैं? आत्मा स्वभाव से गुणातीत है। उसमें जो तारतम्य आता है, वह प्रकृति के संग से है। प्रकृति के गुणों का विश्लेषण हम आत्मा की अवस्थाओं से कर सकते हैं। आत्मा की उत्तम अवस्था '**स्थितधी**' की है। वह शुद्ध सात्त्विक अवस्था है। मध्यमावस्था चंचलता तथा सचिन्त पुरुषार्थ की है। वह राजसिक है। निकृष्ट अवस्था आलस्य की है। वह तामस है। प्रकृति के प्रपंच में जो पदार्थ सात्त्विक स्वभाव पैदा करते हैं, वह सत्त्व प्रधान हैं। जो राजस प्रवृत्ति लाते हैं, वह रजःप्रधान हैं इत्यादि।

प्रलयावस्था में तीनों गुणों की विद्यमानता होती है और किसी का विशेष आविर्भाव नहीं होता। इसे साम्य कहते हैं। वेद में प्रलयावस्था की प्रकृति के स्वरूप को यों दर्शाया है—

नासदासीन्नोसदासीत्तदानीम् । ऋ० १०. १२९. १

उस समय सत् न था, असत् था।

योगसूत्र २.१९ का भाष्य करते हुए व्यास लिखते हैं—

निस्सत्ता सत्त्वं निःसदसत् निरसत अव्यक्तं अलिंगं प्रधानम् ।

प्रधान को असत् इसलिये नहीं कहते कि उसका अभाव नहीं। सत् इसलिये नहीं कहते कि उसका लिंग (ज्ञापक चिह्न) नहीं। प्रकृति की सत्ता पुरुषार्थ में है। प्रलयावस्था में पुरुष का व्यवहार नहीं होता। अतः उस समय प्रकृति को सत् नहीं कह सकते। उसका अत्यन्ताभाव भी नहीं इसलिये असत् भी नहीं कह सकते। वाचस्पति क्या कह सकते? वही जो वेद ने कहा है—

तम आसीत् तमसो गूढ़मग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमाइदम् ।
तुच्छेनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम् । ऋ० १०-१२९-३

उस समय अव्यक्त अक्रिया से ढका हुआ था। उसको व्यक्त करने वाला कोई चिह्न न था। प्रकृति थी। जो महान् शून्य से ढका हुआ था, वह (परमात्मा के स्वाभाविक) ज्ञान की महिमा से इकला उत्पन्न हुआ।

परमात्मा के ज्ञान को शास्त्रों में '**तप**' कहा गया है।

यस्य ज्ञानमयं तपः । उपनिषद्

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अमर शहीद पं० लेखरामजी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परमात्मा के 'तस्य स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च' से संसार की प्रवृत्ति होती है। इस प्रवृत्ति से शुद्ध सत्त्व (Pure being) जिसे महान् या वेद ने आभु (समन्तात् भवति) कहा है, प्रकट होता है। नासदासीत् में का सत्बीज है। उसी का आविर्भाव सृष्टि की प्रवृति है।

फिर

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।

ऋ० १०. १२९. ४.

अर्थ—(परमात्मा का) ईक्षण हुआ। इससे मनन (ज्ञान) का प्रथम बीज पैदा हुआ।

महत् में व्यक्तित्व (individuality) नहीं होती। इसलिये उसे ज्ञान (प्रकेत) का नाम नहीं दिया। ज्ञान का प्रथम बीज है अहंभाव (अहंकार)। उसका आविर्भाव शुद्ध सत्त्व (Pure being) आभु के पश्चात् है।

यह सृष्टि-क्रम सांख्य दर्शनानुसार लिखा गया है। भाव के पीछे तद्भाव आता है। अहंकार ज्ञाता (मन्ता) का ज्ञातृभाव है। ज्ञाता ज्ञेय को चाहता है। इससे एक ओर इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। दूसरी ओर ज्ञेय की। ज्ञेय केवल ज्ञेयरूप में, जब उसमें और भेद-भाव की सृष्टि नहीं हुई, तन्मात्र (केवल वह) होता है। तन्मात्र अधिक व्यक्त होकर भूतों में परिणत होता है।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासीदुपरिस्विदासीत्।
रेतोधा आसन् महिमान आसन् स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्।

ऋ० १०. १२९. ५

अर्थः—अब इन पदार्थों का क्रम टेढ़ा होता है। कुछ उपर कुछ नीचे।...नीचे अपने में स्थिर रहने वाला भूत-प्रपञ्च और ऊपर प्रयत्न का साधन (इन्द्रियजाल)।

वैशेषिककार भूतों की उत्पत्ति परमाणुओं से मानते हैं। परमाणु सांख्यकार के तन्मात्र ही हैं। महात्मा कणाद् को इन कणों से आगे जाने का प्रयोजन न था। वाचस्पति के मत में तन्मात्र और भूतों के बीच की एक और अवस्था है जिसे परमाणु कहते हैं।

भूतों का क्रम

भूतों का क्रम उपनिषत्कार ने बांधा है—

आकाशाद् वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भयः पृथिवी...।

आकाश ethereal state से वायु, वायु से gaseous state अग्नि, अग्नि से agneous state उससे जल liquid state उस से पृथ्वी solid state.

वेद में यह विषय यों आया है—

यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत् प्रदहन् विश्वदाव्यः।
यत्नातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात् क्वेवासीन् मातरिश्वा तदानीम्॥

अ० १०. ८. ४०

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थ—जिस ब्रह्म में आकाश (सूक्ष्मतम भूत) पृथ्वी (स्थूलतम भूत) सबको प्रकाशित करने वाला अग्नि (मध्य का भूत उसी में एक पत्नी) (आपः) और वायु अग्नि से क्रमशः (स्थूलतर और सूक्ष्मतर भूत) स्थिर थे।

आधुनिक विज्ञान भी प्राकृतिक प्रपंच की सूक्ष्मतम अवस्था (ether) को मानता है। (gaseous) वायवीय आदि अवस्थाएं उससे पीछे घटित हो सकती हैं।

भूत क्या है।

इन पांच भूतों को रासायनिक तत्त्व नहीं समझना चाहिये। यह भौतिकी Physics का विषय है। भू-विज्ञान ही तो भौतिकी है। वर्तमान भौतिकी में ether को heat उष्णता और (light) प्रकाश का आधार माना है आर्य तार्किकों ने पांच ज्ञानेन्द्रियों के विषयों शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, को एक-एक भूत का आधेय बनाया है। उष्णता, प्रकाश, विद्युत् की अपेक्षा यह पुराना वर्गीकरण युक्तियुक्त प्रतीत होता है। परन्तु इसके वैज्ञानिक परीक्षण की अब फिर अपेक्षा है।

आर्य तर्क में उत्पत्ति का अर्थ आविर्भाव है। नासदासीत् में सत् (आभु) था। केवल व्यक्त न हुआ था। आभु में मनसो बीज था। उसमें **तिरश्चीनो रश्मिः** था सूक्ष्म भूतों में स्थूल भूतों की सत्ता थी, आविर्भाव पीछे हुआ।

विकासवाद की समीक्षा

यह प्रकरण अधूरा रहेगा, यदि इसमें आधुनिक (Biological Evolution) जीवन-विकास के सिद्धान्त की संक्षिप्त समीक्षा न कर दी जाए।

जीवन का आरम्भ

विकासवादी (Protoplams) कललरस को जीवन का सरलतम रूप मानते हैं। वह भौतिक तत्त्वों का बना है। उसमें जीवन कैसे आया, यह प्रश्न प्रकृतिवाद से हल नहीं हो सकता। हम ऊपर कह चुके हैं कि आत्मा की प्रकृति से भिन्न स्वतन्त्र सत्ता है। इसके मानने मात्र से यह समस्या झट सुलझ जाती है।

मौलाना रूम

विकासवाद की स्फूर्ति मौलाना रूम को भी हुई थी। उन्होंने लिखा है— "पत्थर से वनस्पति हुआ, वनस्पति से पशु, पशु से मनुष्य, मनुष्य से मैं देवता हो जाऊंगा।"

पत्थर से वनस्पति होना तो दूसरे रूप में तत्त्वों से कललरस बनना है। इस धारणा की कठिनाई का हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं। शेष एक वर्ग में परिवर्तन कैसे हुआ, यह मौलाना ने नहीं बताया। उनका ध्येय थियोसोफिकल सोसाइटी का (Reincarnation) है, अर्थात् एक ही जीव का पुनर्जन्म द्वारा चोला बदलते जाना या विकासवादियों का वंश-परम्परा द्वारा शरीर का विकास है कि किसी पुण्य प्रातः-काल वनस्पति देखते-देखते पशु हो जाए, पशु के गर्भ से मनुष्य पैदा हो इत्यादि ? मौलाना आत्मवादी हैं। इनकी धारणा पूर्वोक्त होगी अर्थात् थियासोफिस्टों की सी।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भूगर्भ विद्या की साक्षि

वनस्पति के बीज से पशु, और पशु के पेट से मनुष्य अभी तक पैदा होता नहीं देखा गया। विकासवादियों के सिद्धान्त का यह भाग (और यही भाग मुख्य है) कोरी कल्पना प्रतीत होती है। विकासवाद का वैज्ञानिक आधार कुछ भूगर्भ विद्या (Geology) तथा पशुगर्भ-विद्या (Embroyology) के आविष्कार हैं। भूगर्भ-विद्या के अन्वेषणों से पता लगता है कि पृथ्वी की निचली तहों में जलीय प्राणियों के पिंजर हैं, पार्थिव प्राणियों का वहां पता तक नहीं। पशु-पक्षी ऊपर की तहों में मिलते हैं। इससे कल्पना यह की जाती है कि पहिले सब प्राणी जलीय अर्थात् मछलियां आदि थे। उन्हीं के प्रजनन से पार्थिव पशुओं की उत्पत्ति हुई। हम ऊपर बता चुके हैं कि संसार की सृष्टि पहले आकाशीय (Ethereal) अवस्था में से गुजरी, फिर वायवीय अवस्था से, फिर आग्नेय, फिर जलीय और सबसे पीछे पार्थिव अवस्था आई। प्रत्येक अवस्था के अनुकूल ही प्राणियों का उद्‌भव हो सकता था। एक वर्ग दूसरे का वंशज नहीं। वह उस के पीछे आया, जब उस के रहने-सहने का सामान हो चुका था।

जलीय अवस्था से पूर्व आग्नेय अवस्था है। उस अवस्था का प्राणी कोई चिह्न छोड़ नहीं सकता। पिंजर छोड़ने वाले प्राणी उसी समय आ सकते हैं जब जलीय से पार्थिव अवस्था का विकास हो रहा हो। प्राप्त पिंजर संभवतः प्रथम पार्थिव सृष्टि हैं।

पशु गर्भ विद्या साक्षि

दूसरी साक्षि पशुगर्भ विद्या (Embroyology) की है। विकास की सीढ़ी में जो प्राणी पूर्वजाति के हैं, उनका गर्भ-जीवन सरल है। ज्यों ज्यों हम अधिक विकसित प्राणियों में आते हैं, उनके गर्भ-जीवन में उनसे निचले वर्ग की गर्भावस्था भी संक्षेप से दोहराई जाती है और उस वर्ग की अपनी अवस्था भी, उस अवस्था के अनन्तर घटित होती है। यथा गर्भस्थ मंडूक पहिले गर्भस्थ मछली के सदृश गर्भस्थ रहता है, फिर अपनी माण्डूकीय गर्भावस्था में आता है। ऐसे ही आगे वर्गों में होता है। गर्भावस्था की यह संकीर्णता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। इससे विकासवादी अनुमान करते हैं कि मंडूक पहिले मछली रहा है, सर्प पहले मेंढ़क रहा है, पक्षी पहिले सर्प रहा है इत्यादि। संकीर्णता की उत्तरोत्तर उन्नति, वंश-परम्परा का फल होती तो प्रत्येक वर्ग के अन्दर भी पिता की गर्भावस्था पुत्र में दोहराई जाने के साथ-साथ पुत्र की गर्भावस्था में कुछ विशेषता आती; परन्तु इस विशेषता का कोई प्रमाण न भूगर्भ में मिलता है, न भूतल पर। प्राणि-जगत् के वर्गों में एक शृंखला है उत्तरोत्तर संकीर्णता है, यह बात इन वर्गों की गर्भावस्था से लेकर मरणावस्था तक के सारे जीवन-व्यवहारों में पाई जाती है। इससे रचयिता की रचना की सुन्दर सुव्यवस्था का प्रमाण तो मिलता है, वर्गों के उत्तरोत्तर वंशज होने का प्रमाण नहीं मिलता। वंशज होने का प्रमाण केवल एक ही हो सकता है। वह यह कि एक वर्ग के किसी प्राणी के पेट से कोई दूसरे वर्ग का प्राणी पैदा हो। ऐसा कोई उदाहरण न इतिहास में मिलता है, न भूगर्भ विद्या की खोजों में, और न आधुनिक अनुभव में ही आया है।*

*नवम्बर १९२२ के New Age में म० जान्स वोसन ने लिखा था—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ये साक्षियाँ हमारे अनुकूल हैं।

विकासवाद की युक्ति-शृंखला में से यदि शेषोक्त अर्थात् वंश-परम्परा संबन्धी कल्पना का भाग, जिसके लिये कोई प्रमाण नहीं, निकाल दिया जाय तो भूगर्भ-विद्या तो ऊपर कथित आर्य तर्क प्रदर्शित सृष्टि-परम्परा की पोषक सिद्ध होती है और पशु गर्भ विद्या परमात्मा की सर्वज्ञतान्वित रचना की।

"इसके आगे मैं निर्भयता से कहना चाहता हूँ कि आधुनिक समय तक प्राप्त विज्ञान इस बात का कोई निश्चय नहीं दिलाता कि पृथ्वी पर कभी उत्तरोत्तर विकास का नियम प्रचलित हुआ हो। प्राकृतिक इतिहास के निरीक्षक, चाहे वह इतिहास भूगर्भ विद्या का हो या वनस्पति शास्त्र का, इस बात को भली-भांति जानते हैं। जब कभी किसी फल व फूल वाले वृक्ष में हम कलम लगाकर उसे नए रूप में लाना चाहते हैं तो उसका परिणाम मूल वृक्ष की अपेक्षा नवजात संतति में अधिक मृदुता लाता है और प्राकृतिक नियम के विरुद्ध अपनी मूल जाति की ओर लौटने का नियम भी पूर्ण-रूपेण काम करता है। चुनाव द्वारा उन्नति का डार्विन का नियम भी इसी परिणाम को उत्पन्न करता है। मैं अपने बाग में घूमता हुआ वहाँ कलम किए पौधों को देखता हूँ। उनमें कृत्रिमावस्था से अपनी स्वाभाविक अवस्था में आने के लिए युद्ध हो रहा होता है। वहाँ प्रायः यही देखने में आता है कि पूर्व की अवस्था जो बलशाली होती है कृत्रिम अवस्था पर विजय पा लेती है। मैं अपने प्रमाण की पुष्टि के लिए मि० हैनरी डमन्डस लिखित "Natural law in the spiritual world" नामी पुस्तक के उस अध्याय को पेश करता हूँ जहाँ वह कबूतरों और गुलाब के पेड़ों के उदाहरण द्वारा इसी बात को पुष्ट करता है।

आगे चल कर आप लिखते हैं—

परन्तु अब वस्तुतः चाहे विकासवादी आधुनिक समय में विकास-नियम के चालू होने को मानते हों या न मानते हों, यह हम जानते हैं कि प्राचीनकालिक, मध्यकालिक व आधुनिक समय में कोई ऐसा नमूना इस बात की पुष्टि के लिए नहीं मिलता कि मानवीय जाति-उपजाति (Human species) में परिवर्तन होता है। यदि मनुष्यों की उत्पत्ति बन्दरों द्वारा शनैःशनैः विकास से मान ली जाय तो आगे उनका क्या हुआ ? यदि बच्चों ने अपने पिता-माता को खा लिया तो उनकी हड्डियों को तो वे नहीं खा सकते थे और इतने असंख्य प्राणियों में से कुछ तो ऐसे बचे रहते जो या तो पाषाण बन कर या ग्लेशियर के सूराखों में सुरक्षित रहते जैसे कि उत्तरीय साइबेरिया में अब तक ऐसे विशालकाय मेंमथ सुरक्षित रहे हैं जिनके पेट में पचा हुआ भोजन तक अभी कुछ-कुछ देखा जा सकता है ..... परन्तु असख्यों, अरबों और करोड़ों प्राणियों में से एक भी ऐसा अभी तक प्राप्त नहीं हुआ जो जाति-उपजाति में वृद्धि (उन्नति) व परिवर्तन को दर्शा सके।

प्राचीन मिस्र देशीय कबरों में प्राप्त शरीर आजकल के ही शरीरों के समान हैं। यदि हम साक-का-रा (Sak-Ka-Ra) के पैरामिड्स की कोठरियों की दीवारों के चित्रों को, एवं ५७०० वर्ष पूर्व के राजाओं की कबरों के चित्रों को देखें तो स्पष्ट मालूम पड़ता है कि मनुष्य, पशुओं आदि में कुछ भी भेद नहीं आया

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यह सृष्टिक्रम एक कल्प का है। प्रत्येक सृष्टि के पीछे प्रलय होती है और प्रलय के पीछे फिर सृष्टि। यह चक्र प्रवाह से अनादि है और अन्तकाल तक चालू रहेगा। अप्रासंगिकता के भय से हम यहाँ इस विषय का विस्तार नहीं करते।

सार

जीव अनादि है

विकासवादी केवल प्रकृति को सृष्टि का कारण मानते हैं। उनके मत में (Protoplasm) कललरस जीवन का सरलतम रूप है। इसी कललरस की वृद्धि और गुणन से संकीर्ण प्राणियों का विकास होता है। कललरस भौतिक पदार्थ है। उसमें चेतनता कैसे आती है ? इस समस्या का समाधान जीव को पृथक् और अनादि मानने से ही होता है।

प्रकृति अनादि है

कुछ लोग केवल परमात्मा को आदि कारण मानते हैं। उनके इस शंका का उत्तर नहीं दिया जा सकता है कि चेतन परमात्मा से अचेतन जगत् कैसे पैदा होता है ? प्रकृति को अनादि मानने से यह शंका मिट जाती है।

जीव

जीव पाप भी करता है। यदि एकमात्र परमात्मा सृष्टि में कारण हो तो पाप का बीज भी वही ठहरेगा। अत: जीव को अनादि स्वतन्त्र कर्त्ता मानना चाहिए। स्वतन्त्रता पैदा की जाय तो वह स्वतन्त्रता न होगी।

परमात्मा

परमात्मा की सिद्धि पूर्व हो चुकी है।

तीन कारण

सृष्टि के तीन कारण होते हैं—(१) परमात्मा नियामक होकर, (२) जीव (मरुद्भ्य: ऋ०) कर्मफल का भोक्ता होकर, यही प्रकृति का पुरुषार्थ है, (३) (सुदुघा पृश्नि: ऋ०) प्रकृति उपादान होकर।

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम्।

सृष्टिक्रम

सृष्टि से पूर्व प्रकृति थी। व्यास मुनि ने योगसूत्र २-१९ का भाष्य करते

अर्थात् वैसे ही हैं जैसे कि आजकल के। ब्रिटिश म्युजियम का अध्यक्ष डाक्टर ऐथ्रिज [Ethridge] कहता है—"इस सारे बड़े अद्भुतालय (Museum) में कोई कण भी ऐसा नहीं है जो यह सिद्ध कर सके कि जातियों (Species) में परिवर्तन हुआ है। विकास विषयक ९० प्रतिशत बातें व्यर्थ, फजूल और नि:सत्व हैं। इनका परीक्षण, निरीक्षण व सत्यता का कुछ आधार नहीं है।"

इंग्लैंड के प्रकृति-विद्या-विशारदों में से बड़ा विद्वान् प्रोफेसर ओवन (Owen) बड़े बलपूर्वक कहता है—"आज तक मनुष्य ने जाति (species) परिवर्तन का एक भी उदाहरण हमारे सामने नहीं रखा है।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हुए प्रकृति को निस्सत्तासत् "निसदसत्" कहा है। प्रकृति असत् इसलिये न थी कि वह परमार्थ में थी। सत् इसलिये न थी कि उनका व्यवहार न था।

महान् तुच्छेनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम्।

अभाव से जो महान् ढका हुआ था, वह एक (परमात्मा के) तप से उत्पन्न हुआ।

तप: का अर्थ "स्वाभाविकी बलक्रिया" है। उससे तो सदासीत् से आभु (Pure being) सत् (महान्) उत्पन्न हुआ।

मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।

अहंकार तन्मात्र, इन्द्रिय और भूत

इससे ज्ञान का प्रथम बीज अहंकार—मैं हूँ, यह ज्ञान, और तन्मात्र केवल वह, यह ज्ञान, पैदा हुआ। यह शुद्ध सत्त्व का अधिक व्यक्त रूप है। इसके आगे सृष्टि का क्रम 'तिरश्चीनोरश्मिः' दो मुखा होता है।

स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्। ऋ०

अपने में आश्रित रहने वाले भूत एक ओर, यत्न के साधन मन और इन्द्रिय दूसरी ओर।

आर्य तर्क प्रकृति का विकास पुरुषार्थ (जीवी की आवश्यकता) के अनुसार मानता है।

परमाणु

वैशेषिक कथित परमाणु तन्मात्र का ही है। कणभुक् को इन कणों से आगे प्रयोजन न था।

भूतों का विकास

भूतों का विकास यों हुआ—

यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत् प्रदहन् विश्वदाव्यः।
यात्रातिष्ठान्नेकपत्नीः परस्तात् क्वेवासीन्मातरिश्वा तदानीम्।

१. आकाश	२. वायु	३. अग्नि	४. जल	५. पृथिवी
Etherial state	Gaseous	Agneous state	Liquid state	Solid state

यह क्रम युक्ति-युक्त है।

विकासवाद की समीक्षा

विकासवाद एक जाति के गर्भ से दूसरी जाति की उत्पत्ति मानता है, यथा मछली से मेंढ़क, मेंढ़क से सांप, सांप से पक्षी, पक्षी से स्तनधारी। इसमें विकासवाद की युक्तियां ये हैं—

१. भूगर्भ विद्या की साक्षि पृथिवी की निचली तहों में जलचरों के पिंजर मिलते हैं। ज्यों-ज्यों हम ऊपरली तहों पर आते हैं, अधिक विकसित प्राणियों के पिंजर मिलते हैं।

इसका उत्तर—भूतों के विकास का जो क्रम ऊपर दिया है, उसमें सूक्ष्म भूतों में रहने वाले प्राणी ही पहिले पैदा हो सकते हैं। जब तक प्रकृति आग्नेय अवस्था में

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

थी, पिंजर न बन सकते थे। पिंजर उस समय बने जब जलीय से पार्थिव सृष्टि होने लगी। यही कारण है कि निचली तहों में जलीय प्राणियों के पिंजर मिलते हैं।

२. पशुगर्भ विद्या की साक्षि—संकीर्ण पशु सरल पशुओं की गर्भावस्था में से गुजरते हैं। प्रतीत होता है कि मेंढक पहिले मछली रहा है, इत्यादि :

उत्तर—इससे रचना में क्रम (सूत्र) का द्योतन होता है, विकास का नहीं।

विकास की सच्ची साक्षि एक जाति के किसी प्राणी के पेट से दूसरी जाति के प्राणी की उत्पत्ति ही हो सकती है और इसका कोई प्रमाण नहीं।

अतः वैदिक विचारधारा के अनुसार जीव, प्रकृति और ब्रह्म का अनादि होना ही सत्य और विज्ञान सम्मत है।

४—ज्ञान का प्रारम्भ

विज्ञान की उन्नति

आधुनिक युग विज्ञान की उन्नति का युग है। मनुष्य ने विज्ञान-बल से ब्रह्माण्ड भर की शक्तियों को अपने आधीन करने की ठान ली है। भाषा का परिमार्जन हो रहा है। विचार व्यक्त करने की उत्तम से उत्तम शैलियों का आविष्कार किया जा रहा है। प्रत्येक देश अपने शब्द पंज को बढ़ाता तथा परिष्कृत करता जाता है। 'आत्मा' के सम्बन्ध में भी नए-नए परीक्षण हो रहे हैं।

पशु सदृश मनुष्य

एक ओर यह चमत्कार-पूर्ण दृश्य है, दूसरी ओर अफ्रीका के मानवभोजी मनुष्य हैं। अपने ही देश के भील हैं, गोंड हैं। इन्हें सभ्यता छू तक नहीं गई। विचार होता है कि क्या कभी उन्नत देशों की भी यही अवस्था थी? भूगर्भ विद्या की खोज ने अनेक देशों की भूमि का पेट चीर-चीरकर पुराने मनुष्यों के पिंजर निकाले हैं। उन पिंजरों के साथ बहुत कुछ ऐसी सामग्री मिलती है जो कोरी असभ्यता की परिचायक है। पत्थर के और फिर धातु के टेढ़े-मेढ़े अस्त्र वर्तमान हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि आज जहां विज्ञान का अखंड, उत्कर्षोन्मुख राज्य है, वहां कभी पशु-सदृश मनुष्य पाशविक जंगली जीवन व्यतीत करते रहे होंगे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विकासवाद

विकासवादियों का कहना है कि आरम्भिक मनुष्य बोलना न जानते थे, उन्हें किसी पदार्थ के गुणों का पता न था। आत्मा का तो प्रश्न ही पीछे उठा। ज्ञान का प्रादुर्भाव आकस्मिक हुआ और उसमें उत्तरोत्तर उन्नति की गई। इसी उत्तरोत्तर उन्नति का परिणाम आजकल का वैज्ञानिक उत्कर्ष है।

धर्मवाद

इनके विरुद्ध धर्मवादी हैं। उनका सिद्धांत यह है कि सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा ने मनुष्य को ज्ञान दिया, भाषा दी, आत्मा का पूरा पता दिया। वही ज्ञान कई अंशों में बढ़ा और कई अंशों में घटा है। हमें लेख में यह विचार करना है इनमें से कौन-सा पक्ष ठीक है ?

भाषा की समीक्षा

हम सबसे पूर्व भाषा को लेंगे, इसलिये कि भाषा मानव सभ्यता का प्रधान अंग है। क्या ज्ञान और क्या तर्क इसी के सहारे उन्नति को प्राप्त होते हैं। किसी जाति की भाषा के उन्नत व अवनत होने से उस जाति की प्रत्येक अंग की उन्नति वा अवनति का परिचय मिलता है। विकासवादियों का कहना है कि भाषा का प्रादुर्भाव धीरे-धीरे होता है। बच्चा पैदा होते ही बोलना नहीं जानता। ज्यों-ज्यों बड़ा होता है, उसे बोलना आता जाता है। किसी समय सारी मानव जाति बालक थी, इसे बोलना न आता था। धीरे-धीरे इसने बोलना सीखा। कैसे ? इसमें विविध मत हैं।

बाऊवाऊ वाद

परन्तु, सब मत कुछ मिलते-जुलते से हैं। एक का नाम है Bow Vow Theory बाऊवाऊ की कल्पना। इसका अभिप्राय यह है कि पशु-जगत् की स्वाभाविक ध्वनियों को सुनकर मनुष्य ने उसके अनुकरण में अपनी भाषा का निर्माण किया। अन्य मतों में पशुओं के स्थान में अन्य पदार्थों को रखकर वही सिद्धांत स्थापित किया है कि भाषा का निर्माण प्राकृतिक ध्वनियों के अनुकरण से हुआ है।

एकान्त में रखे गए बालक

धर्मवादियों को पहिले तो उपरिकथित बच्चे के दृष्टान्त पर ही आक्षेप है। बच्चा बोलना नहीं जानता। परन्तु क्या वह किसी नई भाषा का निर्माण स्वयं करता है ? उसे बनी बनाई भाषा सिखाई जाती है। अकबर आदि कई राजाओं ने नवजात बालकों को भाषा-भाषी जनता से पृथक् किसी निर्जन स्थान में रक्खा। उन्होंने किसी भाषा का विकास नहीं किया। कहा जा सकता है कि कुछेक वर्ष इस विकास-क्रिया के परीक्षण के लिये अपर्याप्त थे। वस्तुतः बच्चों का दृष्टान्त दोनों पक्षों के लिये कोई विशेष महत्वपूर्ण साक्षी नहीं है। आपत्ति उन कल्पनाओं पर है जो विकासवादियों की ओर से विकास का स्वरूप बताने के लिए प्रस्तुत की जाती है। क्या कोई जाति इस समय बाऊवाऊ आदि शब्दों से कोई नया भाव बना रही है ? या कम से कम किसी भाषा के अधिक शब्द ऐसे हैं जिनका मूलाकार भाषा-विज्ञान की दृष्टि से बाऊवाऊ आदि शब्द, जिनको Anomatopoetic ध्वन्यनुकारी कहते हैं, हों ? स्वयं भाषा-विज्ञान-विशारदों की सम्मति में किसी भाषा में ध्वन्यनुकारी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शब्दों की बहुतायत नहीं । भाषा-विकास की कोई कल्पना भाषा के आरम्भ की समस्या को सुलझा नहीं सकी । श्रीयुत् मोक्षमूलर ने अपने (Science of Language) नामक ग्रन्थ में स्पष्ट रूपेण स्वीकार किया है कि भाषा तो परमात्मा की प्रदान की हुई प्रतीत होती है । यह प्रदान सृष्टि के प्रारम्भ में ही हो सकता था । अथर्ववेद में आया है—

अपूर्वेणोषिता वाचस्ता वदन्ति यथा यथम् । अ० १०.८.३३

अनादि परमात्मा भाषा की स्फूर्ति देता है । उसे वैसे का वैसा बोलते हैं ।

अर्थात् भाषा अपने पूर्णरूप में सृष्टि के आरम्भ में प्रादुर्भूत होती है ।

ऋग्वेद में कहा है :—

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैत नामधेयं दधानाः । ऋ० १०.७१.१

हे वाणी के पति परमात्मन् ! वाणी का प्रथम बीज मनुष्यों ने पदार्थों के नाम रखते हुए (आप से) प्राप्त किया ।

कुरान में कहा है कि—

परमात्मा ने आदम को नाम सिखाए । (सूराबकर)

विज्ञान-विकास समीक्षा

जो अवस्था भाषा की है, वही विज्ञान की भी है । यदि ज्ञान के उत्तरोत्तर विकास का सिद्धान्त सत्य होता तो प्रत्येक जाति का वर्तमान काल उसके भूतकाल से उत्कृष्ट होता । परन्तु अवस्था इसके विरुद्ध भी है । प्रत्येक जाति को किसी स्वर्णमय भूत का सपना आता है । सम्भव है वह सपना असत्य हो परन्तु निम्नलिखित साक्षियां सपनां नहीं हैं । यह तो प्रत्यक्ष दृश्यमात्र भौतिक भवनों की अनुपेक्ष्य बोलियाँ हैं—

(१) जोन्स बौसन (Jones Bowson) ने नवम्बर २२ के New Age में एक लेख लिखते हुए निम्न विचार प्रकट किये हैं—

"यदि मनुष्य जाति का इतिहास उत्तरोत्तर विकास का इतिहास है, तो क्योंकर चीनी लोग ईस्वी संवत् से पूर्व गन पौडर और सामुद्रीय ध्रुवदर्शक सुई (Mariner's compass) से अभिज्ञ थे और क्यों वे अब उसे भूल गये हैं ? एवं क्योंकर अब भारत में मुगल राज्यों के कारनामों के दर्शनीय दृश्य केवल उनके भवनों और कबरों में ही देखे जा रहे हैं ? हिन्दू जाति क्यों ४०० वर्ष से पीछे चली गई है ? क्योंकर १२वीं से १४वीं शताब्दी तक के कम्बोदिवा, अंगकोर और जावा में बरोवेदरों के खंडहरों को अब आश्चर्य की दृष्टि से देखा जाता है ? क्योंकर पीकिङ्ग में राजकुमारियों के ग्रीष्मऋतु के घरों की छतों पर लगी हुई खपरैलों के बनाने की विधि और ग्रनेडा (Granada) में अलहम्ब्रा (Alhambra) की दीवारों पर रंग के काम करने की विधि का प्राचीन मूर लोगों के साथ ही लोप हो गया । क्योंकर अब मिस्र के रहने वाले लोग ज्योतिष और गणितशास्त्र से अपरिचित हैं जबकि वृत्त के वर्गीकरण सिद्धान्त को जानते हुए उन्होंने चीप्स (Cheeps) के बड़े बड़े पैरामिड्स को ऐसी स्थिति में खड़ा किया था जहां कि वे Vernal Equinox के दिन मध्याह्न समय अपनी छाया को अपने में लुप्त कर दे । Hydraulic machinery के बिना ही किन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

साधनों से करनाक और पालमायरा (Karnak & Palmayra) के राज-मंदिरों पर इतने भारी-भारी पत्थरों को लाकर रख दिया गया था ? चित्र विद्या सम्बन्धी विज्ञान-जिसके कारण ही ऐज्टक्स (Aztecs) पर चित्र विचित्र सुनहरी और पंखों का काम हुआ था अब क्यों विलुप्त हो गया ? निस्सन्देह, जो व्यक्ति धर्मभाव से सत्य की खोज करता है, उसकी यही सम्मति होगी कि अनेक दिशाओं में विनाश के साथ-साथ कुछेक दिशाओं में ही मानवीय उन्नति हो रही है।''

(२) अगस्त १९२३ के थियासोफिकल-पाथ में केट हैन्सन ने लिखा था—

नैवदा (Nevada) में जान-टी-रीड (John T. Reid) को एक आदमी का पद-चिह्न और एक अच्छी प्रकार बना जूते का तला मिला है जिसे वह चट्टान-विषयक अपने भूगर्भ विद्या सम्बन्धी ज्ञान से ५० लाख वर्ष पूर्व बतलाता है। रौकफेलर संस्था के सूक्ष्म-चित्रमुद्रकों (Microphotographers) को ऐसे सीवन धागों के मरोड़, सीने के छेद, और धागों के माप मिले हैं, जो आजकल के जूतों के प्रयुक्त धागों से अधिक पक्के और सूक्ष्म हैं। इस जूते के तलों के साथ डाइनोसर्ज (Dinosaurs) के पैरों का निशान और उनकी हड्डियां भी मिली हैं। प्रोफेसर रीड (Prof. Reid) और उनके सहकारियों को उनके लगातार वैज्ञानिक विश्लेषण, खोज और परिश्रम तथा उदारता के लिये धन्यवाद हैं। उन्होंने इस बात को स्वीकार कर लिया है कि "वे जूते इतनी ऊंची बुद्धि के प्रमाण हैं जितनी कि आजकल लिन (Lynn) ब्रौकटन्स (Brocktons) मैसेचसटस (Massachusetts) में जूते बनाने में दर्शायी जाती है।''

(३) थियासोफिकलपाथ मार्च १९२४ में C. J. Ryan ने लिखा था—

"माइक्रोनेशिया पश्चिमीय शान्त समुद्र में पोनेप (Ponape) एक द्वीप है जहां कि बेसाल्ट की बड़ी दीवारें कई वर्ग मीलों तक बनी हुई मिली हैं। उनकी बनावट ठोस विशालकाय पत्थर की है और वे इतनी दृढ़ हैं कि हजारों वर्षों के तूफान भी उनका कुछ बिगाड़ नहीं सके।''

वैज्ञानिक विकास न तो इन पुरानी जातियों में हुआ है न आजकल की भील गोंड आदि जातियों में स्वतः होता दीखता है। मानव जाति, मानव बालक की तरह बाह्य शिक्षा की अपेक्षा रखती है, स्वतः विकास नहीं करती। विज्ञान का आरम्भ दैवी प्रेरणा से होता है।

डार्विन महाशय विकासवाद के प्रवर्तक समझे जाते हैं। श्रीयुत वैलेस इस आविष्कार में उनके सहकारी थे। वह अपनी पुस्तक Social Environment and Moral Progress में शेप विकास को तो मानते हैं परंतु मनुष्य पर आकर वह भी ठहर जाते हैं। उनका मत यह है कि मनुष्य में आत्म-शक्ति का प्रादुर्भाव परमात्मा की विशेष कृपा का फल है। ईसाई संस्कारों के कारण यह महाशय पशु-पक्षियों में आत्म-सत्ता नहीं मानते। प्रतीत होता है कि मनुष्य की आत्म-शक्ति से इनका अभिप्राय मानवीय विज्ञान विभूति से होगा। इसमें मानव जाति ने विशेष उत्कर्ष दिखाया है। हमें यहां वैलेस महाशय की ईसाइयत की पड़ताल करना अभीष्ट नहीं। हमें तो केवल उनके इतने लेख से काम है कि विज्ञान की आरम्भिक प्रेरणा परमात्मा से आती है। उन्होंने लिखा है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"हमको स्वीकार करना चाहिये कि वे मस्तिष्क जिन्होंने ऐसे विचारों का जो इन वेद की ऋचाओं से प्रकट होते हैं, विचारा और उन्हें उपपन्न भाषा में प्रकट किया, किसी अवस्था में भी हमारे उत्तम से उत्तम धार्मिक शिक्षकों, कवियों, हमारे मिलटनों और हमारे टैनीसनों से न्यून नहीं थे।"

वेद का मत

वेद का सिद्धान्त इस विषय में भी वही है जो भाषा के विषय में है। ज्ञान का बीज सृष्टि के आदि में मनुष्यों को दिया जाता है। ऐसे ऋषि जो पूर्व कल्प के कर्मों से अपने आपको इतना पवित्र बना चुके हैं कि उनका अन्तश्चक्षु खुल गया है जो अपनी उज्ज्वल प्रतिभा से पदार्थों के तात्विक रूप का अनुभव करते हैं, वह परमात्मा की करुणा से इस पवित्र अमृत को अपने विमल हृदयों द्वारा पाते हैं। उन्हीं की वाणी वेदवाणी होती है।

इयं पित्र्या राष्ट्र्येत्वग्ने प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठः।

यह पिता परमात्मा का उज्ज्वल ज्ञान प्रथम जन्म लेने वाले को प्राप्त होता है। वह ज्ञान ब्रह्माण्ड में स्थिर है।

प्रयो जज्ञे विद्वानस्य बन्धुर्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति।
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यान्नीचैरुच्चैः स्वधा अभिप्रतस्थौ॥

अ० ४, १, २

जो प्राणीमात्र का बन्धु-विद्वान् सब दिव्य पदार्थों का तत्व बताना चाहता है, वह परमात्मा से वेद का ज्ञान प्राप्त करता है। उसे नीचे, ऊपर और बीच में, अपने सहारे से खड़ा उस ज्ञान का अनुभव होता है।

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्

अ० १०, १, ३

वाणी की खोज यज्ञ से की गई। उसे ऋषियों में प्रविष्ट पाया गया।

चार ऋषि

यहां 'ऋषिषु' शब्द ध्यान देने योग्य है। वेद का प्रथम ऋषि एक नहीं, अनेक हैं, दो से अधिक हैं। कितने हैं? इसका उत्तर इसी सूक्त के अन्त में दिया गया है—

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उत्वः॥

ऋ० १०, ७१, ११

एक (अग्नि) ऋग्वेद का ज्ञान पाता है। दूसरा (आदित्य) मन्त्रों से साम-गान करता है। तीसरा ब्रह्मा विज्ञान (अथर्ववेद) को कहता है। चौथा (वायु) कर्म की विधि (यजुर्वेद) को पाता है—

इस विभाग का कारण मनुष्यों का बुद्धि-भेद है। मानस क्षेत्र में चार प्रकार का उत्कर्ष पाया जाता है—

१. कर्म प्रधान। २. भक्ति प्रधान। ३. ज्ञान प्रधान। ४. विज्ञान प्रधान।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ज्ञान विज्ञान का भेद भगवान् कृष्ण गीता में कहते हैं। संपूर्ण मानसिकता किसी व्यक्ति में नहीं होती, प्रत्येक में एक अंश की प्रधानता और अन्य अंशों की गौणता रहती है। इस नैसर्गिक आवश्यकता की पूर्ति वेद के इस विभाग से होती है।

भूगर्भ की खोजों का उत्तर

अब हमें यह विचार करना है कि भूगर्भ-विद्या की उन खोजों का क्या समाधान है जिनके द्वारा पुराने मानव निवासों से जांगलिक जीवन की सामग्री के अतिरिक्त कुछ उपलब्ध ही नहीं होता ? इस विषय में धर्मवादी और विकासवादी सहमत हैं। मनुष्य जहां अपनी वैज्ञानिक विभूति बढ़ा सकता है, वहां उसे घटा भी सकता है। धर्मवादी विकास को भी मानते हैं, ह्रास को भी। जैसे व्यक्तियां उन्नत और अवनत हो सकती हैं, ऐसे ही जातियां भी। आरम्भिक ज्ञान प्रभु देते हैं, फिर उनके बढ़ाने-घटाने में मानव व्यक्तियां तथा जातियां स्वतन्त्र हैं।

आत्म-ज्ञान में विकास नहीं हुआ

भाषा तथा विज्ञान का विचार कर चुकने के पीछे आत्मज्ञान का प्रश्न रह जाता है। उस पर भगवती श्रुति का कहना यह है कि—

नूनं तदस्य देवस्य काव्यो हिनोति महोदेवस्य पूर्व्यस्य धाम।

अ० ४, १. ६

उस प्रभु का काव्य (वेद) भगवान् के महान् स्वरूप का वर्णन करता है।

वेद धर्म-पुस्तकों में सब से पुराना है। यदि आत्मज्ञान सम्बन्धी कोई नया आविष्कार इससे पीछे आए धर्म-पुस्तकों ने किया हो अथवा उसी ज्ञान को ही अधिक उन्नत अवस्था तक पहुंचाया हो तो आत्मज्ञान के क्षेत्र में विकास का अस्तित्व माना जा सके। परन्तु ऐसी उन्नति का कोई प्रमाण उपस्थित नहीं किया गया। अतः मानना पड़ेगा कि आत्मज्ञान परमात्मा की ओर से आया और पूर्ण आया।

आहा! वह कैसा पुण्य दिवस होगा जब ऋषियों ने वेद की आज्ञा का प्रचार कर मनुष्य जाति को पहिले-पहल पशु से मनुष्य बनाया होगा। वेद कहता है—

अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्ठाथा द्युमन्तो विवसन्तु विप्राः।

अ० ४, १,-५

वह उज्जवल ज्योति का दिन उदय होता है जब आज्ञा मिलती है कि अब ज्ञानी लोग ज्ञानपूर्वक विविध रीतियों से जीवन-निर्वाह करें। वही दिन मानव सृष्टि का प्रथम दिन होता है।

सार

विकासवाद

विकासवाद का सिद्धान्त है कि प्रारम्भिक मनुष्य जंगली थे जैसे कि आजकल अफ्रिका के हब्शी तथा हमारे यहां के भील गोंड हैं। उन्होंने भाषा, विज्ञान तथा आत्म-विज्ञान में उत्तरोत्तर उन्नति की है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

धर्मवाद

इसके विपरीत धर्म का सिद्धांत यह है कि प्रथम ज्ञान परमात्मा ने दिया। उसे मनुष्यों ने कई अंशों में घटाया है।

भाषा की उत्पत्ति

प्रथम भाषा ही को लीजिये । विकासवाद कहता है कि पशुओं तथा अन्य पदार्थ और क्रियाओं की प्राकृतिक ध्वनियों को सुनकर मनुष्यों ने धीरे-धीरे अपनी भाषा का निर्माण किया । परन्तु न तो कोई भाषा इस प्रकार से बनती देखी गई है न किसी भाषा का शब्दकोश ऐसे ध्वन्यनुकारी शब्दों से भरा हुआ है। भाषा के प्रारम्भ की समस्या विकासवादियों से नहीं सुलझी । मैक्समूलर ने भी अन्त में भाषा को ईश्वर प्रदत्त माना है। वेद में स्पष्ट कहा है—

अपूर्वेणोषिता वाचः । अ०

अनादि परमात्मा ने शब्दों की प्रेरणा की है।

ज्ञान का विकास भी हुआ, ह्रास भी

यही अवस्था विज्ञान की है । यदि विज्ञान के क्षेत्र में उत्तरोत्तर विकास ही हुआ होता तो सब जातियों की आधुनिक अवस्था प्राचीन अवस्था से उच्च होती परन्तु ऐसा है नहीं । भारतीय और चीनी जातियां इस वाद का प्रत्यक्ष खण्डन हैं। मिस्र के मीनार, जावा के भवन इत्यादि उन देशों के प्राचीन उत्कर्ष का प्रमाण हैं । भूगर्भ विद्या ने पिछले दिनों एक जूते की खोज की थी, जिसकी सिलाई आजकल की कलाओं के सदृश है । वह जूता लाखों वर्ष पुराना कहा जाता है। जावा के भवनों के पत्थर इतने बड़े हैं कि आजकल की कलाएं कठिनाई से उठाकर उन्हें इतना ऊंचा ले जा सकती हैं। मिस्र के मीनार उच्च ज्योतिष तथा गणित विद्या का परिचय देते हैं। जहां एक ओर यह प्राचीन उत्कर्ष का प्रमाण मिलता है, वहां कई देशों में जंगली मनुष्यों के जंगली उपकरण भी उनके पिंजरों के साथ पड़े मिलते हैं । इस समय भी पशु सदृश्य मनुष्य जातियां हैं । धर्मवाद का समाधान इन जंगलियों के विषय में यह है कि प्रारम्भिक ज्ञान इन्हें भी मिला था परन्तु इन्होंने इसका ह्रास कर दिया। धर्मवाद विज्ञान की प्रथम प्रेरणा प्रभु से मानकर उसके विकास तथा ह्रास की शक्ति मनुष्यों में मानता है। वेद में कहा है—

ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार । अ० ४, १, ३

वेद परमात्मा से प्राप्त किया गया ।

चार ऋषि

यही वेद वाणी ऋ० १०, ७१, ३ में 'ऋषिषु प्रविष्टा' कही गई है। ऋषिषु का अर्थ 'बहुत ऋषियों' में है । अर्थात् वह ऋषि दो से अधिक थे । कितने थे ? यह भी उसी सूक्त में कहा है—

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु ।
ब्रह्मा त्वो वदन्ति जातविद्यां यज्ञस्यमात्रां विमवीत उ त्वः ॥

ऋ० १, ७१, १

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यह विभाग वैज्ञानिक है क्योंकि मानव शक्ति ४ प्रकार की होती है—

१. ज्ञान प्रधान, २. कर्म प्रधान, ३. भक्ति प्रधान, ४. विज्ञान प्रधान। यही विशेषता क्रमशः ऋक्, यजुः, साम और अथर्व वेदों के मंत्रों की है।

आत्म-ज्ञान

आत्मज्ञान की पूर्ण प्रेरणा आरम्भ में हुई। वेद कहता है—

नूनं तदस्य देवस्य काव्यो हिनोति महो देवस्य पूर्व्वस्य धाम।

उस प्रभु का काव्य (वेद) उस अनादि देव के महान् तेज का वर्णन करता है।

वेद में आए आत्मा तथा परमात्मा के वर्णन से बढ़ना तो कहां ? वैसा वर्णन भी मनुष्यकृत ग्रन्थों में नहीं पाया जाता। अतः इस विषय में विकास का होना कैसे माना जाए ?

५—मुक्ति और उसके साधन

जीवन बन्धन है

धर्म का ध्येय मुक्ति है अर्थात् छुटकारा। साधारण मनुष्य के लिए संसार बन्धन है। यह जीते हैं, इसलिये कि उन्हें जीना पड़ता है। वह परिश्रम करते हैं, इसलिये कि उन्हें परिश्रम करना पड़ता है। यदि भोजन का झंझट न हो तो वह हाथ पांव ही न हिलाएं। उनकी दृष्टि में हाथ पांव न हिलाना मुक्ति है! वास्तव में देखा जाये तो आलस्य और मुक्ति एक दूसरे के सर्वथा विरोधी भाव हैं। मुक्त मनुष्य कर्म करता है, हां! कर्म की ग्लानि से सदा छूटा रहता है।

मृत्यु का भय

ऐसे भी लोग संसार में विद्यमान हैं जो जीवन को मानो त्योहार समझते हैं। उनके लिए जीवन भार नहीं! हंसते खेलते समय-यापन करते जाते हैं, परन्तु मृत्यु उनके लिए भी भयंकर होती है। कोई आपत्ति आ जाये तो अधीर होकर बैठ जाते हैं। अवश्यंभावी को भोग लेते हैं सही, परन्तु बाधा-वश होकर। मुक्ति इन बाधाओं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

से ऊपर होने की आस्था है। जीवन्मुक्त जीता है और सर्वथा आनन्दपूर्वक जीता है। मरे पीछे उसे कल्प पर्यन्त जीवन लाभ करना है। उसे मृत्यु का भय नहीं होता। वह तो जीवन-मरण का समभाव से स्वागत करता है। इसी अवस्था को वेद में अमृत कहा है।

मुक्त स्वभाव

'मुक्त स्वभाव' परमात्मा है। उनका ज्ञान-बल-क्रिया स्वाभाविक है। उन्हें उसमें ग्लानि नहीं होती। प्रभु का परिश्रम वास्तव में 'अनथक' है। प्राणिमात्र के कल्याण के लिये वेद का उपदेश कर दिया है। कोई लाभ उठा ले तो उसकी इच्छा, न उठाए तो भी उसकी इच्छा। इसका हानि लाभ उसी को होगा। संसार के जीवन प्रभु का आनन्द पर कोई प्रभाव नहीं।

मनुष्य की मुक्ति

प्रभु निर्विकार हैं, एक रस, आनन्द स्वरूप हैं। इसके विपरीत मनुष्य की मुक्ति परिश्रम साध्य है, स्वभाव-सिद्ध नहीं। यह जितना परमात्मा के निकट जाता है उतना अधिक आनन्द का अनुभव करता है। मुक्ति की दशा में आत्मा-परमात्मा का अत्यन्त सामीप्य होता है। वेद ने इस भाव को बड़ी सुन्दरता से दर्शाया है—

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश॥

ऋ० १, १६४, २१

अर्थ—जिसमें सुकर्मचारी लोग ज्ञान से अमृत के प्रसाद को निरन्तर प्राप्त करने की घोषणा करते हैं, वह समस्त संसार का स्वामी और रक्षक अपने ज्ञान में रमने वाला मुझ परिपक्व (यम नियम से पके हुए) आत्मा में प्रविष्ट है अर्थात् मुझे उसका साक्षात्कार होता है। इस मुक्ति-सुख का भोग इन्द्रियों द्वारा नहीं होता। आत्मा अपनी शक्तियों से परमात्मा के सहारे उस परम आनन्द का भोग करता है। आगे फिर कहा है—

तन्नो नशद्यः पितर न वेद। ऋ० १६४, २२

वह उस (प्रसाद) को प्राप्त न करेगा जो (जगत्-पिता) को नहीं जानता। यजुर्वेद में भी कहा है—

तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

उसको जानकर मृत्यु से परे होता है। मुक्ति का और कोई रास्ता नहीं। मुक्ति का साधन परमात्मा-ज्ञान है। यह ज्ञान मन आदि इन्द्रियों द्वारा प्राप्त नहीं होता। परमात्मा का साक्षात्कार गुहा (अन्तर्हृदय) में आत्मा की एकाग्रता द्वारा किया जाता है। अन्य द्वारों पर दूत भेजे जा सकते हैं, यहां आप अपना सन्देशहर होता है। संस्कृत में विद् धातु का अर्थ ज्ञान और प्राप्ति दोनों है। परमात्मा की सिद्धि के प्रकरण में हमने 'अंतः प्रत्यक्ष' का उल्लेख किया था। वास्तविक ज्ञान वही है जिसकी उपलब्धि इन्द्रियों के आवरण हटाकर की जाती है और परमात्मा के संबन्ध में तो इसके अतिरिक्त और कोई प्रमाण विश्वासप्रद होता ही नहीं। उपरिलिखित मन्त्र (ऋ० १, १६४, २१) में ही साधक परमात्मा-दर्शन की अपनी साक्षि देने से पूर्व अपने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आपको 'पाकः' अर्थात् परिपक्व कहता है। उसे कुठाली में ढाला जा चुका है। वह अभ्यास द्वारा अब शुद्ध सुवर्ण बन चुका है जिसका वर्ण 'आदित्य-वर्णः 'परमात्मा कर सकते हैं। वह कुठाली कौन-सी है ? सद्विचार सत्योच्चार और सदाचार की। वेद कहता है—

ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया सुतः। ऋ० १, ६, १ १३,२

महामुनि पतंजलि ने इस साध्य की सिद्धि के लिए अष्टांग योग का उपदेश किया है। यम नियम से लेकर समाधि पर्यन्त सभी चित्त-निरोध के साधन हैं। यमों में समाज सम्बन्धी संयम का समावेश है, नियमों में वैयक्तिक यन्त्रणा का। फिर आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि, चित्त को एकाग्र करने की सुव्यवस्थित प्रणाली की सीसीढ़ियां हैं। आसन और प्राणायाम आत्मैकाग्रता के शारीरिक साधन हैं तो धारणा और ध्यान मानसिक उपाय हैं। समाधि मन सहित कारणों के पीछे रह जाने की अवस्था है। वहां प्रभु और भक्त के बीच में और कोई नहीं होता। तभी तो अथर्व वरुण से कहता है—

वेदाहं तद्यन्नावेषा समा जा। अ० ५. ११. ११.

मैं जानता हूं जो मेरी-तेरी समान ख्याति है। इसी ऐक्य भाव के रहस्य को अधूरा समझकर कुछेक विचारकों ने मुक्त जीव की परमात्मा से स्वरूपतः एकता मान ली है। यह उनकी भूल है। स्वयं वेदान्तदर्शन का अन्तिम सूत्र है—

भोगमात्र साम्यलिंगाच्च। **वेदान्त।** ४.४, २१

एकता भोग मात्र की है। अर्थात् प्रभु के आनन्द मात्र को जीव प्राप्त करता है। उसके सर्वशक्तिमत्त्व, स्रष्टृत्व आदि गुणों की नहीं। ऊपर आए वर्णन के पश्चात् इस प्रश्न पर अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं रहती कि क्या मुक्ति ज्ञान जन्य है या कर्म-जन्य ? आचार की शुद्धि कर्म-जन्य है। वेद ने विद् धातु का प्रयोग किया है। जो प्राप्ति तथा ज्ञान दोनों का बोधक है। ऋ० १. १६४. २१ में जहां अमृत की प्राप्ति 'विदथा' कही है वहां प्राप्त करने वाले को 'सुपर्ण' अर्थात् शोभन-कर्म युक्त कहा है। फिर विदथा का अर्थ है 'ज्ञान से' तथा 'यज्ञ से'। वेद मार्ग में न ज्ञान हेय है न यज्ञ। दोनों 'विदथ' होकर मुक्ति के साधन हैं। उन दो मार्गों का विश्लेषण आधुनिक तार्किकों का किया हुआ है। योगीश्वर कृष्ण तथा योगिराज दयानन्द मुक्ति के लिये कर्म ज्ञान का समन्वय मानते हैं। गीता में स्पष्ट कहा है—

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पंडित।

ज्ञान और कर्म को पृथक् बताने वाले बालक हैं, पंडित नहीं। ज्ञान में कर्म की पूर्ति होती है। अर्थात् परिपक्व कर्म ज्ञान बनता है और फिर कर्म में ज्ञान की सफलता होती है। अतः दोनों साथ-साथ चलते हैं।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते॥

योग की सीढ़ी पर चढ़ने के इच्छुक के लिए कर्म ही शान्ति का साधन है। उस सीढ़ी पर चढ़ गये के लिये शान्ति कर्म का साधन है। ऋषि दयानन्द ने मुक्ति को सान्त कहा है। इसमें कारण यह है कि जो पदार्थ जन्य है वह अनन्त नहीं हो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

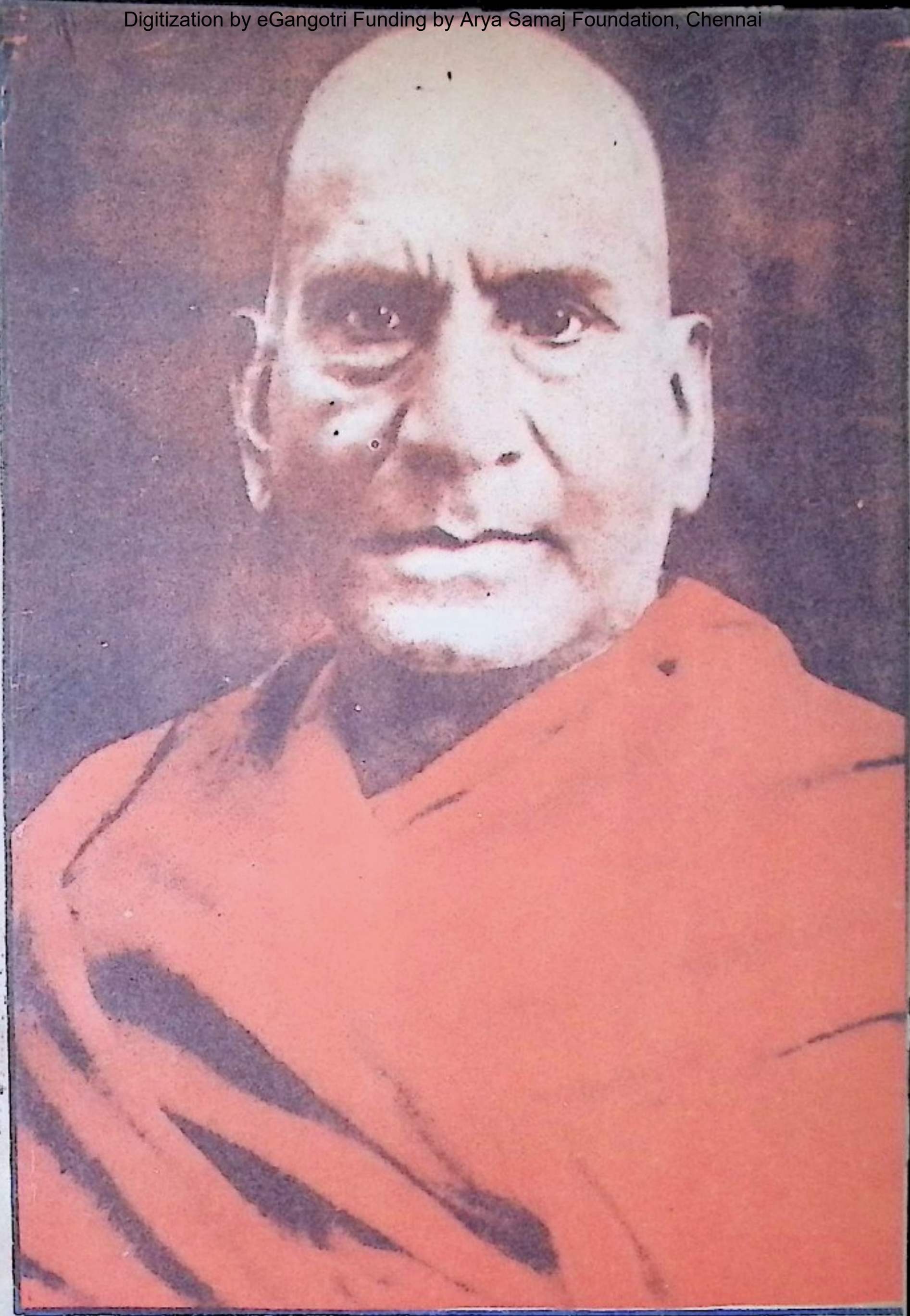

वीतराग स्वामी श्रद्धानन्द जी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सकता। आत्मा स्वभाव से मुक्त होता तो बन्धन उस पर आ ही न सकता। उसका बद्ध होना ही सिद्ध करता है कि वह स्वभाव से मुक्त नहीं। बन्धन को भ्रम मानना एक नए भ्रमजाल में पड़ना है। भ्रम ही हो तो उसकी भ्रममात्र सत्ता ही पारमार्थिक मुक्ति को बाधित करती है। भ्रम मिटाने पर भी तो मुक्तिजन्य ही रहेगी। जिसका आरम्भ होता है, उसका अन्त क्यों नहीं?

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च॥
अग्नेर्वयं प्रथमस्य मृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च॥

ऋ० १, २४, १-२

मुक्तों में से हम अत्यन्त सुखस्वरूप आनन्दमय प्रभु का नाम अर्थात् गुणों का सम्यक् मनन करते हैं। वह आनन्दस्वरूप प्रभु हमें अटूट विशाल (कर्मफल) व्यवस्था के अधीन करे (जिससे) हम फिर माता-पिता को देखें (अर्थात् जन्म धारण करें)। मुक्तों में से हम विभु अग्नि का···ऋषि दयानन्द ने यह मन्त्र मुक्ति से पुनरावृत्ति पर लगाये हैं। विपक्षी इनका प्रकृत पुनर्जन्म को बतलाते हैं। हमारी समझ में 'अमृतानां (मध्ये) वयं' इन शब्दों से स्पष्ट इस मन्त्र का वक्ता मुक्त मनुष्य प्रतीत होता है। यदि 'अमृतानां' का सम्बन्ध 'वयं' के स्थान में 'कतमस्य' अत्यन्त सुखस्वरूप और 'प्रथमस्य विभु' अथवा अनादि-प्रभु इन शब्दों के साथ जोड़ दिया जाय तो भी प्रभु के नाम का सम्यक् मनन करने का फल आवागमन चाहना युक्ति-युक्त नहीं। सम्यक् ध्यान का फल मुक्ति होनी चाहिए 'माता-पिता का दर्शन' मात्र नहीं। इसके विपतरी मुक्त जीवों का प्रभु की महिमा का मनन करना स्वाभाविक है। वहां फल की आकांक्षा नहीं। जन्म ग्रहण का विचार प्रभु के अटूट नियम 'मही अदिति' के पालन की दृष्टि से ऐसा होना आवश्यक है और सम्यक् ज्ञानी होने से मुक्त को इससे ग्लानि नहीं हो सकती। बद्ध जीव को माता-पिता का दर्शन इस जीवन में हो रहा है। उसे दूसरे जन्म की भावना प्रभु-भक्ति के साथ क्यों हो? हम हैरान हैं कि साधारण पुनर्जन्म पर यह मन्त्र कैसे घटाए जा सकते हैं? ऊपर बताया जा चुका है कि तार्किक युक्ति मुक्ति से पुनरावृत्ति के पक्ष में हैं। वेद का आदेश भी यही है। ऋग्वेद मण्डल ९ का ११३वाँ सूक्त मुक्ति का वर्णन सोम नाम से करता है। सारा सूक्त पढ़ने और अपने विचार तथा आचार भवन की आधार-भित्ति बनाने योग्य है। इस सूक्त का एक मन्त्र हम नीचे उद्धृत करते हैं—

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्ठपम्।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव॥

ऋ० ९, ११३, १,

जहां कामना का कामनापन दब जाता है, जहां आत्मावस्थिति की पराकाष्ठा है, जहां सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र आत्मतृप्ति है वहां हे अमृत प्रभो! मुझे अमर बना। इन्द्रियपति संयमी आत्मा के लिये सब ओर इस सुख का प्रवाह हो। मुक्ति के स्वरूप का ऐसा सुन्दर विषय-वासनाओं से उच्च, भौतिक ब्रह्माण्डातीत, केवल आत्मस्वरूप वर्णन वैदिक धर्म का सर्वोत्तम प्रसाद है। इससे ऊंचा न तर्क जा सकता है न कोई और देव-प्रेरणा। इस बात के होते यह कैसे कहा जाए कि धर्म के क्षेत्र में विकास हुआ है?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सार

बद्धजीव

कई लोगों को जीवन भार है। कई लोग मृत्यु से डरते हैं। मुक्त पुरुष जीवन की कर्म कठिनाई से घबराता नहीं, और मृत्यु का जीवन सदृश स्वागत करता है। उसका परिश्रम अनथक्य है। सफलता निष्फलता उसके लिये समान हैं। जीता हुआ वह ग्लानियों से ऊपर है। मर कर कल्प-पर्यन्त जीवन-लाभ करना है। उस जीवन में मृत्यु नहीं होती, इसलिये उसे अमृत कहते हैं। मुक्त स्वभाव परमात्मा हैं। आत्मा की मुक्ति परिश्रमसाध्य है। स्वभाव सिद्ध होती तो अब भी प्राप्त होती। मुक्ति भ्रम से बाधित हो तो भी बाधित ही है। तब भ्रम का उच्छेद परिश्रमसाध्य रहा।

तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति। य०

उसे जानकर मनुष्य मृत्यु से पार होता है।

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति। ऋ०

जहां शोभन कर्मयुक्त मनुष्य निरन्तर अमृत पान करते हैं। मुक्ति का साधन परमात्मा को आधार बना उसका आधेय बनना है। इसी को परमात्म-विद्या कहते हैं। संस्कृत में 'विद्' धातु का अर्थ 'ज्ञान' भी है, 'प्राप्ति' भी। दूसरा ज्ञान इन्द्रिय-जन्य है, परमात्मा का साक्षात्कार स्वयं आत्मा करता है। वही साक्षात्कार ज्ञान और प्राप्ति दोनों हैं। इस साक्षात्कार का साधन है अष्टांगयोग, जिससे चित्त स्थिर होकर मन का निरोध होता है। तब आत्मा और परमात्मा का आनन्द विषयक ऐक्य होता है।

भोगमात्रसाम्यलिंगाच्च। वेदान्त ४. ४. २१

कर्मज्ञान समुच्चय

श्रीकृष्ण कर्म और ज्ञान का समन्वय करते हैं—

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।

यही मत श्री दयानन्द का है। वेद मुक्ति का साधन विदथ (ऋ० १.१६४.२१) को ठहराता है, जिसका अर्थ है ज्ञान और यज्ञ।

मुक्ति सान्त है

मुक्ति सान्त है जन्य होने से। वेद में कहा है—

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च॥

हम मुक्त जीव सुखस्वरूप के गुणों का सम्यक् मनन करते हैं, वह अपनी कर्म फल व्यवस्था के अधीन कर माता-पिता के दर्शन कराए।

मुक्ति का स्वरूप

मुक्ति का स्वरूप पहले कहा जा चुका है। इस सूक्त का एक मन्त्र यहां दिया जाता है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम् ।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥

जहां कामनाएं निष्काम हो जाती हैं, जहां स्थिरता की पराकाष्ठा है, जहां आत्माधीनता और आत्मतृप्ति है, वहां मुझे अमर कर……कैसे इन्द्रियातीत केवल आध्यात्मिक आनन्द का वर्णन है !

६—सुख-दुःख की समस्या

ऐहिक सुख में दुःख

हम बता चुके हैं कि निरपेक्ष विशुद्ध आनन्द तो परमात्मा ही का स्वभाव है। **स्वर्यस्य च केवलम्** (अथर्व)। उस आनन्द में क्षति नहीं होती, अन्तर नहीं पड़ता। इसके प्रतिकूल जीवों के सुख में दुःख की मात्रा मिली हुई है। ऐहिक सुख सभी सापेक्षिक सुख हैं। संसार भर के प्राणी एक दूसरे की तुलना से सुखी-दुःखी हैं। न कोई केवल सुखी है, न कोई केवल दुःखी है। जीव को विशुद्ध सुख का अनुभव मुक्तावस्था में होता है। उस अवस्था की सिद्धि, चाहे जीते जी हो जाय, चाहे मरकर, वह सुख ऐहिक नहीं, उस पार का सुख कहलाता है। इस समय कई वाद ऐसे प्रचलित हैं जो दुःख की सत्ता से ही इन्कार करते हैं। इनमें प्रमुख मानसिक चिकित्सावाद है। इस वाद के अनुयायियों का मत यह है कि मनुष्य संकटों की कल्पना अपने मन से करता है। यदि हर समय यही विचार किया जाय कि दुःख कोई वस्तु नहीं, मैं निर्मल निर्लेप हूं मुझे कोई पाप पाखण्ड छू नहीं सकता, तो सभी रोगों का नाश हो जाता है। इस वाद ने कई स्थानों में अपना सिक्का प्रत्यक्ष परीक्षणों द्वारा जमाया है। तर्क द्वारा विचार किया जाए तो यह संकल्प करना भी कि मैं निष्पाप हूं, मुझे दुःख नहीं छू सकता, दुःख की सत्ता काल्पनिक हो तो भी तो उसकी सत्ता हुई, जिसके विनाशार्थ उक्त जप का विधान है। वास्तव में यह समस्या इतनी सरल नहीं। योग-साधन से आत्मा इतना ऊंचा हो सकता है कि सुख-दुःख के अनुभव से ऊपर हो जाए। गीता के कथनानुसार—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परन्तु केवल संकल्प मात्र से ऐसा नहीं हो सकता। उक्त अवस्था जीवन्मुक्त पुरुष की ही हो सकती है। उसे आत्मरति के कारण शेष सुख तथा दुःख का भान नहीं होता। जैसे किसी विशेष रस के प्रबल आस्वाद के समय शेष रस उस रस में लुप्त हो जाते है, ऐसे ही आत्मानन्द—जो सब आनन्दों में परम है—की प्राप्ति की अवस्था में ऐहिक सुख-दुःख का माप तो साधारण जनों की दृष्टि ही से होगा। मुक्त पुरुष सुख-दुःख का ज्ञान रखता है, परन्तु अपने लिए वह उसके भान-मात्र से ऊंचा हो जाता है। इसके विपरीत संसारी लोगों में सुख-दुःख का तारतम्य रहता ही है। स्वयं आयु एक भोग है। इसकी अवधि सबके लिए बराबर नहीं। कोई जन्म लेते ही मर जाता है, कोई सौ वर्ष और कोई उससे भी अधिक आयु भोगता है। फिर स्वास्थ्य-सुख, सम्पत्ति-सुख, इन सब सुखों की मात्रा सबके लिये बराबर नहीं। न यह बात ही ठीक उतरती है कि प्रत्येक व्यक्ति के सब सुख मिल-मिलाकर दूसरे व्यक्तियों के सुख दुःख के समान हों। हमारा इस तारतम्य की ओर निर्देश करने का अभिप्राय यह नहीं कि दुःख केवल आपस की स्पर्धा में है, यद्यपि मत्सर और स्पर्धा संसार के संकटों का बहुत बड़ा भाग है। हमने यहां इस तारतम्य का वर्णन इसलिये किया है कि तारतम्य में किसी भी वस्तु की सत्ता का बोध अधिक स्पष्टता से होता है। यदि सब प्राणियों की सुख की मात्रा समान हो, तो उसे सुख या दुःख कहने में कोई हेतु निर्णायक न हो सकेगा। सुख दुःख का तारतम्य ही सुख-दुःख की पहेली को उपस्थित करता है। यह तारतम्य कैसे आता है ? प्रकृतिवाद इस तारतम्य का उत्तरदायित्व परिस्थिति भेद पर डालता है। यदि केवल भौतिक परिस्थिति-भेद इस तारतम्य की पहेली को बुझा दे तो अध्यात्मवाद नहीं रहता। प्राकृतिक विज्ञान की आवश्यकता भौतिक परिस्थिति की ओर निर्देश कर देने से पूरी हो जाती है। कोई शरीर निर्बल है। इसका कारण वैज्ञानिकों की दृष्टि में यही है कि इसके माता-पिता दुर्बल थे, अथवा इसे खाने को पूरा अन्न नहीं मिलता ? एक जीव को खाने को पूरा मिले दूसरे को नहीं। यह क्यों ? जन्म ही क्यों विविध स्थिति के वंशों में होता है ? मेरा यत्न सफल नहीं होता और मेरे पड़ोसी को सफलता सहसा मिल जाती है। भौतिक कारण कुछ हों। इनसे आत्मा की सन्तुष्टि नहीं होती। परमात्मा की इच्छा मात्र पर इस तारतम्य का भार डालने वाले धर्मवादी परमात्मा से न्याय नहीं करते। अपनी असफलता का उत्तरदायित्व दूसरे पर डालना कुछ वीरोचित धीरता नहीं। मनुष्य स्वभाव से न्याय चाहता है। परमात्मा को सभी प्राणी एक समान हैं। वह अपने अमृत-पुत्रों के सुख-दुःख में तारतम्य क्यों करता है ? क्या यह सब ठठोल है ? किसी ठठोली को इस उत्तर से संतोष हो जाता होगा। धीर पुरुष अवश्य अपने भाग्य के मूल बीज का अपने ही कर्मों में अनुसन्धान करेंगे। कुछ आपत्तियां, असफलतायें, कुछ रीतियां ऐसी हैं जिनकी सत्ता का कारण हमारे इस जीवन के कर्म नहीं ठहराए जा सकते। उदाहरणतया मातृ-पितृ-जन्य संस्कार इस जन्म के किन कर्मों का फल हो सकते हैं। माता-पिता की अपनी आत्मिक सत्ता भी तो है। फिर उनके सुकर्मों या कुकर्मों का फल सन्तति को क्यों भोगना पड़े ? एक मनुष्य किसी रोगी अथवा व्यसनी पिता के घर जन्म लेकर पैतृक रोग तथा व्यसन का भी दायभागी होता है, दूसरा इसके विपरीत स्वस्थ साधु-स्वभाव वंशजों की सन्तान होकर जन्मकाल से ही हृष्ट-पुष्ट शरीर तथा निर्दोष मन और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मस्तिष्क का भागी बनता है। कारण? क्या यह सब कुछ आकस्मिक है? या किसी लीलाप्रिय विगत-मर्याद प्रभु की लीलामात्र है? दोनों अवस्थाओं में पुरुषार्थवाद के नीचे से इस वाद का यौक्तिकाधार ही खिसक जाता है। यदि जीवन केवल-मात्र आकस्मिक घटनाओं की शृंखला है तो कोई सुकर्म क्यों करे? पुरुषार्थ क्यों करे? मिलता तो वही है जो परमात्मा चाहता है। और (अथवा या) प्रकृति ला देती है। इस धारणा में न वीरता है न बुद्धिमत्ता। वास्तव में वर्तमान जीवन किसी भी आत्मा का पूर्ण जीवन नहीं। जीवन समस्या का समाधान इकले इस जीवन से नहीं होता। जीवनों की लड़ी प्रतीत होती है। इस जीवन से पूर्व और परे अन्य जीवनों की शृंखला होनी आवश्यक है। वह शृंखला वर्तमान सुख-दुःख के तारतम्य का कारण बता कर तत्सम्बन्धी समस्या का समाधान कर देती है। एक जन्म का किया कुछ उसी जन्म में फलित होता है कुछ दूसरे जन्मों में। अनन्तकाल की अपेक्षा से किसी प्राणी का एक जीवन, समुद्र में एक बिन्दु से अधिक सत्ता नहीं रखता। जैसे एक क्षण का किया उसी क्षण में ही फलित हो, यह बात आवश्यक नहीं। जैसे एक ऋतु का बोया किसी दूसरी ऋतु में उगता तथा पकता है, ऐसे ही एक जन्म की कमाई दूसरे जन्म में भोगी जाती है। अनन्तकाल की अपेक्षा से एक क्षण और एक जीवन बराबर है। इस धारणा के होते मृत्यु का महत्त्व कम हो जाता है। सुखवाद के उथलेपन के स्थान में गम्भीर धैर्य का विकास होता है, और मनुष्य उस रास्ते में पड़ जाता है जिस का ध्येय पुरुषार्थ है। अनन्तकाल की भावना में गहराई है। हम अनादिकाल से आते हैं, अनन्तकाल तक रहेंगे। हम विधाता की क्रीड़ा मात्र नहीं। हम अपने भाग्य का निर्माण करते हैं। कैसे उत्तम भाव हैं? इन सब भावों का प्रादुर्भाव पुनर्जन्म के सिद्धान्त से सम्बन्ध रहता है। वेद कहता है—

य ई चकार न सो अस्य वेद य ई ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश॥

ऋ० १, १६४, ३२

जिसने इस (गर्भस्थ को) बनाया है (अर्थात् पिता-माता) वह इसे नहीं जानता। जो इसे देखता है, (अर्थात् परमात्मा) वह इससे छिपा हुआ है। जीव बहुत जन्मों को प्राप्त होकर भोग को प्राप्त होता है।

जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।

मरणधर्मा शरीर का अमर जीव अपनी इच्छा से मरने वाले (शरीर) के साथ सयोनि होकर गमनागमन करता है। कईयों का विचार है कि इस जीवन की समाप्ति पर एक नए जीवन का आरम्भ होता है। उस में कुकर्मियों को अनन्त दण्ड और सुकर्मियों को उनके सुकृत का अनन्त फल मिलता है। सान्त कर्म का अनन्त फल युक्तियुक्त नहीं, इस वाद पर अन्धेर नगरी चौपट राजा वाली कहावत ही चरितार्थ होती है। कइयों ने अनन्त दण्ड के अत्याचार को तो समझ लिया है, परन्तु अनन्तसुख-भोग में उन्हें आपत्ति नहीं। इसे वे परमात्मा की दया का परिणाम समझते हैं। यह मत कर्म-भीरुओं का ही हो सकता है। परमात्मा स्वभाव से दयालु हैं। स्वयं कर्म-व्यवस्था उनकी दया है। पुण्य और पाप का फल भौतिक भी है, यह अध्यात्मवादियों के लिए महान् सन्तोष का कारण है। इसीमें उनका प्रायश्चित्त है। किसी पाप के लिए

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दुःख न भोग केवल उसकी वासना में रहना पड़े, अध्यात्म-दृष्टि के अभ्यासियों को यह असह्य है। यदि बिना निमित्त दया के ही आश्रय से रहना है तो कर्म-फल का झंझट ही उड़ा देना चाहिए। कुछ समय के लिए भी पापियों को नरक का द्वार क्यों दिखाना? जो दया इस अस्थायी नरक के होने से भी बाधित नहीं होती वह स्वर्ग के अस्थायी होने से भी बाधित न होगी। स्वर्ग वही है जो हम सुख विशेष के रूप में इस संसार में भोगते हैं। पुनर्जन्म की कई प्रत्यक्ष साक्षियां आए दिन प्राप्त होती हैं। थोड़े-थोड़े समय पीछे कोई-कोई बालक ऐसा उत्पन्न होता है जो अपने पिछले जन्म की स्मृतियां साथ लाता है। ऐसे बालक भी देखने में आते हैं जो बिना सिखाए छोटी सी अवस्था में किसी कला-विशेष, यथा गान, गणित, कविता इत्यादि में निपुण पाए गए हैं। वैज्ञानिकों के इन परीक्षणों का समाधान पुनर्जन्म के अतिरिक्त क्या है? क्या अल्पवयस्क मनुष्यों के यह चमत्कार-पूर्ण कर्तव्य सुख-विशेष नहीं? एल. ई. ट्रिष्टम ने दिसम्बर १९२४ के 'थ्योसोफिस्ट' में "चमत्कारी बालक" शीर्षक लेख छपवाया था जिसका कुछ उदाहरण अनुवाद के शब्दों में नीचे दिया जाता है—न्यूयार्क ईवनिंग पोस्ट से उद्धृत—

रागी बालक

रागविद्या के क्षेत्र में एक बालक सब को बड़े आश्चर्य में डाल रहा है। उसने आठ वर्ष की आयु में ही कई ऐसे गीत बनाए हैं, जिन्होंने कि डर्क फौच और थ्योडोर का भी ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। अमेरिकन ढंग के चेहरे से युक्त यह अद्भुत बालक निकोलिन जैडलर का लड़का है जो अब संसार की यात्रा को निकला हुआ है और अमेरिकन नैशनल औरकैष्ट्रा का प्रबन्धकर्त्ता है। उसकी असाधारण योग्यता का पता कल उस समय लगा जब उसने मिस्टर Engel के घर पर गान किया। टैडी न केवल गानविद्या में प्रवीण है किन्तु वह एक अच्छा कवि और छोटी-छोटी कथाओं का लेखक भी है। इनके अतिरिक्त वह कई प्रकार के नये-नये खेलें भी खेलता है। छोटे बालकों में से कइयों ने रागविद्या में अच्छा अभ्यास प्राप्त किया है। इनमें से मुख्यतम लौरस लूइस लिग्रैन है। यह सीटल में रहती है और उसकी आयु ३ साल की है। वाशिंगटन स्टेट म्यूजिक मैमोरी नामक साम्मुख्य में इसने पूरे १०० अंक प्राप्त किये थे। यह पियानो पर कई कठिन से कठिन गीत निकाल सकती है। Touch method द्वारा राइटिंग पर भी तेज हाथ चला सकती है और चतुर्थ श्रेणी के योग्य रीडर्स को भी अच्छी प्रकार पढ़ सकती है।

मस्तिष्क सम्बन्धी विचित्रता

ऐनिड ओकलहामा का बालक ऐनवैल मौरी बड़ा ही विचित्र बालक है। उसकी आयु अब तीन वर्ष की है। उसने इससे १८ महीनें पहिले पढ़ना आरम्भ कर दिया था और अब वह शरीर-विद्या, इतिहास और भूगोल विषय में प्रायः सब कुछ जानता है। वह लैटिन में गिनती करता है और रागी है। वह उन पुस्तकों को अनायास ही पढ़ लेता जिन्हें चतुर्थ श्रेणी में पढ़ाया जाता है और इससे भी अधिक यह कि वह अपने पढ़े हुए को अच्छी प्रकार से याद कर सकता है। ऐसे ही लॉस ऐंजल्स हाई स्कूल में मौरेस मर्कै नामक ८ वर्ष का एक लड़का है। परीक्षा करने से पता लगा है कि उसकी मानसिक शक्ति २० वर्ष की आयु के मनुष्यों के बराबर है अर्थात् इस

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अंश में यह मस्तिष्क सम्बन्धी अद्भुत योग्यता रखने वालों में से एक है। उसने बहुत समय पूर्व 'कान' द्वारा गायन किया था जो उसे किसी ने सिखाया नहीं था। उसको नक्षत्र विद्या में बड़ा आनन्द आता है और उसका मन उस विषय को पहिले से ही ग्रहण करता है जिन्हें कि कालेज के कई विद्यार्थी समझ भी नहीं सकते। परीक्षक कहता है कि यह बालक एक विषय में ही नहीं किन्तु सभी विषयों में प्रवीण है। वह खेलने में भी वैसी ही चतुरता प्रदर्शित करता है जैसी कि कार्य में। वह अपने आस पास रहने वाले सब लड़कों से दौड़ने, लड़ने, तैरने, डुबकी लगाने में अधिक चतुर है। इन सब बातों के होते हुए भी बालकों की भांति वह अपने स्कूल में सर्व प्रिय बालक है। नैथेली केन नाम का एक अन्य बालक है जिसकी आयु अभी ११ वर्ष की भी नहीं है किन्तु उसकी कविताओं का प्रथम भाग प्रकाशित हो रहा है। Wonderchild नामक सामुख्य का विजेता ऐलबर्ट जे हौयत नाम का ७ वर्ष का बालक है। यह बालक अपने ही ढंग का विचित्र बालक है। इसने पक्षियों के विषय में एक पुस्तक लिखी है जिसका चित्रकार भी यह स्वयं ही है। इसने कई अन्य कथाएं और कविताएं भी लिखी है। यह बालक इतिहास, भूगोल गणित, विज्ञान, नक्षत्रविद्या और साहित्य में अति प्रवीण है। यह अपनी स्मृति-शक्ति द्वारा ही सब जातियों के झण्डों का चित्र खीच सकता है।......रात्रि के आकाश से वह ऐसा परिचित है जैसे अपने बाग से। वह बिना किसी कष्ट के अपने टैलिस्कोप से जहां चाहे वहां नक्षत्रों को देख सकता है। इसके अतिरिक्त वह खेलने कूदने में भी बहुत प्रवीण है।

प्रचारक बालक

परन्तु इन सबसे बढ़कर जो सबको आश्चर्य में डालता है वह प्रचारक बालक है। न्यूटन हेस्टिंग नामक एक ७ वर्ष का बालक है जो अपने प्रचार द्वारा मनुष्यों को स्तम्भित और चौकन्ना कर देता है। वह अपने निवास-स्थान सलसबरी से सारे राज्य में भ्रमण करता है और जब भी यह विज्ञापन दे दिया जाता है कि उसका उपदेश होगा तो गिरजा अवश्य भर जाता है। उससे हाथ मिलाने की प्रतीक्षा में लोगों की भीड़ खड़ी रहती है। वह स्कूल की द्वितीय श्रेणी में है और अभी लिखना-पढ़ना सीखने लगा है। इसलिये अपने उपदेशों को वह तैयार नहीं कर सकता......उस का बाप उन सुधरे हुए मनुष्यों में से एक है जिन पर उसके उपदेशों का प्रभाव पड़ा है। जब उस ने अपने पुत्र की प्रतिभा शक्ति को देखा तो वह गिरजे में भरती हो गया और अब श्रद्धा से वहां सेवा करता है।

दुःखवाद

हमने ऊपर निर्देश किया है कि ऐहिक सुख में भी दुःख की लाग पाई जाती है। निराशावादी इस सिद्धान्त को अति की सीमा तक ले जाते हैं। कुछ समय से बौद्धधर्म के विषय में यह कल्पना प्रचलित थी कि यह धर्म निरपेक्ष दुःखवादी है, इस का ध्येय अभाव की प्राप्ति है। वर्तमान खोज ने इस धारणा को निर्मूल कर दिया है। आत्म-हत्या ऐहिक दुःखों से छुटकारे का एक मात्र उपाय है। यह प्रस्ताव प्रसिद्ध जर्मन विचारक शोपनहावर का है परन्तु उसने स्वयं आत्म-हत्या नहीं की, किन्तु समय आने पर ही मरा, यह स्वमत का प्रत्यक्ष खण्डन है। वेद ने आत्म-हत्यारे को महापापी कहा है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः
तांस्ते प्रेत्याभि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥ य. ४०-३.

घोर अन्धकार से घिरी हुई अदैव अवस्थाएं ऐसी हैं जहां आत्म हत्यारे मरकर भी जाते हैं।

यदि मर जाना अभाव को प्राप्त हो जाना होता तो शोपनहार के कथन में कुछ सत्य की मात्रा होती। अभाव की अवस्था में सुख न सही, दुःख भी न होता, परन्तु यह तो आत्म-सत्ता ही बता रही है कि आत्मा मरने पर मर नहीं जाता। तभी तो उसने आत्म-हत्या नहीं की जो भीरुओं का मार्ग है और भीरुता स्वयं दुःख है।

ऐहिक सुख, जिस प्रकार साधारण जनता उसे भोगती है, दुःख से शून्य नहीं। इसकी भंगुरता दुःख है। ऐन्द्रिय सुख को स्थिर रखने का कोई साधन नहीं। खाते जाओ, कोई भोग निरन्तर भोगते जाओ, वही स्वयं रोग बन जाता है। भोग का आनन्द कभी-कभी लिया जा सकता है। निरन्तर नहीं। सुख कभी-कभी संयम-पूर्वक भोगने में, संयम इन्द्रिय-जन्य नहीं, आत्मजन्य है। यह तो हुई संसार के भोगों की अवस्था कि वह भी विना वशीकार के वश में नहीं आते फिर आत्मरति का तो कहना ही क्या है? सुकरात को विष के प्याले से ग्लानि नहीं होती। ईसा सूली पर परमात्मा की इच्छा की पूर्ति चाहते हैं। दयानन्द फफोलों भरे शरीर में प्रसन्नवदन रहते और जब इस भोग की समाप्ति होती है, वही महात्मा ईसा के शब्द दोहरा देते हैं। कारण क्या? इन्हें दुःख का होना तो प्रत्यक्ष है, परन्तु उसका भान नहीं। संसारी लोग गम दूर करने को मादक द्रव्यों का आश्रय लेते हैं। कुछ समय के लिए इनसे मस्ती आ जाती है परन्तु उस मस्ती का उतार कठोर यातना होता है। आत्मज्ञानी नाम खुमारी में मस्त रहता है। उसके अन्तर्हृदय में बोध उत्पन्न हो जाता है कि मैं शरीर नहीं। सांसारिक द्वन्द्व 'मात्रास्पर्श' देहमात्र को छू जाने वाले हैं।

इन्द्रायेन्दो परिस्रव। ऋ० ९, ११३

इन्द्रियों के अधिपति के लिए आत्म-ज्ञान की गंगा बहती है।

योगी संसार के कार्य से विमुख नहीं होता। आपत्तियों में आता है, झंझटों में पड़ता है, क्योंकि यह तो देह-धर्म है। शरीर-यात्रा में कर्म करना आवश्यक है। साधारण जनों में और योगी महात्मा में भेद यह होता है कि वह तो केवल इन्द्रियों के ही सुख-दुःख का अनुभव करते हैं जो चिरस्थायी नहीं, और इसे एक स्थिर सुख की निरन्तर अनुभूति होती है उस अनुभूति का प्रभाव इतना होता है कि ऐहिक सुख दुःख का उस में लोप हो जाता है। ऐहिक सुखों में भी सुख पाना उसी योग के साधन 'संयम' से आता है।

तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। य० ४०, ३

इसलिए तू त्यागपूर्वक भोग कर।

यह त्याग अर्थात् आत्मवशीकार का भाव अध्यात्म जगत् की उपज है अनात्मा की नहीं।

वेद ने आत्म-हत्या को पाप और उसका परिणाम राक्षसी भाव ठहरा कर दुःख से बचने का उपाय बताया है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत । अ०
य इन्द्रोः पवमानस्यानु धामान्यक्रमीत ।
तमाहुः सुप्रजा इति हस्ते सोमाविधन्मन
इन्द्रायेन्दो परिस्रव ।।

ऋ० ६, ११४, १,

जिसने पवित्र करने वाले आत्म-ज्ञान के साधनों का अनुष्ठान किया, हे आत्म-रति ! जिसने मन को तेरे अर्पण किया, उसका जन्म सफल हुआ । हे आत्म सुख की गंगा ! उस आत्मवशीकर्त्ता के चारों ओर बह !

सार

वास्तविक सत्ता

मानसिक चिकित्सावाद वालों का मत है कि दुःख की कोई सत्ता नहीं । केवल अपने भ्रम से मनुष्य दुःख की सृष्टि करते हैं । निराशावादी संसार को दुःख ही दुःख का हेतु मानते हैं । यह दोनों की भूल है । तर्क भ्रम मात्र सत्ता को भी उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकता । दुःखवादी शोपनहावर को आत्म-हत्या का साहस नहीं हुआ । उसका जीवन उसके मत का खण्डन था ।

तारतम्य

लोगों की आयु समान नहीं, सन्तति समान नहीं, सम्पत्ति समान नहीं, स्वास्थ्य में भेद है । मानसिक योग्यताओं का भेद है । यह भी नहीं कि एक अङ्ग की कमी दूसरे अङ्ग की अधिकता से पूरी हो जाए । व्यक्तियों के भोग में वस्तुतः तारतम्य है, यही तारतम्य सुख-दुःख की पहेली है ।

कर्म का फल

यह तारतम्य कहां से आता है ? प्रकृतिवादी कह सकता है, परिस्थिति-भेद से, परन्तु परिस्थिति-भेद क्यों होता है ? आत्मवादी आत्मा को प्रकृति का खिलौना नहीं बना सकता । परमात्मा की इच्छामात्र को इस तारतम्य का कारण मानना परमात्मा को या पक्षपाती मानना है या केवल तरंगी और यह किसी धर्मवादी को अभीष्ट नहीं । धीर पुरुष अपने सुख-दुःख का उत्तरदायित्व अपने ही ऊपर डालेंगे अर्थात् इसे जीव के कर्मों का फल ही ठहराएंगे । वेद आत्मा को **स्वधया गृभीतः** (ऋ० १, १६४, ३८) कहता है अर्थात् जीव स्वतन्त्रता से ही बन्धन में पड़ता है ।

पुनर्जन्म

कुछ भाग ऐसे हैं जो जन्म के साथ आते हैं जैसे वंशज स्वभाव, वंशज स्वास्थ्य, वंशज सम्पत्ति आदि । यह इस जीवन के कर्म के फल नहीं । नाही इस जीवन के सभी कर्म इसी जीवन में फलित हो जाते हैं । यदि ऐसे भोगों और कर्मों को आकस्मिक मान लिया जाए तो पुरुषार्थवाद के लिये कोई यौक्तिक आधार नहीं रहता । जीवनों की एक शृंखला प्रतीत होती है जो अनादि काल से चली आती है और अनन्तकाल तक चली जायेगी ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहु प्रजा निर्ऋतिमावेश ।

ऋ० १, १६४, ३२

वह माता के गर्भ में लिपटा हुआ बहुत जन्म धारण करता और भोग को प्राप्त होता है ।

पुनर्जन्म के प्रत्यक्ष प्रमाण वे चमत्कारी बालक हैं जो छोटी आयु में गान, कविता तथा उपदेश आदि का कार्य निपुणता से कर सकते हैं । इनसे भी स्पष्ट और अकाट्य साक्षी उन बालकों की है जो अपने पूर्व-जन्म का वृत्तान्त सुनाते हैं और जब उनके निर्देशानुसार उन्हें अपने पूर्व जीवन के निवास स्थान में ले जाकर पूछताछ की जाती है तो उनका वृत्तान्त प्रायः सत्य सिद्ध होता है । ऐसे उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं ।

जीवन्मुक्ति

इन सब दु:खों के सत्य होते हुए भी आध्यात्मिक आनन्द का रस इतना प्रबल है कि यदि वह प्राप्त हो जाए तो भौतिक सुख दु:ख का उस आनन्द में लोप हो जाता है । भौतिक आनन्द भी संयम पूर्वक ही भोगे जा सकते हैं, अन्यथा वह स्वयं रोग बन जाते हैं और यह संयम अध्यात्म पक्ष की चीज है ।

तेन त्यक्तेन भुंजीथाः । यजु० ४०, १

इसलिये त्याग पूर्वक भोग कर ।

यही संयम आत्मवशीकार है । इसी के अभ्यास से मनुष्य आत्मरति को प्राप्त करता है जिससे मुक्ति होती है ।

इन्द्रायेन्दो परिस्रव

हे अमर सुख की गंगा ! संयमी के चारों ओर बह । यही जीवन की सफलता है । वेद की आज्ञा स्पष्ट है—

य इन्दोः पवमानस्यानु धामान्यक्रमीत् ।
तमाहुः सुप्रजा इति यस्ते सोमाविधन्मन इन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥

ऋ० ९, ११४, १

जिसने पवित्र करने वाली आत्मरति के साधनों का अनुष्ठान किया, जिसने अपना मन इस आत्मरति के अर्पण किया, उसे सफल-जन्म कहते हैं । उस आत्म-वशीकारी के चारों ओर अक्षय आनन्द की गंगा बहती है ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यसमाज

के

स्वर्णिम सिद्धान्त

श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

[संसार को नया प्रकाश देने में समर्थ धर्म के प्रेरक यह नियम १९वीं सदी की महान् उपलब्धि हैं। —सम्पादक]

आर्यसमाज के नियम

"आर्यसमाज" आर्य और समाज दो शब्दों से मिलकर बना है। आर्य किसे कहते हैं? महर्षि वेदव्यासजी ने निम्न आठ गुणों से युक्त व्यक्ति को आर्य कहा है—

शान्तस्तितिक्षुर्दान्तश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः।
दाता दयालुर्नम्रश्च आर्यः स्यादष्टभिर्गुणैः॥

जो शान्त हो, सहनशील हो, मन को वश में रखनेवाला, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, दानी, दयालु और नम्र हो वह आर्य कहलाता है। महर्षि दयानन्द के शब्दों में "**आर्य नाम धार्मिक, विद्वान्, आप्त पुरुषों का है।**" और श्री अरविन्द के शब्दों में "**मानवीय भाषा में इससे उत्तम और कोई शब्द नहीं है।**"

समाज का अर्थ है नियमबद्ध मनुष्यों का समूह। पशुओं के संघटन को समज कहते हैं क्योंकि उनमें नियमबद्धता नहीं होती, कोई खड़ा है, कोई बैठा है, कोई खा रहा है, किसी का मुंह इधर है और किसी का उधर। इस प्रकार "आर्यसमाज" का अर्थ है, नियमबद्ध, श्रेष्ठ, सदाचारी तथा धार्मिक मनुष्यों का संघटन। इस आर्यसमाज शब्द में बड़ी शिक्षा, महत्ता तथा गौरव है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यह तो हुई आर्यसमाज शब्द की व्युत्पत्ति। आर्यसमाज एक संघटन है जिसकी स्थापना महर्षि दयानन्द द्वारा सं० १९३२ वि० में सबसे प्रथम बम्बई में हुई थी।

संसार नियमों के आधार पर स्थित है। समस्त संसार—महान् सूर्य से लेकर अतिसूक्ष्म परमाणु तक सभी नियमों के अधीन है। सर्वत्र पूर्ण व्यवस्था दृष्टिगोचर होती है। सूर्य नियमितता से अपने कर्त्तव्य का पालन करता है, यह ठीक समय पर उदय होता है और ठीक समय पर अस्त होता है। चन्द्रमा नियम से घटता और बढ़ता है। ग्रह और नक्षत्र सभी नियमित मर्यादा में घूमते हैं। जिस प्रकार ज्योतिषशास्त्र (Astronomy), भौतिक-शास्त्र (Physics) और गणित-शास्त्र के नियम हैं ठीक इसी प्रकार समाज के भी कुछ नियम होते हैं। आर्यसमाज को सुव्यवस्थित रूप में चलाने के लिए महर्षि दयानन्द ने दस नियमों का निर्माण किया है।

आर्यसमाज के नियम सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक हैं। आर्यसमाज की स्थापना ऐसे सर्वव्यापक और सर्वहितैषी नियमों पर हुई है कि संसार के समस्त देश और राष्ट्रों के निवासी उन पर चलकर अपनी सर्वांगीण उन्नति कर सकते हैं। आर्यसमाज के दस नियम सार्वभौमिक हैं। यदि ये नियम व्यवहार में आ जाएँ तो मनुष्यों के आपस के भेद-भाव दूर होकर सामंजस्य और सौजन्य स्थिर होगा तथा सभी एक-दूसरे की उन्नति में सहयोग देते हुए स्वयं भी समुन्नत होंगे। जो व्यक्ति आर्यसमाज के नियमों को अपनाएगा वह सब की उन्नति में सहयोग देगा। इस प्रकार आपस में ईर्ष्या, घृणा, वैमनस्य कलह आदि न उभर सकेंगे।

आर्यसमाज के नियम सब समाजों, सब देशों, सब राष्ट्रों, सब व्यक्तियों और सब अवस्थाओं के लिए एक समान हैं। कोई भी समाज इन्हें प्रयोग में ला सकता है। ये नियम आर्यसमाज के प्रवर्त्तक ऋषि दयानन्द की विद्वत्ता, अगाध पाण्डित्य और ऋषित्व के परिचायक हैं। इन नियमों में महर्षि के हृदय का प्रतिविम्ब स्पष्ट रूप से झलक रहा है। आगे के पृष्ठों में इन्हीं नियमों के ऊपर प्रकाश डाला जायेगा।

प्रथम नियम

सब सत्य विद्याओं का आदिमूल—

सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।

विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि।

—ऋ० २।२३।२

तू ही सम्पूर्ण ज्ञानों का, विद्याओं का उत्पन्न करने वाला है।

आर्यसमाज का पहला नियम यह बताता है कि आर्यसमाज एक आस्तिक समाज है। आर्यों का यह दृढ़ विश्वास है कि हमारी ही भाँति ईश्वर भी विद्यमान है। यह नियम बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यह नियम बताता है कि सब सत्य विद्याओं का आदि-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मूल परमेश्वर है। यह तो अनुभव-सिद्ध बात है कि मनुष्य बिना सिखाये कुछ नहीं सीख सकता। भाषा के बिना मनुष्य न कुछ सोच सकता है और न किसी प्रकार का ज्ञान ही प्राप्त कर सकता है। 'भाषा की उत्पत्ति किस प्रकार हुई?' इस सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों ने अनेक सिद्धान्तों का आविष्कार किया परन्तु ये सारे सिद्धान्त भाषा उत्पत्ति की समस्या का समाधान न कर सके। दबी जबान में सभी भाषा-शास्त्री इस बात से पूर्णरूपेण सहमत हैं कि भाषा ईश्वरीय देन है। अत: यह स्पष्ट सिद्ध है कि ईश्वर ही आदि गुरु है। इसी भाव से महर्षि पतञ्जलि ने कहा है—

स एषः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनाऽनवच्छेदात्।

—यो० द० १। २५

वह परमात्मा सृष्टि के आरम्भ के गुरुओं का भी गुरु है; सभी गुरु काल के गाल में चले जाते हैं परन्तु वह कालातीत है। सचमुच वही ज्ञान के मूल वेदों का उत्पादक है।

किरणें समस्त संसार को प्रकाश देती हैं, परन्तु किरणें कहाँ से आती हैं? सूर्य से। अत: सूर्य किरणों का उत्पादक है। जहाँ भी प्रकाश है वह सूर्य का है, ठीक इसी प्रकार जहाँ भी ज्ञान है वह भगवान् का है, भगवान् विद्याओं का आदिमूल है।

सूर्य एक स्थान पर रहकर प्रकाश करता है परन्तु ईश्वर सर्वव्यापक है। अत: उसका ज्ञान भी सर्वत्र है। आज भी भगवान् ज्ञान दे रहे हैं, जब कभी किसी के मन में पाप करने की इच्छा होती है तब उसके अन्दर से उसके विरुद्ध एक ध्वनि उठती है, वह ध्वनि परमात्मा की ओर से होती है। ऋषि ने कहा है—

जो पापाचरणेच्छा समय में भय, शंका लज्जा उत्पन्न होती है वह परमात्मा की ओर से है।

—स० प्र० सप्तम समु०

इस नियम का दूसरा भाग भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। यह भाग बताता है कि न केवल सत्यविद्या=वेद अपितु "जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।" सूर्य से लेकर पृथ्वी पर्यन्त समस्त ब्रह्माण्ड का मुख्य कारण भी परमेश्वर ही है।

संसार में कोई मरना नहीं चाहता परन्तु सब मरते हैं, इन्हें कौन मारता है? अपने आप कोई वस्तु नहीं बनती, इन्हें कौन बनाता है? विवश होकर मानना पड़ता है कि कोई महान् शक्ति है। वही इन का आदिमूल है। संक्षेप में सम्पूर्ण विद्याओं, नाना प्रकार के ज्ञान और ज्ञान द्वारा जानने योग्य पदार्थों का आदि कारण परमात्मा है, उसी की प्रेरणा से यह सारा आध्यात्मिक और प्राकृतिक जगत् विकसित होता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दूसरा नियम

ईश्वर का स्वरूप—

ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है उसीकी उपासना करनी योग्य है। स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

—यजु० ४० । ८

एक एव नमस्य विक्ष्वीड्यः। —अथर्व २ । २ । १

ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वोत्पादक, काया और छिद्ररहित, नस-नाड़ी के बिना, पाप से शून्य, क्रान्तदर्शी, मन का स्वामी, विजयी और स्वयंभू है तथा अनादि काल से सम्पूर्ण पदार्थों की यथायोग्य रचना करता है।

एक अद्वितीय परमात्मा ही उपासना के योग्य है।

रचना को देखकर रचयिता का ज्ञान होता है। इस ब्रह्माण्ड की वैज्ञानिक, विचित्र और अद्भुत रचना को देखकर हमें विवश होकर ईश्वर की सत्ता स्वीकार करनी पड़ती है। ईश्वर के विषय में लोगों में नाना भ्रान्तियाँ हैं, कोई उसे चौथे आसमान पर मानता है, कोई सातवें पर और कोई क्षीरसागर में। प्रश्न उत्पन्न होता है हम कैसे ईश्वर को मानें ? इस नियम में ईश्वर के विशेषणों का उल्लेख कर उसका सच्चा स्वरूप बताया गया है।

ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप है। प्रकृति और जीव से भिन्नता प्रकट करने के लिए ईश्वर को सच्चिदानन्द कहा गया है। प्रकृति सत् है, जीव सत्, चित् है और ईश्वर सत्, चित् आनन्द है। उसके आनन्द को हम प्रतिदिन चाहते हैं। यह चाहना यह बता रही है कि वह कहीं है और हमने कभी उसका उपभोग भी किया है। वेद में भी कहा है—

त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते। —ऋ० १।५९।१

तुझ में सब भक्त आनन्द पाते हैं।

ईश्वर निराकार है। परमात्मा का कोई शरीर नहीं है और जब उसका कोई शरीर, आकार ही नहीं है तब उसकी मूर्त्ति भी नहीं बनाई जा सकती।

ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। अपने कार्य में ईश्वर किसीकी सहायता नहीं लेता। कृषक जो ऋषि के शब्दों में **"राजाओं का राजा है"**, हल, बैल, बीज आदि का दास है। परन्तु ईश्वर अपनी सृष्टि-रचना आदि कार्य में किसीकी सहायता नहीं लेता, अतः वह सर्वशक्तिमान् है। सर्वशक्तिमान् का यह अर्थ नहीं कि ईश्वर अपने बनाये नियमों को तोड़कर जैसा चाहे वैसा कर ले। ईश्वर चोरी और भ्रष्टाचार नहीं कर सकता, झूठ नहीं बोल सकता, अपने जैसा दूसरा ईश्वर नहीं बना सकता, अपने कन्धे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पर स्वयं नहीं चढ़ सकता, अपने आपको मार नहीं सकता और किसी भी व्यक्ति को अपने राज्य से बाहर नहीं निकाल सकता। सर्वशक्तिमान् का भाव यह है कि ईश्वर अपने कार्यों में दूसरे के अधीन नहीं है।

ईश्वर न्यायकारी है। ईश्वर सबके साथ न्याय करता है, अन्याय कभी नहीं करता। जैसा कोई करता है वैसा ही उसे फल देता है, दुष्टों को दण्ड देता है। ब्राह्मण हो या चाण्डाल, राजा हो या रंक सब के साथ न्याय करता है, किसीके साथ भेद-भाव नहीं करता और न किसीकी सिफारिश सुनता है। प्रभु जीवों को कर्मों का फल देता है यह उसकी सब से बड़ी दया है।

ईश्वर दयालु है। संसार के सभी प्राणी उसकी दया के पात्र हैं। ईश्वर ने हमें रहने को भूमि, भोजन के लिए फल तथा अन्न और वायु, जल, उद्यान आदि प्रदान किये हैं। एक बीज बोकर सहस्रोंफल मिलते हैं। नास्तिक और अपराधी भी उसके राज्य में सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। ये सब प्रभु की दया के प्रबल प्रमाण हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि ईश्वर दयालु है तो न्यायकारी नहीं हो सकता क्योंकि यदि वह चोर-डाकुओं को दण्ड देता है तो दयालु नहीं रहा। यदि उन्हें छोड़ देता है तो उसका न्याय नष्ट होता है। यह बात ठीक नहीं। चोर-डाकुओं को छोड़ देना उन पर दया नहीं है अपितु उनकी आत्मा को कलंकित करना है और भद्र पुरुषों पर अत्याचार है। सच्ची दया न्याय में है जिससे चोर-डाकू भी सुधर जाएँ और सदाचारी पुरुष भी सुख-शान्ति से जीवन व्यतीत कर सकें? उसकी रचना में न्याय और दया अंग-संग चलते हैं। दोनों गुण एक-दूसरे के पूरक हैं।

ईश्वर अजन्मा है। ईश्वर सदा से है और सदा रहेगा, फिर उसका अवतार कैसे हो सकता है? वह सर्वव्यापक है, सर्वत्र विद्यमान है फिर उसका अवतार = उतरना कैसे सम्भव हो सकता है। वह जन्म-मरण के बन्धन से रहित है।

ईश्वर अनन्त है। सूर्य-चन्द्र आदि सब का आरम्भ भी है और अन्त भी है, परन्तु ईश्वर का न कोई आदि है और न अन्त है। वह सर्वत्र व्याप्त है अतः वह अनन्त है।

ईश्वर निर्विकार है। ईश्वर जागरित, स्वप्न, सुषुप्ति, बन्ध-मोक्ष आदि अवस्थाओं में नहीं आता, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता, वह सदा एक-सा रहता है। संसार के पदार्थ बदलते रहते हैं और बदलते रहेंगे, परन्तु ईश्वर कभी नहीं बदलता।

ईश्वर अनादि है। ईश्वर का कोई आरम्भ नहीं है, न किसी समय ईश्वर का अभाव था और न कभी होगा।

ईश्वर अनुपम है। ईश्वर जैसा कोई नहीं और जब कोई उसके तुल्य नहीं तो उससे बड़ा क्योंकर हो सकता है? उस जैसी कोई दूसरी सत्ता नहीं।

ईश्वर सर्वाधार है। वह सबका सहारा और आश्रय है। सूर्य-चन्द्र, पृथ्वी आदि उसीके सहारे से स्थिर हैं। वेद में कहा है—

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम्।

—यजु० १३।४

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वह परमात्मा ही पृथ्वी और द्युलोक को धारण कर रहा है। वही शक्ति सबको स्थिर रख रही है अन्यथा ये ग्रह, उपग्रह एक दूसरे से टकराकर नष्ट हो जाएँ।

परमात्मा सर्वेश्वर है। परमात्मा सारे ब्रह्माण्ड का स्वामी है। वह राजाओं का राजा और सम्राटों का सम्राट् है।

परमात्मा सर्वव्यापक है। ईश्वर अणु-अणु और कण-कण में व्यापक है। एक उर्दू के कवि ने कहा है—

सिफ़त तेरी हर ख़ार देता है,
हर गुञ्चा ओ गुल तेरी सदा देता है।

प्रभु काँटे और फूल सब में विद्यमान है। पत्ता-पत्ता उसका पता देता है। उसे ढूँढ़ने के लिए मक्का, मदीना, और काशी जाने की आवश्यकता नहीं, वह तो हमारे पास, हमारे हृदय में ही है—

दिल के आइने में है तस्वीरे यार।
जब जरा गर्दन झुकाई देख ली॥

ईश्वर सर्वान्तर्यामी है। वह घट-घट की बात जाननेवाला है। दो व्यक्ति जो गुप्त-मन्त्रणा करते हैं ईश्वर वरुणरूप से उसे भी जानता है।

ईश्वर अजर है। वह कभी बूढ़ा नहीं होता। **वह अमर है,** उसका कभी नाश नहीं होता। **वह अभय है** किसीसे डरता नहीं, वह नित्य और पवित्र है।

ईश्वर सृष्टिकर्त्ता है, ईश्वर संसार की रचना करता है। जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय परमात्मा के ही अधीन है।

पहले भाग में ईश्वर के विशेषणों का वर्णन करके दूसरे भाग में उस ईश्वर की उपासना का विधान किया गया है। प्रभु-प्राप्ति में मूर्त्तिपूजा एक रुकावट है। महर्षि दयानन्द के शब्दों में—

मूर्तिपूजा सीढ़ी नहीं, किन्तु एक बड़ी खाई है, जिसमें गिरकर मनुष्य चकनाचूर हो जाता है पुनः उस खाई से निकल नहीं सकता किन्तु उसीमें मर जाता है।

—सत्यार्थप्रकाश : एकादश समुल्लास

आर्यसमाज निराकार परमात्मा की पूजा का आदेश देता है। कोई मनुष्य, जानवर अथवा मूर्त्ति उसका स्थान नहीं ले सकती। ब्राह्मण-ग्रन्थ में कहा है—

योऽन्यां देवतामुपासते पशुरेव स देवानाम्।

—शतपथ० १४।४।२।२२

उपनिषद् भी घोषणा पूर्वक कहती है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

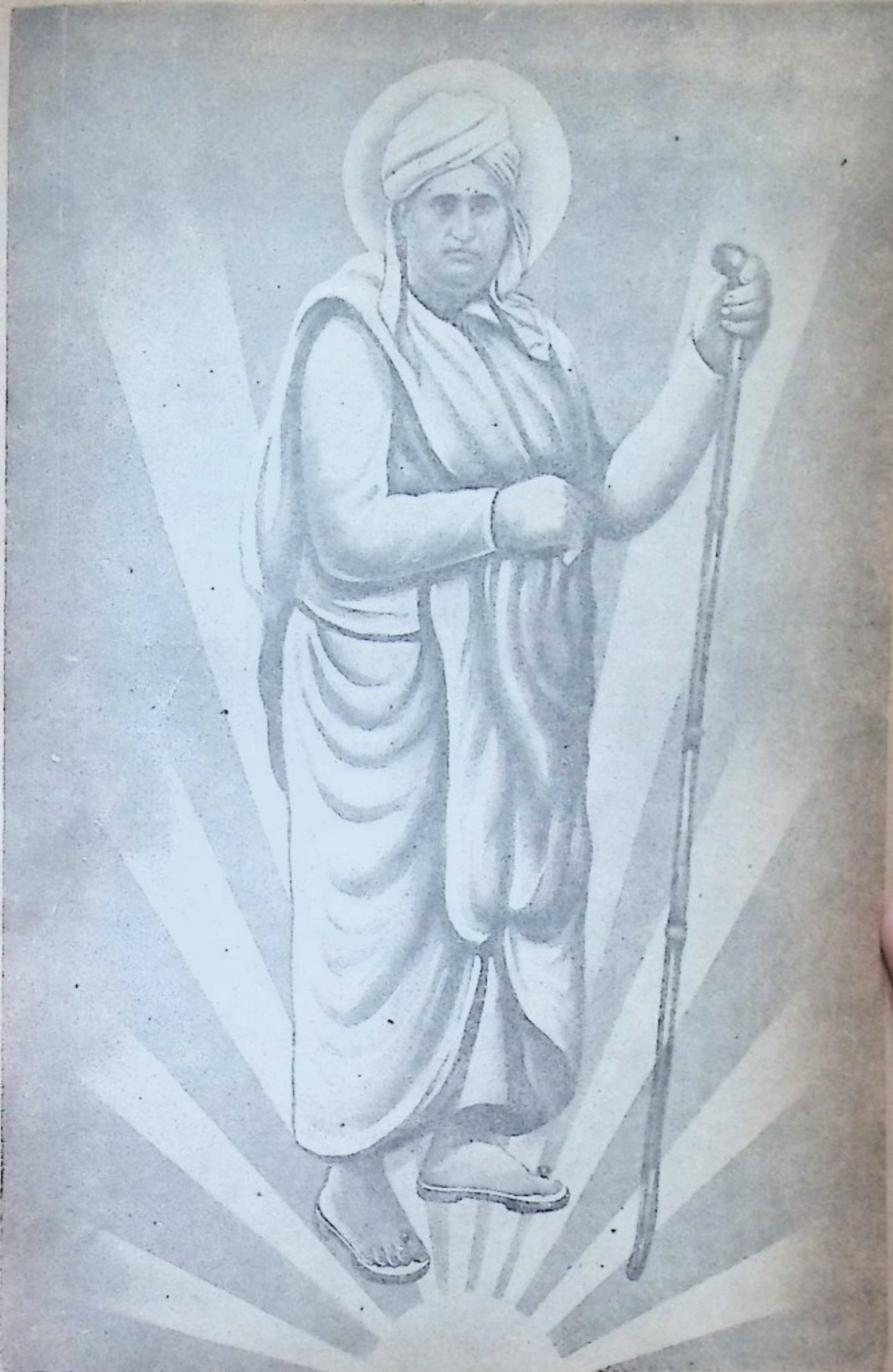

आर्यसमाज संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वह पवित्र स्थान जहां महर्षि दयानन्द ने जन्म लिया था

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

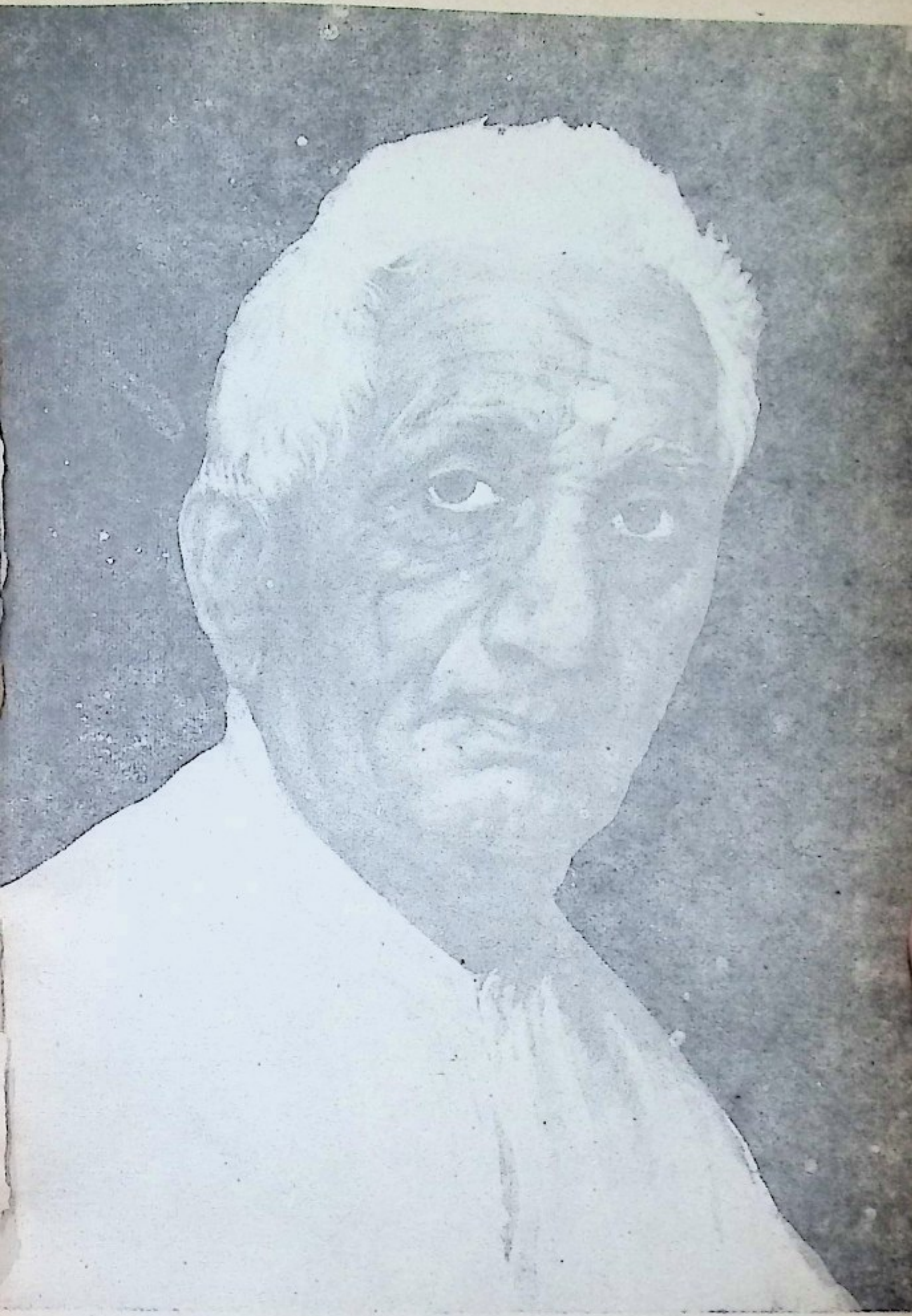

वेदों के लिए संपूर्ण जीवन अर्पित करने वाले

श्रीपाद दामोदर जी सातवलेकर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

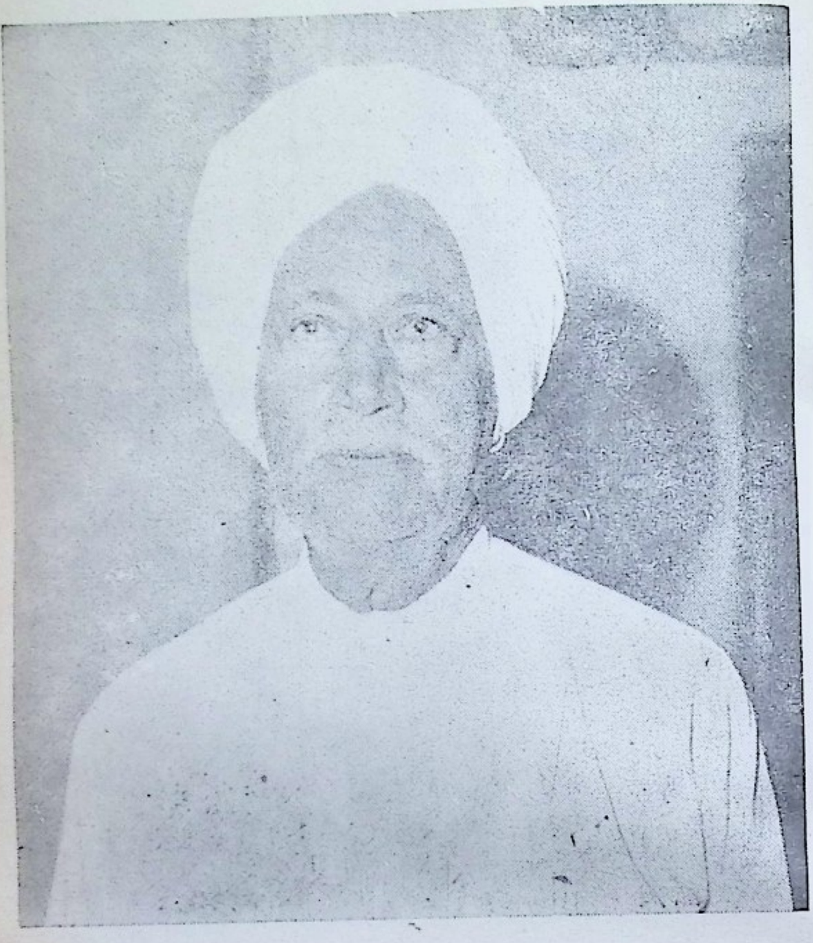

वेदों के प्रसिद्ध अन्वेषक
पं० भगवद्दत्त जी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

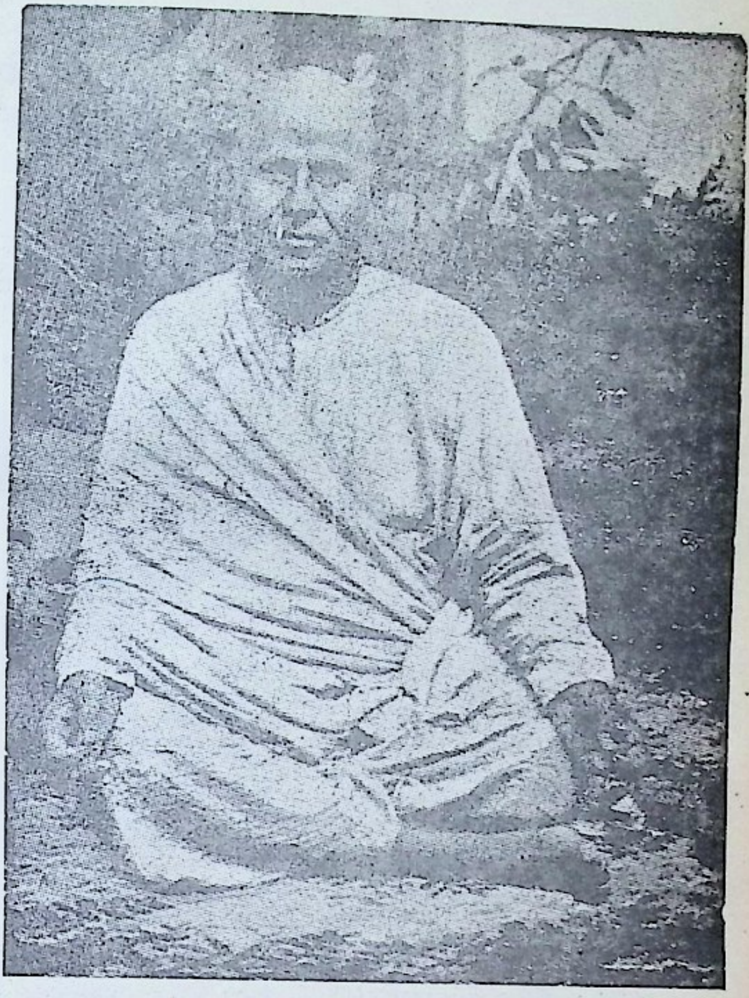

श्री स्वामी अच्युतानन्द जी सरस्वती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

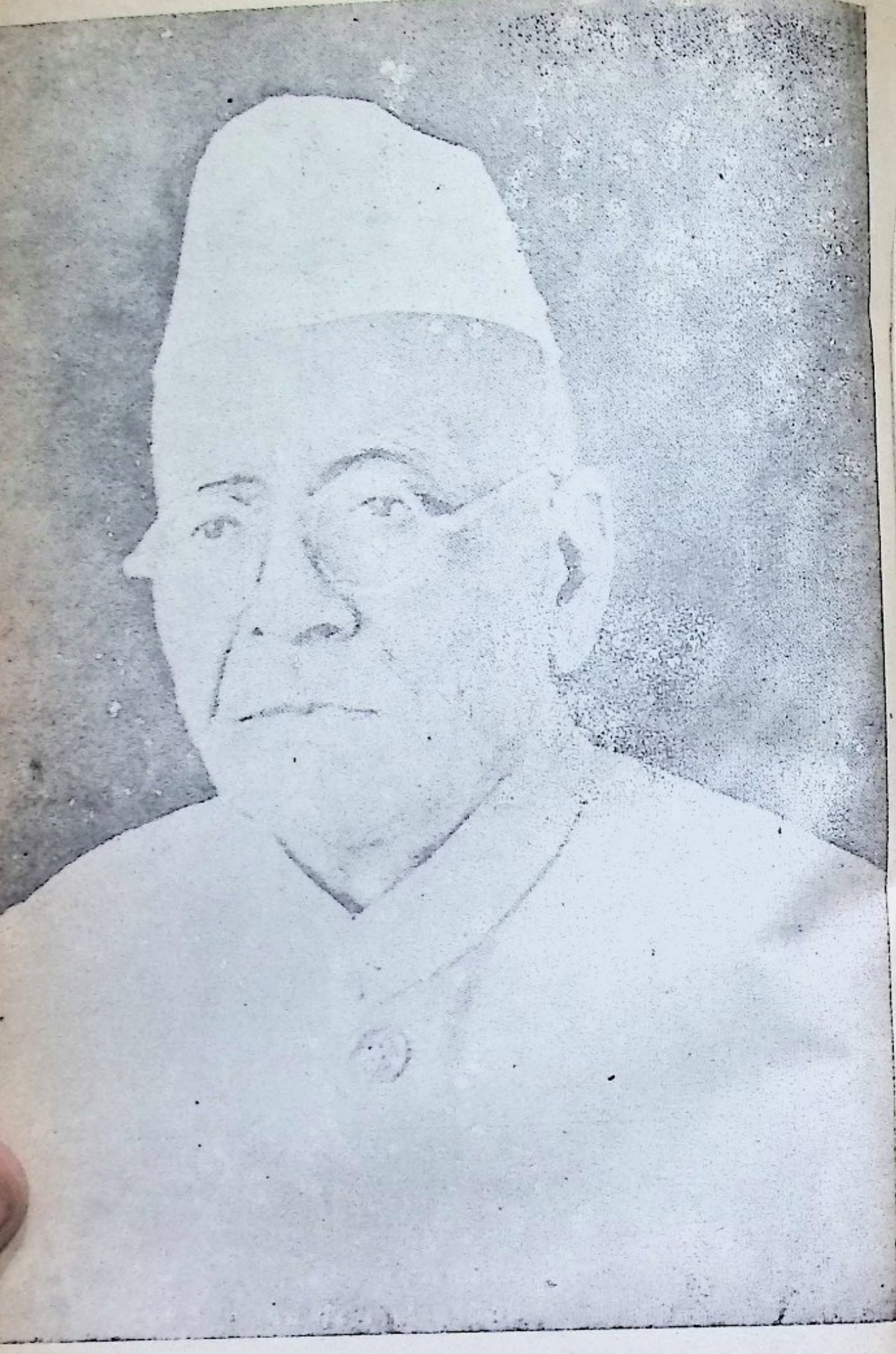

प्रसिद्ध आर्य विचारक
पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

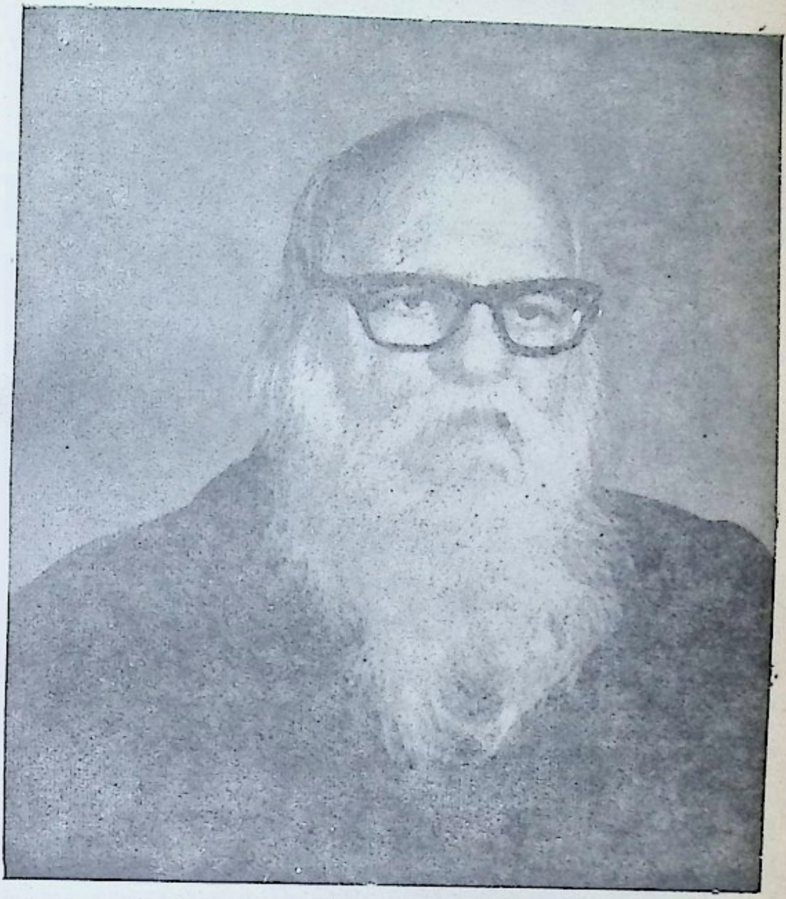

बालब्रह्मचारी—आदर्श साधक

श्री अखिलानन्द जी झरिया

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

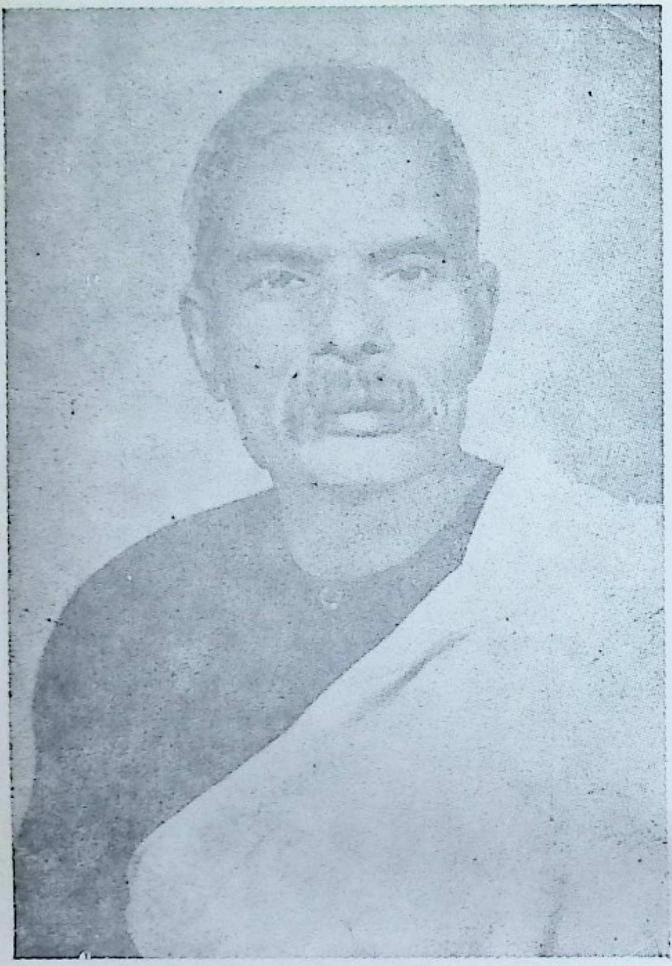

प्रसिद्ध वैदिक विचारक
आचार्य श्री नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

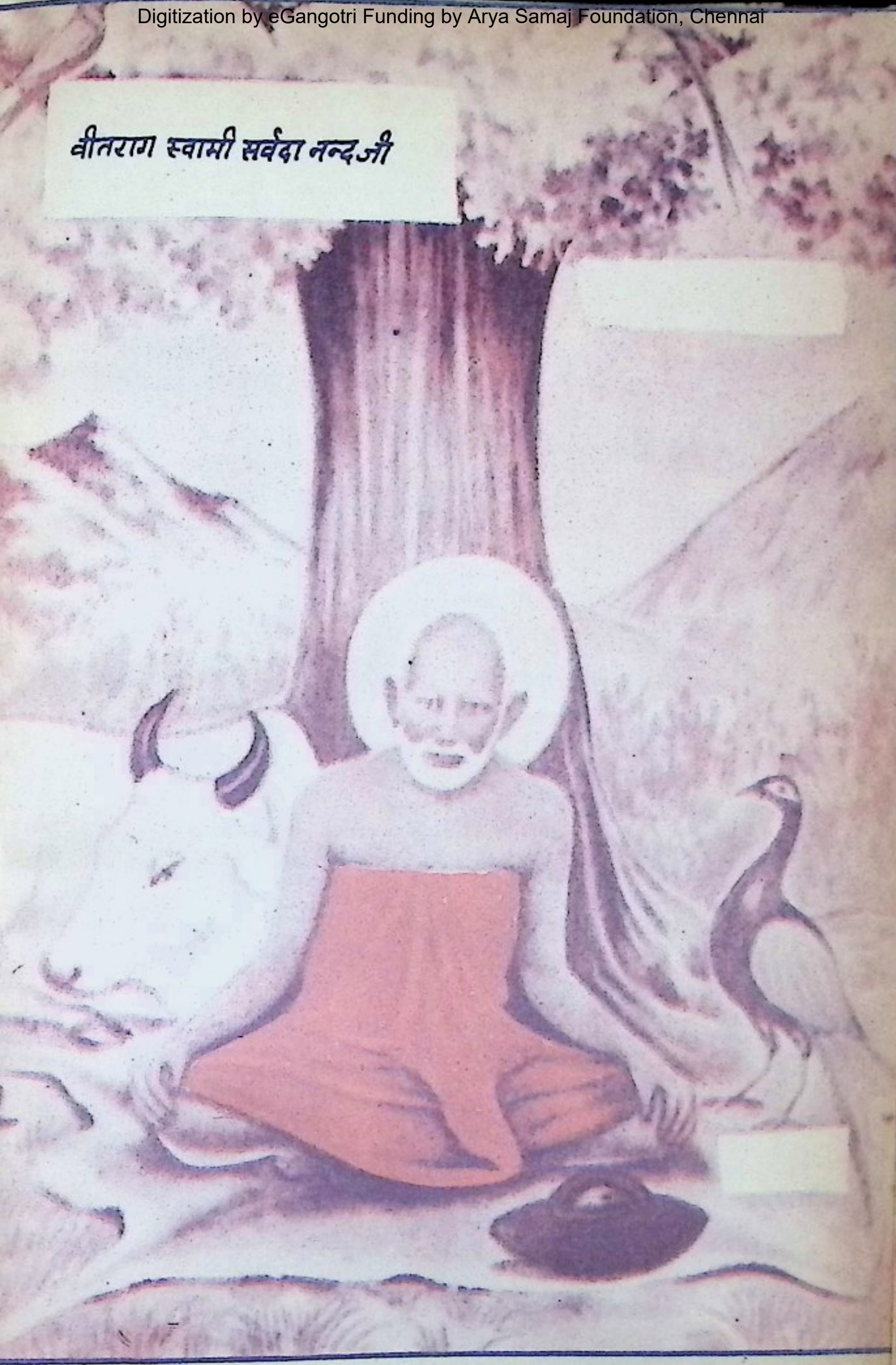

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः ।

—मुण्ड० २।२।५।

जो एक परमेश्वर को छोड़कर अन्य देवता की उपासना करता है वह कुछ भी नहीं जानता, वह विद्वानों में पशु ही है। हे मनुष्यो ! उठो, जागो और उस परमात्मा को जानो, अन्य की उपासनारूप वाणियों को छोड़ो।

तीसरा नियम

आर्यों का परम धर्म—

वेद सब सत्य-विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः ।
गाय गायत्रमुक्थ्यम् ।।

—ऋ० १।३८।१४

वेद मन्त्रों से अपना मुख भर ले और मेघ=बादल के समान उन्हें सर्वत्र वर्षा। स्वयं गा और दूसरों से गवा।

पहले तथा दूसरे नियम की शिक्षा का इस नियम में समावेश है। इस नियम के भी दो भाग हैं। "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है" यह एक आर्ष सिद्धान्त है जिसे ब्रह्मा से लेकर ऋषि दयानन्द पर्यन्त सभी ऋषियों ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। वेद ईश्वरीय ज्ञान है। वेद का प्रतिपाद्य विषय एक नहीं है। वेद में सब कुछ है क्योंकि **"सर्वज्ञानमयो हि सः"** (मनु० २।७) वेद सब विद्याओं का भण्डार है। और इतना ही क्यों—

भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति ।

—मनु० १२। ९७

भूत, वर्तमान, भविष्यत्, सबका बीज वेदों में निहित है। वेदों में अक्षर-ज्ञान से लेकर उच्चकोटि का विज्ञान विद्यमान है। मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति के लिए जितने ज्ञान और विज्ञान की आवश्यकता है वह सब वेदों में है। वेद में हमारे दैनिक कृत्यों का विधान है। उसमें जीवन और मरण के सभी विषयों का वर्णन है। वेद में व्याकरण, ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद, वनस्पति-विज्ञान, युद्धकला, शस्त्रास्त्रविद्या, राजनीति, मनोविज्ञान, योग, सूर्य, चन्द्र, मेघ, विद्युत्, वायुविज्ञान और भौतिक-विज्ञान के रहस्य विद्यमान हैं। उनमें मधुर-वीणा और मधुर-संगीत है। अध्यात्म ज्ञान के तो वेद भण्डार ही हैं। सूक्ष्म-से-सूक्ष्म आध्यात्मिक रहस्य वेदों में हैं।

उनमें सृष्टि और प्रलय के नियम हैं। वेदों में कृषि और उसके साधनों का विधान है। पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-बहन के व्यवहार, मित्र के प्रति मित्र का कर्त्तव्य राजा और प्रजा का आदर्श, एक ईश्वर की भक्ति आदि अनेक विषयों का संकलन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है। अब तक जितने वैज्ञानिक आविष्कार हो चुके हैं और जो भविष्यत् में होंगे उन सबका बीज भी वेदों में विद्यमान है। वेद खोज करनेवालों के लिए समाप्त न होने वाली रिसर्च की खान है। वैज्ञानिकों के लिए विज्ञान की बातें हैं तो योगियों के लिए अलौकिक-शक्तियों का वर्णन है। वेद, धनी-निर्धन, विद्वान् और मूर्ख सबके लिए हैं।

ऐसे सत्य-ज्ञान और विद्याओं के भण्डार वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द आजीवन इस नियम का पालन करते रहे। हमें भी अपने गुरुवर के पदचिह्नों पर चलते हुए प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक वेद का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए। मनुजी ने भी कहा है—

वेदमवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः।
तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥

—मनु० ४। १४७

नित्य ठीक समय पर आलस्यरहित होकर वेद का अभ्यास करें। क्योंकि यह मनुष्य का परम धर्म है और सब तो गौण धर्म हैं। वेद के विद्वानों के ऊपर भी महर्षि ने यह कर्त्तव्य डाल दिया है कि वे वेद पढ़ाएँ और सुनाएँ। जो मूर्ख हैं, वे वेद पढ़ नहीं सकते अतः उनके लिए महर्षि ने सुनने का विधान रखा है। महर्षि ने इस नियम की रचना इस प्रकार की है कि कोई भी व्यक्ति वेद के ज्ञान से वंचित न रहने पाए और आर्य लोग सदा वेद के ही वायुमण्डल में रहें।

इस नियम के सम्बन्ध में यह आक्षेप किया जाता है कि यह नियम अधूरा है। आक्षेपकर्त्ताओं के अनुसार इस नियम का अन्तिम भाग "वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना और आचरण करना तथा करवाना आर्यों का परम धर्म है" इस प्रकार होना चाहिए था परन्तु यह आक्षेप सर्वथा निराधार है। ज्ञान का प्रयोजन ही कर्म है। ज्ञान का पर्य्यवसान कर्म में होता है "ज्ञान ज्ञान के लिए है" यह प्रमादियों का सिद्धान्त है। ज्ञान का प्रयोजन ही कर्म है। ज्ञान की सफलता कर्म में है। मनुष्य को किसी वस्तु का ज्ञान होना ही पर्याप्त नहीं है अपितु उससे लाभ उठाना भी आवश्यक है। उदाहरणतः कुनेन का यह ज्ञान कि कुनेन ज्वर को दूर करती है, कुछ भी लाभदायक नहीं यदि आवश्यकता पड़ने पर इसे प्रयोग में न लाया जाए। वेद का पठन-पाठन, श्रवण और मनन होने पर वह आचरण में स्वयमेव ही आ जाएगा।

चौथा नियम

सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग

सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ॥

—यजु० १। ५

हे व्रतों के पालक स्वामिन्! मैं व्रत का आचरण करने लगा हूँ। मुझे शक्ति दो कि मैं अपने व्रत का पालन कर सकूँ। मेरा व्रत यह है कि मैं असत्य भाषण को छोड़कर सत्य को ग्रहण करता हूं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यह नियम आर्यसमाज की शोभा है। जो बात सत्य, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध युक्तियुक्त, सृष्टिक्रमाविरुद्ध, और आत्मानुकूल हो उसे ग्रहण करने के लिए और इससे विपरीत को छोड़ने के लिए सदा तैयार रहना चाहिए। आर्य को सत्य का अन्वेषक होना चाहिए। और जब उसे पता चल जाए कि कोई बात असत्य है तो उसे उसी समय छोड़ देना चाहिए क्योंकि आचरण के बिना ज्ञान किसी काम का नहीं। कसी वस्तु का ज्ञानमात्र चरित्र-निर्माण में सहायक नहीं हो सकता। रावण वेदों का बहुत बड़ा विद्वान् था परन्तु आचरण न करने के कारण वह राक्षस कहलाया, अत: प्रत्येक आर्य का यह कर्तव्य है कि वह सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में तत्पर रहे। सत्य जहाँ से प्राप्त हो वहीं से ले लेना चाहिए। मनु महाराज का आदेश है—

विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्।
अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि काञ्चनम्॥

—मनु० २। २३९

विष से अमृत और बालक से भी उत्तम वचन ले लेना चाहिए। शत्रु से भी सदाचार सीखना और अपवित्र स्थान से भी स्वर्ण ले लेना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह कि सत्य के ग्रहण करने में हठ और दुराग्रह कदापि न करना चाहिए।

ऋषि दयानन्द सत्य के अनन्य प्रेमी थे। वे अपने समस्त जीवन में सत्य का अन्वेषण करते रहे, अत: आर्यसमाज में प्रविष्ट होनेवाले प्रत्येक नर-नारी को भी उन्होंने सत्य को अपनाने की शिक्षा दी। क्योंकि—

सत्यं हि परमं बलम्।

सत्य सबसे बड़ा बल है। वेदों और उपनिषदों में ईश्वर को सत्य कहा गया है। सत्यम्=स, त् और यम् तीन अक्षरों के योग से बना है। 'स' जीव को कहते हैं, 'त्' ब्रह्माण्ड को और 'यम्' शासक का नाम है। इस प्रकार सत्यम् ईश्वर का नाम इसलिए है क्योंकि वह जीव और जगत् दोनों को शासन में रखता है। फिर ऐसे प्रभु को किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं? इस का उत्तर है **"तत् सत्ये प्रतिष्ठितम्"** वह ब्रह्म सत्य में प्रतिष्ठित है। सन्त तुलसीदासजी ने भी कहा है—

साँच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय साँच है वाके हिरदय प्रभु आप॥

सत्य का आचरण करने से हम प्रभु को प्राप्त कर सकते हैं और सत्य से विमुख होकर हम प्रभु से दूर होते जाते हैं। सम्प्रदायवादियों ने मनुष्य को सत्य से विमुख करके प्रभु पूजा के स्थान पर मनुष्य-पूजा के गढ़े में ऐसा फँसाया है कि वहाँ से त्राण पाना कठिन है। इस विषय में एक छोटा-सा दृष्टान्त है। एक व्यक्ति स्वप्न में आकाश की सैर करने पहुँच गया। वहाँ क्या देखता है कि एक व्यक्ति पालकी में बैठा हुआ है और करोड़ों व्यक्ति उसके पीछे नाचते, गाते और बाजा बजाते हुए उसका जलूस निकाल रहे हैं। थोड़ी दूर आगे चलकर उसने एक अन्य व्यक्ति को देखा जो हाथी पर बैठा हुआ था और करोड़ों मनुष्य उसके सामने सिर झुकाये खड़े थे। थोड़ा और आगे चला तो उसने एक और पुरुष की भव्य सवारी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

देखी। उसके साथ भी करोड़ों शिष्य विद्यमान थे। ऐसे दृश्यों को देखता हुआ वह आगे बढ़ा और एक झोंपड़ी के पास पहुंचा तो क्या देखता है कि एक व्यक्ति जिसके मुखमण्डल पर सहस्रों सूर्यों जैसी आभा है अकेला बैठा है। पूछने पर पता लगा कि ये भव्य जलूस और सवारियाँ हजरत मोहम्मद, यीसू मसीह और महात्मा गौतम बुद्ध की थी और परमात्मा बेचारा अकेला बैठा हुआ था। इस दृष्टान्त का तात्पर्य यह है कि सम्प्रदायवादियों ने अपने-अपने महापुरुषों को ईश्वर से भी ऊँची पदवी दी है। परन्तु आर्यसमाज के चौथे नियम की यह विशेषता है कि यहाँ किसी व्यक्ति को ईश्वर की पदवी नहीं दी गई। मानव-जीवन की उन्नति के लिए सत्य की कसौटी रखी गई है।

पाँचवाँ नियम

धर्मानुसार आचरण

सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिएँ।

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत्॥

—ऋ० ७।१०४।१२

उत्तम विज्ञान को जानने की इच्छावाले मनुष्य के प्रति सत्य और असत्य वचन एक-दूसरे को दबाते हुए आते हैं। उनमें से जो सत्य और अधिक सरल होता है ज्ञानी उसको ही पसन्द करता है और असत्य को मार देता है।

मनुष्य को प्रत्येक कार्य भली-भाँति सोच-विचार कर, सत्य और असत्य का पूर्णरूपेण विवेक करके करना चाहिए। सत्य की कसौटी से परख कर, विवेक-बुद्धि द्वारा जो भी कार्य किया जाएगा वह कार्य धर्मानुसार ही होगा। इस नियम में "सत्य असत्य को विचार कर करने चाहिएँ" यह पद बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यह पद सूचित करता है कि हम अपनी बुद्धि पर ताला न लगा दें अपितु जो कार्य करें बुद्धिपूर्वक करें, परम्परागत अनुभवों से लाभ उठाएँ, परन्तु अन्धाधुन्ध उनके दास न बन जाएँ। यह कुआँ हमारे पिता ने बनाया था और वे इसका खारी पानी पीते थे, इसलिए हम भी खारी पानी न पीते रहें। यह नियम शिक्षा देता है कि हम लकीर के फकीर न बनें।

धर्मानुसार कार्य करने के लिए हमें धर्म के स्वरूप को जानना होगा। धर्म क्या है? "**धारणाद् धर्ममित्याहुः**" जो धारण किया जाए उसे धर्म कहते हैं।

विशेषिक-दर्शन के अनुसार भी जिन नियमों के पालन से इहलौकिक और पारलौकिक उन्नति हो उन नियमों का नाम ही धर्म है। वे नियम क्या हैं, वे कौन से गुण हैं जिन्हें जीवन में धारण किया जाए। वें नियम हमें वेद के स्वाध्याय से ज्ञात होंगे क्योंकि "**वेदोऽखिलो धर्ममूलम्**" (मनु० २।६) वेद समस्त धर्मों के मूलस्रोत हैं। जो वेद-विहित कर्म हैं उन्हींका पालन करना धर्म है।

धर्म की बड़ी महिमा है। महाभारत में कहा है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं
जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः ।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥

—महा० उद्यो० ४०।१३

किसी कामना से, भय से अथवा लोभ से धर्म का त्याग न करे । चाहे प्राण चले जाएँ परन्तु धर्म को कभी न त्यागे क्योंकि धर्म नित्य है, सुख दुःख तो अनित्य हैं । जीवात्मा नित्य है किन्तु इसका साधन शरीरादि अनित्य हैं । अनित्य को छोड़कर नित्य में प्रतिष्ठित होना चाहिए ।

आपत्ति और संकटों के आने पर भी धर्म से विमुख नहीं होना चाहिए अपितु धर्माचरण और धर्म की रक्षा करनी चाहिए क्योंकि—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥

—मनु० ८।१५

मारा हुआ धर्म मार देता है और रक्षा किया हुआ धर्म रक्षा करता है अतः धर्म को न मारना चाहिए जिससे मारा हुआ धर्म हमें न मार दे ।

यह नियम समाज में सुख और शान्ति की गंगा बहाने का साधन है । यदि मनुष्य अपने कर्त्तव्य को समझकर इस नियम का ही पालन करने लग जाए तो कुछ ही समय में संसार से छल, कपट, चोरी, घूंसखोरी आदि सारी कुप्रथाएँ दूर होकर देश पुनः स्वर्गधाम बन जाए ।

ये पाँच नियम मनुष्य की व्यक्तिगत उन्नति से सम्बन्ध रखते हैं और प्रत्येक व्यक्ति को सर्वाङ्गीण नैतिक और चारित्रिक विकास करने का आदेश देते हैं ।

छठा नियम

आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य

संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।

लोकं पृण । —यजु० १२।५४

संसार को उन्नत करो ।

छठे नियम से दसवें नियम तक पाँच नियम समाज के साथ मनुष्य के कर्त्तव्यों का, सामाजिक व्यवस्था और मर्यादा का बोध कराते हैं ।

यह नियम ऐसा अद्भुत और अनोखा है जो संसार के और किसी संघटन में नहीं पाया जाता । प्रत्येक समाज अपने विचारवाले लोगों को विशेषता प्रदान करता है । जैसे मुसलमान और ईसाई मोमिन और ईसाइयों की सहायता करना तो अपना कर्त्तव्य समझते हैं परन्तु दूसरों के लिए इनके सम्प्रदाय में कोई स्थान नहीं । इसके विपरीत

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वैदिक धर्म संसार के लिए है। संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है। आर्यसमाज किसी एक देश या जाति विशेष से सम्बन्धित नहीं। एक आर्य के लिए आर्यसमाज के सदस्य ही नहीं अपितु संसार के दूसरे व्यक्ति, व्यक्ति ही नहीं पशु, पक्षी, कीट-पतंग आदि सभी प्राणी सहानुभूति दया और प्रेम के पात्र हैं। जहाँ दूसरे सम्प्रदायों के व्यक्ति अन्य प्राणियों को मारकर खा जाते हैं वहाँ वैदिकधर्म में बलि-वैश्वदेव यज्ञ द्वारा उनकी रक्षा और पालन-पोषण का विधान है और यह बलिवैश्वदेव प्रत्येक वैदिकधर्मी का नित्य कर्म है। यह नियम बिल्कुल पूर्ण है, इसे इससे अधिक सुधारना असम्भव है।

उपकार क्या है? शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति कहकर महर्षि ने उपकार को भी निश्चित कर दिया है। मतों में विशेषकर शारीरिक उन्नति पर ध्यान नहीं दिया जाता। उनके विचार में धर्म का सम्बन्ध स्वर्ग की बातों से है। परन्तु वे भूल जाते हैं कि हमारा शरीर आत्मा का रथ है। शरीर ही लौकिक और पारलौकिक उन्नति का साधन है। यदि शरीर स्वस्थ नहीं तो आत्मा कभी अपने गन्तव्य स्थान पर नहीं पहुँच सकेगा। ऋषि दयानन्द धर्म में शारीरिक उन्नति को महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं क्योंकि दुर्बल मनुष्य प्रभु को प्राप्त नहीं कर सकता। अतः शरीर को सर्वाङ्ग सुन्दर, सुडौल, अत्यन्त बलशाली, दृढ़ हृष्ट-पुष्ट, और स्वस्थ बनाना चाहिए। वैदिक धर्मोद्धारक महर्षि दयानन्द की दृष्टि में स्वस्थ शरीर स्वर्गारोहण की प्रथम सीढ़ी है।

शारीरिक उन्नति के पश्चात् आत्मिक उन्नति है। जिस समय मन सहित समस्त इन्द्रियसमूह आत्मा के वश में हो जाता है तथा अधर्म और अनीश्वरभाव, आसक्ति और अविवेकादि दुर्गुण नितान्त निर्मूल हो जाते हैं, धर्म और आस्तिकभाव, अनासक्ति और विवेकादि गुण अत्यन्त उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं एवं नाना-विध सांसारिक पदार्थों का संग्रह होने पर भी उनकी आत्मा जल पर कमलवत् कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता, उस अवस्था को आत्मिक उन्नति कहते हैं।

आत्मिक उन्नति को समझने के लिए आत्मा को समझना आवश्यक है। प्रत्येक प्राणधारी एक आत्मा है। प्रत्येक आत्मा अनादि है। आत्मा सदा से था, है और सदा रहेगा। आत्मा कर्म करने में स्वतन्त्र है। शुभ कर्मों द्वारा मनुष्य ऊपर उठ सकता है और बुरे कर्मों से नीचे गिरता है, अवनत होता है। आत्मा की सब से उच्च अव-स्था का नाम मुक्ति है। आर्यसमाज संसार के समस्त लोगों को इसी अवस्था पर ले जाना चाहता है। यदि संसार में कुछ भी व्यक्ति ऐसे देवता बन जाएँ तो वे सामा-जिक, राजनीतिक, शारीरिक और मानसिक शान्ति के केन्द्र होंगे। उनका प्रेम समस्त संसार को अपने प्रेम में मस्त बना देगा। ऐसे सदाचारी दूसरे व्यक्तियों की भी काया पलट देंगे। शक्तिशाली निर्बलों को नहीं सता सकेंगे। इस प्रकार एक नये संसार की सृष्टि होगी जहाँ आदर्शों का साम्राज्य होगा। वेद न्याय के ग्रन्थ होंगे और मनुष्यों की अपनी आत्माएँ ही जज होंगी। पाप और अधर्म अपराधी होंगे और स्वयं प्राय-श्चित्त ही जेलें होंगी। इस प्रकार संसार एक वैदिक स्वर्ग बन जाएगा।

पक्की ईंटों से निर्माण किया गया भवन ही दृढ़ होगा। इस प्रकार दृढ़ और शक्तिशाली शरीर तथा आत्मिक गुणों से विभूषित मनुष्यों के समूह से जिस समाज

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का निर्माण होगा वह भी उन्नत और और शक्तिशाली होगा। कभी किसी को दुःख प्राप्त होने पर ऐसी उन्नत समाज के सदस्य सहानुभूति और परोपकार से पीछे नहीं हटते, आर्यसमाज ने अपने अल्पकाल में थोड़ी सामाजिक उन्नति नहीं की। आर्यसमाज ने अनाथालय, विधवा-आश्रम, वनिता विश्राम मण्डल, गुरुकुल, कन्या पाठशाला, डी. ए. वी. स्कूल और कॉलेजों का सारे भारतवर्ष में एक जाल-सा बिछा दिया है। अवसर पड़ने पर आर्यसमाज के सदस्यों ने अपनी जान को हथेली पर रखकर, बाढ़-पीड़ितों, भूकम्प और अकाल-पीड़ितों की सराहनीय सहायता की है।

वैदिकधर्म एक सार्वभौमधर्म है। वैदिक-संस्कृति ही संसार की वरणीय संस्कृति हो सकती है। इस नियम में सामाजिक शब्द संकुचित अर्थ में प्रयुक्त न होकर विशुद्ध और विशाल अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। सामाजिक शब्द धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक और समाज सम्बन्धी सभी क्षेत्रों के लिए प्रयुक्त हुआ है।

वैदिक-राजनीति की दृष्टि से विश्व एक राष्ट्र होना चाहिए और यदि विश्व में चक्रवर्ती साम्राज्य World-federation की स्थापना हो जाए तो समस्त अशान्ति और भय शीघ्र दूर हो जाएँ।

वैदिक आर्थिक दृष्टिकोण भी अत्यन्त सुन्दर है।

मा गृधः कस्य स्विद्धनम्। —यजु० ४०।१

किसीके धन का अपहरण करने का प्रयत्न मत करो। इस एक ही शिक्षा से संसार के सारे संघर्ष और झगड़े समाप्त हो सकते हैं।

अज्येष्ठासो अकनिष्ठासः। —ऋ० ५।६०।५

हे मनुष्यो! न तुम में कोई बड़ा है न छोटा है, तुम सब समान हो। अतः परस्पर समान भाव से सबकी सब प्रकार की उन्नति करने में तत्पर रहो। वैदिक संस्कृति में गोरे-काले, रंग-रूप, जाति आदि का कोई भेदभाव नहीं है।

जो संसार में आकर भलाई नहीं करते उनका जीवन गूलर के फूल में रहने वाले कीड़े के सदृश व्यर्थ ही है। स्वतन्त्र भारत में आर्यसमाज की आवश्यकता पहले से भी अधिक है। आर्यजनों को अपनी बिखरी हुई शक्तियों को केन्द्रित करके वेद की इन दिव्य भावनाओं को और ऋषि के दिव्यस्वप्न को साकार रूप देने के लिए प्राणार्पण से जुट जाना चाहिए। अतः—

परोपकारी बन वीर! आओ नीचे पड़े भारत को उठाओ।

किसी से द्वेष मत करो जहाँ तक हो सके सबके साथ भलाई करो क्योंकि—

भलाई कर कि वह तुझ को भले कामों का फल देगा।
तेरी झोली वह आशा के फल और फूलों से भर देगा॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सातवाँ नियम

प्रीतिपूर्वक यथायोग्य व्यवहार

सब से प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्त्तना चाहिए।

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।

—यजु० ३६।१८

हम एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें, परस्पर प्रेमपूर्वक व्यवहार करें।

मायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्र । —ऋ० ५।३०।६

हे ऐश्वर्यशाली आत्मन्! मायावियों को मायाओं से मार दे।

आर्यों का दूसरों के प्रति वर्त्ताव इस नियम के अनुसार होगा। यह नियम वैदिक आचार-शास्त्र का सार है। इस नियम में दूसरों के प्रति व्यवहार के लिए तीन अति महत्त्वपूर्ण शब्द हैं—प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार और यथायोग्य। आर्यों के व्यवहार की आधारशिला विश्वप्रेम है। आर्य प्रेम की साक्षात् मूर्ति होंगे। परन्तु प्रेम में मनुष्य अन्धा हो जाता है। इसलिए सचेत करते हुए कहा—प्रेम करो, परन्तु अन्धे होकर नहीं।

प्रेम धर्मानुसार और यथायोग्य होना चाहिए। प्रेम वातावरण के अनुसार होना चाहिए। यदि कोई भयंकर जीव है तो क्षत्रिय का कर्तव्य है कि उसे मार दे। वैश्य के व्यापार सम्बन्धी कार्यों में यदि जंगली पशु कष्ट दें तो वह उन्हें मार सकता है। आत्मरक्षा के लिए आक्रमण करना अपराध नहीं है। जो मनुष्य जिस योग्य हो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए। योगेश्वर श्रीकृष्णजी का संदेश है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥

—गीता ४।११

जो मनुष्य मेरे साथ जैसा व्यवहार करते हैं मैं भी उनके साथ उसी प्रकार का व्यवहार करता हूँ। श्रीकृष्णजी समस्त मानवों को संदेश देते हुए कहते हैं, "हे मनुष्यो! तुम भी आततायियों के साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा ये तुम्हारे साथ करते हैं।" बात है भी ठीक—

कृते प्रति कृतिं कुर्याद्धिंसिते प्रतिहिंसितम् ।
अत्र दोषं न पश्यामि शठे शाठ्यं समाचरेत् ॥ —महाभारत ॥

आक्रमणकारी पर आक्रमण, हिंसक के साथ हिंसा और शठ के साथ शठता ही करे इसमें कोई दोष नहीं है। और भी—

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यः
तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः ।
मायाचारो मायया वर्तितव्यः
साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः ॥

—महा०उद्यो० ३७।७

जो मनुष्य जिसके प्रति जैसा व्यवहार करे उसके प्रति वैसा ही व्यवहार करना चाहिए यह धर्म है। ठगी से व्यवहार करनेवाले के साथ ठगी का व्यवहार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करना चाहिए। भला व्यवहार करनेवाले के साथ भलाई का व्यवहार करना चाहिए। योगेश्वर श्रीकृष्ण का जीवन इस का ज्वलन्त उदाहरण है। उन्होंने कंस शिशुपाल, जरासन्ध और दुर्योधन आदि छलियों का नाश छल से ही कराया था।

आत्म-संरक्षण भी धर्म है—

शरीरं धर्मसर्वस्वं रक्षणीयं प्रयत्नतः।
शरीरात्स्रूयते धर्मः पर्वतात्सलिलं यथा॥

शरीर धर्म का सर्वस्व है अतः इसकी प्रयत्न से रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि धर्म शरीर से ऐसे ही उत्पन्न होता है जैसे पर्वत से पानी। इसलिए जिस प्रकार से हो आत्मरक्षा और शत्रु का साम्मुख्य करना ही चाहिए। क्योंकि—

कपटी कुटिल मनुष्यों से जो जग में कपट न करते हैं।
वे मतिमन्द मूढ़ नर निश्चय पराभूत हो मरते हैं॥

जो मायावियों का माया के द्वारा संहार नहीं करते वे मूढ़बुद्धि लोग नष्ट होते हैं। महर्षि दयानन्दजी लिखते हैं कि—

मैंने परीक्षा करके निश्चय किया है कि जो धर्मयुक्त व्यवहार में ठीक-ठीक वर्त्तता है उसको सर्वत्र सुख-लाभ और जो विपरीत वर्त्तता है, वह सदा दुःखी होकर अपनी हानि कर लेता है।"

—व्यवहारभानु

यथायोग्य व्यवहार के सम्बन्ध में नीति में कहा है—

नात्यन्तसरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम्।
छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः॥

संसार में अत्यन्त सरल होकर नहीं रहना चाहिए। वन में जाकर देखो वहाँ जितने टेढ़े वृक्ष होते हैं वे सब खड़े रहते हैं परन्तु जो सीधे होते हैं वे सब काट लिये जाते हैं। सरल, साधु, सदाचारी पुरुषों के साथ कुटिलता मत करो उनके साथ सरलता का व्यवहार करो परन्तु दुष्टों के साथ टेढ़ापन अत्यन्त आवश्यक है।

पन्रतु दुष्टों को दण्ड देते समय भी उनके कल्याण की भावना हृदय में अवश्य होनी चाहिए।

धर्मानुसार का यह अर्थ नहीं है कि आर्यसमाजस्थों के साथ तो प्रेम का व्यवहार करें और अन्य मतावलम्बियों के साथ विरोध किया करें। नहीं, जो भले हैं उनके साथ भलाई और जो दुष्ट हैं, आततायी हैं, उन्हें दण्ड दिया करें।

महात्मा गांधी के अहिंसावाद और लेनिन के साम्यवाद के मुकाबले में आर्यसमाज का यथायोग्यवाद उपस्थित किया जा सकता है।

आठवाँ नियम

विद्या का प्रकाश

अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

केतुं कृण्वन्नकेतवे। —यजु० २९।३७

अज्ञानियों को ज्ञान दो।

प्रत्येक आर्य का यह कर्तव्य है कि वह अविद्या को नष्ट करके ज्ञान का प्रकाश करे। उलटे, विपरीत ज्ञान का नाम अविद्या है। महर्षि पतञ्जलि ने अविद्या

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का लक्षण इस प्रकार किया है—

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ।

—यो० २।५

अनित्य को नित्य, अपवित्र को पवित्र, दुःख को सुख और अनात्मा को आत्मा समझने का नाम अविद्या है। आर्यों को इस अविद्या का नाश करना चाहिए।

यथार्थज्ञान अर्थात् सीधी और सच्ची समझ का नाम विद्या है। अनित्य को अनित्य, अपवित्र को अपवित्र, दुःख को दुःख, अनात्मा को अनात्मा तथा नित्य को नित्य, पवित्र को पवित्र, सुख को सुख और आत्मा को आत्मा जानने और मानने का नाम विद्या है। आर्य सभासदों को इसकी वृद्धि करनी चाहिए।

विद्याहीन मनुष्य न ईश्वर को पा सकता है, न सुखपूर्वक जीवनयापन कर सकता है।

अविद्या के समान मनुष्य का दूसरा शत्रु नहीं है। महाभारत में कहा है—

एकः शत्रुर्न द्वितीयोऽस्ति शत्रुरज्ञानतुल्यः पुरुषस्य राजन् ।
येनावृतः कुरुते सम्प्रयुक्तो घोराणि कर्म्माणि सुदारुणानि ।।

—महा० शा० २९७।२८

राजन्! जीव का एक ही शत्रु है, उसके समान दूसरा कोई शत्रु नहीं है। वह शत्रु है अज्ञान। उस अज्ञान से आवृत्त और प्रेरित होकर मनुष्य अत्यन्त निर्दयतापूर्ण तथा भयंकर कर्म कर बैठता है।

यथार्थज्ञान, विद्या का प्रकाश करने के लिए पहले अविद्या का नाश करना होगा। अविद्या के नाश होने पर ही विद्या का विस्तार हो सकेगा। यदि संसार के समस्त मानव अपने ज्ञान को दूसरों को देने का प्रयत्न करें तो थोड़े ही समय में समस्त संसार विद्या के प्रकाश से प्रकाशित हो सकता है। परन्तु यहाँ तो कथा ही उलटी है। एक तो हम कुछ जानते ही नहीं, और यदि किसी प्रकार कुछ ज्ञान हो जाए तो फिर हम यह प्रयत्न करते हैं कि कोई दूसरा इसे जान न ले। बहुत-से व्यक्ति अपनी विद्या को अपने साथ ही लेकर संसार से चले जाते है।

आर्यसमाज के इस नियम की शिक्षा और किसी सम्प्रदाय में नहीं मिलेगी। हाँ, इस के विपरीत कुरान में लिखा है, "हमने काफिरों के मुख पर मोहरें लगा दीं, आँखों पर झिल्ली लगाई और कानों में सिक्का भर दिया कि वे खुदा की बातें न कर सकें।" ईसामसीह ने भी ऐसा ही कहा है, "मैं सूअरों के आगे मोती फेंकने नहीं आया।" इसका स्पष्ट अर्थ है अन्य मतावलम्बियों को ज्ञान न देना। संसार में वैदिक-धर्म ही है जो अविद्या को हटाकर प्रत्येक मानव को विद्या के भूषण से विभूषित करना चाहता है। महर्षि मनु महाराज ने कहा भी है—

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ।।

—मनु० ४। २३३

संसार में विद्यादान से बढ़कर कोई दान नहीं है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नवाँ नियम

सब की उन्नति

प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते ॥

ऋ० १०।१९१।२

तुम सब एक साथ चलो, तुम सब एक साथ बोलो, तुम्हारे मन एक जैसा जानें। जिस प्रकार पूर्ण व्यवहार-कुशल ज्ञानी लोग अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं तुम भी वैसा ही करो।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अकेला रहकर उन्नति के मार्ग में एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता। व्यक्ति की उन्नति समाज के बिना असम्भव है। एक मनुष्य की उन्नति और अवनति उसके पड़ौसियों तथा देश की उन्नति और अवनति पर निर्भर है। यदि हमारे ग्राम, पथ, घाट आदि स्वच्छ न होंगे तो हम स्वस्थ नहीं रह सकते। यदि हम अपने पुत्र को उत्तम चरित्रयुक्त बनाना चाहते हैं तो हमें ग्रामवासियों को भी उत्तम चरित्रयुक्त बनाना होगा। यदि स्वास्थ्य के नियमपालन में आपका पड़ौसी आपका साथ नहीं देता तो आप स्वस्थ कैसे रह सकते हैं? यदि किसी देश में सारे ही मूर्ख एवं अशिष्ट बसते हों तो वहाँ किसी विद्वान् का उत्पन्न होना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इस प्रकार व्यक्तिगत सुख और दुःख समाज के सुख और दुःख पर निर्भर है अतः यह नियम सब की उन्नति में अपनी उन्नति का पाठ पढ़ाता है।

किसी भी समाज, देश और राष्ट्र की उन्नति में स्वार्थ सबसे बड़ा बाधक है। स्वार्थ के कारण उन्नति रुक जाती है। प्रत्येक व्यक्ति अपना उल्लू सीधा करना चाहता है चाहे समाज की कितनी ही हानि क्यों न हो जाए। इस मनोवृति को दूर करने के लिए इस नियम में यह विधान किया गया है कि मनुष्य को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए। कितनी भव्य भावना है! कैसा सुन्दर नियम है! एक व्यक्ति का सुख समस्त समाज पर निर्भर है। मनुष्य एक-दूसरे के साथ इस प्रकार सम्बन्धित है कि वह समाजरूपी शृंखला की किसी भी कड़ी को हानि नहीं पहुँचा सकता।

प्रत्येक व्यक्ति अपनी उन्नति करे, परन्तु उसे अपनी उन्नति में ही संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। उसे दूसरों की उन्नति की ओर भी पूर्ण ध्यान देना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति यह सोचे कि मैं आगे बढ़ने के लिए, उन्नति करने के लिए आया हूँ पीछे पड़ने के लिए नहीं, परन्तु यह तभी हो सकेगा जब हम दूसरों की उन्नति में साधक हों जिससे वे हमारी उन्नति में साधक बनें। प्रत्येक व्यक्ति उन्नति करता हुआ, उन्नति की सीढ़ी पर खड़ा होकर दूसरों को नीचे से ऊपर खींचे। उसकी यह दिव्य कामना होनी चाहिए—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

सब सुखी रहें, सब नीरोग हों, सब का भला हो, कोई दुःखी न रहे ।

यदि इस नियम पर आचरण किया जाए तो सब लड़ाई-झगड़े समाप्त हो जाएँ । फिर League of Nations तथा U. N. O. जैसे संगठनों की आवश्यकता ही न रहे और संसार शान्ति-निकेतन बन जाए ।

दसवाँ नियम

व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध

सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥

—य० ४० । ११

जो मनुष्य समाजधर्म और व्यक्तिधर्म दोनों को एक साथ जानता है, अर्थात् दोनों का साथ-साथ पालन करता है वह व्यक्तिधर्म से मृत्यु को पार करके समाजधर्म से अमर हो जाता है ।

यह नियम व्यक्तिगत और सामाजिक संघर्ष को दूर करने के लिए बनाया गया है । व्यक्ति और समाज परस्पर अवलम्बित और एक-दूसरे के पूरक हैं । व्यक्ति और समाज के बीच का सम्बन्ध—

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामंजनपदस्यार्थे ह्यात्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥

महा० उद्यो० ३७ । १

इस श्लोक में बहुत अच्छी प्रकार प्रदर्शित किया गया है । इस प्रकार अन्तिम महत्त्व व्यक्ति को है और व्यक्ति को लेकर ही समाज का महत्त्व हैं । John Stuart Mill के अनुसार व्यक्ति विकास के लिए व्यक्ति-स्वातन्त्र्य आवश्यक है । व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की हत्या करके आदर्श व्यक्ति-विकास सम्भव नहीं । यह नियम वैयक्तिक स्व-तन्त्रता प्रदान करता है । प्रत्येक व्यक्ति स्वहितकारी नियमों से स्वतन्त्र है । अपना भवन किस प्रकार का बनाना, किस प्रकार का भोजन करना, कैसे वस्त्र धारण करना आदि कर्म प्रत्येक के हितकारी नियम हैं ऐसे नियमों में प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है ।

परन्तु स्वतन्त्रता का अर्थ उच्छृङ्खलता नहीं है । प्रत्येक व्यक्ति के लिए सामाजिक सर्वहितकारी नियमों का जानना और पालना परमावश्यक है । सामाजिक सर्व-हितकारी नियमों में पञ्चमहायज्ञ, सोलह संस्कार, वेद का स्वाध्याय, परोपकार, सब

१. कुल की रक्षा के लिए एक को त्याग देना चाहिए, ग्राम की रक्षा के लिए कुल छोड़ देना चाहिए, जनपद के लिए ग्राम और आत्मा की रक्षा के लिए पृथिवी को छोड़ देना चाहिए ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

की उन्नति में अपनी उन्नति आदि सम्मिलित हैं। इनको न करने से समाज की हानि होती है और समाज की व्यवस्था टूटती है। मनुष्य चाहे कितना ही गुणी हो, परन्तु अकेला मनुष्य दुःख पाता है और कष्ट उठाता है। जैसे मोती सोने में जड़े जाने की अपेक्षा रखता है इसी प्रकार मनुष्य समाज में रहने की इच्छा करता है। पशु जंगल में रहकर जीवन व्यतीत कर सकता है परन्तु मनुष्य अपने कार्यों के लिए दूसरों पर निर्भर है। मनुष्य के लिए यह सम्भव नहीं कि वह स्वयं ही जोते, बोये, स्वयं ही काटे, स्वयं ही सीये और बुने। इसीलिए मनुष्य को सामाजिक प्राणी कहा गया है। जब मनुष्य समाज का एक अंग है तो उसके लिए समाज के नियमों का पालन करना भी आवश्यक है। इस प्रकार प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र और प्रत्येक सर्व-हितकारी नियम में सब परतन्त्र रहें तभी व्यक्ति और समाज दोनों की उन्नति हो सकती है।

नियमों पर एक दृष्टि

पहला नियम यह बताता है कि प्रभु ही ज्ञान का स्रोत है। दूसरे नियम में उस ईश्वर का स्वरूप बताया गया है। तीसरा नियम यह बताता है कि वेद ही सत्य ज्ञान और अखिल विद्याओं का भण्डार है अतः इसका पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना आर्यों का परमधर्म है। इसके साथ ही चौथे, नियम में इस परम धर्म को पालन करते हुए सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने के लिए सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। पाँचवें नियम में पुनः प्रत्येक कार्य को सत्य और असत्य के विवेक से करने का आदेश है। छठा नियम आर्यसमाज के उस मुख्य उद्देश्य को बताता है जिसके लिए महर्षि ने आर्यसमाज की स्थापना की थी। सातवाँ नियम यह बताता है कि मनुष्य को समाज में रहते हुए सबके साथ प्रीतिपूर्वक यथायोग्य वर्त्तना चाहिए। परन्तु प्रीति में मनुष्य अपने कर्तव्य से विमुख हो जाता है जिससे अविद्या फैलने का भय है, अतः ऋषि ने कहा अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए। अविद्या का नाश करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को यह निश्चय करना चाहिए कि मैं अपनी उन्नति से सन्तुष्ट न रहकर सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझूँगा तथा अपने हितकारी नियमों में स्वतन्त्र रहता हुआ भी सामाजिक सर्वहितकारी नियमों में परतन्त्र रहूँगा।

महर्षि दयानन्द ने अपनी योगमयी, तपस्वी और ऋषि-बुद्धि से वेद-शास्त्र आदि सहस्रों ग्रन्थों का मन्थन करके ये नियम हमारे समक्ष रक्खे हैं। तनिक गम्भीर दृष्टि से देखें तो कौनसी बात रह गई है जिसका महर्षि ने वर्णन न किया हो। पाठकों से निवेदन है कि वे गम्भीरता पूर्वक इन नियमों पर विचार करें और यदि वे उनको सर्वहितकारी, मानव उन्नति में सहायक और कल्याणकारी समझें तो आर्यसमाज का सदस्य बनकर आर्यसमाज के कार्यों में सहयोग दें और महर्षि दयानन्द के दिव्य स्वप्नों को साकार करने में प्रयत्नशील बनें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यसमाज के दस नियमों का पद्यानुवाद

रचयिता श्री रविदत्तजी शास्त्री

सब सद् विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं।
है आदि मूल सब का परमेश्वर ऋषिवर यह बतलाते हैं ॥१॥
वह प्रभु सत्, चित्, आनन्दरूप और निराकार शुभ सत्ता है।
है सर्वशक्ति का स्रोत दयालु, अनुपम अज व अनन्ता है ॥
वह निर्विकार, अनुपम, अनादि, सर्वोत्तम न्याय विधाता है।
सर्वेश्वर, सर्वाधार, अजर और अमर, अभय सुखदाता है ॥
सर्वान्तर्यामी है पवित्र वही नित्य सृष्टि का कर्त्ता है।
सब का उपास्य है देव वही दुःख द्वन्द्व सभी के हर्त्ता हैं ॥२॥
सद् विद्याओं के स्रोत वेद, उनका पढ़ना, गुनना सुनना।
है आर्य मात्र का परमधर्म, सबको उनके रंग में रंगना ॥३॥
हैं सत्य असत्य जगत् में दो निर्णीत शुभाशुभ पथ माने।
है आर्य मात्र का व्रत पुनीत वह सत्य सुने, माने, जाने ॥४॥
है धर्मप्राण आर्यों का जीवन, सत्य असत्य विवेचन ही।
रहकर असत्य से दूर सदा, शुभ सत् पथ का निर्देशन ही ॥५॥
कर स्वस्थ देह, उन्नत-आत्मा, और शुभ समाज गौरवशाली।
करते जग का उपकार आर्य, बनकर जग उपवन के माली ॥६॥
है प्रेम, धर्म और नीतिपूर्ण, आर्यों का शुभ आचार सदा।
और प्रीतिपूर्वक, धर्म सहित, शुभ यथायोग्य व्यवहार सदा ॥७॥
खो अन्धतमस् अविद्या का, विद्या का सूर्य प्रकाशित कर।
आलोक ज्ञान का बिखराते हैं, आर्य सदा भूमण्डल पर ॥८॥
निज उन्नति से सन्तुष्ट नहीं, रहते हैं आर्य कभी जग में।
हैं प्राणि-मात्र को साथ लिए, चलते शुभ उन्नति के मग में ॥९॥
परतन्त्र रहो सब के हितप्रद, सामाजिक नियम विधानों में।
बनकर स्वाधीन सदा विचारो निज हित के सुखद तरानों में ॥१०॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्य शब्द का वास्तविक अर्थ

[डॉ० शिवपूजन सिंह एम० ए०]

आर्यसमाज के प्रवर्तक **महर्षि दयानन्द जी सरस्वती** 'आर्य' शब्द के सम्बन्ध में लिखते हैं—"आर्य—जो श्रेष्ठ स्वभाव, धर्मात्मा, परोपकारी, सत्य विद्यादि गुणयुक्त और आर्यावर्त देश में सब दिन से रहने वाले हैं, उनको आर्य कहते हैं।"[1] "जैसे 'आर्य, श्रेष्ठ और 'दस्यु' दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं, वैसे ही मैं भी मानता हूँ।"[2]

"श्रेष्ठों का नाम 'आर्य' विद्वान् देव और दुष्टों के 'दस्यु' अर्थात् डाकू-मूर्ख नाम होने से 'आर्य' और 'दस्यु' दो नाम हुए।···आर्यों में पूर्वोक्त प्रकार से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भेद हुए। द्विज विद्वानों का नाम 'आर्य' और मूर्खों का नाम शूद्र और 'अनार्य' अर्थात् अनाड़ी नाम हुआ।"[3]

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के लेख से ही स्पष्ट प्रकट होता है कि आर्यावर्त (भारतवर्ष) में जो सदा रहते आए हैं और जिनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चार भेद हैं। जो विद्वान् देव हैं वे **'आर्य'** हैं वर्तमान काल में मुसलमानों के आगमन के पश्चात् यही 'आर्य' जाति भूल से अपने को 'हिन्दू' कहती है।

व्याकरण से सिद्धि— "अर्यः स्वामिवैश्ययोः" (अष्टाध्यी ३/१/१०३) इस सूत्र से स्वामी और वैश्य अर्थ में 'ऋ' धातु से 'यत्' प्रत्यय होकर 'ऋयत्' बना और तकार को 'इत्' संज्ञा हुई।

"सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः" से गुण होकर "उरण् रपरः" से रपर हो "अर्य" बना। अब इसकी प्रातिपदिक संज्ञा होकर 'सु' विभक्ति आयी और 'सु' को 'रुत्व' विसर्ग होकर 'अर्यः' बना।

---

१. "आर्योद्देश्य रत्नमाला"४० २. "सत्यार्थप्रकाशः, स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः २९
३. "सत्यार्थ प्रकाशः, अष्टम-समुल्लास।

["ऐसी व्यवस्था होते हुए हमारे देश का नाम 'आर्यस्थान' 'आर्यखण्ड' होना चाहिए, सो उसे छोड़कर न जाने 'हिन्दुस्थान' यह नाम कहाँ से आ निकला ? भाई श्रोतागण ! 'हिन्दु' शब्द का अर्थ काला, काफिर, चोर इत्यादि है और हिन्दुस्थान कहने से काले, काफिर, चोर लोगों की जगह अथवा देश ऐसा अर्थ होता है। भाई ! इस प्रकार का बुरा नाम क्यों ग्रहण करते हो ? और आर्य अर्थात् श्रेष्ठ अथवा अभिज्ञात इत्यादि और आर्यावर्त कहने से ऐसों का देश, ऐसा अर्थ होता है। क्या तुम अपना मूल का नाम भी भूल गए ? हां, हम लोगों की यह स्थिति देखकर किसके हृदय को क्लेश न होगा ? अस्तु, सज्जन जन ! आज से 'हिन्दु' नाम का त्याग करो और आर्य तथा आर्यावर्त इन नामों का अभिमान करो। गुणभ्रष्ट हम लोग हुए तो हुए, परन्तु नाम भ्रष्ट तो हमें न होना चाहिए।"—['पूना प्रवचन' आठवां प्रवचन, पृष्ठ ९५-९६ मार्च १९६९ ई० ऋषि देवी रूपलाल कपूर पब्लिक ट्रस्ट, देहली]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वामी और वैश्य से भिन्न अर्थ में 'ऋ' धातु से "ऋहलोर्ण्यत्" (अष्टा० ३/१/१२४) इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय होकर 'ण्यत्' में 'णकार' और 'तकार' की इत्संज्ञा होकर लोप हो गया।

"अचो ञ्णिति" (अष्टा० ७/२/११५) इस सूत्र से 'आ' वृद्धि और 'रपर' होकर 'आर् य' बना। पूर्ववत् प्रातिपदिक संज्ञादि होकर 'आर्यः' बना।

"आर्यो ब्राह्मणकुमारयोः" (अष्टा० ६/२/५८) सूत्र तथा अन्य कई स्थानों में 'आर्य' शब्द का उल्लेख है। ब्राह्मण तथा कुमार शब्द उत्तरपद रहते कर्मधारय समास में पूर्वपद स्थित (आर्यः) आर्य शब्द को विकल्प से प्रकृतिस्वर होता है।

श्री यास्काचार्य की निरुक्तिः—

"यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुष्याय दस्रा।
अभिदस्युं बकुरेणा धमन्तोरू ज्योतिश्चक्रथुरार्याय॥"
—[ऋ० १/११७/२१]

इस मंत्र में आये 'आर्य' शब्द का अर्थ यास्काचार्य जी करते हैं—
"..........आर्य ईश्वरपुत्रः"।

पं० चन्द्रमणि जी 'विद्यालङ्कार', पालीरत्नः—आर्यः="ईश्वरपुत्रः' अरिः ईश्वरस्तस्यापत्यम् आर्यः।[1]

पं० भगवद्दत्त जी बी० ए०—"आर्य का अर्थ है' ईश्वर का पुत्र।"[2]

श्रीनगेन्द्र नाथ वसु 'प्राच्य विद्यामहार्णव', सिद्धान्तवारिधि, एम. आर. ए. एस.="ईश्वर के पुत्र का नाम आर्य है।"[3]

महामहोपाध्याय श्रीछज्जूराम शास्त्री, विद्यासार, विद्यावागीश पं० देव शर्मा शास्त्री तथा आचार्य श्री भगीरथ शास्त्री—"आर्याय ईश्वर-पुत्राय आर्य अर्थात् ईश्वर का जो पुत्र है, ईश्वर की आज्ञा-वेदानुकूल आचरण करने वाले के लिए।"[4]

इन विद्वानों ने स्पष्टीकरण कर दिया कि 'वेदानुकूल आचरण करने वाले ही ईश्वर पुत्र हैं।' इससे मुसलमान व ईसाई इस कोटि में नहीं आ सकते हैं, क्योंकि वे वेदानुकूल आचरण नहीं करते हैं।

ऋ० १/११७/२१ के **भाष्य में महर्षि दयानन्द जी सरस्वती** लिखते हैं—

---

१. "वेदार्थ दीपक निरुक्त भाष्य" पूर्वार्ध, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ४३८,
२. "निरुक्त शास्त्रम् भाषाभाष्य" प्रथम संस्करण पृष्ठ ३६८ [संवत् २०२१ वि० श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर]
३. "सचित्र हिन्दी विश्वकोष" द्वितीय भाग, पृष्ठ ६७३ [सन् १९१५ ई. कलकत्ता संस्करण],
४. "निरुक्त "व्याख्या, पृष्ठ ३०७ [सन् १९६३ ई० सर्वश्री मेहरचन्द्र लक्ष्मण दास, संस्कृत पुस्तकालय, प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता २७३६ कूचा चेलां, दरियागंज दिल्ली-६ द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण],

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

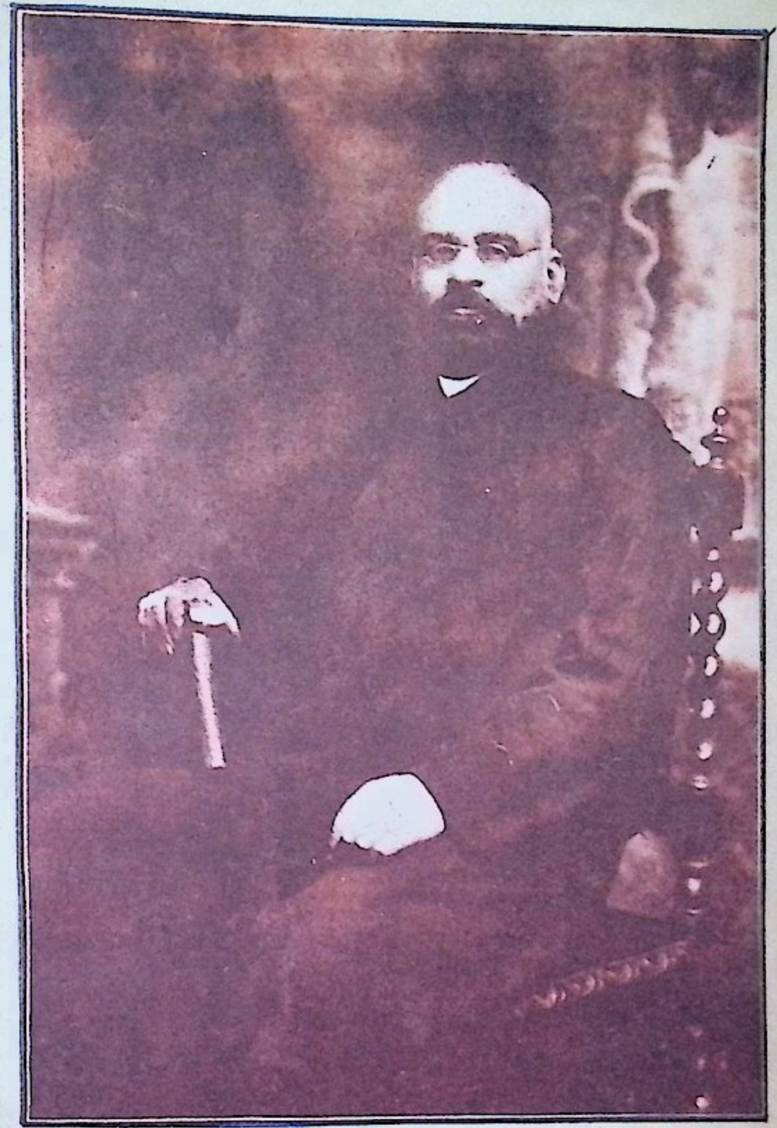

श्री शाम जी कृष्ण वर्मा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"'...(आर्य्याय) आर्य्यस्येश्वरस्य पुत्रवद्वर्त्तमानाया...।"

=ईश्वर के पुत्र के तुल्य वर्तमान धार्मिक मनुष्य के लिए ।'"[1]

अपने भाष्य की पुष्टि में उन्होंने' निरुक्त ६/२६ का प्रमाण उद्धृत किया है।

निघण्टु (२/२२) में ईश्वर नाम पर 'अर्य' शब्द परिपठित है। उसी से अपत्यार्थ में 'आर्य' शब्द बनता है।

पाश्चात्य पण्डितों द्वारा 'आर्य' शब्द का विचित्र अर्थ और उसकी आलोचना

"पाश्चात्य पण्डित 'अर्' धातु से 'अर्य' शब्द बनाते हैं। 'अर्' धातु का अर्थ भूमिकर्षण है। लेटिन, ग्रीक (यूनानी), ऐंग्लो-सेक्षन, अंग्रेजी, रूसी, आयरिश, कणिश, वेल्सी, प्राचीन नर्स, लिथुयेनिक प्रभृति अनेक यूरोपीय भाषा में हल व कृषि वाचक शब्द इसी 'अर्' धातु से निकलते हैं। उनके मतानुसार कृषि कार्य करने से ही इस जाति का नाम 'आर्य' पड़ा है। उक्त यूरोपीय जाति भी आर्य वंश से समुद्भूत हैं रेवरेण्ड कृष्ण मोहन बन्द्योपाध्याय के मत से उसीरिया की शिल्प लिपि 'अरि' शब्द हलवाचक ठहरता, जो आर्य का प्रतिरूप हो सकता है। अतएव पाश्चात्य पण्डितों के मत से आर्य नाम को प्राचीन कृषक जाति का द्योतक मानना पड़ता है।

आलोचना—"क्या आर्य कृषक थे? प्राचीन जाति के मध्य कृपिकार्य प्रधान जीवनोपाय रहने से क्या आर्य शब्द कृषि पद वाच्य हो सकता है? वैदिक और लौकिक उभयविध प्रयोग में आर्य शब्द शत-शत बार आया है। किन्तु आर्य शब्द अथवा इसके मूल धातु ऋ से कहीं भूमिकर्षण का अर्थ नहीं निकलता। जहाँ आर्य शब्द पड़ा, वहीं, 'श्रेष्ठ' और 'विज्ञ' प्रभृति अर्थ से जुड़ा है। इसीसे सायण का 'अरणीय' अर्थ ही 'आर्य' शब्द का मूल अर्थ है। हम समझते हैं, कि वैदिक समय में इस जाति के लोग नाना स्थानों में जाकर रहते थे। इसी से आर्य नाम निकाला होगा।

पारसियों के अवस्ता नामक प्राचीन धर्मशास्त्र में 'ऐर्य' शब्द 'श्रद्धास्पद' और 'साधारण' दोनों अर्थ पर लगा है। कावशजी एदले जी कांगे ने 'बन्दीदाद' का अनुवाद जो गुज़राती में किया, उसके शेष अभिधान में 'ऐर्य' शब्द का प्रकृत अर्थ 'अर्य' और 'आर्य, लिया है। अरमनी भाषा में 'अरि' ईरानी और साहसिक को कहते हैं। अतएव वेद व्यतीत एशियाखण्ड को अपर भाषाओं में भी जब विकृताकार प्राप्त आर्य शब्द का अर्थ हल वा भूमिकर्षण लगना कठिन पड़ता, तब समझ पर नहीं चढ़ता, पाश्चात्य पण्डितों द्वारा कथित आर्य शब्द के मूल अथवा 'अर्' धातु के अर्थ से कहाँ तक हल अथवा भूमिकर्षण का भाव कढ़ता है।

सायणाचार्य ने 'ऋग्भाष्य' में आर्य शब्द का अर्थ नाना प्रकार लगाया है—'(१) विदुषोऽनुष्ठावीन् (१/५१/८), (२) विद्वांसस्तोतारः, (३) विदुषे (१/११७/-२१) (४) अरणीयं सर्वगन्तव्य (१/२३०/८); (५) उत्तम वर्ण त्रैवर्जिकम् (३/३४/-८); (६) मनवे (४/२६/२); (७) कर्मयुक्तानि (६/२२/१०), (८) कर्मानुष्ठातृत्वेन श्रेष्ठानि (६/३३/१०)'

अर्थात्-१. विज्ञ यज्ञानुष्ठाता, २. विज्ञ स्तोता, ३. विज्ञ, ४. अरणीय वा

---

१. "ऋग्वेद भाष्यम् "द्वितीयभागात्मकम्" पृष्ठ ५५८ [संवत् २०१९ वि. अजमेर तृतीयावृत्ति]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सर्वगन्तव्य, ५. उत्तम वर्ण त्रैवर्णिक, ६. मनु, ७. कर्मयुक्त, और ८. कर्मानुष्ठान सेश्रेष्ठ।

....

इस प्रकार 'आर्य' शब्द से मानव जाति का भाव निकलता है।

............[1]

अमरहुतात्मा, धर्मवीर पं० लेखराम जी 'आर्य पथिक' की आलोचना—

"खेद का स्थान है कि जिनको मस्दर या धातु का ज्ञान नहीं वह भी आक्षेप करने पर कटिबद्ध हो जाते हैं। हजरत, 'आर' धातु नहीं किन्तु 'ऋ' है जिससे संस्कृत में 'आर्य्य' और 'अर्य्य' नाम बने हैं। और इसी से फारसी, पहलवी में ईरानी बना है परन्तु आर्य्य व अर्य्य भी एक नहीं वह और रीतियों से बना है और यह और से पहला समस्त जाति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का नाम है और दूसरा केवल वैश्य का जैसा वैश्यों के कर्म वर्णन में मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक ९० में—

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक् पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च॥

पशुओं की रक्षा, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना, व्यापार करना, ब्याज लेना, खेती करना, सात काम लिखे हैं। और पंजाबी मसल हैं—उत्तम खेती, मध्यम व्यापार, निषिद्ध चाकरी, भीख गमार। आर्य के अर्थ संस्कृत के अनुसार महान् श्रेष्ठ, विद्वान्, धार्मिक व ईश्वरभक्त के हैं और ऐसा ही कथन मैक्समूलर साहब का भी है (देखो 'सायन्स ऑव द्री लैंग्वेज' पृष्ठ २७५) आर्य के अर्थ 'महान् विद्वान्, देवता और सभ्य व शीलवान् देवताओं की प्रतिष्ठा करने वाला है क्योंकि यह शब्द दस्युओं के विरुद्ध है।

और समस्त आर्य कभी खेती नहीं करते थे किन्तु आदि ही से वह चार भागों में विभाजित हैं जिसकी आज्ञा पवित्र वेद में भी है। मानों वही शिक्षा इसकी जड़ है अर्थात् विद्या का पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना, दान देना-लेना जो मुख्य कर्म हैं उनका करने वाला ब्राह्मण। विद्या का पढ़ना, दान देना, यज्ञ करना देश व जाति की रक्षा करना जो शारीरिक बल सम्बन्धी हों इनका कर्त्ता क्षत्रिय और उपर्युक्त लेखानुसार देशाटन करके व्यापार करने हारा वैश्य। और महामूर्ख सेवक का नाम शूद्र है। परन्तु सदा आर्य्य जाति में से वैश्य कृषि करने हारे रहे या खेती करने हारा वैश्य नाम से प्रसिद्ध रहा, पर समस्त मनुष्यों का कार्य प्राकृतिक नियमानुसर खेती ही करना नहीं है नहीं तो विद्या, शूरता, रक्षा, देश की सेवा, परोपकार कौन करे। और इसी प्रकार ईरानी जाति भी विभक्त है।.........[2]"

कोषकारों के मत में आर्य शब्द

(क) श्री अमर सिंह ने **"अमरकोष"** काण्ड २, श्लोक ३ में लिखा है—

---

१. "सचित्र हिन्दी विश्व कोष" द्वितीय भाग, पृष्ठ ६७१-६७२।

२. "आर्य हिन्दू और नमस्ते का अनुसंधान" पृष्ठ ८-९ [सन् १९२९ ई० वैदिक पुस्तकालय, मुरादाबाद द्वारा प्रकाशित, तृतीयावृत्ति]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"महाकुलकुलीनार्य सभ्यसज्जनसाधवः ।"

अर्थात्—महाकुल, कुलीन, आर्य्य, सभ्य, सज्जन और साधु शब्द समानार्थ वाची हैं।

(ख) **पं० वामन शिवराम आप्टे** अपने "संस्कृत-हिन्दीकोष"[1] में लिखते हैं—आर्य (वि०) [ऋ+ण्यत्] १. आर्यन, या अर्य के योग्य, २. योग्य, आदरणीय सम्माननीय, कुलीन, उच्च पदस्थ—यदार्यमस्यामभिलापि मे मनः-श० १/२२,······ ४. सम्माननीय या आदरणीय पुरुष प्रतिष्ठित व्यक्ति, ५. सत्कुलोत्पन्न पुरुष ६. सच्चरित्र पुरुष ········ ।"

(ग) **पं० रामस्वरूप शास्त्री**, **एम० ए०** (संस्कृत, हिन्दी), **एम० ओ० एल.**, विद्यावाचस्पति, प्रोफेसर, हंसराज कालेज दिल्ली अपने कोष[2] में लिखते हैं—"आर्य, वि. (सं) श्रेष्ठ, भद्र, २. मान्य, पूज्य, ३. कुलीन समाज पुँ (सं) महर्षि दयानन्द संस्थापित समाज विशेष ।"

(घ) 'शब्दकल्पद्रुम, अद्भुतकोष, रामकोष, मेरुतन्त्र, मेदिनीकोष में **'हिन्दु'** शब्द देख कर पौराणिक पण्डित यह कहते हैं कि 'हिन्दु' शब्द पुराना है जिसका अर्थ होता है-'जो हिंसा को दूषित करता है; दुष्टों को दण्ड देने वाला'······आदि ।

आलोचना—जिन कोषों में 'हिन्दू' शब्द की चर्चा है वे सब आधुनिक हैं। वे सभी कोष मुसलमानों के आर्यावर्त में आने के बाद बने हुए हैं। मुसलमानों के पूर्व के किसी भी ग्रन्थ में 'हिन्दू' शब्द नहीं मिलता । शब्दकल्पद्रुम, अद्भुतकोष, रामकोष को बने हुए तो सौ वर्ष भी नहीं व्यतीत हुए होंगे । मेरुतंत्र दो-तीन सौ वर्ष प्राचीन है किन्तु वह भी मुसलमानी काल का है। अतः 'हिन्दू' शब्द अत्यन्त अर्वाचीन है। किभी भी पुराण व तान्त्रिक ग्रन्थ यहाँ तक कि तुलसीकृत 'रामचरितमानस' तक में भी 'हिन्दू' शब्द नहीं है।

बंगाल के विख्यात पौराणिक पण्डित महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के कट्टर विरोधी **पं० तारानाथ तर्कवाचस्पति** ने "वाचस्पत्याभिधानकोष" बनाया है, जो 'शब्दकल्पद्रुम' से कई गुणा बड़ा है। उसमें उन्होंने 'हिन्दू' पद पर 'शब्दकल्पद्रुम'

हिन्दूधर्मप्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्तिनः ।"
हीनं च दूषयन्त्येव हिन्दुरित्युच्यते प्रिये ॥
पूर्वाम्नाये नवशतं षड्शीतिः प्रकीर्तिताः ।
फिरङ्गिभाषया मन्त्रास्तेषां संसाधनात् कलौ ॥
अधियामण्डलानाञ्च संग्रामेस्वपराजितः ।
इंग्रेजा नवषट्पञ्च लण्ड्रजाश्चापि भाविनः ॥

(मेरुतंत्र प्र० २३)

वाला अर्थ उद्धृत कर जब विचार किया कि ये श्लोक उस समय के बने हैं जबकि

१. "संस्कृत-हिन्दी कोश" पृष्ठ १५९ [सन् १९६६ ई० मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-७ द्वारा प्रकाशित]

२. "आदर्श हिन्दी-संस्कृत-कोश" पृष्ठ ५१ [१८५७ ई० में चौखम्बा विद्याभवन, चौक, वाराणसी-१ द्वारा प्रकाशित]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लन्दन निवासी युद्धवीर अंग्रेज जाति भारत आ चुकी थी, तब निरुपाय होकर कोषकार तर्कवाचस्पति जी ने इन श्लोकों के बाद ही "अप्रमाणमिदम्" (यह प्रमाण नहीं है) लिख दिया है।

अतः इस प्रमाण से आधुनिक संस्कृत कोषों में जो 'हिन्दू' शब्द आया है वह नितान्त आधुनिक है। दूसरे बंगाली विद्वान् श्री नगेन्द्र वसु 'प्राच्यविद्यामहार्णव' अपने **"हिन्दीविश्वकोष"** में 'हिन्दू' शब्द पर लिखते हैं—

"मेरुतन्त्र के २३वें पटल में कुछ श्लोकों में हिन्दू शब्द का उल्लेख है। ये सब श्लोक उतने पुराने नहीं जितने समझे जाते हैं। इन श्लोकों में अंग्रेज जाति, लण्डन नगर, इत्यादि का उल्लेख है और यह भी लिखा है कि शाह लोग हिन्दू धर्म्म को विलोप करने वाले हैं।······मुसलमानी अमल के पहले कोई भी भारतवासी 'हिन्दू' कह कर अपना परिचय नहीं देता था। इसी से किसी प्राचीन संस्कृत या प्राकृत ग्रन्थ में 'हिन्दू' शब्द का उल्लेख नहीं है।······इसी समय शायद 'मेरुतंत्र में सर्वप्रथम 'हिन्दू' शब्द का व्यवहार हुआ।'

(ङ) **"वाचस्पत्याभिधानकोष"** में 'आर्य' शब्द का अर्थ लिखा है—

"आर्य—पु०—ऋ—ण्यत्। १. स्वामिन्, २. गुरौ, ३ सुहृदि च, ४. श्रेष्ठकुलोत्पन्ने, ५. पूज्ये, ६. श्रेष्ठे, ७. मान्ये, ८. उदारचरिते, ९. शान्तचित्ते।"

(च) **"शब्दकल्पद्रुम"** में आर्य के अर्थ—

"मान्यः, उदारचरितः, शान्तचित्तः, न्यायपथावलम्बी, प्रकृताचारशीलः, सततकर्त्तव्यकर्मानुष्ठाता। यदुक्तम् कर्त्तव्यमाचरन् कार्यम् अकर्तव्यमनाचरन्। तिष्ठति प्रकृताचारे मनु आर्य इति स्मृतः। धार्मिकः धर्मशीलः। यथाह मनु आर्य रूपमिवानार्य कर्मभिः स्वैर्विवस्येत॥ १०/५७॥"

मान्यः—जो अपने उत्तम गुणों के कारण सम्मान के योग्य हो।

उदारचरितः—जिसका चरित्र उदार हो, जिसके व्यवहार में उदारता पाई जाय।

शान्तचित्तः—जिसका चित्त शान्त हो।

न्यायपथावलम्बीः—जो सदा न्याय के पथ पर चलने वाला हो। जो कभी भूल कर भी अन्याय पथ का अवलम्बन न करे।

प्रकृताचारशीलः—जिसका आचार और स्वभाव शास्त्रीय आदेशों के अनुसार हो।

सतत कर्त्तव्य कर्मानुष्ठाताः—जो करने योग्य कार्यों को निरन्तर करने वाला हो। जो व्यक्ति उत्तम कार्यों को करने वाला हो और अकर्त्तव्य कर्मों का आचरण न करने वाला हो ऐसा स्मृतियों में कहा है। धार्मिक, धर्मशील।

(छ) **"शब्दरत्नावलि"** नामक संस्कृत कोष में लिखा है—

"आर्यः—अर्तुं प्रकृतमाचरितुं योग्यः।"

शास्त्रोक्त पथ पर चलने वाला पूज्य, श्रेष्ठ 'आर्य' कहलाता है।

(ज) **श्री नगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव, तत्त्व-चिन्तामणि, शब्द-रत्नाकर** अपने "हिन्दी विश्वकोष" द्वितीय भाग, पृष्ठ ६७१ में लिखते हैं—"आर्य (सं.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पु०) आर्यते गम्यते पूजा, ऋ—ण्यत् । १. महाकुल, कुलीन सभ्य, सज्जन, साधु, फरमांबरदार या वफ़ादार शख्स । महाकुल-कुलीनार्थ सभ्यसज्जन साधवः, (अमर), २. पूज्य, श्रेष्ठ, सङ्गत, नाट्योक्ति में मान्य, उदारचरित, शान्तचित्त, इज्जतदार शख्स । ३. स्वामी, हक़दार, वारिस । ४. मित्र, यार,.........
"वेदोक्त प्राचीन जाति विशेष ।" ......

(झ) "श्रीधर भाषाकोष" में "आर्य" शब्द के बड़ा, श्रेष्ठ, कुलीन, अच्छे घराने का, पूज्य, पूजनीय और महाराज प्रभृति अर्थ किये गए हैं ।

(ञ) श्री रामचन्द्र वर्मा "संक्षिप्त हिन्दी शब्द-सागर"[1] में लिखते हैं :—"आर्य-वि० [सं.] [स्त्री० आर्य्या] १. श्रेष्ठ । उत्तम । २. बड़ा । पूज्य । ३. श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न । मान्य । संज्ञा पु० [सं.] १. श्रेष्ठ पुरुष । श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न । २. मनुष्यों की एक जाति जिसने संसार में बहुत पहले सभ्यता प्राप्त की थी ।"

(ट) चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसाद शर्मा एम० आर० ए० एस० तथा पं० तारिणीश झा, व्याकरणवेदान्ताचार्य अपने "संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ"* में लिखते हैं :—
"आर्य—(वि०) [√ऋ+ण्यत्] आर्य के योग्य । प्रतिष्ठित । उत्तम । समीचीन । सर्वोत्कृष्टः ।........."

इन्होंने हिन्दू "शब्द का अर्थ करते हुए 'मेरुतंत्र' का प्रमाण दिया है जिसकी आलोचना पीछे की जा चुकी है ।

आर्षप्रमाण :—

(१) "वि जानीह्यार्यान्ये च दस्यवो......" [ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त ५१ मंत्र ८]
महर्षि दयानन्द जी सरस्वती :—"(आर्य्यान्) धार्मिकानाप्तान्विदुषः सर्वोपकारकान्मनुष्यान्"=सर्वोपकारक धार्मिक विद्वान् मनुष्यों को ।"[2]
"वे ही आर्य हैं कि जो उत्तम विद्यादि के प्रचार से सब के उत्तम भोग की सिद्धि और अधर्मी दुष्टों के निवारण के लिए निरन्तर यत्न करते हैं ।"[3]

(२) "...वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय"—[ऋ० १।५९।२]
महर्षि दयानन्दजी सरस्वती:—'(आर्याय) उत्तम गुण स्वभावाय'=उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाले मनुष्य के लिए ।"[4]

---

१. " संक्षिप्त हिन्दी शब्द-सागर अर्थात् हिन्दी शब्द-सागर का संक्षिप्त संस्करण पृष्ठ ११८ [संवत् २००२ वि., काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण].

* सन् १९७३ ई. में सर्वश्री रामनारायणलाल वेणी प्रसाद, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ १९९.

२. "ऋग्वेद भाष्य" प्रथम भागात्मकम्" तृतीयावृत्ति (अजमेर) पृष्ठ ७११.

३. वही, पृष्ठ ६११-७१२.

४. वही, पृष्ठ ८०१

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(३) "···दस्यवे हेतिमस्यार्यम्" [ऋ० १।१०३।३]
महर्षि दयानन्दजी सरस्वतीः—"(आर्य्यम्) आर्य्याणामर्याणां वा इदम्"= श्रेष्ठ वा अति श्रेष्ठों के सदृश।"[1]

(४) "इन्द्रः समत्सु यजमानमार्य्यम्" [ऋ० १।१३०।८].
महर्षि दयानन्दजी सरस्वतीः—"(आर्यम्) उत्तमगुणकर्मस्वभावम्'=उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाले पुरुष के।"[2]

(५) "आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत्।"—[ऋ० १।१५६।५].
महर्षि दयानन्दजी सरस्वतीः—"(आर्यम्) सकल शुभगुणकर्मस्वभावेषु वर्त्तमानम्= समस्त शुभ गुण कर्म और स्वभावों में वर्त्तमान।"[3]

(६) "अपा वृणु ज्योतिरार्याय" [ऋ० २।११।१८].
महर्षि दयानन्दजी सरस्वतीः—"(आर्य्याय) उत्तमाय जनाय"—उत्तम के लिए साधारण होओ।"[4]

(७) "विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून्"—[ऋ० २।११।१६]
महर्षि दयानन्दजी सरस्वतीः—"(आर्येण) उत्तम विद्याधर्मसामर्थ्येन"= "उत्तम विद्या और धर्म स्वभावयुक्त सामर्थ्य के साथ।"[5]

(८) "दस्यून्प्रार्यवर्णमावत्"—[ऋ० ३।३४।६]
महर्षि दयानन्दजी सरस्वतीः—"(आर्यम्) उत्तमगुणकर्मस्वभावं धार्मिकम्"= "उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त धार्मिक"।[6]

(९) "अह भूमिमददामार्यायाहं"—[ऋ० ४।२६।२].
महर्षि दयानन्दजी सरस्वतीः—"(आर्य्याय) धर्म्मगुणकर्मस्वभावाय"= "धर्म्मयुक्त गुण कर्म्म और स्वभाव वाले के लिए।"[7]

(१०) "उत त्यासद्य आर्य्या"—[ऋ० ४।३०।१८]
महर्षि दयानन्दजी सरस्वतीः—(आर्या) उत्तमगुणकर्म्मस्वभावौ"="उत्तम गुण कर्म्म और स्वभाव वालों।"[8]

---

१. वही, द्वितीय भागात्मकम्, तृतीयावृत्तिः (अजमेर) पृष्ठ ३७२-३७३.
२. वही, तृतीयभागात्मकम्, तृतीयावृत्तिः (अजमेर), पृष्ठ ६७.
३. वही, पृष्ठ २७८.
क्षत्रिय व वैश्य वर्ण आर्य राजा।"
४. वही, चतुर्थ भागात्मकम्, तृतीयावृत्तिः (अजमेर) पृष्ठ ६२.
५. वही, पृष्ठ ६३.
६. वही, पञ्चमभागात्मकम्, तृतीयावृत्तिः (अजमेर) पृष्ठ ३०५-३०७.
७. वही, षष्ठभागात्मकम्, पृष्ठ ३३०-३३१ [संवत् १९८३ वि० वैदिक यन्त्रालय, अजमेर].
८. वही, पृष्ठ ३६६.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(११) "यथावशं नयति दासमार्य्यः—" [ऋ० ५।३४।६]
महर्षि दयानन्दजी सरस्वतीः—"(आर्यः)ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यवर्णाः"="ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य वर्ण आर्य राजा।"[१]

(१२) "दस्यूंरेकः कृष्टीरवनोरार्य्याय।"—[ऋ० ६।१८।३]
महर्षि दयानन्द—'द्विज के लिए।"[२]

(१३) "यमा दासान्यार्याणि"—[ऋ० ६।२२।१०]
महर्षि दयानन्दजी—(आर्यापि) द्विजकुलानि—"द्विज कुल और।"[३]

(१४) "अभियुजोविषूचीरार्याय"—[ऋ० ६।२५।२]
महर्षि दयानन्दजी—"(आर्याय) उत्तमा यजनाय"—"उत्तमजन के लिए।"[४]

(१५) "वृताण्यार्या च भूरः"—[ऋ० ६।३३।३]
महर्षि दयानन्द जी—"(आर्या) धार्मिष्ठानुत्तमान् जनान्"—"धर्मिष्ठ उत्तम जनों को।"[५]

(१६) "हतो वृत्राण्यार्या"—[ऋ० ६।६०।६]
महर्षि दयानन्द जी—"(आर्या) उत्तमगुणकर्मस्वभावौ"—"उत्तम गुण कर्म-स्वभाव युक्त।"[६]

(१७) "उरुज्योतिर्जनयन्नार्याय"—[ऋ० ७।५।६],
महर्षि दयानन्द जी—(आर्याय)सज्जनाय मनुष्याय=सज्जन मनुष्य के लिए।"[७]

(१८) "सधमा आर्यस्य गव्या"—[ऋ० ७।१८।७]
महर्षि दयानन्दजी—"(आर्य्यस्य) उत्तमजनस्य"='उत्तम जन के'।[८]

(१९) "प्रजा आर्या ज्योतिरग्र:"—[ऋ० ७।३३।७]
महर्षि दयानन्द जीः—"(आर्याः) उत्तमगुणकर्मस्वभावाः="उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाले पुरुष।"[९]

---

१. वही, सप्तम भागात्मकम्, द्वितीयावृत्ति (अजमेर) पृष्ठ २८७-२८८
२. वही अष्टमभागात्मकम्, पृष्ठ २१२-२१३ [संवत् १९८३ वि. वैदिक यंत्रालय, अजमेर]
३. वही, पृष्ठ २८१
४. वही, पृष्ठ ३०८-३०९
५. वही, पृष्ठ ३७५-३७६
६. वही पृष्ठ ६९७
७. वही, नवम् भागात्मकम् पृष्ठ ७१ [संवत् १९८९ अजमेर, वैदिक यंत्रालय]
८. वही, पृष्ठ १७४-१७५
९. वही, पृष्ठ ३४६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(२०) "वृत्रा हतमार्यापि च" [ऋ० ७।८३।१]
इस पर महर्षि दयानन्द जी सरस्वती का भाष्य नहीं है।

(२१) "यस्यायं विश्व आर्यो दासः—" [ऋ०८।५१।९]

(२२) "उपोषु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं—" [ऋ०८।१०३।१]

(२३) कृण्वन्तो विश्वमार्यम्—"[ऋ० ७।६३।५]
="विश्व को आर्य बनाओ। ग्रिफिथ का अनुवाद Performing every noble work" और लुडविग आर्य का अर्थ 'Venerable'— "आदरणीय, पूज्य" करते हैं।
महामहोपाध्याय पं. आर्यमुनि जी—'(आर्यम्)' 'आर्यत्व"=आर्यत्व।[1]

(२४) "एते धामान्यार्या शुक्रा—" [ऋ०७।६३।१४]
पं० आर्यमुनि जी—"(आर्या) आर्यपुरुषाणां="आर्यपुरुषों के'।[2]

(२५) "वृणते दस्ममार्या"—[ऋ०१०।११।४]

(२६) "यो नो दास आर्यो वा" [ऋ०१०।३८।३]

(२७) मनवे ज्योतिरार्यम्" [ऋ०१०।४३।४]

(२८) "यो रर आर्यं नाम दस्यवे—" [ऋ०१००।४९।३]

(२९) "सुदानव आर्याव्रता—" [ऋ०१०।६५।११]

(२९) "वसूनि दासा वृत्राण्यार्या जिगेथ"—[ऋ०१०।६७।६]

(३०) "साह्याम दासमार्यम्—"[ऋ०१०।८३।१]

(३१) "चिन्वन्दासमार्यम्"—[ऋ०१०।८६।१७]

(३२) "दासस्य वा मघवन्नार्यस्य" [ऋ०१०।१०२।३]

(३३) "विदद्दासाय प्रतिमानमार्यः— [ऋ०१०।१३८।३]
'आर्यान्' की व्याख्या सायण ने "विदुषः' स्कन्दस्वामी ने "साधुवृत्तान् यागपरान्" तथा विलसन और ग्रिफिथ ने "आर्य" शब्द से ही की है। इसके श्री सायणाचार्य ने "आर्य" के विद्वान् यजमान, सब के द्वारा गमनीय, कर्मशील उत्तम वर्ण, भद्र और श्रेष्ठ आदि अर्थ किये हैं।

(३४) "शूद्रार्यावसृज्येता…" [यजु०१४।३०]
महर्षि दयानन्दजी—"(शूद्रार्यौ) शूद्रश्चार्य्यो द्विजश्च तौ"="शूद्र और आर्य्य द्विज ये दोनों।"[3]

---

१. "नवममण्डलस्य ऋग्वेदभाष्यम्" तृतीय खण्डात्मकम्, पृष्ठ ४०० [संवत् १७६ वि. चन्द्रप्रभा यन्त्रालय, वारणसी में मुद्रित व प्रकाशित]

२. वही, पृष्ठ ४०७.

३. "यजुर्वेद-भाष्यम्" द्वितीयो भागः, पृष्ठ ४७३-४७४ [पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु विरचित विवरण सहित, भाद्रपद २०२८ वि. श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(३५) "साह्याम दासमार्यम्" [अथर्ववेद काण्ड, सूक्त ३२, मंत्र १]
पं० क्षेमकरणदास जी 'त्रिवेदी':— "(आर्यम्) अ०४।२०।४। श्रेष्ठं । विद्वांसम् ।"[1]
"(आर्यम्) आर्य अर्थात् विद्वान् का ।"[2]

(३६) "न मे दासो नार्यो महित्वा—"[अथर्व काण्ड ५, सूक्त ११ मंत्र ३]
पं० क्षेमकरणदास 'त्रिवेदी':—"(न आर्यः) अनार्य, अविद्वान् ।"[3]
इसके विपरीत 'आर्य' का अर्थ 'विद्वान्' हुआ ।

(३७) "सवितेव चार्य इमा विशो"... [अथर्व० का० १७ सूक्त ४५, मंत्र ४]
पं० क्षेमकरणदास 'त्रिवेदी':—"(आर्यः) श्रेष्ठस्त्वम् =श्रेष्ठ तू ।"[4]

राजर्षि मनु जी और 'आर्य' शब्दः—

(३८) "आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ।"

—[मनुस्मृति २/२२]

प्रसिद्ध भाष्यकार पं० कुल्लूकभट्टः— "...आर्या अत्रावर्तन्ते पुनः पुनरुद्भवन्तीत्यार्यावर्तः ।"

अर्थात्, "जिस देश में आर्य लोग बारम्बार उत्पन्न हों उस देश को 'आर्यावर्त्त' कहते हैं ।

(३९) "सत्यधर्मार्य वृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ।
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ॥"

—[मनु० ४/१७५]

अर्थ—"गुरु को उचित है कि अपने शिष्यों को धर्मपूर्वक शिक्षा देवे और वचन, बाहु तथा उदर को संयत बनाते हुए सत्य धर्मादि आर्यवृत्ति से पवित्रता के पालन करने में सदा तत्पर रहे ।"

(४०) "साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्यसंसदि ।
अवाङ् नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते ।"

—[मनु० ८/७५]

अर्थ—"आर्यों की सभा में देखे-सुने से विरुद्ध कहने वाला साक्षी अधोमुख दुर्गति को प्राप्त होता है और मर कर भी सुख से वंचित रहता है ।"

(४१) "वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम् ।
आर्यरूपमिवानार्यं कर्मभिः स्वैर्विभावयेत् ॥"

—[मनु० १०/५७]

---

१. "अथर्ववेदभाष्यम्", चतुर्थ काण्डम्, प्रथमावृत्तौ (प्रयाग), पृष्ठ ८५२ की पाद-टिप्पणी
२. वही, पृष्ठ ८५१.
३. वही, पञ्चमं काण्डम् प्रथमावृत्तौ (प्रयाग) पृष्ठ ९९१,
४. वही, एकोनविंशं काण्डम्, प्रथमावृत्तौ (प्रयाग) पृष्ठ ३७७५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थ—"वर्णभ्रष्ट (हीन वर्ण वाले), अप्रसिद्ध, नीच जाति से उत्पन्न, देखने में आर्य (सज्जन) परन्तु यथार्थ में अनार्य अधर्म पुरुष के उसके कर्मों से जानना चाहिए।"

(४२) जातो नार्यामनार्यायामार्यादार्यो भवेद् गुणैः।
जातोऽप्यनार्यादार्यायामनार्य इति निश्चयः॥ ॥ मनु० १०/६७॥

अर्थः—"अनार्या स्त्री में आर्य से उत्पन्न हुआ गुणों से आर्य्य (श्रेष्ठ) हो सकता है और शूद्र से ब्राह्मणी में उत्पन्न पुत्र गुणहीन होने से श्रेष्ठ नहीं है, ऐसा (शास्त्र का)निश्चय है।"

(४३) "सुवीजं चैव सुक्षेत्रे जातं सम्पद्यते यथा।
तथार्याज्जात आर्यायां सर्वं संस्कारमर्हति॥"

—[मनु० १०/६९]

अर्थ—"जिस प्रकार उत्तम खेत में बोया हुआ अच्छा बीज समृद्धि को प्राप्त होता है उसी प्रकार आर्या स्त्री में आर्य (द्विज) से उत्पन्न हुआ बालक सम्पूर्ण संस्कारों के योग्य होता है।"

(४४) "अनार्यमार्यकर्म्माणमार्यं चानार्यकर्मिणम्
सम्प्रधार्याब्रवीद्धातानसमौ नासमाविति॥"

—[मनु० ६०/७३]

अर्थ—"आर्यों के कर्म करने वाले अनार्यों को और अनार्यों के कर्म करने वाले आर्यों को ब्रह्मा ने विचार कर यह कहा कि ये दोनों परस्पर न तो सम हैं न तो असम अर्थात् केवल कर्म से इनकी वर्ण व्यवस्था नहीं की जा सकती, किन्तु गुण, कर्म, स्वभाव सब पर दृष्टि डालकर व्यवस्थापक विद्वान् वा समिति को व्यवस्था देनी चाहिए।

श्री मेधातिथि कहते हैं कि यहाँ तक वर्णसङ्करों की निन्दा और कर्मों की प्रशंसा रूप अर्थवाद ही है विधि का निषेध कुछ नहीं।

वेदव्यासजी और 'आर्य' शब्द—

(४५) "आर्या युद्धे मतिं कृत्वा युद्धायैवावतस्थिरे"

—[महाभारत, द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्व, अ० १२४ श्लो० २१]

पं० रामनारायणदत्त जी शास्त्री पाण्डेय 'राम'—अतः वे युद्धविषयक श्रेष्ठ बुद्धि का आश्रय ले वहाँ युद्ध के लिए ही डटे रहे।"[1]

यहाँ शास्त्रीजी ने 'आर्य' का 'श्रेष्ठ' किया है।

(४६) "आर्येण सुकरं त्वाहुरार्यकर्म धनंजय।
अनार्यकर्म त्वार्येण सुदुस्करतमं भुवि॥

—महाभारत, द्रोणापर्वणि जयद्रथवधपर्व अ० १४३ श्लो० १०]

पं० रामनारायणदत्त शास्त्री—"धनंजय! श्रेष्ठ पुरुष के लिए श्रेष्ठ कर्म ही

१. "महाभारत (चतुर्थखण्ड) सचित्र, सरल हिन्दी अनुवाद सहित, तृतीय संस्करण (गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ ३४४२.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सुकर बताया गया है। नीच कर्म का आचरण तो इस पृथ्वी पर उसके लिए अत्यन्त दुष्कर माना गया है।"[1]

(४७) "कच्चिदार्यो विशुद्धात्मा क्षारितश्चौरकर्मणि।"

—[महाभारत, सभापर्वणि, लोकपाल सभाख्यानपर्व, अ० ५ श्लोक १०५]

पं० रामनारायणदत्त जी शास्त्री—"कहीं ऐसा तो नहीं होता कि शास्त्र कुशल विद्वानों का संग न करने वाले तुम्हारे मूर्ख मंत्रियों ने किसी विशुद्ध हृदय वाले श्रेष्ठ एवं पवित्र पुरुष पर चोरी का अपराध लगाकर उसका सारा धन हड़प लिया हो?"[2]

(४८) "आरट्टा नाम वाहीका न तेष्वार्यो द्व्यहं वसेत्।"

—[महाभारत, कर्ण पर्व, अ० ४४, श्लो० ४०]

पं० रामनारायणदत्त शास्त्री—"वे आरट्ट नाम से प्रसिद्ध वाहीक प्रदेश हैं। उनमें श्रेष्ठ पुरुष दो दिन भी निवास न करे।"[3]

(४९) "स वाल एवार्यमतिर्नृपोत्तमः।"

—[महाभारत, आदिपर्वणि आष्तीकपर्व, अ० ४४ श्लो० ७]

पं० रामनारायणदत्त शास्त्री—"बचपन में ही नृप श्रेष्ठ जनमेजय की बुद्धि श्रेष्ठ पुरुषों समान थी।"[4]

(५०) "यः स्याद्दान्त सोमपश्चार्यशीलः
सानुक्रोशः सर्वसहो निराशीः।
ऋजुर्मृदुरनृशंसः क्षमावान्
स वै विप्रो नेतरः पापकर्मा।"

—[महाभारत, शान्तिपर्वणि राजधर्मानुशासनपर्व अध्याय ६३ श्लोक ८]

पं० रामनारायणदत्त शास्त्री—जो मन और इन्द्रियों को संयम में रखने वाला सोमयाग करके सोमरस पीनेवाला, सदाचारी, दयालु, सब कुछ सहन करने वाला, निष्काम, सरल, मृदु, क्रूरता रहित और क्षमाशील हो, वही ब्राह्मण कहलाने योग्य हैं। उससे भिन्न जो पापाचारी है, उसे ब्राह्मण नहीं समझना चाहिए।"[5]

(५१) "अल्पाश्रयानल्पफलान् वदन्ति
धर्मानन्यान् धर्मविदो मनुष्याः।
महाश्रयं बहुकल्याणरूपं
क्षात्रं धर्मं नेतरं प्राहुरार्याः।"

—[महाभारत, शान्ति पर्वणि राजधर्मानुशासनपर्व अ० ६३ श्लो० २६]

पं० रामनारायणदत्त शास्त्री—"धर्म के ज्ञाता आर्य पुरुषों का कथन है कि अन्य समस्त धर्मों का आश्रम तो अल्प ही, फल भी अल्प ही है। परन्तु क्षात्रधर्म

---

१. वही, पृष्ठ ३५०६.
२. महाभारत (प्रथम खण्ड), तृतीय संस्करण, पृष्ठ ६८३,
३. महाभारत, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ ३८९५.
४. वही, प्रथम खण्ड, पृष्ठ, १३२.
५. वही, पञ्चम खण्ड, पृष्ठ ४५८५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का आश्रय भी महान् है और उसके फल भी बहुसंख्यक एवं परमकल्याण रूप हैं। अतः इसके समान दूसरा कोई धर्म नहीं है।"[1]

(५२) "आर्यकर्मणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते।
हितं च नाभ्यसूयन्ति पण्डिता भरतर्षभ ।"
—[महाभारत, उद्योगपर्वणि, प्रजागर पर्व, अ० ३३, श्लो० २५]

पं० रामनारायणदत्त शास्त्री—"भरतकुलभूषण! पण्डितजन श्रेष्ठ कर्मों में रुचि रखते हैं। उन्नति के कार्य करते हैं तथा भलाई करने वालों में दोष नहीं निकलते।"[2]

यही 'प्रजागर पर्व' 'विदुरनीति' के नाम से प्रसिद्ध है।

सामवेदभाष्यकार पं० तुलसीराम स्वामी—'श्रेष्ठ कर्मों में जो प्रीति करते हैं, जिनसे उन्नति हो ऐसे कार्यों को करते हैं और किसी के हित की निन्दा नहीं करते हे धृतराष्ट्र! वही पण्डित हैं।"[3]

पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक—"हे भरतकुल में श्रेष्ठ (धृतराष्ट्र) जो व्यक्ति आर्यों (शिष्यों) के कर्मों में अनुराग रखते हैं। ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले कर्मों को ही करते हैं और कल्याणकारक की कभी असूया (निन्दा) नहीं करते वे ही पण्डित कहे जाते हैं।"[4]

(५३) "न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं
न दर्पमारोहति नास्तमेति।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं
तमार्यशीलं परमाहुरार्याः ॥"
—[महाभारत. उद्योगपर्वणि, प्रजागर पर्व, अ० ३३, श्लो० ११२]

पं० रामनारायणदत्त शास्त्री—"जो शान्त हुई वैर की आग को फिर प्रज्वलित नहीं करता, हीनता नहीं दिखाता तथा 'मैं विपत्ति में पड़ा हूँ' ऐसा सोच कर अनुचित काम नहीं करता, उस **उत्तम** आचरण वाले पुरुष को **आर्यजन** सर्वश्रेष्ठ कहते हैं।"[5]

पं० तुलसीरामजी शास्त्री—"जो शान्त हुए वैर (दुश्मनी) को पुनः प्रज्वलित नहीं करता और जो घमण्ड नहीं करता, न नाश को प्राप्त होता और मैं दुर्बल हूँ ऐसा कहके जो अकार्य (दुष्कर्म) नहीं करता उसको श्रेष्ठ **आर्यशील (श्रेष्ठों में शीलवाला)** कहते हैं।"[6]

---

१. वही, पृष्ठ ४५८७.
२. वही, तृतीय खण्ड, पृष्ठ २१२८.
३: "विदुरनीति भा० टीका" पृष्ठ १० [संवत १९५५ वि. में स्वामी यन्त्रालय, मेरठ में मुद्रित व प्रकाशित].
४. विदुरनीति, पदार्थ और व्याख्या सहित (अ० १ श्लो० ३०) प्रथम संस्करण, पृष्ठ २९(२१)[मासिक पत्रिका "वेदवाणी" वर्ष २०, चैत्र सं० २०२५, अङ्क ७]
५. "महाभारत, तृतीय खण्ड, पृष्ठ २१३४.
६. "विदुरनीति भा. टी." पृष्ठ ३९

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक—" · ···श्रेष्ठजन अत्यन्त आर्यशील (श्रेष्ठ स्वभाव वाला) कहते हैं।"[1]

(५४) "दत्त्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं
स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः ॥"
—[महाभारत, उद्योगपर्वणि, प्रजागर पर्व, अ० ३३, श्लो० ११३]

पं० रामनारायणदत्त शास्त्री—"दान देकर पश्चाताप नहीं करता, वह सज्जनों में सदाचारी कहलाता है।"[2]

पं० तुलसीराम स्वामी—देकर पश्चात्ताप नहीं करता, वह सत्पुरुषों में आर्यशील कहलाता है।[3]

पं युधिष्ठिर जी मीमांसक—दान देकर पीछे से सन्ताप नहीं करता उसे ही उत्तम पुरुष श्रेष्ठ स्वभाव वाला कहते हैं।"[4]

(५५) "श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा।
असम्भिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः ॥"
[महाभारत, उद्योगपर्वणि प्रजागर पर्व, अ० ३३ श्लो २६]

पं० रामनारायणदत्त जी शास्त्री—"जिसकी विद्या, बुद्धि का अनुसरण करती है और बुद्धि विद्या का तथा जो **शिष्ट पुरुषों** की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता, वही पण्डित की संज्ञा पा सकता है।"[5]

पं० तुलसीराम जी स्वामी—शास्त्र जिसकी बुद्धि के पीछे चलने वाला तथा बुद्धि शास्त्र के पीछे चलने वाली होती है और जो **श्रेष्ठों** की मर्यादा को नहीं तोड़ता वह पण्डित नाम को पाता है।"[6]

पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक—"जिसका शास्त्रज्ञान बुद्ध्यनुसारी है और जिसकी बुद्धि शास्त्रानुसारिणी है, जिसने **आर्यों** की मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया है वह पण्डित संज्ञा को प्राप्त होता है।"[7]

(५६) "आर्ययुक्तारोहकभाणवकशैलखनका······।"

[कौटिल्य अर्थशास्त्र ५ अधिकरण, ३ अध्या० योगवृत्तम्]

पाण्डेय पं० रामतेज शास्त्री—"आर्य (शील सम्पन्न सत्पुरुष), युक्तारोहक

---

१. "विदुरनीति, पदार्थ और व्याख्या सहित (अ० १. श्लो० ११७) पृष्ठ ३९ (७९)
२. "महाभारत, तृतीय खण्ड, पृष्ठ २१३४
३. "विदुरनीति भा० टी० [अ० ३३ श्लोक ११८], पृष्ठ ४०
४. "विदुरनीति, पदार्थ और व्याख्या सहित, [अ० श्लो० ११८] पृष्ठ ४० (८०)
५. "महाभारत, तृतीय खण्ड, पृष्ठ २१२८
६. विदुर नीति भा० टी (अ० ३३ श्लो० ३४), पृष्ठ १२
७. "विदुरनीति, पदार्थ और व्याख्या सहित [अ० १, श्लो० ३४] पृष्ठ ३१ (२३)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(बिगड़ैल घोड़ों आदि पर सवारी करने वाले)। माणवक (वेद पढ़ने वाले विद्यार्थी), शैलखनक (पर्वत खोदने वाले)......[1]

महर्षि वाल्मीकि और 'आर्य' शब्द

(५७) मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी को 'आर्य' कहा गया है—

"आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ॥"

[वाल्मीकीय रामा०, बालकाण्ड, सर्ग १ श्लो० १६]

पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर—"आर्य : (१।१६) = (सर्वपूज्यः) सबको पूज्य।"[2]

(५८) "अयाचद् भ्रातरं राममार्यभावपुरस्कृतः।"

[वा० रा०, बालकाण्ड सर्ग १ श्लो० ३५]

यहाँ भरत जी ने आर्य भाव से पुरस्कृत होकर बड़े भाई से प्रार्थना की।

(५९) कैकेयी ने जब श्री राम को वनवास की माँग की तो सम्राट् दशरथ ने कहा —"मृते मयि गते रामे वन मनुजपुङ्गवे। हन्तानार्ये समामिवे सकामा सुखिनी भव।" [वा० रा०, अयोध्याकाण्ड, सर्ग १२ श्लो० ५]

पाण्डेय पं० रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'—ओ नीच! तू मेरी शत्रु है। नर-श्रेष्ठ श्री राम के वन में चले जाने पर जब मेरी मृत्यु हो जायगी, उस समय तू सफल मनोरथ होकर सुख से रहना।†

(६०) "तदप्रियमनार्मायाय वचनं दारुणोदयं श्रुत्वा गतव्यथो रामः कैकेयी वाक्यमब्रवीत्।" [वा० रा० अयोध्याकाण्ड सर्ग १९ श्लो० १९]

पं० रामनारायणदत्त शास्त्री—"अनार्या कैकेयी के उस अप्रिय एवं दारुण वचन को सुनकर श्रीराम के मन में व्यथा नहीं हुई।*

(६१) "अरियाप्पवेदिते धम्मे सदा रमति पण्डितो।"

—[धम्मपद, पण्डितवग्गो, ७९।४]

अर्थ—पण्डितजन सदा आर्यों के बताए धर्म में रमण करता है।

(६२) "साधु दस्सनमरियानं सन्निवासो सदा सुखो।"

[धम्मयद, सुखवग्गो, २०६।१०]

---

१. कौटिलीयं—अर्थशास्त्रम्" 'रञ्जनाह्वया' हिन्दी टीकयाऽऽटीकितम्, पृष्ठ ३९७ [संवत् २०१६ वि०, पण्डित पुस्तकालय, वाराणसी द्वारा प्रकाशित]

२. श्री रामायण महाकाव्य का प्रथम भाग, बालकाण्ड, भाषानुवाद, पृष्ठ ४५० [सन् १९४१ ई० स्वाध्याय मण्डल, औंध]

† श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (सचित्र हिन्दी भाषान्तर सहित) प्रथम भाग, द्वितीय संस्करण [सं २०२४ वि० गीता प्रेस, गोरखपुर] पृष्ठ २२२.

* वही, पृष्ठ २४१

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित, एम० ए०—"आर्यों का दर्शन सुन्दर है, उनके साथ निवास सदा सुखदायक होता है।"[1]

(६३) "न तेन अरियो होति येन पाणानि हिंसति।
अहिंसा सत्वपाणानं अरियो ति पवुच्चति॥"
[धम्मपद, धम्मट्ठवग्गो, २७०।१५]

श्री भिक्षु धर्मरक्षितः—"प्राणियों की हिंसा करने से (कोई) आर्य नहीं होता, सभी प्राणियों की हिंसा न करने से आर्य कहा जाता है।"[2]

(६४) "आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्त्तारः स्युः।"
[आपस्तम्बधर्मसूत्र प्रपा० २, पटल २ खण्ड ४, सूत्र ४]

"आर्यों के घर में शूद्र अर्थात् मूर्ख स्त्री पुरुष पाकादि-सेवा करें, परन्तु ये शरीर वस्त्र, आदि से पवित्र रहें।"

(६५) "शुद्राणामार्याधिष्ठितानामर्धमासि मासि वा वपनम्, आर्यवद् आचमनकल्पः
[बोधानयधर्मशास्त्र प्रश्न १ अ०५, सूत्र ८९]

(६६) "अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन।"
—[श्रीमद्भगवद्गीतां २/२]

अर्जुन के युद्ध से विमुख होने पर श्रीकृष्ण जी ने कहा—"यह आनार्यों को प्यारी, परम दुःखदायक और अकीर्ति करने वाली वेहोशी इस वेढंगे अवसर पर तुझ पर कैसे आ चढ़ी?"

इसके विपरीत 'आर्योचित कर्म' है।

पुराण और 'आर्य' शब्द

किसी भी 'पुराण' में 'हिन्दू' शब्द नहीं है, वरन् 'आर्य' शब्द बार बार आया है—

(६७) "आर्यसमयपरिहृताः।"
—[भागवत स्क. ५, अ० १४ श्लोक० २९]

(६८) "आर्यभ्रातरहं मन्ये आत्मानमकृताशिषम्।"
—[भागवत, दशमस्कन्ध ("उत्तरार्ध"), अ० ८२, श्लोक १९]

(६९) त्यक्त्वा सुदुस्त्य जसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचस यदगाद्‌रण्यम्।"
—[भागवत, स्क० ११ अ० ५ श्लोक० ३४]

---

१. "धम्मपद [कथाओं के साथ पाली और हिन्दी अनुवाद] पृष्ठ १४८ [सन् १९५९ ई० मास्टर खेलाड़ी लाल एण्ड सन्स। संस्कृत बुक डिपो, कचौड़ी, गली वाराणसी-१, द्वितीय संस्करण]

२. वही, पृष्ठ १८५.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(७०) दशकोट्य: स्मृता आर्या बभूवु बौंद्धमार्गिण: ।
पञ्चलक्षास्तदा शेषा: प्रमयुर्गिरिमूर्द्धनि ॥"
—[भविष्यपुराण, प्रतिसर्ग पर्व, चतुर्थ खण्ड, अ० २१ श्लोक ३३]

(७१) "आर्यास्तांस्ते तु संस्कृत्य विंध्याद्रेर्दक्षिणेकृतान् ।"
—[भविष्यपुराण, प्रतिसर्ग पर्व, खण्ड ४, अ० २१ लोक ३५]

(७२) "आर्याश्च वैष्णवा मुख्या अयोध्यायां बभूविरे ।"
—[भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व, चतुर्थखण्ड, अ० २१ श्लो० ५५]

(७३) "अहमार्यश्च भवती वेश्या च बहुभोगिनी ।"
—[भविष्यपुराण, प्रतिसर्ग पर्व, तृतीय खण्ड, अ० २८, श्लो० ४८][1]

(७४) "यन्नैमिषारण्यमुनीश्वराणां प्रोक्तं पुरात्यास मुनीश्वरेण ।
तस्मादसावादिगुरुर्भवांस्तु द्वितीय आर्यो भुवने प्रसिद्ध: ।"
—[शिव महापुराय, कैलास संहिताद्ध अध्याय २३ श्लो० २६]

(७५) न्यासं षडंजं दिग्वंधं विनियोगमशेषत: ।
प्रोक्तावानहमार्य्याणां जगत्सृष्टिविवृद्धये ॥३६॥"
—[शिव महापुराण वायुसंहिता, उत्तरभाग, ७, अ० १३]

(७६) "प्रोक्तवानहमार्य्याणां लोकानां हितकाम्यया ।"
—[लिङ्गपुराण, पूर्वा० अ० ८५ श्लो० २४]

(७७) "आर्य्य: सेनापति साक्षाद् गहनो मुखमर्दन: ।"
—[लिङ्गपुराण, पूर्वा० अ० ८२, श्लो० ९३]

कविवर जयदेव द्वारा "प्रसन्नराघव" नाटक लिखा गया था। इसमें कई स्थलों में 'आर्य' शब्द का प्रयोग है।

(७८) "लक्ष्मण:—आर्यनिसर्गरमणीयोऽयमाराम: ।"[1]

(७९) "लक्ष्मण:—आर्य, अहं त्वेवं तर्कयामि ।"[3]

(८०) आज दिन भी पौराणिक पुरोहित अपने यजमानों के यहाँ प्रत्येक अनुष्ठान के पूर्व संकल्प में पढ़ा करते हैं:—

"ओ३म् तत्सत् श्रीब्रह्मणो द्वितीयप्रहरार्द्धे वैवस्वते मन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणेऽमुक...जम्बूद्वीपे भरतखण्डेआर्य्यावर्त्तैकदेशे । ..."
इसमें देश का नाम 'आर्यावर्त' है। आर्यों का आवर्त सदा से व्यवहार का

---

१. 'भविष्य पुराण' में एक स्थल में 'हिन्दु' शब्द आया है जिस पर आगे विचार किया गया है—(लेखक)

२. "प्रसन्नराघव" पृष्ठ २३ [शाके १८२९ बम्बई मुद्रित, द्वितीय संस्करण]

३. वही, पृष्ठ २४.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

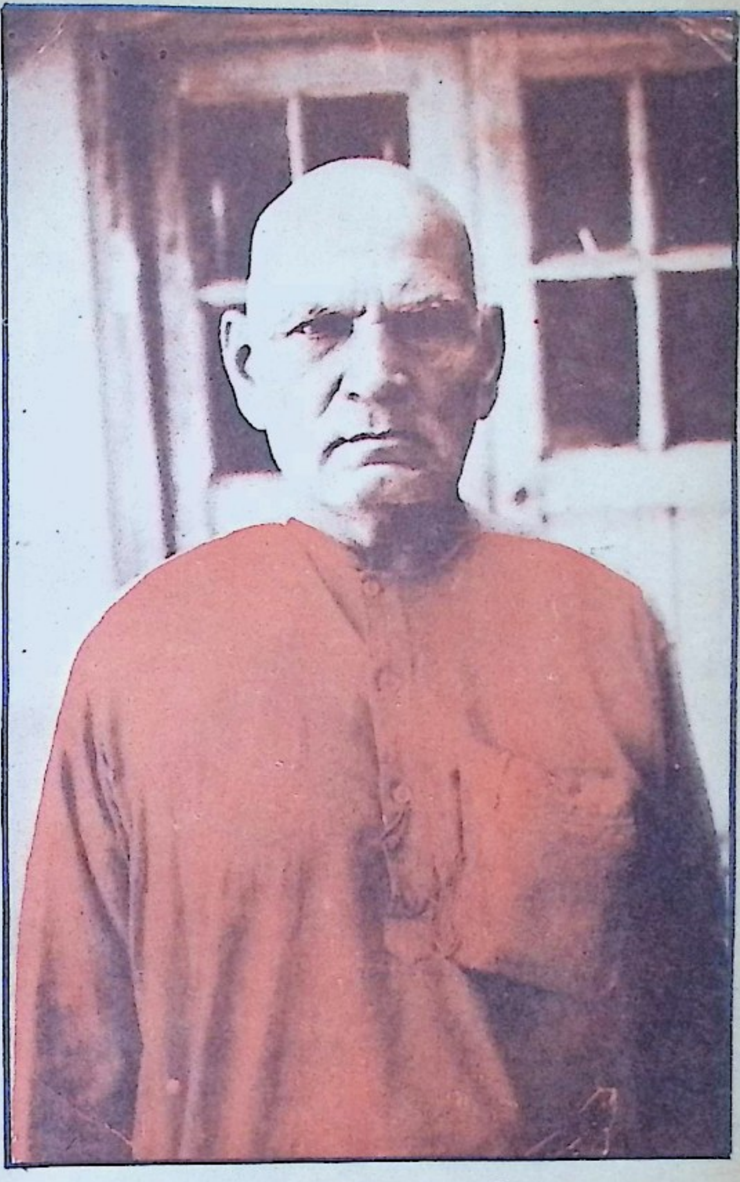

स्वामी आत्मानन्दजी सरस्वती यमुनानगर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

देश । यदि हमारा नाम आर्य न होता, तो देश का नाम 'आर्यावर्त' कैसे होता ?

(८१) वाराणसी पौराणिकों का परम पवित्र तीर्थ है। इसमें भी विश्वनाथ का मंदिर मुख्य माना जाता है। पौराणिक लोग काशी को विश्वनाथपुरी भी कहते हैं। उस मंदिर के द्वार पर संगमर्मर का शिलालेख है—

"आर्यधर्मेतराणां प्रवेशो निषिद्धः"। यदि हमारा नाम 'हिन्दू' होता तो 'हिन्दू' धर्मेतराणां...शब्द होते। इस प्रकार का लेख काशी के अन्नपूर्णा मंदिर के बाहर भी है।

(८२) संवत् १९२७ (सन् १८७० ई०) के श्रावण मास के कृष्णपक्ष की प्रतिपदा तिथि को काशी के ४६ पण्डितों ने मिलकर एक व्यवस्था पत्र लिखा कि हमारा नाम हिन्दू नहीं है।[1]

काशी के विद्वानों की व्यवस्था

श्रीहंसाय नमः

सम्मतीयमर्थो विशुद्धानन्दसरस्वतीस्वामिनां

(श्री हंस को नमस्कार हो, विशुद्धानन्द सरस्वती की इसमें सम्मति है।)

शके युगमनवाश्च चन्द्रमिलिते मासे शुभ श्रावणे।
काश्यां श्रीवरतीर्थराजनिकयादागम्य शुल्केतरे।
पक्षे वै गिरिराज आयति तिथौ चन्द्रस्य वारे सिते,
नीतौ ठाकुरसिंहराजतिलकैं हीयवरैः पण्डितैः।

प्रश्नवाक्य—श्रीमद्भागवत ११ स्कन्ध, सत्रहवें अध्याय में लिखा है कि कलियुग में हंस वर्ण सब कोई कहाते थे और त्रेता में हंसोक्त चार वर्ण चार आश्रम का विभाग होता गया, इस कारण वर्णाश्रमी कहाए। अब कोई हिन्दू नाम करके ख्याल करते हैं सो हिन्दू शब्द की चर्चा कोई शास्त्र में नहीं मिलती। इस हेतु यह जानना चाहते हैं कि हिन्दू कहलाना उचित किंवा अनुचित है ?

उत्तरवाक्य—वर्णाश्रमी देश बोधक जो हिन्दू शब्द है सो यवन सांकेतित है। वर्णाश्रम बोधक जो हिन्दू शब्द है वह भी यवन सांकेतित है। इस कारण हिन्दू कहलाना सर्वथा अनुचित है। यह निर्णय काशी टेढ़ी नीम तले श्री महाराजाधिराज संरक्षित धर्म-सभा में लोगों ने किया।

हस्ताक्षर

१. श्री विश्वनाथ शर्मा, २. श्री बाबूनाथ शर्मा, ३. श्री गृहमुनि शर्मा, ४. श्री सवन मुनि शर्मा, ५. श्री प्यारे शर्मा, ६. श्री हरिहरदत्त शर्मा ७. श्री रामशरण शर्मा, ८. श्री महताव नारायण शर्मा, ९. श्री हर्षनाथ शर्मा, १०. श्री भानुनारायण शर्मा, ११. श्री आदिनाथ शर्मा, १२. श्री नन्दीपति शर्मा १३. श्री श्यामलाल शर्मा,

१. दैनिक पत्र "भारतमित्र" २०.५.१९२५ ई०

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१४. श्री प्रभुनाथ शर्मा, १५. श्री हरिहर शर्मा, १६.श्री द्विवेदी बाल शर्मा, १७. श्री ताराचरण शर्मा, १८. राधामहोन शर्मा, १९. श्री नवीन नारायण शर्मा, २०. श्री कैलाश शर्मा, २१. श्री कोलिका प्रसाद शर्मा, २२. श्री मनमोहन शर्मा, २३. श्री स्वदेश शर्मा, २४. श्री गूदड़ शर्मा, २५ श्री रघुनन्दन शर्मा, २६. श्री बच्चू शर्मा, २७. श्री कीर्तिनाथ शर्मा, २८. श्री लाल शर्मा, २९. श्री द्वारकानाथ शर्मा, ३०. श्री राजा राम शर्मा, ३१. श्री बाल शास्त्री, ३२. श्री सखाराम भट्ट, ३३ श्री बापूदेव शास्त्री, ३४. श्री चन्द्रशेखर शर्मा, ३५. श्री देवदत्त शर्मा, ३६. श्री रमापति शर्मा, ३७. श्री श्यामाचरण शर्मा, ३८. श्री जगेश्वर शर्मा, ३९. श्री अम्बिकादत्त शर्मा, ४०. श्री चण्डीदत्त शर्मा, ४१. श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा, ४२. श्री रघुनाथप्रसाद शर्मा ४३. श्री बाबा शास्त्री.

हिन्दू शब्दो हि यवनेस्वधर्मिजनबोधक:। अतो नार्हन्ति तच्छब्दबोध्यतां सकला जना:।

"काफिर को हिन्दू कहत, यवन स्वभाषा माहि।
ताते हिन्दू नाम यह, उचित कहै वो नाहि ॥"
—श्री दुर्गादत्त शर्मा।

"अर्थात् 'हिन्दू' शब्द मुसलमानों के यहां 'अधार्मिक' (काफिर) के लिए प्रयुक्त होता है। अत: सब मनुष्यों का यह नाम नहीं होना चाहिए।"

इस व्यवस्थापन का महत्त्व और भी बढ़ जाता है, इसमें हम श्री स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती तथा पं० बाल शास्त्री जी के हस्ताक्षर देखते हैं। ये दोनों महानुभाव अपने समय में काशी के सबसे बड़े पण्डित समझे जाते थे।

(८३) **योगी अरविन्द घोष** अपने प्रसिद्ध "What is signifiance of the name of Arya" शीर्षक लेख ६७ में लिखते हैं—

"The word Arya expressed a particular ethical and Social ideal, an ideal of well-governed life, Candour, Courtesy, nobility, Straight dealing, Courage, gentleness, purity, humanity, Compassion, protection of the weak, liberality, observance of Social duty, eagerness for know-edge. respect for the wise, and the learned, the Social, and the Social accomplishments. There is no word in human Speech that has a noble history.

The Arya is who he strives and over comes all outside him and within him that stands opposed to human advance, Self Conquest is the first law of his nature. He over comes mind and its habits. He does not live in a shell of ignorance, inherited prejudices, Customary ideas, pleasant opinion, but knows how to seek and choose, to be large and

१. "वेदों का सत्यस्वरूप" पृष्ठ १८६-१८७ [सन् १९६८ ई० आर्योप प्रतिनिधि सभा वाराणसी, आर्यसमाज बनारस छावनी, भोजू वीर, वाराणसी कैन्ट द्वारा प्रकाशित तुलना करो "Arya" Vol. I, pp. 63, सन् १९१४ ई० [त्रैमासिक पत्र]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

flexible in intelligence even as he is firm and strong in his will, for in everything he seeks truth, in everything right, in everything height and freedom. The Arya is a worker and a warrior. Always he fights for the coming of the kingdom of God within himself and the world."

अर्थात्—"आर्य, शब्द एक अतिशय, नैतिक जीवन, सामाजिक आदर्श, सुनियमबद्ध आदर्श जीवन, सरलता, विनय, धैर्य, स्थैर्य, गाम्भीर्य, औदार्य, माधुर्य, पवित्रता, दया, निर्बलों की सहायता, सामाजिक सुनियमबद्धता, ज्ञान सम्पादन में उत्सुकता, विद्वानों में आदर एवं गौरव, और सामाजिक विषयों में निपुणता, आदि को व्यक्त करता है। मानववाक् प्रपंच में इससे बढ़कर कोई पद नहीं जो कि ऐसे अतिशय गंभीर इतिहास से युक्त हो।

जो आर्य है, वह ऐसे प्रतिबन्धकों को जीत लेता है जो कि मानव-उन्नति के विरुद्ध अपने अन्दर तथा बाहर रहता हो।

आत्मसंयम ही उसका प्रथम स्वाभाविक नियम है। वह, अपना मन, तथा उसके विषयों को अपने वश में रखा करता है। वह, न अज्ञानावरणों में, न परम्परागत द्वेष भावों, या सम्प्रदायों में, न स्वेच्छा के अनुसार चलने वाले विषयों में वास करता है। वह सत्यशोधन तथा सत्य प्रतिग्रह को खूब जानता है। उसकी बुद्धि स्थिर, अचंचल, होने पर भी, विशाल तथा नम्रतायुक्त होती है। हर एक विषय में वह सत्य की खोज करता है। प्रत्येक में न्याय की खोज करता है। प्रत्येक उन्नति तथा स्वातन्त्र्य की आशा रखता है। आर्य कार्यकर्त्ता है, योद्धा है। सदैव, अपने भीतर और बाहर दैवी सम्पत्ति तथा देव राज्य की प्राप्ति के लिए यत्न करता है।"

(८४) गुरुकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन के वार्षिकोत्सव पर **श्री जैनाचार्य जी** ने जैन ग्रन्थों के सुदृढ़ प्रमाणों से अपनी जाति का नाम 'आर्य' सिद्ध किया है।

"मनुष्या द्विविधाः आर्याम्लेच्छाश्च। तत्र ऋच्छन्ति दूरीभवन्ति सर्वहेयधर्मेभ्य इत्यार्याः। इमां व्याख्यामवलम्ब्य यद्यपि भवन्त एव आर्यानार्य परामर्शं विधातुं शक्नुवन्ति तथापि विषयमिमं विशदीकर्तुं जैनागमनिर्दिष्टानार्यभेदानेव संक्षेपतः प्रतिपादयामि। प्रज्ञापनासूत्रे प्रथमपदे वक्ष्यमाणसरण्या आर्याणां भेदाः प्रतिपादिताः तत्र हि मूलभेदौ द्वौ। ऋद्धिमानार्योऽनृद्धिमानार्यश्च। य आत्वद्धिमान् स एवर्द्धिमानार्यः प्रोच्यते, न तु केवल प्रभृतद्युम्नवान्। तस्य चाऽऽत्मर्द्धिमत आर्यत्माच्चक्रवर्ति बलदेववासु देवदत्तङ्घाचरण रूपाः षट् प्रकाराः प्रदर्शितास्तत्रैव। अथानृद्धिमतामार्याणां क्षेत्रार्यजात्यार्यकुलार्यं शिल्पार्यभाषार्यज्ञानार्यदर्शनार्यचरित्रार्यरूपा नवभेदाः।"[1]

उक्त कथन में श्री जैनाचार्य जी ने बतलाया है कि मनुष्य जाति के दो भेद हैं (१) आर्य (२) म्लेच्छ। सब प्रकार के हेय कर्मों से पृथक् रहे वही 'आर्य' है।

---

१. साप्ताहिक पत्र "आर्यमित्र" १७ जनवरी सन् १९२४ ई० पृष्ठ ८, कॉलम १ पंक्ति २१ से।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यों के दो भेद हैं—(१) ऋद्धिमान् आर्य (२) अनृद्धिमान् आर्य। जो महापुरुष आत्म ज्ञान और समृद्धिशाली हैं, उन्हें ऋद्धिमानार्य कहते हैं।

अनृद्धिमान आर्य्यों के नौ भेद है—(१) क्षेत्र (देश) के कारण आर्य (२) जाति, परम्परा से आर्य, (३) कुल परम्परा से आर्य, (४) कर्म से आर्य, (५) शिल्प क्रिया से आर्य, (६) भाषा व्यवहार से आर्य, (७) ज्ञान से आर्य, (८) दार्शनिक होने से आर्य और (९) चरित्र बल से आर्य।"

(८५) पारसियों के धर्म ग्रन्थ "जिन्दावस्ता" अस्तवयश्द का १८ वां अध्याय आर्यों की वीरता से भरा हुआ है, उसके प्रारम्भिक श्लोक का अनुवाद इस प्रकार है—"अहुरमज़दा स्पितामा ज़रदुश्त से कहा "मैंने आर्यों को भोजन, पशु समूह, धन, प्रतिष्ठा, ज्ञान भण्डार और द्रव्यराशि से सम्पन्न किया है जिससे वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।"[1]

(८६) दशम गुरु गोविन्द सिंह जी ने अपने सिक्खों को यह उपदेश दिया था—

"जो तुम सिख हमारे आरज, देवो सीस धर्म के कारज।[2]

—['पन्थ प्रकाश' कृत ज्ञानी ज्ञानसिंह]

अर्थात् यदि तुम मेरे श्रेष्ठ (आर्य) सिक्ख हो तो अपना (सीस) जीवन वेदोक्त धर्म के कार्य में लगाओ।"[2]

(८७) "तृतीय जो नर नारी आरज, हो रहे निज धर्मी खारज।
पाप कुकर्मन में अति लागे, इस हेतु हो रहे अभागे।"

—[पन्थ प्रकाश][3]

अर्थात्, "जो आर्य नर-नारी इस समय वेद धर्म को छोड़ पाप कर्मों में लग अभागे बन रहे हैं उनके सुधार के लिए मैं यह यज्ञ करना चाहता हूँ।"

(८८) "हो वे जाते यज्ञ पूजा, बढ़े वैदिक रीति।
होवे जा ते देश आर्य, वैदिक धर्म प्रणीति॥"[4]

अर्थात् "मेरे सिक्ख ऐसा यत्न करें कि जिससे यज्ञ, ईश्वर पूजा और वैदिक रीति बढ़े, श्रेष्ठ (आर्य) बने, वैदिक धर्म अनुगामी बने।"

"दशम गुरु जब पुष्कर राजतीर्थ पर गए तो पृथ्वी पंडित ने पूछा कि महाराज! आपका जीवन उद्देश्य क्या है? और सिख पंथ किसलिए चलाया है? तो गुरुजी ने कहा, "पंडितजी! यह पंथ आर्य धर्म की रक्षा के लिए, साधु, ब्राह्मण, गरीब और दीन दुःखी की रक्षाहित हैं और यही सेवा कर रहा है और करता रहेगा।"

—(जन्मसाखी दशमगुरु)[5]

---

१. "जिन्दावस्ता" भाग २, पृष्ठ २८३.
२. स्वामी अमृतानन्दजी सरस्वती कृत "गुरु ग्रन्थ का वैदिक पन्थ अर्थात् खालसा ज्ञान-प्रकाश" पृष्ठ १२३ [सन् १९६५ ई० स्वामी आत्मानन्द प्रकाशन मंदिर, वैदिक साधन आश्रम, यमुनानगर (अम्बाला)].
३. वही, पृष्ठ १२३.
४.. वही पृष्ठ १२४.
५. वही पृष्ठ १२४.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(८९) पौराणिक श्री स्वामी दयानन्द जी (बंगाली) लिखते हैं—

"......आर्य जाति के लक्षण के विषय में शास्त्र में अनेक प्रमाण मिलते हैं। कर्ममीमांसा में कहा है—

उभयोतोपेता ह्यार्यजातिः।
तद्विपरीता ऽनार्य्याः।

जो जाति चतुर्वर्णधर्म्म और चतुरामधर्म से युक्त है वही आर्य जाति है। वर्णाश्रमधर्म्म विहीन जाति के अनार्य्यजाति है। इसके सिवाय धात्वर्थ और गुणानुसार भी आर्य जाति के अनेक लक्षण होते हैं। यथा—गमन या व्याप्ति अर्थक 'ऋ' धातु से ण्यत् प्रत्यय द्वारा आर्य शब्द के बनने के कारण वेदों के भाष्यकार सायणाचार्य ने आर्य जाति का यही लक्षण किया है कि जो जाति पृथिवी के अनेक स्थानों में जाकर अपनी कीर्ति-ध्वजा की स्थापना करती थी, वही आर्य जाति है। इस विषय में महाभारत में भी प्रमाण मिलता है। यथा—

म्लेच्छाश्चाऽन्ये वहुविधाः पूर्वं ये निहता रणे।
आर्याश्च पृथिवीपालाः।

पूर्वकाल में बहुत प्रकार की अनायजाति को युद्ध में परास्त करके जो जाति पृथिवी की अधिपति हो गई थी, वही आर्य जाति है।......"[1]

(९०) प्रो० शिवदत्त जी ज्ञानी, एम० ए० लिखते हैं—

"**आर्य-हिन्दू-विवाद**—आज हमारा देश 'हिन्दुस्तान' नाम से जाना जाता है, तथा हम लोग 'हिन्दू' नाम से सम्बोधित किए जाते हैं। साथ ही एक पक्ष इस बात का भी समर्थन करता है कि यह नाम हमारे लिए एक सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। हमारा प्राचीन नाम 'आर्य' है व देश 'आर्यावर्त' व 'भारतवर्ष' कहलाता था। अतएव इस पक्ष के अनुसार हम 'हिन्दू' व 'हिन्दुस्तान' के स्थान में 'आर्य' व 'आर्यावर्त' या 'भारतवर्ष' स्वीकार कर लें। वास्तविक रूप में, हमारे समाज में 'आर्य' शब्द से किसी को घृणा नहीं थी। आर्यसमाज के प्रादुर्भाव के पश्चात् उसके विरोधियों ने 'आर्य' शब्द का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप, आर्य-हिन्दू विवाद का जन्म हुआ। निष्पक्ष भाव से इस प्रश्न पर दृष्टि डालने से स्पष्ट होगा कि मुस्लिम आक्रमणों के पूर्व हमारे पूर्वज अपने को आर्य ही कहते थे, तथा इस देश को आर्यावर्त या भारतवर्ष कहते थे।

संस्कृत साहित्य में 'हिन्दू' शब्द अप्राप्य—संस्कृत साहित्य में 'हिन्दू' नाम का उल्लेख नहीं आता। कुछ लोग 'हिन्दू' शब्द को ऋग्वेद से सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। उनके मतानुसार वेदकालीन आर्य जिस देश में रहते थे उसका नाम 'सप्तसिन्धु'

१. "श्री धर्मकल्पद्रुम्, तृतीय खण्ड, पृष्ठ ७५१।७५२ [सन् १९२६ ई० भारत धर्म सिण्डिकेट लिमिटेड के शास्त्र प्रकाशक विभाग, वाराणसी द्वारा प्रकाशित, तृतीयावृत्ति .
आपने पृष्ठ ९७० में 'मेरुतन्त्र' के प्रमाण से 'हिन्दू' शब्द को सिद्ध करने का प्रयास किया है जिसकी आलोचना इस लेख में हो चुकी है—(लेखक)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

था। उसी सप्तसिन्धु से 'हफ्तहिन्दु' हुआ व बाद में 'हिन्दुस्तान' 'हिन्दू' आदिशब्द बन गए। किन्तु इस मन्तव्य के लिए ऐतिहासिक, साहित्यिक आदि कोई भी प्रमाण नहीं है; भाषा-शास्त्र के नियमों से भी यह सिद्ध नहीं किया जा सकता। ऋग्वेद में किसी देश-विशेष के नाम का उल्लेख नहीं है, किन्तु नदी तथा पर्वतों के नाम निर्दिष्ट हैं। इसी प्रकार भरत, द्रुह्यु, अणु आदि राजाओं के नामों का भी उल्लेख है।† ऋग्वेद में 'सप्त सिन्धु' शब्द का उल्लेख कुछ स्थलों पर आता है। सायण आदि ने उसका अर्थ 'सात नदियों' किया है। वे नदियाँ इस प्रकार हैं—सिन्धु, वितस्ता, शुतुद्री, असिक्नी, परुष्णी, सरस्वती, कुभा (अथवा गंगा व यमुना)। कदाचित् यह शब्द सात नदियों से घिरे हुए देश-विशेष का भी द्योतक हो किन्तु **इससे यह कदापि प्रमाणित नहीं हो सकता कि वैदिक काल में समस्त देश 'सप्तसिन्धु' कहलाता था।'**······

पौराणिक साहित्य में भी विभिन्न स्थलों पर **आर्य; 'आर्यावर्त', 'भारतवर्ष'** आदि नामों का उल्लेख आता है, 'हिन्दू' शब्द कहीं भी उल्लिखित नहीं है।······

इन प्रमाणों के अतिरिक्त अन्य कितने ही साहित्यिक तथा ऐतिहासिक प्रमाण दिए जा सकते हैं. जिनसे स्पष्टतया यह प्रमाणित होता है कि हमारा देश आर्यावर्त, भारतवर्ष आदि नामों से ही सम्बोधित किया जाता था तथा हमारे पूर्वज अपने को 'आर्य' ही कहा करते थे न कि 'हिन्दू'। 'नाट्य-शास्त्र' (ईसा की दूसरी शताब्दी) के नियम के अनुसार संस्कृत नाटक में नायिका अपने नायक को 'आर्यपुत्र' नाम से सम्बोधित करती है। किसी भी धार्मिक कृत्य का संकल्प लेते समय आज भी "जम्बूद्वीपे भरतखण्डे ······" आदि शब्दों को उच्चारित किया जाता है। इन प्रमाणों के आधार पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि मुस्लिम आक्रमण के पूर्व हमारे पूर्वज अपने को 'आर्य' तथा अपने देश को 'आर्यावर्त', 'भारतवर्ष' आदि कहते थे। ऐसी परिस्थिति में स्वभावत: यह शङ्का हो सकती है कि यदि 'हिन्दू' शब्द प्राचीन व हमारा नहीं है तो आज हम सब अपने को एक स्वर से 'हिन्दू' क्यों कहते हैं? इतिहास की सहायता से यह बात भी समझ में आ जाती है।

'हिन्दू' शब्द का ऐतिहासिक विवेचन—'हिन्दू' शब्द का जन्म 'सिन्धु' से होता है। आधुनिक पारसियों के पूर्वज, जो कि ईरान देश में बसे थे। भारतीय आर्यों को 'हिन्दू' नाम से ही जानते थे। वे स्वत: भी आर्य थे तथा भारतीय भी आर्य थे। ऐसी अवस्था में भारतीयों को विशिष्ट रूप से सम्बोधित करना स्वाभाविक ही था। इसलिए कदाचित् उन्होंने भारतीयों को 'हिन्दू' नदी के पारवर्ती आर्य या 'हिन्दू आर्य' कह कर 'हिन्दू' नाम को उपयुक्त किया होगा। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि प्राचीन ईरान-निवासी संस्कृत 'स' के स्थान में 'ह' का उच्चारण करते थे। संस्कृत भाषा का 'स' जेन्द भाषा में 'ह' हो जाता है। इस प्रकार प्राचीन ईरानियों ने सर्वप्रथम हमारे लिए 'हिन्दू' शब्द प्रयुक्त किया। उनके धर्म ग्रन्थ अवेस्ता (वेनिदाद १/१८)

---

† ऋग्वेद में किसी पहाड़, नदी, राजा प्रभृति के रूढ़ि के नाम नहीं हैं वरन् उनके यौगिक अर्थ कुछ और हैं। ज्ञानी जी ऋग्वेद में किसी देश-विशेष का नाम तो नहीं मानते, पर लेखक के मन में वेद में भूगोल इतिहास खोजने की प्रवृत्ति कार्य कर रही है जिससे मैं नितान्त असहमत हूँ—(लेखक)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में इन सब बातों का स्पष्ट उल्लेख है। यह ग्रन्थ ईसा के पूर्व सातवीं शताब्दी के लगभग का है।

प्राचीन अरब के निवासी भी हमें 'हिन्दू' व हमारे देश को 'हिन्दू' कहते थे। अङ्क गणना का नाम उन्होंने 'हिन्सा' रखा था। जो 'हिन्द-सा' से बना है, जिसका मतलब होता है हिन्द अथवा भारतवर्ष के समान। कुछ विद्वानों का यह भी मन्तव्य है कि प्राचीन अरबी साहित्य में 'हिन्द' 'हिन्दू' आदि नामों का उल्लेख आता है। अरब के निवासी भी ईरानियों के समान 'हिन्दू' नामों का प्रयोग करने लगे। प्राचीन यूनानियों का भारतीयों से प्रत्यक्ष सम्पर्क सर्वप्रथम ईरान में हुआ था। इस लिए उन्होंने भी ईरानियों के समान भारतीयों के लिए 'हिन्दू' शब्द प्रयुक्त किया। किन्तु यह 'हिन्दू' शब्द यूनानी भाषा में 'इण्डु' अथवा 'इण्डो' हो गया' और भारत वर्ष 'इन्डिका' कहलाने लगा जिस पर से 'इन्डिया' व 'इन्डियन' नाम पड़े। जिन-जिन विदेशियों के सम्पर्क में भारतीय आए, उन्होंने 'हिन्दू' शब्द के किसी विकृत रूप का प्रयोग किया। प्रसिद्ध चीनी यात्री च्वेनचेङ् (ईसा की ७ वीं शताब्दी का पूर्वार्ध) भी अपने ग्रन्थ में भारत के लिए 'मिन्टु' नाम प्रयुक्त करता है और यह शब्द 'हिन्दू' से बना है। इसी प्रकार मुसलमानों ने भारतीयों को 'हिन्दू' तथा 'भारतवर्ष' 'हिन्द' अथवा 'हिन्दोस्ताँ' नाम से सम्बोधित किया। कतिपय सज्जनों का मत है कि 'हिन्दू' शब्द फारसी भाषा का है तथा इसका अर्थ काला बदमाश, गुलाम आदि होता है व मुसलमानों द्वारा ही यह नाम सर्वप्रथम हमको दिया गया। किन्तु ऐतिहासिक प्रमाण तो यह सिद्ध करते हैं कि मुसलमानों के जन्म के पूर्व भी 'हिन्दू' शब्द का अस्तित्त्व था। यदि किसी शब्द का अर्थ अन्य भाषा में बदल जाये तो उससे भयभीत नहीं होना चाहिए।

'हिन्दू' शब्द का अपनाया जाना—मुसलमानों के आगमन काल में हिन्दी आदि विभिन्न भाषाओं ने अपना आधुनिक रूप धारण करना प्रारम्भ कर दिया था। इस विकास पर मुस्लिम शासकों का भी प्रभाव पड़ा। अरबी, फारसी आदि भाषाओं के कितने ही शब्द हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं में पाये जाते हैं। उर्दू भाषा का प्रादुर्भाव भी इस प्रभाव का एक उदाहरण कहा जाता है। इसी प्रकार इन भाषाओं ने 'हिन्दू' 'हिन्दुस्तान' आदि शब्द भी अपना लिए। इसी समय भारत का सामाजिक संगठन ढीला-सा पड़ गया था। शक, हूण, आदि के समान मुस्लिमों को पचा लेने के बदले भारतीय समाज अपनापन खोकर उनसे प्रभावित हुआ व उसने 'हिन्दू', 'हिन्दुस्तान' आदि नाम अपना लिए। हिन्दी आदि भाषाओं के साहित्य में भी 'आर्य' आदि के बदले 'हिन्दू' शब्द ही प्रयुक्त किया जाने लगा। हिन्दी साहित्य में तो प्रारम्भिक काल से ही इन शब्दों को अपना लिया गया था जैसा कि चन्दवरदाई के 'पृथ्वीराज रासौ' से स्पष्ट प्रतीत होता है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 'हिन्दू' तथा 'हिन्दुस्तान' नाम मुस्लिम आक्रमणों के पश्चात् भारतीय साहित्य तथा बोलचाल में प्रचलित हुए। किन्तु संस्कृत साहित्य में तो 'आर्य', 'आर्यावर्त' 'भारतवर्ष' आदि नाम ही प्रयुक्त होते रहे।

उपसंहार—सारांश में यह कहना चाहिए कि वैदिक काल से 'आर्य' 'आर्यावर्त', 'भारतवर्ष' आदि नाम प्रचलित थे। 'हिन्दू' नाम का सर्वप्रथम प्रयोग ईरानियों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ने किया। अरब, यूनान, चीन आदि के प्राचीन निवासियों ने भी इसी शब्द के विभिन्न अपभ्रंशों का प्रयोग किया। मुस्लिमों ने भी इसी नाम को अपनाया। मुस्लिम शासन में भारतीय अपनी संस्कृति से बिछुड़ने लगे व विदेशियों से प्रभावित होकर 'हिन्दू', 'हिन्दुस्तान' आदि नामों का प्रयोग करने लगे। किन्तु भारतीयों को चाहिए कि वे अपने प्राचीन नामों को ही अपनायें, क्योंकि 'आर्य,' 'आर्यावर्त' 'भारतवर्ष' आदि नाम हृदय में प्राचीन गौरव की दिव्य छटा का आभास कर सकते हैं। राष्ट्रीय भावना की जागृति इन्हीं प्राचीन नामों से हो सकती है न कि विदेशियों द्वारा दिए गए 'हिन्दू' आदि नामों से। प्रत्येक भारतीय को अपने गौरवान्वित प्राचीन नामों को अपनाना चाहिए।"[1]

(९१) महामहोपाध्याय रायबहादुर डा० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा डी० लिट् लिखते हैं—

"इस पुस्तक में 'आर्य्य' शब्द का प्रयोग (सिवाय पृ० १४ के) देख कर पाठक यह अनुमान न करे कि यह शब्द आर्यसमाज के अनुयायियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। आजकल 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग होता है, परन्तु उसके स्थान में प्राचीन काल में 'आर्य' शब्द का प्रयोग होता था। 'हिन्दू' नाम वि० सं० की ८वीं शताब्दी से पूर्व के ग्रन्थों में नहीं मिलता है। फारस (ईरान) की भाषा में 'स' के स्थान में 'ह' बोला जाता था जैसे कि 'सप्त' को 'हफ़्त' सिन्धु को 'हिन्दू' आदि इसी से ईरानियों ने सिन्धु के निकटवर्ती निवासियों को हिन्दू कहा। पीछे से सारे भारत के लोग हिन्दू और उनका देश हिन्दुस्तान कहलाया। सिकन्दर के समय के यूनानी लेखकों ने 'सिन्धु' को इंडु (इंडज्) और यहां के निवासियों को 'इंडियन' कहा; इसी से अंग्रेज, भारत-वासियों को 'इंडियन' और भारत को 'इंडिया' कहते हैं। प्राचीन काल में 'आर्य' शब्द बड़े गौरव का सूचक था और सम्मान के लिए उसका प्रयोग होता था। रानियां एवं स्त्रियां अपने पति को संबोधन करने में 'आर्यपुत्र', ऐसे ही सासु और श्वसुर के लिए क्रमशः 'आर्या' और 'आर्य' शब्दों का प्रयोग करती थीं। बौद्धों में भी यह शब्द गौरव का बोधक माना जाता था इसी से उनके कई प्रसिद्ध धर्माचार्यों आदि के नाम के साथ आर्य शब्द जुड़ा हुआ मिलता है, जैसे कि आर्य असंग, आर्यदेवः, आर्यपार्श्विक, आर्य-सिंह आदि। जैनों में साध्वी अब तक आर्या (आरजा) कहलाती हैं।"[2]

(९२) **डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी एम०ए०, पीएच० डी०, डी० लिट् एम०पी०** लिखते हैं—"···पुराने समय में विदेशी लोग भारत को उसके उत्तर-पश्चिम में बहने वाले महानद सिन्धु के नाम से पुकारते थे, जिसे ईरानियों ने 'हिन्द्र' और यूनानियों ने हकार का लोप कर के 'इन्डोज' कहा। लेकिन भारतवर्ष का नाम इण्डिया की तरह केवल भौगोलिक संज्ञा नहीं है। उसका ऐतिहा-

---

१. "भारतीय संस्कृति" पृष्ठ २९ से ३२ तक [विक्रम संवत् २००८ परिवर्तित व संशोधित द्वितीय संस्करण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली द्वारा प्रकाशित]

२. "राजपूताने का इतिहास, जिल्द पहली, पृष्ठ ४२-४३ की पाद-टिप्पणी [सन् १९३७ ई. में वैदिक यन्त्रालय, अजमेर में मुद्रित व व्यास एण्ड सन्स, पुस्तक विक्रेता, अजमेर द्वारा प्राप्य, द्वितीय संस्करण]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सिक महत्व है और इसका अर्थ है—'भरतजन' का देश, अथवा भारतीय आर्य संस्कृति का क्षेत्र। जिसके मुख्य प्रचारक भरत लोग थे।......"[1]

इससे स्पष्ट प्रकट है कि मुकर्जी जी की सम्मति में 'हिन्दु' नाम ईरानियों की देन है, हमारा वास्तविक नाम 'आर्य' ही है।

(९३) भारत के प्रधान मंत्री परलोकवासी **पं० जवाहरलाल नेहरू** का विचार—"...हमारे पुराने साहित्य में तो 'हिन्दू' शब्द कहीं आता ही नहीं। मुझे बताया गया है कि इस शब्द का हवाला हमें जो किसी हिन्दुस्तानी पुस्तक में मिलता है वह है आठवीं सदी ईस्वी के एक तान्त्रिक ग्रन्थ में, और वहाँ हिन्दू का मतलब किसी खास धर्म से नहीं बल्कि खास लोगों से है। लेकिन यह ज़ाहिर है कि यह लफ्ज बहुत पुराना है और अवेस्ता में और पुरानी फ़ारसी में आता है। उस समय, और उस समय से हज़ार साल बाद तक पश्चिमी और मध्य एशिया के लोग इस लफ्ज का इस्तेमाल हिन्दुस्तान के लिए, बल्कि सिन्धु नदी के इस पार बसने वाले लोगों के लिए करते थे। यह लफ्ज साफ-२ 'सिन्धु' से निकला है और यह 'इंडस' का पुराना और नया नाम है। इस 'सिन्धु' शब्द से हिन्दू और हिन्दुस्तान बने हैं और 'इंडोस' और 'इंडिया' भी। मशहूर चीनी यात्री इत्सिंग ने, जो कि हिन्दुस्तान में सातवीं सदी ईस्वी में आया था, अपनी यात्रा के बयान में लिखा है कि 'उत्तर की जातियां, यानी मध्य एशिया के लिए हिन्दुस्तान को हिन्दू (सीन्-तु) कहते हैं, लेकिन उसने यह भी लिखा है कि "यह आम नाम नहीं है...हिन्दुस्तान का सब से मुनासिब नाम **आर्य देश** है।" एक खास मजहब के माने में 'हिन्दू' शब्द का इस्तेमाल बहुत बाद का है।

हिन्दुस्तान में मज़हब के लिए पुराना व्यापक शब्द 'आर्य धर्म' था।[2]

(९४) **डॉक्टर देवसहाय त्रिवेदी एम० ए०, पी० एच० डी०** लिखते हैं—"वेद में 'आर्य' शब्द का प्रयोग निम्नलिखित अर्थ में हुआ है—श्रेष्ठ, कृषक, स्वामी, संस्कृत अतिथि इत्यादि। वैदिक साहित्य में 'अर्य' का अर्थ जाति या राष्ट्र से नहीं है। अतः यह यूरोपीय शब्द आर्यन (Aryan) का पर्याय नहीं कहा जा सकता।"...[3]

---

१. "हिन्दू-सभ्यता" पृष्ठ ५६ [Hindi Civilization का अनुवाद, सन् १९५५ राजकमल प्रकाशन, दिल्ली]

२. "हिन्दुस्तान की कहानी" पृष्ठ ७८-७९ ["The discovery of India" का श्री रामचन्द्र टण्डन द्वारा अनुवादित, सन् १९४७ ई. में सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली द्वारा, प्रकाशित द्वितीय संस्करण]

३. "प्राङ्.मौर्य बिहार" तृतीय अध्याय, पृष्ठ १४ की पादटिप्पणी [सन् १९५४ ई. में बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, सम्मेलन-भवन, पटना-३ द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण] तुलना करो "स्वामी शङ्करानन्द का ऋग्वैदिक कल्चर आफ प्रीहिस्टरिक आर्यन्स, रामकृष्ण वेदान्त मठ, पृष्ठ २-३

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(६५) **श्री नारायण भवनराव पावगी** लिखते हैं—"...आर्य शब्द का अर्थ 'प्रभु' या 'श्रेष्ठ' है। यास्क ने इस शब्द की अपनी व्याख्या में 'आर्य ईश्वर का पुत्र है' (आर्य ईश्वरपुत्रः। नि० पू० खं. ६-२६) लिखा है। प्रसिद्ध विद्वान् सायण 'आर्य' शब्द की यह व्याख्या करते हैं कि जिसकी शरण सब कोई जाय वही आर्य है (आर्यम्, अरणीयम्-सर्वैर्गन्तव्यम्—सायण भाष्य ऋ० वे० १-१३०-८) व इस शब्द का अर्थ कुशल कर्मकाण्डी' (आर्यान्विदुषोऽनुष्ठातॄन्। ऋ. वे. १-५१-८) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन सर्वोच्च जातियों में से एक (उत्तमं वर्णत्रैवार्णिकम्। ऋ. वे. ३-३४-९), यज्ञादिक जैसे धार्मिक कर्मों का करने वाला—(आर्याय यज्ञादिककर्मकृते यजमानाय। ऋ. वे. ६-२५-२) यज्ञ करने के कारण श्रेष्ठ मनुष्य आदि लेते हैं।"[1]

(६६) **श्री पुरुषोत्तम नागेश ओक, एम. ए., एल. एल. बी. व श्री जगमोहन राव भट्ट एम. ए., साहित्यरत्न** लिखते हैं—"संस्कृत-भाषी भारतीयों ने 'आर्य' शब्द की सृष्टि आदर्श के द्योतक के रूप में की थी। **भारतीयों के लिए 'आर्य' शब्द सुसंस्कृत जन, पूर्ण कुलीन व्यक्ति, आदर्श मनुष्य, अतिमानव का द्योतक था।** महान् आदर्शवादी एवं आचरण की शुद्धता के दृढ़ पोषक व्यक्ति होने के कारण उन लोगों ने 'आर्य' की कल्पना उद्विकास की ऐसी स्थिति में की जिसमें पहुंच जाने की आकांक्षा, अभिलाषा प्रत्येक को करनी चाहिए।

इस सत्य का, सभी भारतीयों के लिए आदर्श वाक्य 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' अर्थात् 'सर्व विश्व को आर्य बनाओ' से बढ़ कर और कौन सा उत्तम प्रमाण होगा! यदि 'आर्य' शब्द किसी जाति का द्योतक रहा होता, तो उपर्युक्त आदर्श वाक्य प्रयोग एवं व्यवहार में नहीं आता क्योंकि जाति-भावना की दृष्टि से प्रबुद्ध व्यक्ति, संसार को अपने समुदाय में सम्मिलित करना तो दूर, अपनी सत्ता सर्वथा पृथक् बनाए रखने में ही विश्वास रखते हैं।

'आर्य' शब्द आदर्श व्यक्ति का द्योतक था, किसी जाति का नहीं। यह भगवान् श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन की भर्त्सना निम्न शब्दों द्वारा किए जाने से पुनः सिद्ध होता है—

(१) कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्, अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन।
(२) क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते, क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥
(३) हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥

भगवान् श्री कृष्ण दिव्यावतार होने के कारण स्वयं को कभी भी एक ही जाति से बाँध कर रखते एवं अन्य लोगों को हीन भावना से देखते—ऐसा कभी नहीं हो सकता था।

---

१. "आर्यों का मूल स्थान" पृष्ठ १८७ [लेखक अंग्रेजी पुस्तक "दि आर्यार्विटिक होम एण्ड दि आर्यन क्रेडल इन दि सप्ट सिंधुज" का पं० देवीदत्त शुक्ले द्वारा अनुवादित, संवत् १९८६ वि. 'लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर' स्टीम् प्रेस, कल्याण-बम्बई द्वारा प्रकाशित]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्राचीन भारत में पति अथवा राजा को सम्बोधन करते समय 'आर्य' शब्द का नित्य व्यवहार करना भी एक अन्य प्रमाण है। पति के लिए व्यवहार में आने वाला एक अन्य शब्द 'वर' है। संस्कृत में 'वर' शब्द अत्यधिक श्रेष्ठ व्यक्ति का द्योतक है। अतः 'आर्य' शब्द भी उसी भावना का समानार्थक है।''...[1]

आक्षेपों के निराकरण

(९७) कुछ पौराणिक हिन्दू सभाई प्रभृति आग्रह करते हैं कि 'हिन्दू' शब्द मन्त्र-कालीन है। वैदिक मुनि स्वामी हरिप्रसाद जी उदासीन ने "स्वाध्याय-संहिता" में कुछ प्रमाण दिए हैं जिनको सभी पौराणिकों ने प्रतिलिपि कर ली है। पं० कालूराम शास्त्री, अमरौधा ने "हिन्दु-शब्द-मीमांसा"[2] ., पं० माधवाचार्य शास्त्री, विद्याभास्कर पं. श्रीकण्ठशास्त्री, प्राच्य व्याकरणाचार्य, हिन्दी प्रभाकर ने "हिन्दु और हिन्दुराष्ट्र"[3], पं. दीनानाथ शास्त्री सारस्वत ने "श्री सनातन धर्मालोक चतुर्थ सुमन,[4] स्वातन्त्र्य वीर श्री विनायक दामोदर सावरकर बार. ऐट-लॉ. ने "हिन्दुत्व"[5]; हिन्दुत्व के पञ्च प्राण"[6]; प. कमलाकान्त त्रिपाठी शास्त्री ने "हिन्दु शब्द की प्राचीनता"[7]; श्री र० प्र० त्रिवेदी भूतपूर्व जज. इटावा, ने "हिन्दू-नाम"[8] पुस्तकें लिखी हैं जिनमें 'हिन्दू' शब्द की वकालत हो गई है।

पं० कालूराम शास्त्री ने कोषों का प्रमाण दिया है जो वैदिक मुनि जी के दिए गए प्रमाणों की प्रतिलिपि मात्र है जिनका उत्तर पीछे दिया जा चुका है। श्री र० प्र० त्रिवेदी की पुस्तक में कोई प्रमाण नहीं है और ऊटपटांग भाषा में है।

---

१. "भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें" ("Some blunders of Indian Historical Research." का हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ २४३-२४४ [सन् १९७१ ई., कौशल पॉकेट बुक्स, दिल्ली-७ द्वारा प्रकाशित, पाकेट माला में प्रथम]

२. संवत् १९९१ वि. में पं० कामताप्रसाद दीक्षित, अमरौधा जि० कानपुर द्वारा प्रकाशित, तृतीय संस्करण

३. संवत् २०१२ माधव पुस्तकालय, धर्मधाम कमलानगर, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, प्रथमावृत्ति

४. संवत् २११ में श्री सनातनधर्मालोक ग्रन्थमाला, कार्यालय फर्स्ट बी. १९, लाजपत नगर, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित

५. राजपाल एण्ड सन्ज, अनारकली, लाहौर द्वारा प्रकाशित, संशोधित संस्करण श्री सत्यकाम विद्यालङ्कार द्वारा अनुवादित.

६. १९७१ ई० में भारती साहित्य सदन, नई दिल्ली-१ से प्रकाशित.

७. भारत कम्पनी, गन्ना स्ट्रीट, लखनऊ द्वारा प्रकाशित,

८. सितम्बर सन् १९५० ई० में ब्रह्म प्रेस, इटावा द्वारा मुद्रित और लेखक द्वारा प्रकाशित.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

श्री सावरकर जी ने भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग पर्व अ० ५ का "... हप्तर्हिन्दु-भविनी च नपुञ्जेया गुरुण्डिका" का प्रमाण "हिन्दुत्व" पृष्ठ ९। यही प्रमाण उन्होंने "हिन्दुत्व के पञ्च प्राण" पृष्ठ १२ में दिया है। यहाँ भविष्य पुराणः प्रतिसर्गपर्व अ. २ दिया है।

पं० माधवाचार्य शास्त्री ने उपर्युक्त प्रमाण को "हिन्दू और हिन्दू राष्ट्र" पृष्ठ १८ में "भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग ५/३६" दिया है।

पं कमलाकान्त त्रिपाठी शास्त्री ने "हिन्दु शब्द की प्राचीनता" पृष्ठ ७ में भी भविष्यत् पुराण के प्रतिसर्ग-पर्व के ३/५/३६ दिया है। शेष प्रमाण "स्वाध्याय संहिता" की प्रतिलिपि मात्र है।

ऋग्वेद १/१६४/२७, आ. ९/१०/५ के मन्त्र से 'हिन्दु' शब्द की प्राचीनता और वैदिकता सिद्ध करेंगे जो इस प्रकार हैं—

'हिं' कृण्वती वसुपत्नी वसूनां,
वत्समिच्छन्ती मनसा अभ्यागात्।
'दु' हाश्विभ्यां पयो अघ्नेयं,
सा वर्धतां महते सौभगाय ॥

यह मंत्र गोवर्णनपरक है। मन्त्र के अनुसार प्रथम और द्वितीय लिखने के अनुसार प्रथम और तृतीय चरण के प्रथम अक्षर को लेने से 'हिन्दु' बन जाता है जिसका अर्थ गोरक्षक होता है।

पं० दीनानाथ शास्त्री ने 'श्री सनातन धर्मालोक ४ पृष्ठ ५३ से १०४ तक में "हिन्दु शब्द की वैदिकता" शीर्षक से लिखा है। इन्होंने पृष्ठ ६२ में ऋ० १/१६४ २७, अथर्व० ९/१०/५ का प्रमाण देकर 'हिन्दू' शब्द को मंत्रकालीन सिद्ध करने का प्रयास किया है। आपने भविष्य पुराण ५/३६, में आये 'हिन्दु' शब्द को भी पृष्ठ ७४ में दिया है जिसकी प्रतिलिपि श्री माधवाचार्य शास्त्री ने ५/३६ लिख दिया है। पं० नरदेव शास्त्री कृत "ऋग्वेदालोचन" पृष्ठ १५८-१५९ से भी पं० दीनानाथ शास्त्री ने यह दिखलाने का प्रयास किया है कि 'सप्तसिन्धु' का वर्णन वेद में है।

समीक्षा—'हिन्दू' शब्द वैदिक नहीं है। हमारा वास्तविक नाम "आर्य" ही है जिसके लिए ९३ प्रमाण दिए गए हैं। हिन्दू सभाई व पौराणिकों का दुराग्रहमात्र है कि वे पुराण व वेद से 'हिन्दू' शब्द सिद्ध करने का प्रयास करते हैं।

भविष्यपुराण के प्रमाण पर विचार—जिन लोगों ने 'भविष्यपुराण' का प्रमाण दिया है, पता अशुद्ध व अधूरा है। सावरकर जी ने 'हिन्दुत्व' में 'प्रतिसर्गपर्व अ०५' लिखा है जब कि "हिन्दुत्व के पञ्च प्रमाण" में प्रतिसर्गपर्व अ०२ लिखा है। अध्याय २ प्राण लिखना भयंकर भूल है। अ० ५ लिखा जो अधूरा है, श्लोक संख्या और खण्ड नहीं लिखा है। पं० माधवाचार्य शास्त्री ने भी केवल ५/३६ लिखा है, खण्ड नहीं। पं० कमलाकान्त त्रिपाठी ने प्रतिसर्ग पर्व ३/५/३६ लिखा है जो अशुद्ध है, ३ से क्या तात्पर्य है? यदि खण्ड से है तो अशुद्ध है। पं० दीनानाथ शास्त्री ने भी केवल ५/३६ लिखा है जो अधूरा है। क्या इससे भविष्य पुराण में पता चल जाएगा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पूरा पता इस प्रकार है:—

"सप्तहिन्दुर्यावनी च पुनर्ज्ञेया गुरुंडिका ।।"

—[भविष्यपुराण, प्रतिसर्ग पर्वणि, प्रथमखण्डे, पञ्चमोऽध्याय: श्लो० ३६][1]

भविष्य पुराण में इस सर्ग में सण्डे (Sunday), फरवरी (February), सिक्सटी (Sixty) आंग्ल भाषा के शब्द हैं। अश्व को 'अस्प', जानु को 'जैनु' 'सप्त सिन्धु' को 'सप्तहिन्दु' कहा गया है।

प्रति सर्ग पर्व ३ खण्ड ३, अध्याय २ श्लो० २३ में 'ईसामसीह': प्रतिसर्ग प० खण्ड ३, अ० ३, श्लो. ५ में 'महामद' (मुहम्मद), प्रतिसर्ग प. ३, खण्ड ४, अ० २२ श्लो० ६३ से ८७ तक में अंग्रेजों की चर्चा है।

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि भविष्य पुराण की रचना अत्यन्त नूतन है। यदि 'वेदव्यास' का बनाया हुआ 'भविष्य पुराण' है तो क्या वे आंग्ल भाषाविद् थे? यदि दिव्य दृष्टि से ऐसी बातें लिख गए तो महर्षि दयानन्द जी सरस्वती और उनके आर्यसमाज की चर्चा क्यों नहीं की? पवित्र आर्यावर्त (भारतवर्ष) का दो टुकड़ा हो जाएगा, 'भारत व पाकिस्तान' ऐसी चर्चा क्यों नहीं की? क्या यहाँ तक उनकी दिव्य दृष्टि नहीं पहुँची?

अतः यह प्रमाण आधुनिक व अमान्य है।

इसी प्रकार 'पारिजातहरण नाटक, कालिका पुराण, शार्ङ्गधर पद्धति के नाम से दिए गए श्लोकों का पता क्यों नहीं दिया गया है? न तो वैदिक मुनि, पं० कालूराम शास्त्री और न पं० दीनानाथ शास्त्री और न तो पं० माधवाचार्य शास्त्री ने पते दिये। 'पारिजातहरणनाटक' में '"'सहिन्दुरभिधीयते' प्रमाण नहीं है। वैदिक मुनि जी की काली करतूत हैं। संभवत, उन्होंने मनगढ़न्त श्लोकों को बना लिया है।

पं० दीनानाथ शास्त्री के लेख का उत्तर मैं ने अपनी पुस्तक "वैदिक सिद्धान्त मार्तण्ड"[2] पृष्ठ १२६ से १४८ तक में दिया है।

"हिङ्कृण्वन्ती वसुत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात्।
दुह्यमश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ।।"

—[ऋ० १।१६४।२७; अथर्व० ९।१०।५]

वास्तविक अर्थ—पं० दीनानाथ शास्त्री तथा अन्यान्य विद्वान् ३ से 'हिन्दु' शब्द सिद्ध करते हैं जो उन की भारी भूल है। श्री सायणाचार्य को यह अर्थ नहीं सूझा।

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती का भाष्य—"(हिंकृण्वती) हिमिति शब्दयन्ती (वसुपत्नी) वसूनां पालिका (वसूनाम्) अग्न्यादीनाम् (वत्सम्) (इच्छन्ती) (मनसा) (अभि) (आ) (अगात्) अभ्यागच्छति (दुहाम्) (अश्विभ्याम्) सूर्यवायुभ्याम् (पयः)

---

१. संवत् २०१५ वि. (सन् १९५९ ई०) में 'श्रीवेङ्कटेश्वर' स्टीम प्रेस, बम्बई द्वारा मुद्रित व प्रकाशित, पृष्ठ ४२३.

२. संवत् २०२० वि. में आर्य समाज, नया बांस, दिल्ली-६ द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जलं दुग्धं वा (अन्या) हन्तुमयोग्या (इयम्) (सा) (वर्द्धताम्) (महते) (सौभगाय) शोभनानामैश्वर्याणां भावाय।''

अर्थात्—''जैसे (हिंकृण्वती) हिंकारती और (मनसा) मन से (वत्सम्) बछड़े को (इच्छन्ती) चाहती हुई (इयम्) यह (अघ्न्या) मारने के न योग्य गौ (अभि, आ, अगान्) सब ओर से आती वा जो (अश्विभ्याम्) सूर्य और वायु से (पयः) जल वा दूध को (दुहाम्) दुहते हुए पदार्थों में वर्त्तमान पृथ्वी है (सा) वह (वसूनाम्) अग्नि आदि वसु संज्ञकों में (वसुपत्नी) वसुओं की पालने वाली (महत्) अत्यन्त (सौभगाय) सुन्दर ऐश्वर्य के लिए (वर्द्धताम्) बढ़े, उन्नति को प्राप्त हो।''

भावार्थ—''जैसे पृथ्वी महान् ऐश्वर्य को बढ़ाती है वैसे गौएँ अत्यन्त सुख देती हैं। इससे ये गौएँ कभी किसी को मारनी नहीं चाहिए।''[1]

पौराणिक पं० रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्त शास्त्री व पं० गौरीनाथ झा व्याकरण मनीषी—

'धनशाली धेनु' तीर्थ के लिए, मन ही मन, व्यग्र होकर ''हम्बा'' करती हुई, आती है। यह अश्विनीकुमारों के लिए दूध दे और महासौभाग्यलाभ के लिए प्रवृद्ध हो।''[2]

दोनों पौराणिक विद्वानों ने भी 'हिन्दु' शब्द का अर्थ नहीं निकाला। यही मंत्र निरुक्त अ० ११ : खंड ४५ में भी आया है :—

भा०—तस्या अघ्न्याया माध्यमिकाया देवतायाः खल्वेषाऽन्यर्गस्ति 'हिङ्-कृण्वती'...''तस्या वसुपत्नीत्वात् तथाऽश्विभ्यां दोहनान्मध्यस्थानत्वं पुष्टं भवति। ऋचः स्पष्टार्थत्वादुक्तं यास्केन सा निगदव्याख्याता। तथापि कर्तव्यदृष्ट्या खल्वस्माभिर्व्याख्यायते।

अर्थः—अघ्न्या इयं वसुपत्नी वसूनां रश्मीनां पत्नी ''वसवो रश्मयः'' (निघ० १।५) वसूनां रश्मीनां वत्समिच्छन्ती रश्मिभिराकृष्य यदुदकं सूक्ष्मं समर्प्यते हिङ्-कृण्वती—'हिङ्' इत्येवमप्यक्तं स्नेहमयं शब्दं कुर्वती तं वत्समुदकं मनसाऽभ्यगात् अभिप्राप्ता। पुनरश्विभ्यां द्यावापृथिवीभ्यामाकाशस्थपृथिवीस्थ प्रजायमानाभ्यां प्रजाभ्यं तयोरर्थे सा दुग्धां दोग्धुं दोग्धि पयः उदकम्। महते सौभगायास्माकं सौभगायसम्पादनाय वर्धताम्।

''अश्विनौ द्यावापृथिव्यौ ''(निरु० १२।१) ''इमे ह वै द्यावापृथिवी प्रत्यक्षमाश्विनौ...'' (शत० ४।१।५।१६)।

निरुक्तम्:—'दुहाम्' लोपस्त ''आत्मनेपदेषु'' (अष्टा० ७।१।४१) इत्यनेन

---

१. ''ऋग्वेद भाष्यम्'' द्वितीयाष्टके, तृतीयाध्यायारम्भ, पृष्ठ ६२८ [संवत् १९४३ ई. फाल्गुन शुक्ल पक्ष, प्रयाग नगर, वैदिक मन्त्रालय में मुद्रित]

२. ऋग्वेद संहिता (सरल-हिन्दी-टीका-सहित) द्वितीय अष्टक, पृष्ठ ७२ [ज्जेष्ठ १९८९ वैदिक पुस्तकमाला, कृष्णगढ़ सुलतानगंज, भागलपुर द्वारा प्रकाशित, प्रथमसंस्करण]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दुहधातां परस्य 'ताम्' इति लोटि प्रथमैकवचनस्य प्रत्ययस्य तकारलोपः। 'दुग्धाम्' इति प्राप्ते 'दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयम्' उदाहरणं काशिकायाम्।...[1]

पं० चन्द्रमणि जी 'विद्यालङ्कार' पालीरत्नः—'(वसूनां वसुपत्नी) सस्यादि उत्तमोत्तम वस्तुओं का पालक मेघ (मनसा वत्सं इच्छती) दिल से भूलोक-वत्स की इच्छा रखता हुआ (हिङ्कृण्वती अभ्यागात्) गर्जना के साथ आता है। (इयं अहन्या) तब यह मेघ (अश्विभ्यां पयः दुहाम्) व्याप्त स्थावर तथा जंगम, दोनों के लिए जल को दोहता है। (सा महते सौभगाय वर्द्धताम्) वह हमारे महान् सौभाग्य के लिए वृद्धि लाभ करे।

मंत्रार्थ स्पष्ट है। अतः यास्क ने इसकी व्याख्या नहीं की। गो-पक्ष में भी इसी तरह अर्थ समझिए।"[2]

आचार्य पं० भगीरथ शास्त्रीः— मंत्रार्थ—(हिङ् कृण्वती) हिङ्कार करती हुई (वसुपत्नी) उदकों की स्वामिनी यह माध्यमिक वाक् (मेघ) (वसूनाम्) आदित्यरश्मियों अथवा मरुतों के (वत्सम्) वत्सभूत आदित्य को (इच्छन्ती) चाहती हुई (मनसा) मन से (अभ्यागात्) आती है। (सा इयम् अघ्न्या) तब वह मेघ या माध्यमिक वाक् (अश्विभ्याम्) अश्वियों के लिए अर्थात् द्युलोक तथा पृथिवीलोक के लिए (पयः दुहाम्) जल को दोहती है (महते सौभगाय) महान् सौभाग्य के लिए (वर्द्धताम्) वृद्धि को प्राप्त हो। धर्मधुक् पक्ष में स्पष्ट ही है, तथा च—वह गौ (हिङ्कृण्वती) हिङ्कार करती हुई (वसुपत्नी) दूध आदि धनों की स्वामिनी (वसूनाम्) वसु अर्थात् हवियों और स्तुतियों से देवों के आच्छादयिता जो ऋत्विज या यजमान हैं उनके आत्मीय को (इच्छन्ती) चाहती हुई (मनसा) मन से (अभ्यागात्) उनके पास जाती है। (इयं सा अघ्न्या) यह वह गौ (अश्विभ्याम्) अश्वियों के लिए (पयः) दूध को (दुहाम्) दुहती है। यह गौ (महते सौभगाय) महान् सौभाग्य की अभिवृद्धि के लिए (वर्द्धताम्)बढ़े।[3]

पं० भगवद्दत्त जी बी० ए०:—[स्तनयित्नु रूप में] हिंकार करती हुई (वसुपत्नी) वृष्टि उदक रूप धन की अधिपति भूता (वसूनाम्) आदित्य रश्मि का मरुतों के (वत्सम्) आदित्य रूप वत्स का (इच्छन्ती मनसा) चाहती हुई मन से (अभिआगात्) आई। दूध दुहाए (दुहाम्)। अश्वियों के लिए (पय) पयरूप (अघ्न्या) माध्यमिका-वाक् (इयं सा वर्धताम्) यह वह बढ़े, महान् सौभाग्य के लिए।"[4]

अथर्व वेद काण्ड ९ सूक्त १० मंत्र ५ में यही मंत्र आया है।

---

१. स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड रचित "निरुक्तसम्मर्श:" पृष्ठ ८२३-८२४ [चैत्रमास २०२३ वि आर्य साहित्य मण्डल लि० अजमेर से प्राप्त]

२. "वेदार्थ-दीपक निरुक्तभाष्य" उत्तरार्ध, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ७०२

३. "निरुक्तम्" पृष्ठ ५३५ [१९६३ ई० मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, अध्यक्ष, संस्कृत पुस्तकालय, २७३६ कूचा चेला, दरियागंज, दिल्ली-६]

४. "निरुक्तशास्त्रम् भाषाभाष्य" पृष्ठ ६०७ [संवत् २०२१ श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर, प्रथम संस्करण]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पं. क्षेमकरणदास जी त्रिवेदी—"(हिङ्कृण्वती) गति वा वृद्धि करने वाली (वसुपत्नी) धन की रक्षा करने वाली (वसूनाम्) श्रेष्ठों के बीच (वत्सम्) उपदेशक पुरुष को (इच्छन्ती) चाहने वाली [वेदवाणी] (मनसा) विज्ञान के साथ (अभ्यागात्) सब ओर से प्राप्त हुई। (इयम्) यह (अघ्न्या) हिंसा न करने वाली विद्या (अश्विभ्याम्) दोनों चतुर स्त्री पुरुषों के लिए (पयः) विज्ञान को (दुहाम्) परिपूर्ण करे, [सा] वही [विद्या] (महते) अत्यन्त (सौभगाय) सुन्दर ऐश्वर्य के लिए (वर्धताम्) बढ़े।

भावार्थ यह जो वेदवाणी संसार का उपकार करती है उसको सब स्त्री-पुरुष प्राप्त हो कर यथावत् वृद्धि करें।"[1]

चतुर्वेद भाष्यकार पं. जयदेव शर्मा 'विद्यालङ्कार' मीमांसातीर्थ—"जिस प्रकार (वत्सम्) बछड़े को (इच्छन्ती) चाहती हुई गाय (हिंकृण्वती) 'घि' 'घि' इस प्रकार शब्द करती हुई, हंमारती हुई बछड़े के पास आ जाती है उसी प्रकार (वसुपत्नी) देह में मुख्य रूप से वास करने वाले आत्मारूप वसु की 'पत्नी' शक्ति स्वरूप चिति शक्ति (वसूनां) अपने पुत्र रूप अन्य प्राणरूप वसुओं के निमित्त (मनसा) मनोबल से (नि-आगन्) उनको प्राप्त करती है, उन तक पहुँचती है। और जिस प्रकार (इयम्) यह (अघ्न्या) कभी न मारने योग्य, सुशीला, गोमाता (अश्विभ्यां) स्त्री-पुरुषों, गृह के निवासी जनों को (पयः दुहाम्) दूध प्रदान करती है, उसी प्रकार यह चितिशक्ति या ब्रह्ममयी धेनु (अश्विभ्यां) प्राण और अपना या आत्मा और अन्तःकरण दोनों के लिए (पयः) पुष्टिकारक और तृप्तिकारक ज्ञान और बल रुप इस को (दुहाम्) प्रदान करती है। (सा) इस लिए वह अघ्न्या गौ (महते सौभगाय) बड़े सौभाग्य, समृद्धि और सुख के लिए (वर्धताम्) बढ़े।

वर्षा के पक्ष में—मेघ रूप गौ गर्जन करती हुई अन्न आदि वसु का पालन करती है। चर, अचर प्राणियों के लिए तृप्तिकारक जल प्रदान करती है।

अध्यात्म में—धर्म-मेघ समाधि की दशा में चिति शक्ति (वसुपत्नी) वसु इन्द्रियों की पालिका है। वह (वत्सम् इच्छन्ती) वत्स, मन चाहती है, और (मनसा अभ्यागत्) मनन शक्ति द्वारा ही उनको प्राप्त करती है। (अश्विभ्यां पयः दुहाम्) प्राण और अपान जीव या अन्तःकरण या सिद्ध और साधक दोनों को रस प्रदान करती हुई (अघ्न्या) अमर, अविनाशी होकर (महते सौभगाय) बड़े भारी परम उत्कृष्ट सेवनीय मोक्षधाम के लिए (वर्धताम्) बढ़े, शक्तिशाली हो।"[2]

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य (पौराणिक)—"मन से बछड़े की कामना करती हुई, धन द्वारा पालन करने योग्य यह धेनु हिं शब्द करती धनवानों को प्राप्त हुई है। यह सौभाग्य के लिए हमारे घर में वृद्धि को प्राप्त हो और आश्विनी कुमारों के लिए दूध का दोहन करे।"[3]

---

१. अथर्व वेद भाष्य, नवमं काण्डम् प्रथमावृत्ति (प्रथम भाग) पृष्ठ २१७६.
२. अथर्ववेद संहिता भाषा भाष्य, (द्वितीय खण्ड), द्वितीयावृत्ति (अजमेर संवत् १९७२१ वि, पृष्ठ ३५३-३५४.
३. "अथर्व सायण भाष्यावलम्बी सरल हिन्दी भावार्थ सहित पृष्ठ ४७७ [सन् १९६० ई. गायत्री तपोभूमि, मथुरा द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

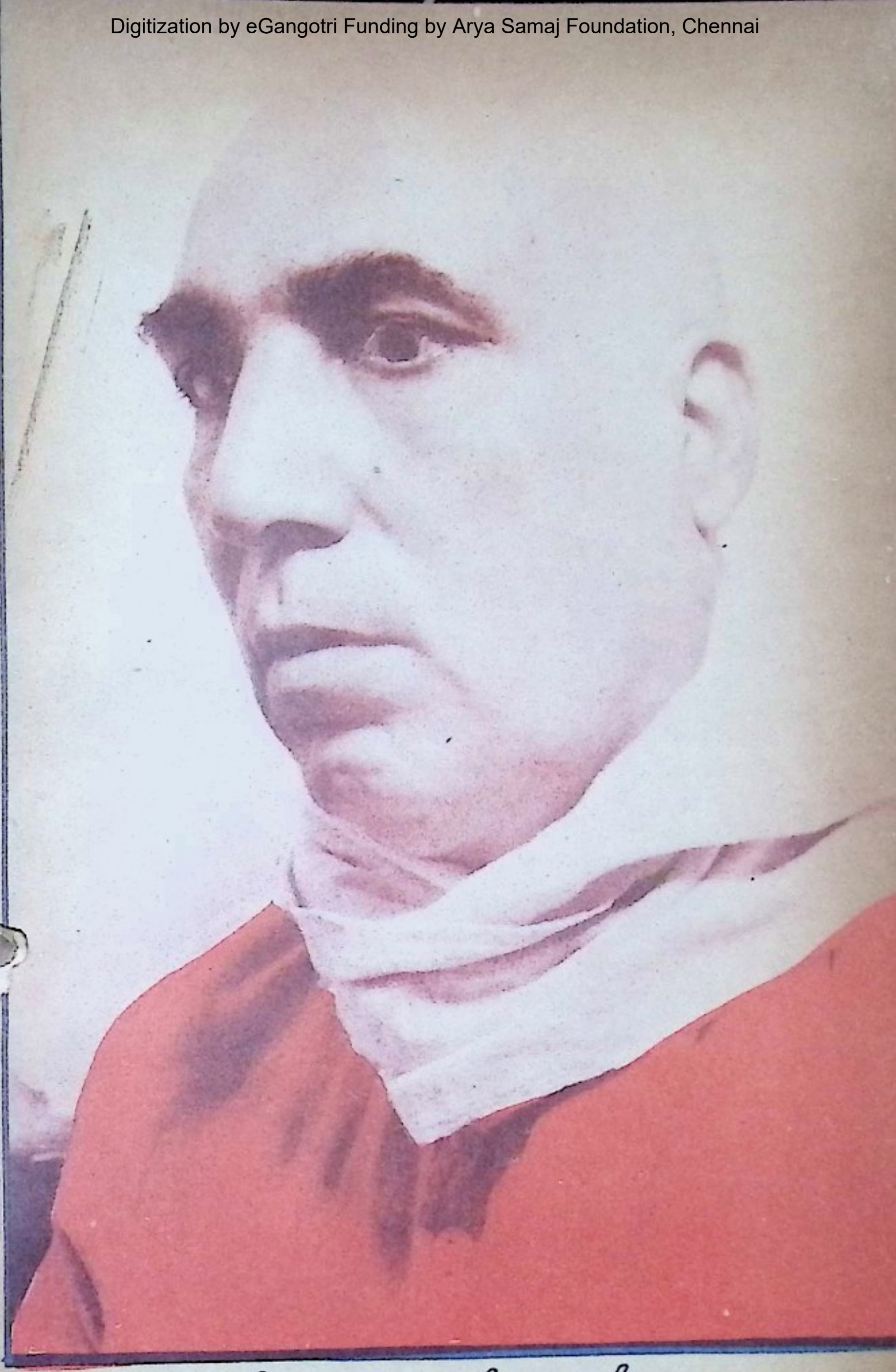

स्वामी स्वतन्त्रा नन्द जी सरस्वती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पं. रामगोविन्द त्रिवेदी, व पं. गौरीनाथ झा तथा शर्माजी तीनों पौराणिकों के अर्थ प्राय: एक समान ही है। तीनों ने ही 'हिन्दु' शब्द का समर्थन इस मंत्र से नहीं किया है। अश्विभ्यां का अर्थ 'अश्वनी कुमार' करना अनित्य इतिहास को प्रकट करता है जो अनुचित है।

स्वामी हरिप्रसाद जी 'वैदिक मुनि' व पं. दीनानाथ शास्त्री प्रभृति जो वेदों से 'हिन्दू' शब्द को सिद्ध करते हैं वे भारी भ्रम में हैं।

पं. श्यामसुन्दर लाल जी एडवोकेट मैनपुरी—मासिक पत्र "सार्वदेशिक" दिल्ली, नवम्बर १९२९ ई., पृष्ठ ९ से १५ तक में "क्या 'हिन्दू' शब्द मन्त्रकालीन है ?" शीर्षक लेख में लिखते हैं :—

एक समय था जब कि इस शब्द के अर्थों पर बहुत वादविवाद हुआ करता था आर्यसमाज तथा सनातन धर्म सभा के प्लेटफार्मों से बहुधा पक्ष और विपक्ष में हेतु दिये जाते थे। परन्तु बहुत दिनों से अब यह प्रश्न सर्वथा अनावश्यक समझा गया है और लोगों का यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि यह नाम भारतवासियों को स्वयं अपने आप हुआ अपने लिये नहीं है किन्तु विदेशियों का दिया हुआ है और समय-समय पर उसके अर्थ भी भिन्न-भिन्न रहे हैं परन्तु इस देश के निवासियों का अपने लिये प्रयुक्त नाम आर्य है जिस से सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य प्राचीन से प्राचीन और नवीन से नवीन भरा पड़ा है। परन्तु अब जब कि जनता में भी यह नाम ओत-प्रोत हो गया है। सरकारी कागजात में भी वही नाम लिखा और पढ़ा जाता है तो उसके अर्थ पर वादविवाद करना बुद्धिमत्ता नहीं है। इसी कारण से आर्यसमाज के प्लेट-फार्म से भी अब इस पर कोई चर्चा सुनने में नहीं आती। और वास्तव में अब इस विषय पर लिखना केवल समय का नष्ट करना है। परन्तु इस उपर्युक्त दशा के होते हुए भी हमारे मान्य स्वा० हरिप्रसाद जी ने पिछले तीन चार वर्षों में अकारण ही इस विषय को उठा कर 'हिन्दु' शब्द मन्त्रकालीन है। इसके सिद्ध करने की आवश्यकता प्रतीत की है और अपनी 'स्वाध्याय संहिता' की प्रस्तावना में कई पृष्ठों पर निष्फल वाद खड़ा किया है, अतएव इस लेख के लिखने का औचित्य प्रतीत हुआ। आप लिखते हैं कि

हिन्दु देश सम्बन्धी नाम है। मन्त्र काल से इस नाम का उच्चारण दो प्रकार से होता है। एक 'सिन्धु' दूसरा 'हिंदू'। जिस प्रकार कि एक ही अर्थ के देने वाले पाठान्तर जैसे 'श्री' का 'ह्री' और 'सिरा' का 'हिरा' और 'सरस्वती' का 'हरस्वती' वेदों में उपस्थित है इसी प्रकार वास्तव में 'हिन्दु' शब्द भी 'सिन्धु' का रूपान्तर है। जो विचारशील सज्जन फारसी जुबान में हिन्दू नाम का अर्थ काला तथा दास देख-कर यह कहते और लिखते हैं कि हिन्दू हमारा आधुनिक नाम है मन्त्रकालीन नहीं। मन्त्रकालीन हमारा नाम आर्य है। उनको पुनर्विचार करना चाहिए। वास्तव में अब जिस देश का नाम भारत है उसी देश का मन्त्रकालीन नाम 'सिन्धु' है। दीर्घतमा के पुत्र 'कक्षीवान्' ने अपने मन्त्रों में और अष्टाध्यायी के कर्त्ता पाणिनि ने अपने सूत्रों में भारत देश के सिन्धु नाम का उल्लेख किया है। प्रजापाते के पुत्र हिरणयगर्भ ने अपने मन्त्रों में तत्कालीन सिन्धु [भारत] देश की सीमा का उल्लेख इस प्रकार किया है कि— उत्तर में अपनी विसृति के सहित हिमालय की पर्वतमाला पश्चिम में समुद्रान्त।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रसा नदी [भारत सम्राट् और पाणी [बनी] असुरपाल दोनों की सीमान्त नदी और दक्षिण तथा पूर्व में समुद्र। सिन्धु नाम का अर्थ पाणिनि मुनि के सूत्रों से सिन्धु देश का राजा होता है वही हिन्दू नाम का अर्थ है अर्थात् भारतवर्ष का राजा और इसकी पुष्टि में वैदिक मुनि जी ने कुछ वेदों के मन्त्र और उन के अर्थ दिये है किन्तु फुट नोट में यह भी संकेत किया है कि वेद में ऐसी प्रार्थना उपस्थित है जिससे आर्यों को वध योग्य लिखा है अतएव वह प्रार्थना सिन्धु [हिन्दु] की ओर से हो सकती है नकि आर्यों की ओर से। दूसरे-शब्दों में उक्त ग्रन्थकर्ता का तात्पर्य यह है कि—

[१] हिन्दु शब्द मन्त्रकालीन है न कि आधुनिक। क्योंकि वेदादि में 'स' और 'ह' एक दूसरे में परिवर्तित विद्यमान हैं।

[२] सिन्धु शब्द पाणिनि मुनि प्रणीत अष्टाध्यायी के अनुसार सिन्धु देश का राजा है और यही अर्थ हिन्दु शब्द का है।

[३] तत्कालीन सिन्धु (अर्थात् भारत) देश की सीमा भी वेद में वर्णित है।

[४] कहीं कहीं वेदों में आर्यों के वध की प्रार्थना है अतएव सिन्धु (हिन्दु) की ओर से वह प्रार्थना उपयुक्त प्रतीत होती है न कि आर्यों की ओर से।

मैं निवेदन करूंगा कि उपर्युक्त प्रत्येक धारणा स्वा० हरिप्रसाद जी की अयथार्थ हैं। नाम किसी देश वा मानव समुदाय के दो प्रकार से रखे जाते हैं। एक तो उस देश अर्थात् देशनिवासियों का अपने लिये प्रयुक्त नाम और दूसरा अन्य देश वा अन्य देशस्थ पुरुषों का दिया हुआ नाम। कोई नाम किसी देश या समुदाय का अपने लिये स्वयं प्रयुक्त किया हुआ है वा नहीं, इस का निर्णय निम्न बातों से होता है और कोई दूसरा मार्ग उस के निर्णय का नहीं है। अर्थात्

[१] उस देश के शब्द कोष में वह नाम है या नहीं ?

[२] दूसरे देश के साहित्य और कोष में वह शब्द उपस्थित है या नहीं और है तो किस अर्थ में ?

[३] उस देश के साहित्य में वह नाम आया है या नहीं ?

तीनों प्रकार से देखने में प्रतिफल स्वा० हरिप्रसाद के मन्तव्य प्रतिकूल निकलता है। प्रथम "हिन्दु" शब्द न तो वैदिक कोष निघण्टु में और न किसी अन्य प्राचीन संस्कृत कोष में विद्यमान है यहां तक कि किसी अर्वाचीन छोटे से छोटे और बड़े से बड़े संस्कृत नागरी कोष में भी यह शब्द नहीं पाया जाता। यदि किसी दस पांच वर्ष के बने कोष में यह शब्द अब मिला दिया गया हो तो वह सर्वथा उपेक्षणीय है। अतएव हिन्दु शब्द मन्त्रकालीन ही नहीं, किन्तु जहां तक कि अपनी ओर से नामकरण संस्कार का सम्बन्ध है, वह कोई भी कालीन नहीं है। यही हेतु है कि काशीस्थ सुप्रख्यात विश्वनाथ जी के मन्दिर के प्रवेश द्वार पर जिन लोगों के भीतर जाने का निषेध किया गया है उन के लिये "आर्येतरणां" का शब्द प्रयोग किया गया है अर्थात् आर्यों से भिन्न पुरुषों को भीतर जाने का अधिकार नहीं है।

द्वितीय जहां हम इस देश के कोष में इस शब्द का अभाव पाते हैं वहां ही अन्य देशस्थ साहित्य और कोष में इस शब्द को विद्यमान देखते हैं। फारसी साहित्य में

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस शब्द का आना स्वयं ग्रन्थकर्त्ता को स्वीकार है। द्वितीय फ़ारसी जबान के सुप्रसिद्ध कोष "गयासुल्लुगात" में यह शब्द प्रत्यक्षतः विद्यमान है और जहां उस का अर्थ चोर डाकू, काले आदमी के लिये गये हैं वहां खूबसूरत के भी बतलाये गये हैं। यही कारण है कि भारतवर्ष की उत्तरी पश्चिमी एक घाटी का नाम "हिन्दूकुश" रखा गया है और विदेशी साहित्य और कोष के अनुसार उस का अर्थ हुआ वह स्थान जहां पर 'हिन्दुओं' का वध किया गया। अतएव इस में टुक भी सन्देह नहीं रहता कि जहां तक उक्त दो परीक्षाओं का सम्बन्ध है 'हिन्दु' नाम स्वयं इस देश के निवासियों की ओर से अपने लिये रखा हुआ नाम नहीं है विदेशियों की ओर से उक्त नाम रखा गया है।

तीसरी परीक्षा कि इस देश के साहित्य में हिन्दु शब्द आया है या नहीं? एक प्रकार से सब से बड़ी परीक्षा है। वैदिक मुनि ने जो यह तर्क-शैली ग्रहण की है कि वेदों में ऐसे शब्द पाये जाते हैं जो एक ही अर्थ के बोधक हैं यद्यपि वह कहीं पर 'स' के साथ और कहीं पर 'ह' के रूप में विद्यमान हैं, उस से उन का प्रयोजन कदापि सिद्ध नही होता किन्तु जब वेदों में श्री, ह्री, सिरा, हिरा आदि के दो दो रूप विद्यमान हैं परन्तु उनमें कहीं भी हिन्दु शब्द नहीं आया है तो उपर्युक्त उदाहरण ग्रन्थ कर्त्ता के अनुकूल नहीं किन्तु प्रतिकूल है। यदि श्री, ह्री अथवा सिरा-हिरा आदि की भांति 'सिन्धु' का 'हिन्दु' रूप अभिमत होता तो अवश्य वेदों में कहीं न कहीं विद्यमान होता। पुनः यदि 'सिन्धु' शब्द के अर्थ ग्रन्थकर्त्ता की सम्मति में पाणिनीय सूत्रों के आधार पर 'सिन्धु' देश के राजा के हो सकते हैं तो भी यह प्रतिफल नहीं निकलता कि 'हिन्दु' शब्द के भी यही अर्थ उक्त सूत्रों में अभिमत हैं क्योंकि यदि ऐसा होता तो अष्टाध्यायी जैसे पर्याप्त और विस्तृत अद्वितीय व्याकरण में उस की प्रकटता अवश्य होती। जब यह प्रकटता न उक्त व्याकरण में है और न उसके व्याख्या रूप महाभाष्य आदि बृहत् व्याकरण ग्रन्थों में तो अन्तिम निष्कर्ष यही निकलता है कि 'हिन्दु' शब्द अपना निज शब्द नहीं है।

अब लीजिये वेदों के कतिपय मन्त्र जिनमें आये हुये 'सिन्धु' शब्द के अर्थ स्व० हरिप्रसाद जी ने सिन्धु देश अधीश्वर वा सिन्धु देश के निवासी के किये हैं। पहला मन्त्र उक्त ग्रन्थकर्ता ने ऋक्० १।१२६।१ दिया है और उसमें आये हुए 'सिन्धो' शब्द के अर्थ 'सिन्धु' देश में अधीश्वर होते वसते हुए के किये हैं। परन्तु यह अर्थ वैदिक शैली के प्रतिकूल है। निरुक्त में 'सिंधव' शब्द नदी नामों में पड़ा है और इसी कारण से स्वा० दयानंद ने 'नद्याः समीपे' का अर्थ किया है। हां, सायणाचार्य जी ने उसके अर्थ सिन्धु देश अथवा लक्षणया सिन्धुतीरे—समुद्र तीरे का किया है जिससे निष्कर्ष केवल यह निकलता है कि उनके समय में जो अर्वाचीन है 'सिन्धु' से 'सिन्धुदेश' का अर्थ भी समझा जाने लगा था परन्तु उनको भी सिन्धु तीरे वा समुद्र तीरे लिख कर निरुक्त के अर्थ की पुष्टि करनी पड़ी है।

उक्त ग्रंथकर्त्ता ने इस विषय में ऋग्वेद के तीन मंत्र और उद्धृत किये हैं अर्थात् ऋग्वेद १।६५।४,७,५,२ तथा ७,६४,२ जिन में से पहले और दूसरे मन्त्र में आये हुए 'सिन्धूनां' शब्द के अर्थ 'हिन्दुओं' के और तीसरे मन्त्र में 'सिंधुपति' के अर्थ हिन्दुओं के पालक किये हैं। परन्तु मुझे शोक के साथ कहना पड़ता है कि 'सिंधु' शब्द

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अथवा 'सिंधूनां' के अर्थ ऋग्वेद में आये हुए किसी स्थल पर स्वा० दयानंद अथवा सायणाचार्य जी दोनों में से किसी महानुभाव ने ऐसे अर्थ नहीं किये हैं किंतु दोनों भाष्यों में सिंधुः और सिंधूनां के अर्थ नदी और समुद्र अथवा नदियों और समुद्रों के किये गये हैं। यदि सायणाचार्य जी के समय में भी जो वास्तव में अर्वाचीन काल है किसी को यह स्वप्न भी होता कि 'सिंधु' शब्द के अर्थ भारत निवासी के होते या हो सकते हैं तो श्री सायणाचार्य जी सदृश वेदों के भाष्यकार, जो ऐतिहासिक अर्थ के अतिरिक्त दूसरा अर्थ ही वेदों का नहीं जानते, सब से प्रथम वह पुरुष होते जो इस शब्द के अर्थ 'भारत निवासी' के लिखते। मैं उपर्युक्त मंत्रों के अर्थ देकर पाठकों का समय व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहता किंतु यह लिखे बिना नहीं रह सकता कि उक्त प्रकार के अर्थ करने में ग्रंथकर्त्ता ने केवल साहस से काम लिया है जो कदापि उचित प्रतीत नहीं होता।

पुनः ऋग्वेदः ६-३-३३ तथा १०-३८-३ का अर्थ देते हुए ग्रन्थकर्त्ता का यह संकेत करना कि उन मन्त्रों में आई हुई प्रार्थना आर्यों की प्रार्थना नहीं हो सकती किन्तु हिंदुओं की ओर से हो सकती है, मुस्कराहट उत्पन्न करता है। मानो ग्रन्थकर्ता की दृष्टि में वैदिकीय श्रेष्ठ पुरुष एक भिन्न समुदाय के हिन्दू नामी थे न कि आर्य लोग और इस प्रकार ग्रन्थ-कर्ता ने एक अच्छी सामग्री उन लोगों के लिये उपस्थित की है जो अपने आप को इस देश का 'आदि हिन्दू' के नाम से सबसे पहले का निवासी मानते हैं। हां ग्रन्थकर्ता ने इतनी बात अभी छोड़ रखी है कि 'वेद' वास्तव में उन्हीं आदि निवासियों का धर्म ग्रन्थ है, न कि आर्यों का। जो हो, स्वा० हरिप्रसाद जी का यह बहुत ही अद्भुत और विचित्र विचार है।

पहले मन्त्र में "त्वं तान् इन्द्र! उभयान् अमित्रात् दासा वृत्राणि आर्या च शूरा वधीः......नृतम्" का अर्थ सायणाचार्य जी ने भी यह किया है। "उभय विधान् मित्रान् शत्रून् वधीः के ते उभय विधाः दासो पक्ष पार्यतृन्कर्म विरोधिनो बल-प्रभृतीनसुरान्। आर्या पाणि कमानुष्ठानृत्वेन श्रेष्ठानि वृत्राणि आवरकाणि विश्वरूपादीनि च तानुभय विधान् हे शूर त्वं हतवान्" अर्थात् श्रेष्ठ कर्म विरोधी असुरों तथा उन आर्यों को जो कपटी और विश्व को छलते हैं, उन दोनों का विध्वंस कर। तथा दूसरे मन्त्र में "यो नो दासः आर्यो वा पुरुष्टुतः! अदेवः इन्द्रः......वयं तान् वनुयाम सङ्गमे" हे इन्द्र! यो दासः कर्मकर; शूद्र आर्यस्त्रैवर्णिकोऽदेवो देवादन्योऽसुरो वा...
......तान् शत्रून् संग्रामे हन्याम" अर्थात् "हे इन्द्र! शूद्र हो वा अन्य तीन वर्णों में से कोई आर्य हो जो असुर अर्थात् दुष्ट गुण सम्पन्न है उस को तेरी सहयता से हम लोग हनन करें।" इन दोनों स्थलों पर सायणाचार्य जी ने उन आर्यों का हनन करना बतलाया है जो दुष्ट, कपटी और इसलिये शत्रु हैं जो संग्राम के लिये आह्वान करते हैं। अतएव इस अर्थ के अनुसार भी यह प्रार्थना किसी अनार्य अथवा ग्रन्थकर्ता के जहनी (मानसिक) हिन्दू की ओर से नहीं कही जा सकती किन्तु सायणाचार्य जी के अर्थों से यह निष्कर्ष निकलता है कि उन के विचार में आर्य शब्द जातिवाचक शब्द है न कि गुणवाचक। और इसलिये उक्त अर्थ ग्रन्थकर्ता के अभिमत के और भी प्रतिकूल है क्योंकि सायणाचार्यजी के विचार में 'आर्य' शब्द जातिवाचक बन गया था जब मन्त्रों में आर्य शब्द के साथ अदेव आदि विशेषण लगे हैं और उक्त

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ग्रन्थकर्ता स्वंय उन के अर्थ यही करता है अर्थात् यह कि "जो पापात्मा दस्यु और आर्य हैं अर्थात् जो तुझ देव को न मानने वाले दस्यु या आर्य हैं उन का हनन कर" तो नहीं ज्ञात होता कि उक्त ग्रन्थकर्ता को उपर्युक्त संकेत के लिये कौन सा आधार उक्त मन्त्र में दिखलाई देता है कि उक्त प्रार्थना आर्य और दस्यु दोनों से पृथक् एक तीसरे समुदाय हिन्दू नामक की ओर से की गई प्रतीत होती है। इस सम्बन्ध में श्री० स्वा० दयानन्द सरस्वती का दिया हुआ अर्थ अधिक उपयुक्त और बुद्धिगम्य है जिस से "आर्य" शब्द के जातिवाचक होने का दोष भी निवृत्त हो जाता है। वह अर्थ इस प्रकार है:—"हे शूरेन्द्र त्वं तान् मित्रानार्या जो भयान्विभज्य अमित्रान् पृत्सु ·······अर्थात् शत्रुओं और आर्यो का विवेचन कर आर्यों की रक्षा और शत्रुओं का हनन कर।"

इससे आगे स्वा० हरिप्रसाद जी ने 'सिन्धु' शब्द का अर्थ पाणिनीय सूत्रों के आधार पर 'सिन्धु देश का राजा' मानने से सिन्धु देश का निवासी नहीं माना जा सकता। यदि पाणिनि महाराज के समय में 'सिन्धु' शब्द के अर्थ सिंधु देश के निवासी अभिप्रेत होते तो अपने व्याकरण में ('ते तद्राजाः' अष्टा० ४। १ १७५) को लिख कर उस शब्द को राजा होने पर कदापि सीमित न कर देते। अतएव उक्त व्याकरण के अनुसार 'सिन्धु' शब्द के अर्थ सिंधु देश के निवासी के भी नहीं हो सकते और इस बात को ग्रन्थकर्त्ता ने स्वयं आगे चल कर स्वीकार किया है कि श्री पाणिनि मुनि के अनुसार 'सिंधु' शब्द का अर्थ 'सिन्धु देश का राजा' परन्तु 'सैन्धव' अर्थ जो 'सिन्धु' शब्द से बनता है सिन्धु देश के निवासी के हैं और यह तर्क भी अयुक्त है क्योंकि संस्कृत साहित्य के किसी ग्रन्थ या कोष में 'सैन्धव' शब्द का अर्थ 'सिन्धु देश का निवासी' ऐसा नहीं किया गया। उस के अर्थ तो 'घोड़ा' और 'लवण' कोष में पाये जाते है। इसके अतिरिक्त ग्रन्थ-कर्ता की सम्मति में 'सिन्धु' शब्द से 'हिन्दु' शब्द बना है न कि 'सैन्धव' शब्द से। यदि 'सैन्धव' शब्द से 'हिन्दुत्व' शब्द बन कर फ़ारसी भाषा में हिन्दु पढ़ा गया हो तो उसके उक्त शब्द के अन्य देशस्थ पुरुषों द्वारा रक्खे जाने की तो पुष्टि होती है जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं न कि 'सिन्धु' से 'हिन्दु' शब्द बनने की।

स्वा० हरिप्रसाद जी की यह कल्पना कि प्रजापति के पुत्र हिरण्यगर्भ ने अपने मंत्रों में तत्कालीन सिंधु (भारत) देश की सीमा का उल्लेख किया है और उसके लिये जिस प्रकार ऋक्० १०।१२०।४ को बलात् अपने विचार की पुष्टि में नियुक्त किया है दोनों ही बातें विचित्र और वेदों के अर्थो का अनर्थ करने वाली हैं। ऋषि मंत्रकर्ता इस को छोड़ कर मंत्र केवल अर्थ पर विचार करने से स्वा० हरिप्रसाद जी का दिया हुआ उक्त मंत्र का अर्थ कदापि सुसंगत और ग्राह्य नहीं है किंतु अत्यंत असंगत और त्याज्य और नागरी कहावत के अनुसार सर्वथा ऊटपटांग है और स्वा० हरिप्रसाद जैसे विद्वान् के अर्थ पर अनिवारणीय लांछन का दोष आरोपण करने वाला है। मन्त्र यह है—

यस्य इमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्र रसया सह आहुः।
यस्य इमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(स्वा० हरिप्रसाद जी का दिया अर्थ) अपनी महिमा (विभूति) के सहित ये (सामने स्थित) हिम वाले पर्वत हैं, रंसा [समुद्रान्त रसा] नदी के सहित दक्षिणीय और पूर्वीय समुद्र जिस को कहते हैं ये चारों बड़ी दिशायें [सीमायें] जिस की ओर जिन भुजाओं ने चारों दिशा स्थिर की हैं, वे दोनों भुजायें जिसकी हैं हम उस देवों के देव प्रजापति का श्रद्धापूर्वक हवियज्ञ [देवयज्ञ] से पूजन करते हैं।

प्रथम तो मैंने सोचा कि स्यात् श्री० सायणाचार्य जी ने हमारे उक्त ग्रन्थकर्ता को उपर्युक्त अर्थ करने में सहायता दी हो क्योंकि उक्त सायणाचार्य के समय में जनता की मानसिक अवस्था की दृष्टि से वैसा अर्थ करना कुछ अधिक कौतूहल उत्पन्न करने वाला नहीं समझा जा सकता था। अतएव मैंने सायणाचार्य जी का भाष्य खोलकर देखा। परन्तु मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही जब कि उक्त महानुभाव के किये अर्थों की दृष्टि से भी स्वा० हरिप्रसाद के अर्थों ने किञ्चदपि पुष्टि नहीं पाई। सायणाचार्य जी ने भी उक्त मन्त्र के अर्थ निम्न प्रकार किये हैं—

"हिमा अस्मिन्संतीति हिमवान् तेन बहुवचनां तेन सर्वे पर्वता लक्ष्यंते। यथा क्षत्रिणो गच्छंतीति। हिमवंतो हिमवदुपलक्षिता इमे दृश्यमानाः सर्वपर्वता यस्य प्रजापतेर्महित्वा महत्वं माहात्म्यमैश्वर्यमित्याहुः। तेन सृष्टत्वात्तद्रूपेणावस्थानाद्वा। तथा रसया [रस जलं] तद्वती रसा नदी। अर्श आदित्वाच्च। जातावेकवचनं। रसाभिर्नदीभिः सह समुद्रं। पूर्ववदेकवचनं। सर्वान्समुद्रान्यस्य महाभाग्यमित्याहुः कथयंति सृष्टय्भिज्ञाः। यस्य चेमाः प्रदिशः प्राच्यारम्भा आग्नेय्याद्याः कोण दिश ईशानांता वा। तथा बाहू। वचनव्यत्ययः। बाहवो भुजाः भुजवत्प्राधान्य युक्तः प्रदिशच यस्य स्वभूताः। तस्मै कस्मा इत्यादि समानं पूर्वेण।

अर्थात् ये सम्पूर्ण हिम रखने वाले दृष्टिगोचर पर्वत जिस परमात्मा की महिमा का द्योतन करते हैं, जिस परमात्मा का ऐश्वर्य नदियों सहित वर्तमान ये समुद्र सृष्टिविज्ञानियों के कथनानुसार कर रहे हैं, तथा जिस परमात्मा की ये सम्पूर्ण दिशायें और उपदिशायें भुजाओं के समान विद्यमान हैं, वही परमात्मा (उपासनीय देव है)।

हम को आश्चर्य होता है कि जब सायणाचार्य जैसे साधारणतया ऐतिहासिक और आकुञ्चित अर्थ करने वाले महानुभाव भी उपर्युक्त मन्त्र के अर्थों को किसी देश विदेश व काल की सीमा में न बांध सके और न ऐसा करने का उन्होंने कोई हेतु देखा तो स्वा० हरिप्रसाद जी जैसे विद्वान् आजकल के विद्योन्नति समय में किस प्रकार मन्त्र का ऐसा अनर्थ करने को उद्यत हो गये हैं। मुझ को तो उक्त स्वामी के अर्थ पर केवल आश्चर्य ही नहीं किन्तु एक प्रकार का रोष भी आता है कि वह वेदों में हिन्दू शब्द को मन्त्रकालीन सिद्ध करने के लिये इस प्रकार बेसिरपैर की बातें जनता के सम्मुख उड़ाना चाहते हैं। जब हम देखते हैं कि उपर्युक्त मन्त्र १२१ वें सूक्त का चौथा मन्त्र है। अर्थात् तीन मन्त्र उस से पहले और छः मन्त्र उसके पीछे विद्यमान हैं और उन सम्पूर्ण मन्त्रों में सार्वजनिक, सार्वदेशिक देशकाल के बन्धन से मुक्त उपदेश प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान हैं। जिस सूक्त का प्रथम मन्त्र "हिरण्यगर्भ समवर्त्तताग्रे......" और अन्तिम मन्त्र "प्रजापतेन त्वदेतान्यन्यो.........रयीणां"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

. Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एक से एक अधिकाधिक परमात्मा की सार्वभौतिक विभूतियों और ऐश्वर्यों का प्रत्यक्ष भांति में द्योतन करते हुए उसी परमात्मा को उपास्य देव होने का विधान कर रहे हैं तो उस सूक्त में से उपर्युक्त चौथे मन्त्र पर देश-विदेश के वर्णन करने का दोष वेदों के मस्तक पर लगाना यदि केवल साहस मात्र और वह भी लाघव अर्थ में नहीं है तो और क्या है ? हमको दु:ख है कि स्वा० हरिप्रसाद ने उपर्युक्त अर्थ को दे कर वेद भगवान् के ही महत्व को घटाने का निष्फल प्रयास नहीं किया है किन्तु विज्ञ पुरुषों कि दृष्टि में यह सिद्ध कर दिखाया है कि वह अपने अभिमत विचार की पुष्टि में कहां तक वेदों को घसीटने के लिये उद्यत हैं।

अतएव सारांश यह है कि स्वा० हरिप्रसाद जी की यह धारणा हिन्दु शब्द मन्त्रकालीन है सर्वथा अशुद्ध और मिथ्या है। हिन्दु शब्द पर वादविवाद चलाना ही निष्प्रयोजन और हानिप्रद है।

पं० दीनानाथ शास्त्री ने श्री पं० नरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ प्रणीत ऋग्वेदा-लोचन'' से 'सिन्धु' से 'हिन्दु' दिखलाने का कष्ट किया है, पर आपको जानना चाहिये कि यह उनका मत नहीं है। उन्होंने तो पाश्चात्य पण्डित मेकडानल का मत प्रदर्शन किया है। इसी प्रकार ब्रह्मपक्ष, ऐतिहासिक पक्ष प्रभृति उन्होंने दिखलाया है।

'हिन्दु' शब्द पर उनका क्या मत है, इसके लिए देखिये वे ''वैदिक मुनि फिर मैदान में'' शीर्षक अपने लेख[1] में वैदिक मुनि स्वामी हरिप्रसाद जी के लेख की समालोचना करते हुए लिखते हैं ! —''आप 'हिन्दु' शब्द के परम भक्त हैं किन्तु उस शब्द को वेदों के 'सिन्धु' शब्द के साथ जोड़ने का भरसक प्रयत्न करते हैं। हमने संस्कृत साहित्य में 'हिन्दू' शब्द को ढूंढ़ कर निकालने का प्रबल प्रयत्न किया किन्तु सात सौ वर्ष पूर्व की कश्मीर की राजतरंगिणी को छोड़कर हमको 'हिन्दू' शब्द कहीं नहीं मिला। सिन्धु प्रदेशनिवासियों को उच्चारण की असमर्थता के कारण ईरान और मध्य एशिया के लोग 'हिन्दू' कहते रहे, तभी से इधर के लोगों का नाम 'हिन्दू' पड़ा। पहले-पहले यह 'हिन्दू' शब्द निर्दोष था, फिर कालान्तर में इसके अर्थ विपरीत हुए, जैसे—

पुरानी परशियन	संस्कृत शुद्ध रूप
माह	मास
ह्प्ताह	सप्ताह

(अब उलटे अर्थ देखिए)

संस्कृत का 'देव' पुरानी परशियन में 'राक्षस' का वाचक हो गया—राक्षस का वाचक 'असुर' शब्द देव का वाचक है। 'इन्द्र' शैतान का वाचक बन गया है, इसी प्रकार सिन्धु से बने हिन्दू शब्द के विकृत अर्थ नीच, काला, चोर आदि हो गए। यह पुराने परशियन भाषा का हाल।······

इत्सिग की भारत यात्रा—यह चीनी यात्री भारत में ७वीं शताब्दी में आया था। वह भारतवर्ष का नाम आर्य देश लिखता है—उसका कथन है कि, ''केवल उत्तर

१. साप्ताहिक ''आर्यमित्र'' दिनांक ३० जुलाई १९३६ ई० पृष्ठ ५।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
की जातियाँ ही (हू=मुगल अथवा तुर्क) आर्य देश को हिन्दू कहती हैं किन्तु यह नाम बिलकुल प्रचलित नहीं। भारत के लोग प्रायः इस संज्ञा (हिन्दू) को नहीं जानते और भारत के लिये सबसे ठीक नाम है 'आर्यदेश'।''

पं० दीनानाथ लिखते हैं……"पृथ्वीराज के सभाकवि आदिकवि चन्दबरदाई ने अपने कविता ग्रन्थ में इस देश को 'हिन्दव' इस नाम से तथा इस जाति को सर्वत्र 'हिन्दु' नाम से कहा है। 'हम हिन्दु लजवान' 'गति हिन्दू पर साहिसंजि' इत्यादि उसी गीत 'पृथ्वीराजरासो' नामक उसके ग्रन्थ के उदाहरण हैं।''

चन्दबरदाई का यह 'पृथ्वीराजरासो' ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं है। कविराज श्यामलदास जी ने अपने 'पृथ्वीराज-चरित्र' ग्रन्थ में 'पृथ्वीराजरासो' को जाली ठहराया है।

समालोचक-सम्राट् आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल जी लिखते हैं—"इस दशा में भाटों के इस वाग्जाल के बीच कहाँ पर कितना अंश असली है, इसका निर्णय असम्भव होने के कारण यह ग्रन्थ न तो भाषा के इतिहास के और न साहित्य के इतिहास के जिज्ञासुओं के काम का है।''[1]

आप लिखते हैं—'ऋग्वेद' के १०वें मण्डल के ७५वें सूक्त का ऋषि 'सिन्धुक्षित प्रैयमेध' माना गया है, उसका यही अर्थ है कि सिन्धु देश का शासक या 'सिन्धु देश में रहने वाला'। उस सूक्त में 'इमं मे गंगे ! यमुने सरस्वति ! शुतुद्रि ! स्तोमे सचता परुष्ण्या। असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये ! शृणुहि सुषोमया'' (ऋ०१०-७५-५) …।

इन मन्त्रों से सिन्धु देश की सीमा पर प्रकाश पड़ता है। यह याद रखना चाहिये कि ऋग्वेद में नदियों के नामों से देशों को सूचित किया गया है, यही प्राचीन प्रथा है।……''

यहाँ न तो नदियों का वर्णन और न देशों का ही वर्णन है। यह तो आपकी कल्पना है।

देखिये इस मन्त्र का अर्थ महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं—

"इडापिंगलासुषुम्णाकूर्म्मनाड्यादीनां गंगादिसंज्ञास्तीति। तासां योगसमाधौ परमेश्वरस्य ग्रहणात्। तस्य ध्यानं दुःखनाशकं मुक्तिप्रदं च भवत्येव। तासामिडादीनां धारणां सिध्यर्थचित्तस्य स्थिरीकरणार्थस्वीकरणमस्तीति तत्र ग्रहणात्।……[2]

अर्थात् इसी मन्त्र में गंगा आदि नाम इडा, पिंगला, सुषुम्णा, कूर्म और जठराग्नि की नाड़ियों के हैं, उनमें योगाभ्यास से परमेश्वर की उपासना करने से मनुष्य लोग सब दुःखों से तर जाते हैं, क्योंकि उपासना नाड़ियों ही के द्वारा धारण की जाती है।''

---

१. "हिन्दी साहित्य का इतिहास'' पृष्ठ ५४ (सम्वत् १९९७ वि० संशोधित और प्रवर्द्धित संस्करण, प्रयाग)।

२. "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका'' ग्रन्थप्रामाणयाप्रामाण्यविषयः।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेदों में कहीं, देश विशेष का कोई नाम नहीं है इसकी पुष्टि अनेक विद्वान् करते हैं । यथा—प्रो० बालकृष्ण जी एम० ए०. पी-एच० डी०, एफ० आर० एस-एस; एफ० आर० ई० एस०, एफ० आर० पी० एस० अर्थशास्त्र-महोपाध्याय, गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगड़ी हरिद्वार लिखते हैं—"वेदों में से देख-देख कर ऋषियों, राजाओं, देशों, नदियों, पर्वतों के नाम रखे गए । अत: वेदों में पाए जाने वाले उक्त नाम ही आज तक भारत तथा उसके आस-पास की नदियों जातियों, राजाओं व ऋषियों के हैं ।"[1]

पं० प्रियरत्न जी आर्य (श्री स्वामी ब्रह्ममुनि) जी "वेदों में गंगा, यमुना आदि नामों का आ जाना इतिहास को सिद्ध नहीं करता है, क्योंकि ये नाम यौगिक हैं, अत: एव लोकप्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम नहीं हैं । शरीर-गत नाड़ियों के नाम में भी गंगा आदि है और वसिष्ठ अमृत प्राण को कहते हैं ऐसा कथन श्री बाबू भगवानदास जी काशी और श्री पं० चन्द्रमणि जी विद्यालंकार आदि कई एक विद्वानों का है ।"[2]

प्रो० चन्द्रमणि जी 'विद्यालंकार,' 'पालीरत्न,' वेदोपाध्याय गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी हरिद्वार लिखते हैं—पाठकगण विश्वामित्र, विपाट्, शुतुद्री आदि नामों को देखकर सन्देह में न पड़ जायें कि इससे तो अनित्य इतिहास का पता चलता है । जब वेद ही एकमात्र ज्ञान का आदिम स्रोत था और वैदिक भाषा ही सृष्टि की आदि में मनुष्यों की भाषा थी, तब इन्हीं वेदों में से चुन-चुन कर नदी आदि के नाम रक्खे जाते थे । ये नाम वैदिक नामों से भिन्न कैसे हो सकते थे ।"......[3]

यह ऋ० १०-७५-५ वाला मन्त्र निरुक्त, दैवतकाण्ड, ९ अ० ३ प० २४ सं० २० श० में आया है । पं० चन्द्रमणि जी विद्यालंकार, पालीरत्न उसका अर्थ करते हैं—

"......(गंगे यमुने) हे इडा ! हे पिंगला ! (शुतुद्रि परुष्णि सरस्वती !) और हे शुतुद्री तथा परुष्णी नामों वाली सुषुम्ना नाड़ी । (मे इमं स्तोमं आसचत) तुम मेरे इस परमेश्वर-स्तवन का सेवन करो । (मरुद्वृधे असिक्न्या) हे सुषुम्ण ! तू पिंगला के साथ (आर्जीकीये ! वितस्तया सुषोमया) और हे इडा ! तू वितस्ता नाम वाली सुषुम्णा के साथ मिली हुई (आश्रृणुहि) मेरे इस परमेश्वर-स्तवन का श्रवण कर ।"[4]

---

१. "ईश्वरीय ज्ञान वेद" पस्तक, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ८३ ।
२. "वेद में इतिहास नहीं" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ११३ ।
३. "निरुक्तभाष्य" पूर्वार्ध, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ १५४ ।
४. "निरुक्तभाष्य" उत्तरार्ध, प्रथमावृति पृष्ठ ५८७ ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

राष्ट्र-निर्माण में आर्यसमाज का योगदान

प्रो० धर्मवीर
अध्यक्ष संस्कृत विभाग डी० ए० वी० कॉलिज, अजमेर

राष्ट्र-निर्माण कोई इस प्रकार की भौतिक समष्टि नहीं है, जिसका सांख्यीकीय परिणाम ज्ञात करने के लिए उसकी इकाई का आश्रय लिया जा सके और वास्तविक परिणाम को प्रस्तुत किया जा सके। हम बतला सकते हैं पृथ्वी का भार, ग्रहों की दूरी, स्थिति और एतत्सम्बन्धी समस्त ज्ञान। परन्तु उसी सूर्य पृथ्वी ग्रहों ने मानव के निर्माण में क्या योगदान किया है इस बात की व्याख्या तो हो सकती है इसका गणीतीय उत्तर नहीं हो सकता। इसी कारण जो भी विचारक इस प्रश्न पर विचार करेगा उसका अन्यों से भेद होना सहज और अनिवार्य है क्योंकि निर्माण की प्रक्रिया इतने विभिन्न क्षेत्रों में इतनी भिन्नता के साथ हो रही है जिसका विवेचन पृथक्-पृथक् दृष्टिकोण के रूप में प्रतीत हो यह अनिवार्य है। परन्तु यदि हम इस बात को ध्यान में रखकर मूल को प्राप्त कर देखने का प्रयास करें तो हमारे लिए गणना करना एक बार भले ही सरल न हो सके परन्तु जानना और समझना अत्यन्त सरल हो जायेगा।

अन्तर्जगत् या भावात्मक तथ्यों को परिसंख्यात करना आज भी सम्भव नहीं हुआ कारण उसमें हमें इकाई स्थापित करने में सफलता नहीं मिली। अत: उसका गणीतीय उत्तर भी हम नहीं दे सकते। आज ज्ञान और संवेदना चेतना अनुभूति आदि इसी प्रकार के भावात्मक शब्द हैं जिनका समष्टि पर पड़े प्रभाव का अर्थ व्याख्यात तो हो सकता है किन्तु निश्चय की सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता।

आज यदि हम यह जानने की चेष्टा करें सूर्य ने व्यक्ति या समाज के जीवन को कहां कितना प्रभावित किया, वायु ने समाज में किन व्यक्तियों या वस्तुओं को प्राण किस प्रकार और कितना प्रदान किया है। यह विवेचन हमारे लिए अत्यन्त कठिन है और असंभव है। सूर्य के प्रकाश ने दिन में क्या परिवर्तन किया है इस बात के लिए रात्रि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के अन्धकार की अनुभूति हमें सूर्य के प्रकाश का माहात्म्य घोषित करने का कार्य और राष्ट्र निर्माण दोनों ही शब्द किसी भी भौतिक इकाई से गणीतीय परिणामों की व्याख्या प्रस्तुत नहीं कर सकते। मात्र इनके प्रभाव को परिलक्षित कर स्पष्टीकरण दिया जा सकता है जो क्षेत्र भिन्नता और प्रकार भिन्नता के कारण कई वार तथ्यात्मक विश्लेषण की स्थिति में उनमें एक दूसरे से वैपरीत्य दृष्टिगत हो सकता है।

प्रकाश का प्रभाव, संवेदना का प्रभाव, चेतना का प्रभाव उसी प्रक्रिया में परिवर्तन लाना या दूसरे शब्दों में इसी परिवर्तन को जो गतिशून्य प्रतीत हो रहा हो उसमें तीव्र गतिशीलता की अनुभूति कराने को ही क्रान्ति कहा जाता है। जैसे अन्य भावात्मक वस्तुओं के प्रभाव से अंकीय परिणाम प्राप्त नहीं किया जा सकता उसी प्रकार क्रान्ति के प्रभाव भी अनुभूति के एवं प्रत्यक्ष के विषय होने पर भी समग्रतया ज्ञान के विषय नहीं हैं। आर्यसमाज एक Renaissance वैचारिक क्रान्ति है, एक ज्ञान व भावों की तीव्रगामिता है, जो व्यक्ति का मूल है। जिस प्रकार मूलगत वस्तु अपने स्वरूप को परिर्वतित करके वृक्ष के अणु-अणु को प्रभावित करती है उसी प्रकार वैचारिक क्रान्ति सूर्य के प्रकाश की भांति व्यष्टि व समष्टि को प्रत्येक क्षेत्र में प्रभावित करती है। सूर्य के प्रभाव को जानने के लिए हम रात्रि का अन्धकार जानते हैं उसी दशा में प्रभाव की व्याख्या में असीमित विस्तार की दशा प्राप्त होती है।' उसी प्रकार आर्य समाज के प्रारम्भ के समय राष्ट्र, समाज और व्यक्ति की जो दशा थी उससे ही आज के परिवर्तन और परिवर्धन की तुलना इस शीर्षक की व्याख्या बन सकती है।

एक विचार के अनुसार संसार का प्रत्येक मत-मतान्तर और सम्प्रदाय, कुछ वे विचार जिनका उद्देश्य अधिकांशतया सामाजिक या राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने के प्रयास का परिणाम हैं। यह सम्भव है यह प्रयास घोषित और अघोषित उद्देश्यों में अन्तर रखता अथवा कालान्तर से उनमें अन्तर प्रतीति में आता हो। ये सभी विचारधारायें मूल को प्रभावित करने में समर्थ नहीं हो सकीं जिसके कारण क्रान्ति लाने में समर्थ नहीं हुई, क्रान्ति बिना चेतना को जागृत किये कभी नहीं आ सकती। संवेदना की तीव्रता चेतना की जागृति का पहला लक्षण है। जब तीव्र अनुभूतियां व्यक्ति को होने लगती हैं तब सतर्कता और गतिशीलता का उदय होता है जो ज्ञान का मुख्य आधार है। इस प्रकार क्रान्ति एक ऐसी वस्तु है जिसका सीधा सम्बन्ध ज्ञान और चेतना से है इसको दूसरे शब्दों में कहा जाए तो हम कह सकते हैं यह व्यक्ति राष्ट्र और समाज के अन्तर्जगत् की वस्तु है इसे कभी भी कहीं भी बाहर से आरोपित नहीं किया जा सकता।

दूसरे शब्दों में इसका प्रभाव यह हुआ कि हमारा अन्तर्जगत् ही व्यक्ति या समाज के अन्तर्जगत् को जागृत व गतियुक्त कर सकता है, क्रान्ति इसी कारण अन्दर से आने वाली वस्तु है, क्रान्ति कभी भी बाहर से लादी जाने वाली वस्तु नहीं है। इसी कारण प्रत्येक सम्प्रदाय या विचारधारा बाहर से क्रान्ति ला सके यह असम्भव है।

जब क्रान्ति व्यक्ति में आती है या समाज में तब चेतना की जागृति और गति का क्षेत्र व्यक्ति और समष्टि की दशा में होता है क्रान्ति जब राष्ट्र में आती है तब यह समझना चाहिए ज्ञान और अनुभूति समस्त राष्ट्र के अन्तर्मन को क्रियाशील करने में समर्थ हो गये हैं तब ही राष्ट्रीय या सामाजिक क्रान्तियों का जन्म या सूत्रपात संभव

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है। क्रान्ति का भौतिक आधार चेतना, उसको जागृत करने का तात्पर्य समाज के प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान उत्कृष्ट तत्व की अभिव्यक्ति है। इसी कारण क्रान्ति के समय जो वर्ग समाज या राष्ट्र में कार्यकारी बनता है हम उससे क्रान्ति की आवश्यकता और क्रान्ति के आधार दोनों ही बातों से परिचित हो जाते हैं।

जब कोई भी विचारधारा समाज में प्रसार पाती है तब उससे प्रभावित होने वाले व्यक्ति व समाज का अध्ययन कर उसके महत्त्व की व्याख्या हम प्रस्तुत कर सकते हैं।

राष्ट्रीय चेतना में जिस समय आर्य समाज ने क्रान्ति का बीजारोपण किया उस समय उसने सबसे अधिक प्रभावित किया बुद्धिजीवी क्षेत्र को जिसके परिणाम स्वरूप समाज में तीव्र गतिशीलता परिवर्तन का कारण बनने लगी और पुरातनता से संघर्ष होने से उसे हमने नवचेतना के रूप में देखा।

जब कभी आर्य समाज का प्रभाव देखने का प्रश्न उठता है तो सरल उत्तर यही प्रतीत होता है उस काल में जब आर्य समाज का उदय हो रहा था इसको किन लोगों ने अपने पथ के रूप में स्वीकार किया था जो बौद्धिक दृष्टि से जागरूक थे, जो संघर्ष के लिए कटिबद्ध और क्रान्ति को लाने में सक्षम थे। जिन के मन में समाज और राष्ट्र की संवेदनाओं के प्रति तीव्रानुभूति थी जिसके परिणामस्वरूप शरीर में होने वाली सूक्ष्म पीड़ा चेतना को प्रभावित कर समस्त शरीर को व्यथित करती है उसी प्रकार राष्ट्र में किए गए अन्याय अज्ञान और अभाव की पीड़ा उनके हृदय को व्यथित कर देती थी, प्रत्येक चेतना का तार उनकी हृत्तन्त्री से जुड़ा हुआ था कोई भी तार क्यों न हिले उस की झंकृति हम उनके मानस पर अंकित पाते थे यही क्रान्ति का मुख्य आधार है। केवल चेतना शून्य अनुगामिता समाज में परिवर्तन या क्रान्ति नहीं ला सकती, अपने अपने चेलों की संख्याधिकता भले ही प्रदर्शित करती हो।

विगत धर्मों, मतों और सम्प्रदायों के इतिहास पर दृष्टिपात करने पर एक बात भली प्रकार विदित हो जाती है जब किसी धर्म का उद्भव हुआ तब उसके मूल में समाज की कोई ऐसी आवश्यकता नहीं होती थी जिसकी उस काल में अतिशय रूप आनिवार्यता अनुभव होती थी। समाज पुरातनता की शृंखलाओं से अपने आपको जकड़ा अनुभव करता था। उसे दासता और परतन्त्रता की गन्ध उन परम्पराओं में आती थी किन्तु उसका अन्तःकरण बौद्धिक ज्ञान उस व्यवहार से समन्वय स्थापित करने में असमर्थ होते थे। उस काल में विद्रोह का आह्वान सागर में डूबने से बचने के नौका का कार्य करता है विशेषकर जब व्यक्ति स्वयं डूबता हुआ अनुभव कर रहा हो उस दशा में उसे संघर्ष में मृत्यु का भय समाप्त होकर क्रान्ति का पथ स्वीकार करने में जीवन की सार्थकता और सुरक्षा अनुभव होती है। सभी मतों ने मनुष्य को दासता के जितने अंश मुक्ति की ओर ले जाने का प्रयास किया उतना उसका प्रसार हुआ। अन्य सब मतों की विचारधारा से आर्य समाज में एक विशेष बात परिलक्षित होती है उसे आज की बहुप्रयुक्त शब्दावली में स्पष्ट किया जावे तो समग्रक्रान्ति का नाम दिया जा सकता है। आर्य समाज ने समाज के किसी एक पक्ष को न सुधार कर सम्पूर्ण समाज में सर्वात्मना परिवर्तन लाने की चेष्टा की है व्यक्ति में ही परिवर्तन की मात्र अपेक्षा अन्य विचार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

धाराओं की विशेषता रही है। व्यक्तिवादी पक्ष पर उन विचारधाराओं का इतना आग्रह है जिसकी अतिशयता समाज को पीछे छोड़ देती है क्योंकि समाज में व्यक्ति इकाई होने पर भी अपनी संवेदना की तीव्रतावश उसकी गति समाज की अन्य इकाईयों से भिन्न होकर इतनी तीव्र हो सकती है वह समाज में नहीं रह सकता। परन्तु आर्य समाज ने व्यक्तिवादी पक्ष को इकाई के रूप में महत्त्वपूर्ण स्वीकार करके भी सामाजिक पक्ष को अन्यथा प्रभावित करने की अनुमति नहीं दी और समस्त समाज में सक्रियता लाने पर बल दिया इसी कारण बुद्ध महावीर और ईसा जैसे धर्म प्रचारकों की अहिंसा सत्य प्रेम जैसे शब्दों की परिभाषा एकांगी और व्यक्तिनिष्ठ हैं जबकि इन्हीं भावों की आर्य सामाजिक परिभाषा समाजनिष्ठ है, ऐसा करते हुए जिन सामाजिक मान्यताओं को स्वीकार कर क्षेत्रों का विभाजन किया गया है वह इतना सुसंगत है और समुचित है उसमें कहीं भी विरोध नहीं इस बात को स्पष्ट करने के लिए व्याख्या की नहीं परिभाषा को ही उद्धृत करना मात्र पर्याप्त है। 'प्रत्येक मनुष्य को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम पालने में सब स्वतंत्र रहें। आर्यसमाज की क्रान्ति का प्रारम्भ होकर समाज राष्ट्र और प्राणीमात्र पर समाप्त होता है। जब अन्य सभी विचारधारायें व्यक्ति में ही समाप्त होती दृष्टिगत होती हैं। इस दार्शनिक दृष्टिकोण का ही परिणाम है न्याय और दयालु विरोधी समझे जाने वाले शब्दों को परस्पर पूरक बना दिया।

इसके साथ ही कोई भी विचारधारा समग्रता का तब तक दावा नहीं कर सकती जब तक व्यक्ति और समाज के जागृत और सुषुप्त दोनों दशाओं को नहीं प्रभावित करती, चेतना और व्यवहार को अपने से प्रभावित नहीं कर डालती इसी कारण आर्य समाज का दृढ़ मन्तव्य है न व्यवहारवादी पक्ष ही पूर्ण है जैसा कि सामान्य विचार धाराओं में पाया जाता है और केवल सिद्धान्तवादी पक्ष ही, अपितु दोनों ही समान रूप से अनिवार्य है इसी के लिए आर्यसमाज में शिक्षा को क्रान्ति का क्षेत्र बनाने की चेष्टा की गई। व्यक्ति एवं समाज को जीवित रखने की परमावश्यक वस्तु आत्मगौरव हुआ करती है जब क्रान्ति का प्रारम्भ होता है तब वही व्यक्ति आगे आता है जिसको ऐसा करने में आत्मगौरव और उच्चता की अनुभूति होती हो ऐसा होने पर ही आत्म गौरव के सन्मुख उसको सब कुछ तुच्छ और हेय प्रतीत हुआ करता है, इसलिए आर्य समाज प्राणीमात्र में ईश्वर पुत्रत्व की भावना उत्पन्न समानता का उद्घोष और जीवन का अधिकार प्रदान करता, भारतीयों में संस्कृत और संस्कृति के रूप में उनके उच्च चिन्तन और आदर्श व्यवहार की चित्रावली प्रस्तुत की है जिसको देख कर आत्मगौरवकी अनुभूति शाश्वत बनी रहती है, इसी कारण केवल और केवल आर्य समाज ने इस बात का साहस किया और समस्त इतिहास वाङ्मय को अपनी कसौटी पर कस कर स्वीकार किया और शेष को रद्दी की टोकरी में फेंक दिया।

आत्मगौरव की स्थिरता के लिए आवश्यक वस्तु है सत्य, सत्य को स्वीकार करने वाला सत्य को समझने वाला व्यक्ति ही आत्म गौरव अनुभव कर सकता है और वह एकाकी होने पर भी गर्व से सिर ऊंचा कर चल सकता है। यह एक सर्वविदित तथ्य है आर्य या आर्यसमाजी कहलाने में जिसको गर्व अनुभव न होता हो अवश्य ही उसका विचार सत्य से कहीं दूर है। वह सिद्धान्त और व्यवहार को समन्वित नहीं कर सका है

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जिसका परिणाम है लज्जा अनुभूति । जब सत्य है यह समझ लिया तो संघर्ष असत्य के विरुद्ध लड़ाई उसका सामाजिक दायित्व बन जाता है अन्य सभी विचारधाराओं से समाज में संघर्ष करने का प्रकार बहुत भिन्न है सत्य में पूर्वाग्रह हो ही नहीं सकता, यदि पूर्वाग्रह है तो सत्य नहीं, जहां पूर्वाग्रह नहीं वहां संकीर्णता के लिए कोई अवसर नहीं, इस प्रकार आर्यसमाज में एक अद्भुत दृढ़ता अपनी आस्थाओं के लिए और दूसरी ओर आश्चर्यजनक उदारता और सहृदयता प्राणी मात्र के लिए । इसी कारण व्यक्ति समाज और राष्ट्र में त्रास कहीं क्यों न हो उसकी पीड़ा उसके हृदय को व्याकुल और उसके मन को व्यथित, उसके मस्तिष्क को उपाय के लिए बाध्य कर देती है । चाहे वह त्रास अज्ञान का परिणाम हो अभाव का कारण हो अथवा अन्याय का परिणाम इसके लिए जो सचेत है वह ही आर्य है वे ही आर्यसमाजी हैं यह ही आर्य समाज का सिद्धान्त है शेष तो 'आर्य रूपेण मृगाश्चरन्ति' हैं । आर्य समाज का दर्शन व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के प्रत्येक आवभव का दर्शन है, यह समग्र क्रान्ति का दर्शन है, यह समाज की आवश्यकता अनुभूति और सत्य का दर्शन है—यदि नहीं तो इस वाक्य पर विचार कीजिए और अपना निर्णय स्वतन्त्रतापूर्वक लीजिए—

"मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे । अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे ।

इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से कि धर्मात्माओं चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुण रहित क्यों न हों उनकी रक्षा उन्नति प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश अवनति और और अप्रियाचरण सदा किया करें ।

अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे । इस काम में उसको चाहे कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपन रूप धर्म से पृथक् न होवे ।"

—स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश

जो न हटा, सुख फेर, बढ़ा जीवन भर आगे,
जिसका साहस हेर, विघ्न, भय, संकट भागे ।
सबल सत्य की हार, अनृत की जीत न होगी,
ऐसे प्रबल विचार, सहित विचरा जो योगी ।
उस दयानन्द ऋषि-राज का प्रकृत पाठ जनता पढ़े ।
प्रभु 'शंकर' आर्यसमाज का, वैदिक बल गौरव बढ़े ।।

—नाथूराम 'शंकर' शर्मा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सुनो, बात ऋषि की !

दयानन्द आनन्द दाता, ऋषि था,
सुधा-सार सब को पिलाता ऋषि था।
महत् था; मधुरतम महा क्रांतिकारी,
दयामय दया का था अनुपम पुजारी।

सभी भेदभावों को जग से मिटाना
अंधेरे मतों को हटाना था ठाना,
वह सच्चा था योगी, युगों का विजेता,
मनुज मात्र का था अकेला ही नेता।

न उस सा था कोई, न आगे भी होगा,
ऋषि सा न कोई, सुधारक भी होगा,
सभी को बचाया, सभी को उठाया,
कातिल भी सीने से जिसने लगाया,

महादेव, देवों का सरताज था वह,
महापूत पावन पवन वेग था वह,
उसे रोक पाया न तूफान युग का,
उसे बाँध पाया न मोहपाश जग का।

वह सब का गुरु था सफल मंत्रदाता,
सकल मानवों का वही एक त्राता,
उसी ने दिखायी थी जीवन की राहें,
उसी ने सुनी दीन जन की कराहें।

सुनो, बात ऋषि की, उसी पर चलो सब,
सभी भेदभावों की भाषा हटा दो !
सचाई के रस्ते को मानो सभी तुम
पापों की गठरी जला दो, मिटा दो !

—भारतेन्द्रनाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शताब्दी पर प्रचार के लिए

एक और भेंट

दयानन्द चित्र कथा

३२ रंगीन पृष्ठों में

विद्यालयों व साधारण जनता में बांटने के लिए

प्रभावशाली पुस्तक

मूल्य—४० पैसे • ३०) सैकड़ा

२००) हजार

भारी संख्या में मंगाएं : प्रचार करें

आर्यसमाज के नियम का

बड़ा पोस्टर

आर्ट पेपर पर भी मिल रहा है

वार्निश किया हुआ ८०) सैकड़ा

साधारण ५०) सैंकड़ा : ४००) हजार

स्वामी दयानन्द सरस्वती

बड़ा जीवन चरित्र

केवल १००) सैंकड़ा

दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

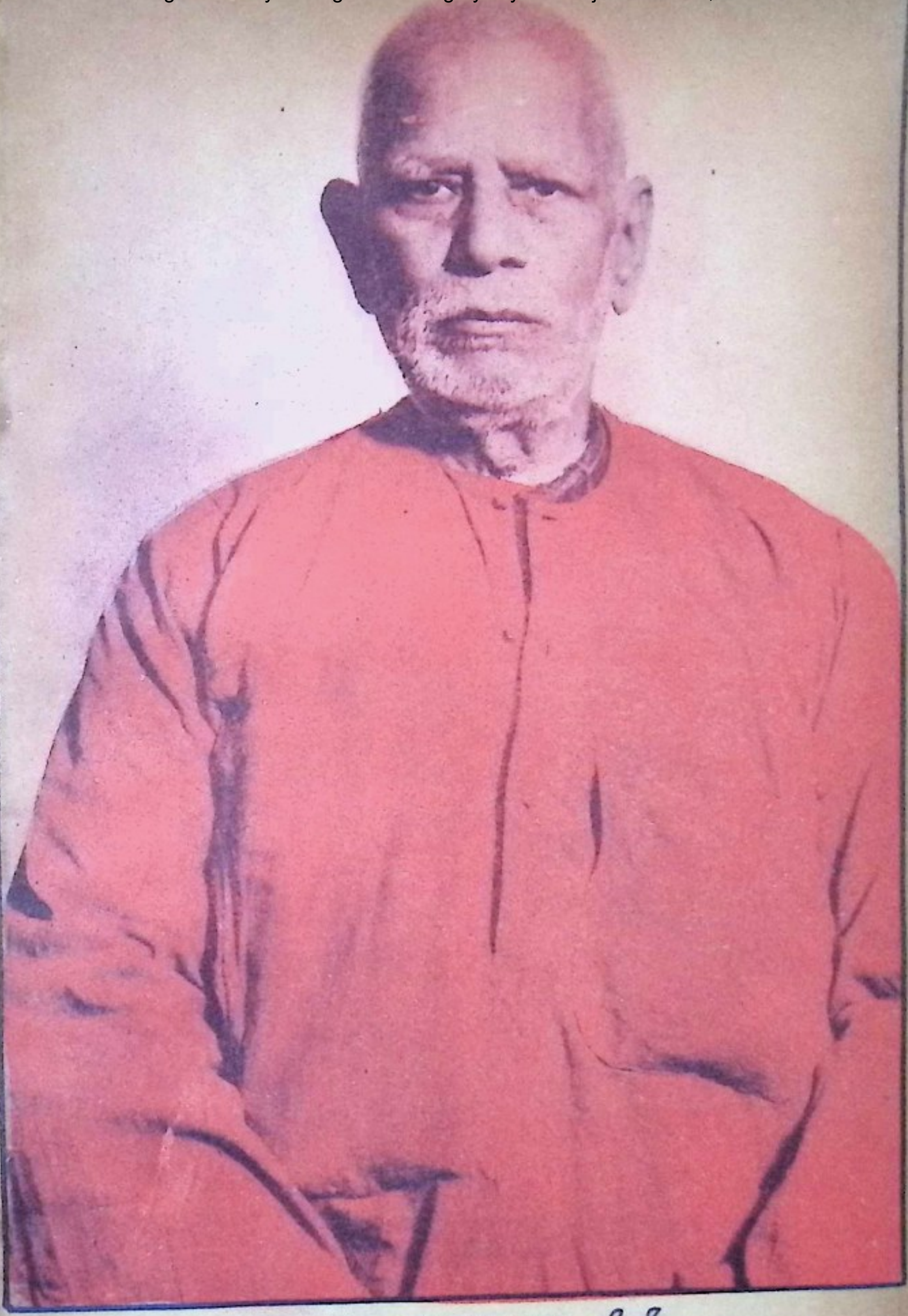

महात्मा नारायण स्वामी जी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यसमाज

के

आधार स्तम्भ

जिस महान नर रत्नों ने अपने प्राणों की आहुति देकर सत्य-धर्म और ज्ञान के प्रकाश को पुनः प्रसारित करने हेतु अपना जीवन लगाया और·········आर्यसमाज सङ्गठन को सुदृढ़ बनाकर ऋषि दयानन्द के कार्यों को फैलाया—उनके प्रति सादर श्रद्धा सुमन हम आर्यसमाज शताब्दी के पावन अवसर पर अर्पित करते हैं—

—सम्पादक

प्रस्तुत हैं उन सभी का संक्षिप्त परिचय इस विश्वास के साथ कि इन्हें पढ़ हम भी कुछ प्रेरणा पा सकेंगे

———

जन-ज्ञान प्रकाशन नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वे शहीद हो गये !
प्राण देकर-जीवन जलाकर
एक भवन खड़ा कर गये
कल्पनाएँ
साकार हुयीं
और आज
१०० वर्ष बीतने के बाद
हम उन्हें याद कर रहे है—
इसलिये
कि—
हम भी उनकी राह पर
चल सकें !
शताब्दी की सफलता
धन से नहीं
प्राणों की आहुति से होगी।
हम ढूँढ रहे हैं
उन्हें जो मर सकें—
इसलिये कि—
दयानन्द का दीप
ज्योतित रहे।
आर्यसमाज अमर रहे—
धर्म-वेद अमर रहे—
इसके लिये
कौन रक्त देगा ?
कौन प्राण देगा ?
कौन जलेगा ?
कौन मरेगा ?
प्रश्न गूंज रहा है
गूँजता ही रहेगा।
उत्तर की प्रतीक्षा
सफलता के छोर तक
करते रहेंगे……

—सम्पादक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गुरुवर्य स्वामी विरजानन्द दण्डी

पंचनद प्रान्त का जिला करतारपुर। समीपस्थ ग्राम गंगापुर में संवत् १८५४ में पं० नारायणदत्त के कुलवतंश के रूप में जन्मे बालक ब्रजलाल। ५ वर्ष की आयु में ही शीतला रोग का प्रवल प्रहार बालक का जीवन तो न ले सका किन्तु चक्षु-दृष्टि सदा के लिये ले गया। अभी ब्रजलाल ११ ही वर्ष के थे एक और वज्रपात हुआ और वह था उनके कृपालु माता-पिता का निधन। नेत्रहीन बालक अनाथ भी हो गया। किन्तु भाग्य-चक्र ने इतने पर ही बस न की। अनुज नेत्रहीन अग्रज के लिए भी भार बन गया और फिर आरम्भ हुई उपेक्षा तदुपरान्त उत्पीड़न। परिणामतः ब्रजलाल गंगापुर को त्याग कर सीधे गंगा की लोल लहरों के तट पर अवस्थित ऋषिकेश जा पहुँचा और फिर वहाँ उसने एक वर्ष तक गंगा जल में बैठ कर गायत्री जप करते हुए प्रचण्ड तपस्या की। एक दिन उसे प्रेरणा हुई "आगे बढ़ो" और ब्रजलाल से विरजानन्द दण्डी बने वीरव्रती ने कनखल की राह ली। यहाँ स्वामी पूर्णानन्द से व्याकरण का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर आप तीर्थाटन को चल पड़े।

एक दिन सोरों में विरजानन्द के सुमधुर कण्ठ से प्रवाहित स्तोत्र की मधुर ध्वनि ने अलवर नरेश श्री विनयसिंह का मन मोह लिया। नरेश के प्रबल आग्रह से स्वामी जी अलवर चले गये और राजगुरु बन गये। किन्तु प्रभु ने उनसे तो और भी महत्त्वपूर्ण कार्य लेना था। उन्हें तो एक ऐसा शिष्य तैयार करना था जो उनकी दिव्य-दृष्टि को अग-जग में जगमग कर सके। फलतः एक दिन आप वहाँ से विदा लेकर पुनः सोरों आ गये। सोरों से भरतपुर और फिर वहाँ से मथुरा और अन्ततः मथुरा ही उनका निवास स्थान बन गया।

संस्कृत व्याकरण के प्रकाण्ड पण्डित और श्रेष्ठ अध्यापक के रूप में उनकी कीर्ति-कौमुदी चतुर्दिक व्याप्त हो उठी। उनका निवास स्थान ही पाठशाला बन गया। तीव्र एवं अद्भुत स्मरण-शक्ति के धनी स्वामी विरजानन्द की विद्वता की धाक से काशी की पण्डित-मण्डली भी प्रभावित थी। एक दिन और भी क्रान्तिकारी घटना घटी जब स्वामी जी ने अपने पड़ोसी एक दक्षिणी पण्डित से पाणिनि ऋषि कृत मूल अष्टाध्यायी का पाठ सुना। सुनते ही वह उन्हें स्मरण हो गया तथा व्याकरण की इस आर्य पद्धति पर उनकी सुदृढ़ आस्था जम गयी और फिर वही पद्धति उनके द्वारा अपने शिष्यों को दी जाने वाली शिक्षा का आधार बन गयी।

दो महापुरुषों की भेंट

और फिर आर्य जाति के इतिहास की वह स्वर्णिम घड़ी भी आ गई जब ८०

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
वर्षीय स्वामी विरजानन्द की सेवा में उपस्थित हुआ एक ३० वर्षीय गृह त्यागी वीतराग युवक। वह थे देव दयानन्द। योग्य गुरु को सुयोग्य शिष्य मिल गया। दयानन्द ने नितान्त श्रद्धा भावना सहित गुरु सेवा की और उनसे आर्ष ग्रन्थों का सत्य ज्ञान प्राप्त किया। और अन्ततः शिक्षा दीक्षा पूर्ण कर गुरु दक्षिणा स्वरूप महर्षि दयानन्द ने स्वामी विरजानन्द जी द्वारा दिये गये इस आदेश के पालन का वचन दे दिया "आजन्म आर्ष ग्रन्थों का प्रचार और अनार्ष ग्रन्थों का खण्डन करते हुए सत्य वैदिक धर्म की स्थापनार्थ प्राणों की बाजी लगा कर भी सक्रिय रहूँगा।"

योग्य शिष्य ने गुरुदेव को दिये गये इस वचन को मनसा वाचा कर्मणा पूर्ण भी किया। स्वामी विरजानन्द दयानन्द की सत्य निष्ठा के सम्बन्ध में पूर्णतः आश्वस्त हो ८२ वर्ष की आयु में सम्वत् १९२५, आश्विन वदी त्रयोदश सोमवार को अपनी नश्वर काया को त्याग कर अमरत्व प्राप्त कर गये। और जब देव दयानन्द को यह दुखद समाचार मिला तो उनके श्रीमुख से सहसा ही निकल पड़ा "आज व्याकरण का सूर्यास्त हो गया।"

महान् मनीषी
पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

२६ अप्रैल, १८६४। मुल्तान नगर में एक देदीप्यमान नक्षत्र उदित हुआ। श्री राधाकिशन सरदाना के गृह में मंगल वाद्य वज उठे। क्योंकि उनके यहाँ ही उदित हुआ था कुलदीपक के रूप में एक नक्षत्र। माता-पिता ने नाम दिया मूला। किंतु अभी उस नवपल्लव को पल्लवित हुए कुछ ही वर्ष हुए थे कि उसकी कुशाग्र बुद्धि की सुगन्ध व्याप्त होने लगी। बाल्यावस्था को पार कर मूला ने किशोर अवस्था की देहरी पर पग धरा। माता-पिता १२ वर्ष के उस बालक को हरिद्वार ले गये। चिरकाल की प्रतीक्षा इस बालक के रूप में साफल्यमण्डित हुई थी। अतः उन्होंने इसे गुरु का प्रसाद मान कर बालक को नया नाम दे दिया 'गुरुदित्ता'। किन्तु अपने जीवन में समाज और देश के सुधार हेतु कृतसंकल्प इस बालक ने स्वतः ही अपने नाम का सुधार कर इसे गुरुदत्त की शुद्ध संज्ञा प्रदान कर दी। प्रबल स्मरण शक्ति के धनी गुरुदत्त ने १८८१ ई० में श्रेष्ठ अंकों में मैट्रिक की परीक्षा में सफलता अर्जित की तो व्यायाम और प्राणायाम से शरीर भी बलिष्ठ और सुदृढ़ बना लिया। बाद में उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से विज्ञान में एम० ए० सर्वाधिक अंक लेकर सफलता पाई। कहते हैं कि प्राप्त अंकों ने सभी पुराने रिकार्ड तोड़ दिये।

किंतु एक दिन इस मेधावी युवक को कहीं से सहसा ही महर्षि दयानन्द कृत

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' ग्रन्थ आ गया। इस ग्रन्थ को पढ़ा तो आपके जीवन में एक नवीन क्रान्ति प्रादुर्भूत हो उठी और आप आर्य समाज के सम्पर्क में आकर उसमें आ गए। उन्हीं दिनों आपकी नियुक्ति गवर्नमेंट कालेज में विज्ञान के सहायक अध्यापक के रूप में हो गयी थी। यद्यपि आप आर्य समाज के सभासद बन गये थे, अध्ययन का क्रम भी जारी था किन्तु मस्तिष्क पर नास्तिकता के विचार अभी भी प्रभावी थे।

महर्षि दयानन्द के अजमेर में रोग-ग्रस्त होने का समाचार लाहौर पहुँचा तो स्थानीय आर्य समाज ने आपको ला० जीवनदास के साथ महर्षि के दर्शनार्थ अजमेर भेज दिया। वहाँ जिज्ञासु गुरुदत्त ने देव दयानन्द के जीवन के अंतिम दृश्य को नितान्त तन्मयता और उत्सुकता सहित निहारा। इस दर्शन ने उनके जीवन दर्शन को नया दिशा दान दिया और नास्तिक गुरुदत्त आस्तिक बन गए।

अब उनके जीवन का प्रत्येक क्षण महर्षि दयानन्द के मिशन और प्रचार हेतु समर्पित हो गया। लाहौर में महर्षि की स्मृति में दयानन्द एंग्लो वैदिक (डी० ए० वी०) कालेज की स्थापना का निर्णय हुआ। उसके उद्देश्यों में वेद और वैदिक साहित्य तथा संस्कृत पढ़ाने पर विशेष बल दिया गया। कालेज की स्थापना तो हो गई किंतु वेद, वैदिक साहित्य और संस्कृत की शिक्षा की कोई समुचित व्यवस्था न हुई और पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति पर ही बल दिया गया तो गुरुदत्त उस स्थिति का विरोधी गुट के अग्रगण्य नेता बन गए और फिर उस कालेज के प्रबन्ध में सक्रिय योगदान के स्थान पर आपने सम्पूर्ण शक्ति वेद प्रचार, संस्कृत प्रचार में लगा दी। आपने लाहौर में अष्टाध्यायी की कक्षा आरम्भ की तो वैदिक शब्दों की व्याख्या पर एक कोश भी तैयार किया और कुछ उपनिषदों का अंग्रेजी अनुवाद भी। इसके अतिरिक्त आपने टर्मिनोलॉजी ऑफ वेदाज़ नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ की भी रचना की। जीवन में १४ बार सत्यार्थ प्रकाश का स्वाध्याय करने वाला यह मेधावी युवक अत्यधिक परिश्रमजन्य क्षय रोग से ग्रस्त हो २६ वर्ष की युवा अवस्था में ही जाति को नव प्रकाश दे अपना जीवन दीप बुझा गया।

महापुरुष

पं० लेखराम

आर्य समाज रूपी माता की गोदी में खेल कर जो महाप्राण स्वजीवन का दान कर स्वजाति को अमर सम्मान प्रदान कर गए हैं, उन्हीं में पण्डित लेखराम जी को भी अग्र स्थान प्राप्त है। शूर संकल्प में ढले और स्वध्येय हेतु कंटकाकीर्ण पथ पर चले इस नरपुंगव के लिए "महापुरुष" संज्ञा ही सर्वथा सार्थक है।

पश्चिम पंजाब (जो आज पाकिस्तान में है) के झेलम जिले में स्थित ग्राम

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सैदपुर के एक ब्राह्मण परिवार में ८ चैत्र सम्वत् १९१५ विक्रमी को पं० तारा सिंह मेहता के कुलदीपक के रूप में जन्मे थे लेखराम। सैनिक वृत्ति ही उनकी पारिवारिक परम्परा थी। अतः वे भी पुलिस में भर्ती हो गए। किन्तु तभी उनकी जीवन सरिता ने एक नवीन मोड़ ले लिया और लेखराम अपनी धर्म भावना के जागरण के फलस्वरूप सिपाही से सन्त बन गए।

लुधियाना में मुन्शी अलखधारी लिखित ग्रन्थों का पठन पाठन किया तो स्वामी दयानन्द एवं आर्य समाज का परिचय भी मिल गया और फिर इस जिज्ञासु हृदय ने स्वामी दयानन्द द्वारा लिखित ग्रन्थों का पारायण किया और फिर विचारों में नवीन क्रान्ति का सूत्रपात हुआ और आप निष्ठावान आर्य समाजी बन गए। किन्तु अभी भी कुछ शंका-आशंकाओं का मानस पटल पर प्रभाव था। अतः १७ मई, १८८० ई० को पं० लेखराम ने अजमेर जाकर महर्षि दयानन्द के दर्शन किए और उनके श्रीचरणों में बैठ कर हृदय शंका-रहित हो गया।

उन्होंने पर्याप्त चिन्तन मनन के उपरान्त अपने जीवन की भावी दिशा निर्धारित की और नौकरी से त्याग पत्र दे कर आप समाज के ही हो गए। सार्जेन्ट लेखराम अब वैदिक धर्म के प्रति प्रबल आस्थावान आर्य पथिक हो गए।

असत्य का खण्डन ही उनका जीवन सिद्धान्त बन गया और पहले उन्होंने कादियानों से टक्कर ली। फिर "आर्य गजट" का सम्पादन कार्य उन्होंने सँभाला तथा साथ ही आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के आदेश पर आपने ऋषि जीवन लिखने का दायित्व भी सँभाल लिया। उन्होंने दो वर्ष तक महर्षि से सम्बन्धित विभिन्न स्थलों की यात्रा कर उनके सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर महर्षि का जीवन चरित्र तैयार कर दिया। इस पर्यटन के दौरान शास्त्रार्थ और व्याख्यान के सिलसिले को भी उन्होंने कभी विराम न लगाया। उर्दू फारसी के साथ ही आपने संस्कृत और अंग्रेजी में भी अच्छा पाण्डित्य प्राप्त कर अपनी मेधा का परिचय दिया।

शुद्धि आन्दोलन को भी आपने निष्ठा सहित गति प्रदान की। सत्य के पुजारी आर्य मुसाफिर की लेखनी और वाणी दोनों ही असत्य के लिये असह्य हो उठी। एक हत्यारा १ से ६ मार्च १८९७ तक उनके साथ रहा और उनसे स्वयं को शुद्ध होने का इच्छुक बता कर आर्य मुसाफिर से सम्पर्क बढ़ाया। फिर एक दिन मुलतान में ऋषि का यह अमर भक्त महर्षि की मृत्यु का अन्तिम दृश्य लिख रहा था, उस हत्यारे ने आर्य पथिक पर प्रहार कर अपने सधे हुए हाथों से उनके पेट में छुरा भोंक दिया। प्रबल साहसी पं० लेखराम ने हत्यारे के प्रहार के बावजूद उसके हाथ से छुरा छीन लिया किन्तु हत्यारा भागने में सफल हो गया। अन्ततः रात्रि के दो बजे इस महामानव ने अपने अन्तिम सन्देश के साथ चिरविदाई ले ली "आर्य समाज से लेख का कार्य बन्द नहीं होना चाहिए।" उनकी नश्वर देह अनश्वर वीरत्व का संदेश दे गई।

★

हर घर में वेद–सत्यार्थ प्रकाश तथा ऋषि जीवन पहुँचाएं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अमर हुतात्मा

स्वामी श्रद्धानन्द

अंग्रेजी राज्य सत्ता के विरुद्ध प्रथम भारतीय स्वातंत्र्य समर की तैयारियाँ देश भर में हो रही थीं, उसी वर्ष अर्थात् १८५६ ई० में पंचनद प्रदेश के जालन्धर जिले के तलवन नामक ग्राम में लाला नानक चन्द के गृह में एक बालक ने जन्म लिया। कुल पुरोहित ने राशि इत्यादि का अध्ययन कर उसे नाम दे दिया बृहस्पति। किन्तु परिवार के लोग प्यार से इस बालक को मुंशीराम के नाम से पुकारने लगे। पिता पुलिस अधिकारी थे। वे सहारनपुर, बलिया, वाराणसी, मीरजापुर, गाजीपुर आदि में कोतवाल रहे। पुलिस विभाग के अधिकारी में खान-पान का दोष आना कोई अस्वाभाविक बात नहीं। किन्तु सब होने पर भी नानकचन्द थे प्रखर राम भक्त। सत्संग के प्रेमी भी। नानक चन्द जी के लाड़ले पुत्र मुंशीराम की समग्र शिक्षा वाराणसी के राजकीय विद्यालय और प्रयाग के म्योर सेन्ट्रल कालिज में ही हुई। यौवन और सम्पन्नता ने मुंशीराम को पथ भ्रष्ट कर दिया। यह भी सत्य है कि आपके जीवन में एक ऐसा दौर भी रहा जब कट्टर मूर्तिपूजक और रामायणपाठी रहे। किन्तु काशी में पण्डों के घृणित हथकण्डों ने हिन्दू धर्म के प्रति उनके मन में कुछ ऐसी घृणा जगाई कि एक बार तो उसने ईसाई मत ग्रहण करने का ही निश्चय कर लिया। किन्तु जिस पादरी से उन्होंने काशी में बपतिस्मा लेने का निश्चय किया था, उसी को स्वनेत्रों से एक नन के साथ व्यभिचाररत देख कर आपका मन तीव्र घृणा से भर गया और आप उसके निवास स्थान से उलटे पाँव लौट पड़े।

२१ वर्ष की आयु में श्री मुंशीराम का विवाह जालन्धर के राय सालिगराम की सुपुत्री शिव देवी जी के साथ कट्टर पौराणिक पद्धति से सम्पन्न हुआ। विवाह के समय तो "नई हवा" से प्रभावित मुंशीराम शिवदेवी से सन्तुष्ट न थे किन्तु उनकी पतिपरायणता और धर्मनिष्ठा ने मुंशीराम का हृदय जीत लिया और उनके स्नेहपूर्ण व्यवहार के परिणामस्वरूप ही मुंशीराम जी मद्यपान के व्यसन से मुक्ति पा गए। उन्होंने ही अपने आभूषणों के द्वारा मुंशीराम को ऋण मुक्त कराया। उन्हीं दिनों बरेली में महर्षि दयानन्द का शुभागमन हुआ। अपने पिता के साथ आप स्वामी जी की सभा में चले गए तो दस मिनट के प्रवचन ने ही नास्तिक मुन्शीराम के जीवन में एक नई क्रान्ति लगा दी। उस दिव्य आदित्य मूर्ति के प्रति उनके मन में श्रद्धा उत्पन्न हो गई। कुछ ही समय बाद उनके पिता ने त्याग पत्र दे दिया और अपने घर लौट गए तो मुन्शीराम को एक वकील मित्र के परामर्श पर उन्होंने लाहौर में वकालत पढ़ने भेज दिया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वकालत की परीक्षा के दिनों में ही उन्हें सत्यार्थ प्रकाश के दर्शन हो गये और उसके कई दिन के गम्भीर स्वाध्याय ने मुन्शीराम जी को आर्य समाजी बना दिया। लाहौर से मुख्तारी की परीक्षा में सफलता प्राप्त कर उन्होंने जालन्धर में वकालत आरम्भ कर दी। कुछ ही दिनों में उनकी सत्यवादिता का सिक्का सर्वत्र जम गया और वे जालन्धर के मुख्य वकील माने जाने लगे। वकालत के साथ ही उनका आर्य समाज की सेवा का कार्य भी दिन प्रतिदिन बढ़ता गया। वे सत्यार्थ प्रकाश की कथा भी करते और जन्मना जातिवाद का खण्डन भी। उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह भी जाति-पाँति के वन्धन तोड़ कर किया। ३१ अगस्त १८९१ को उनकी धर्मपत्नी का जब देहान्त हुआ था तो उनकी चार सन्तानें थीं जिनकी आयु २ से १० वर्ष के मध्य थी। उन्होंने अपनी सन्तानों को पिता का प्यार तो दिया तो माता की ममता भी। जनता उनके सात्विक जीवन से प्रेरित होकर उन्हें महात्मा कह कर सम्बोधित करने लगी थी। पं० गुरुदत्त विद्यार्थी के निधन के उपरान्त आर्य समाज में दो दल बन गए थे। आपने घास पार्टी का नेतृत्व संभाला। उन्हीं दिनों आप आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान भी थे। आपने वेद प्रचार निधि स्थापित कर अपनी शक्ति वेद प्रचार में लगा दी। साथ ही उन्होंने गुरुकुल की स्थापना का भी संकल्प ले लिया था। उन्होंने २४ मार्च, १९०२ को अपना यह संकल्प काँगड़ी में गुरुकुल की स्थापना कर पूर्ण किया। यही गुरुकुल काँगड़ी आज विश्वविद्यालय भी है।

महात्मा मुन्शीराम हिन्दी के प्रति परम अनुरक्त थे। १८ अप्रैल १९१७ को आपने वैदिक मर्यादा के अनुसार संन्यास लिया और श्रद्धानन्द नाम ग्रहण किया। आपने सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना की तो कांग्रेस, हिन्दू महासभा आदि राजनीतिक मंचों पर भी ओजस्वी वाणी गूँजी। जीवन के उत्तरार्द्ध में तो शुद्धि और हिन्दू संगठन ही आपके जीवन का कार्य बन गया और शुद्धि आन्दोलन के कारण ही आप २३ दिसम्बर, १९२६ को अब्दुल रशीद नामक एक मजहबी उन्मादी की गोली का निशाना बन कर जाति को सदैव जागृत रहने का सन्देश देकर संसार से चिरविदा ले गए।

★

शास्त्रार्थ निष्णात स्वामी दर्शनानन्द

सम्वत् १९१८ विक्रमी। पंजाव प्रान्त के प्रमुख जिले लुधियाना के जगरांवा नगर में पं० रामप्रसाद सारस्वत के यहाँ एक वालक ने जन्म लिया। नाम दिया गया नेतराम, किन्तु वाद में उसे वदल कर कृपाराम की संज्ञा प्रदान की गई। ११ वर्ष

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

की अल्पायु में तत्कालीन रिवाज के अनुसार कृपा राम को विवाह संस्कार भी सम्पन्न कराना पड़ा। प्रारम्भिक शिक्षा फारसी में हुई तो आपने संस्कृत का भी अध्ययन किया। पिता की प्रेरणा से ही आपने 'अमरकोश' का अध्ययन किया तो "सिद्धान्त कौमुदी" का भी पारायण कर लिया। पिता ने उन्हें दुकान पर बिठा कर व्यापारी बनाने का प्रयास किया। कृपा दृष्टि दरसाई किन्तु जिसे स्वदेश और आर्य जाति को अपनी कृपा से आप्लावित करना था वह इस चक्र में कैसे फँसता ? कृपाराम वैराग्य भाव से प्रेरित युवक। घर से भाग निकले और स्वामी नित्यानन्द बन गए। घर से भागे तो थे किन्तु दीना नगर में चाचा ने उन्हें पकड़ लिया। किन्तु कृपाराम तीन वचन (गेरुआ वस्त्र नहीं उतारूँगा—घर में नहीं पृथक् बैठक में रहूँगा—ऋषि दयानन्द कृत सभी ग्रन्थों को मँगा कर देना होगा) प्राप्त कर ही घर लौटे। जगरांवा में कुछ दिन रहे किन्तु फिर सदा के लिये गृह त्याग कर काशी जा बिराजे।

१० दिसम्बर, १८८२ को उन्होंने बाँकीपुर पटना में "तिमिरनाशक" नामक मुद्रणालय स्थापित किया तो इसी नाम से एक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन भी किया। उसी प्रेस से उन्होंने आर्ष ग्रन्थों के प्रकाशन का क्रम आरम्भ कर दिया। उन्होंने कई प्रमुख ग्रन्थों का लागत से भी आधे मूल्यों पर प्रकाशन कर आर्यत्व के प्रचारकों को एक नवीन दिशा प्रदान की। वैशेषिक, न्याय, योग और सांख्य दर्शन के प्रकाशन के अतिरिक्त आपने शास्त्रार्थों का सिलसिला भी आरम्भ कर दिया। पं० शिवकुमार शास्त्री (पौराणिक) से शास्त्रार्थ में आपने विजय पाई। फिर १८९७ में आपने मुरादाबाद में वैदिक धर्म साप्ताहिक का प्रकाशन किया तो १८९८ में दिल्ली के चावड़ी बाजार में भी प्रेस स्थापित किया तो शास्त्रार्थ भी।

१९०१ ई० को वसन्त पंचमी के दिन काशी स्थित राजघाट पर पण्डित कृपाराम ने स्वामी अनुभवानन्द से संन्यास की दीक्षा ग्रहण कर दर्शनानन्द सरस्वती नाम ग्रहण किया।

तदुपरान्त उन्होंने ट्रैक्टलेखन, गुरुकुल स्थापन और वेद-विरुद्ध मतों का खंडन तथा वैदिक धर्म-प्रचार ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया और इन तीनों ही उद्देश्यों की पूर्ति अपने प्राणपण सहित की। बिना एक ट्रैक्ट लिखे तो आप भोजन भी न करते थे। उन्होंने सिकन्दराबाद, बदायूँ, बिरालसी (जि० मुजफ्फरनगर) एवं ज्वालापुर तथा पोठोहार (रावलपिंडी) में पाँच गुरुकुल स्थापित किए। रावलपिण्डी में भी उन्होंने अपना प्रेस लगा कर एक पत्र का प्रकाशन किया और लाहौर से भी "ऋषि दयानन्द" नामक पत्र आपकी ही देन था।

शास्त्रार्थ में आप पौराणिकों, इस्लाम अनुयायियों, ईसावादियों, बौद्धों और जैनों से टकराए तो देवरिया में ५० मौलवियों से "पुनर्जन्म" विषय पर अकेले ही शास्त्रार्थ करके तो आपने आर्य समाज की धाक चारों ओर बैठा दी।

स्वामी दर्शनानन्द ने ही ६ शास्त्र, प्रथम ६ उपनिषद् तथा गीता सहित ३८ ग्रन्थ प्रकाशित किए तो अवैदिक मतों के खण्डन में भी आपने कई ट्रैक्ट लिखे।

अत्यधिक परिश्रम, भ्रमण, अध्ययन और लेखन के कारण आप रोग ग्रसित हो गये किन्तु आर्य समाज के प्रचार और प्रसार के अभियान को आपने मन्द न पड़ने दिया और उनके जीवन का अन्तिम क्षण उस समय आया जब उन्हें आर्य समाज हाथरस के वार्षिकोत्सव पर अस्पताल से पण्डाल में लाया गया। ७ अप्रैल १९१३ की रात्रि को आपने ८० वर्ष की आयु में चिर विदाई ले ली।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आदर्श मानव
महात्मा हंसराज

१८ अप्रैल, १८६४ ई०। पंजाब प्रान्त के होशियारपुर जिले के ग्राम बजवाड़ा में ला० चुन्नीलाल के यहाँ पुत्ररत्न ने जन्म लिया। माता हरदेवी थीं इस लाडले की जननी। माता-पिता थे निर्धन, परन्तु परिश्रम रूपी धन से सुसम्पन्न। नंगे पैर बालक विद्यालय जाता, गर्मी में पैर तपते तो शीत में ठिठुर जाते। किन्तु बालक तो था तपस्वी। अतः सब प्रकार के कष्टों को प्रसन्नमना झेलता रहा। अभी यह बालक १२ वर्ष का ही था कि पिता का वरद हस्त उसके सिर से उठ गया। पूर्व निर्धारित कार्यक्रमानुसार बालक को पिता के निधन के कुछ ही दिन उपरान्त विवाह संस्कार भी कराना पड़ा।

तदुपरान्त मैट्रिक में सफलता प्राप्त करने के उपरान्त आपने उच्च शिक्षा लाहौर में सेवारत अपने बड़े भाई के सहयोग से प्राप्त की। विपरीत अवस्थाओं में भी उसने अच्छे अंकों में बी० ए० पास कर लिया।

१८७७ ई० में महर्षि दयानन्द ने अपनी चरण रज से लाहौर नगर को पावन किया तो हंसराज को भी इस महामानव के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हो गया। ऋषि के सम्पर्क में आते ही हंसराज की जीवन-धारा ने एक नवीन मोड़ ले लिया और उन्होंने आर्य समाज के लिए ही सर्वस्व समर्पण का मन-ही-मन संकल्प ग्रहण कर लिया। यदि हंसराज चाहते तो कोई भी अच्छी सी नौकरी पा जाते किंतु भौतिक सुख-ऐश्वर्य के प्रति नहीं अपितु निःस्पृह सेवा का मार्ग ही उन्होंने स्वयं के लिए चुना था।

१८८३ की दीपावली। अग-जग में वैदिक धर्म का प्रकाश विस्तीर्ण देव दयानन्द का जीवन दीप तिरोहित हो गया। पंजाब के आर्य जनों ने महर्षि की पावन स्मृति स्वरूप लाहौर में डी० ए० वी० कालिज की स्थापना का निश्चय किया और हंसराज ने अपनी सेवाएँ बिना किसी प्रकार का वेतन लिए ही इस विद्यालय की स्थापना पर उसके लिए देने का प्रस्ताव कर दिया। आर्य जन हर्षित हो उठे और १८८६ में स्थापित डी० ए० वी० स्कूल के मुख्याध्यापक का पद उन्होंने ही सभाला। बिना कोई वेतन लिए ही वह २५ वर्ष तक इस पद पर आरूढ़ रहे। कालेज में आप अंग्रेजी और इतिहास के अतिरिक्त धर्म शिक्षा की भी शिक्षा छात्रों को प्रदान करते। छात्रावास का भार भी उन्होंने स्वयं ही संभाला हुआ था। छात्रों में वैदिक जीवन के प्रति अनुरक्ति जगाने हेतु आर्य युवक समाज की स्थापना की गई।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
सरलता और त्यागमूर्ति हंसराज कालेज के छात्रों के ही नहीं अपितु शिक्षकों के लिए भी प्रेरणा का स्रोत बन गए थे। फरवरी १९१४ में आपके पुत्र श्री बलराज दिल्ली षड्यन्त्र काण्ड में बन्दी बनाए गए और उन्हें काला पानी का दण्ड सुनाया गया, जो बाद में अपील करने पर सात वर्ष की सजा में बदल गया। इसी बीच हंसराज की जीवनसंगिनी ने उनसे चिर विदाई ले ली। कई प्रकार के आर्थिक संकटों से उनके कृपालु भाई को भी जूझना पड़ा किन्तु सम्पत्ति और विपत्ति तथा हर्ष और शोक दोनों में ही यह महापुरुष समान रहा।

आर्य प्रतिनिधि सभा का अध्यक्ष पद ग्रहण कर आपने पंजाब, सिंध, बिलोचिस्तान, सीमा प्रान्त, जम्मू-कश्मीर इत्यादि का तूफानी दौरा किया। दर्जनों सुयोग्य विद्वान्, उपदेशक और भजनीक नियुक्त किए। अनेक स्थानों पर आपने अनाथालय खोले, तो भूकम्प पीड़ितों और प्लेग पीड़ितों की सहायता की। १९२१-२२ में आपने मालाबार (केरल) में बलात् विधर्मी बने २५०० से अधिक हिन्दुओं को पुनः शुद्ध किया। समाज सुधार आन्दोलन में भी आप अग्रणी रहे। १९३८ के कुम्भ मेले से आप उदर रोग से पीड़ित होकर लौटे और १५ नवम्बर १९३८ को आपका जीवन दीप बुझ गया।

वीतरागी संन्यासी सर्वदानन्द

पंचनद प्रदेश के होशियारपुर जिलान्तर्गत ग्राम बजवाड़ा को ही सुप्रसिद्ध आर्य संन्यासी स्वामी सर्वदानन्द की जन्मभूमि होने का गौरव प्राप्त हुआ है। एक कट्टर सनातनी परिवार में जन्मे इस नरपुंगव को मूर्ति पूजा विरासत में मिली थी। किन्तु एक मूषक द्वारा शिवप्रसाद का निर्भीकता सहित आहार जहाँ देव दयानन्द के जीवन में क्रान्ति का सूत्रधार बना वहाँ इस महान संन्यासी के जीवन में भी एक ऐसी ही घटना ने नवीन क्रान्ति का बीजारोपण कर दिया। वह थी एक श्वान द्वारा शिवमूर्ति का अपमान। उसी दिन से यह जिज्ञासु मूर्तिपूजा छोड़ कर नवीन वेदान्ती हो गया। उन्होंने कठोर परिश्रम और अध्यवसाय द्वारा संस्कृत में सिद्धता प्राप्त की तो प्राचीन ग्रन्थों का भी आपने सांगोपांग अध्ययन किया। परिणामतः वैराग्य भावना प्रबल हो उठी। ३२ वर्ष की अवस्था में उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया। गृह त्याग कर यह वीतराग तीर्थयात्रा पर निकल पड़े। तीर्थाटन के साथ ही साथ योगाभ्यास भी चलता रहा। कठोर तपस्या ने उन्हें भूख प्यास को दीर्घकाल तक सहन करने की शक्ति भी प्रदान कर दी।

तीर्थ यात्रा के दौरान ही जब स्वामी जी चित्रकूट पहुँचे तो वहाँ सहसा ही रुग्ण हो गये। उनकी कुटिया के निकट ही ठहरे थे एक ठाकुर साहब भी। वे थे कट्टर आर्य समाजी। उन्होंने स्वामी जी की सेवा-सुश्रूषा में कोई कोर कसर न उठा रखी। जब स्वास्थ्य लाभ कर स्वामी जी प्रस्थान करने लगे तो ठाकुर साहब ने उन्हें भेंट की महर्षि दयानन्द की क्रांतिकारी कृति 'सत्यार्थ प्रकाश'। इस महान ग्रंथ ने उनके जीवन को प्रकाश की एक नवीन दिशा प्रदान कर दी।

जीवन में आये इस क्रान्तिकारी परिवर्तन के उपरान्त तो आप आर्य समाज के ही हो गए। उसका प्रचार और प्रसार ही उनका एकमात्र कार्यक्रम बन गया। वे अपने प्रवास से जहाँ कहीं भी जाते वहीं युवकों को संस्कृत की शिक्षा और साधुओं को वैदिक धर्म-प्रचार के लिए तैयार करने का प्रयास करते। उन्होंने हरदुआगंज में संस्कृत पाठशाला की स्थापना की तो साधु आश्रम भी खोला। यहाँ से ही आर्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समाज को राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री (स्वामी ध्रुवानन्द) पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु तथा पं० सुरेन्द्र शर्मा गौड़ सरीखे आर्य विद्वान् मिले।

स्वामी जी यद्यपि लम्बी-लम्बी यात्राओं में व्यस्त रहते थे किन्तु यह यात्रा होती थी सदा तृतीय श्रेणी में ही। कष्ट सहन में ही आनन्द मनाने वाले इस वीतराग संन्यासी ने सदा आनन्द माना। वे जीवन की अन्तिम घड़ी तक अपरिग्रही एवं अर्थ-लिप्सा से सर्वथा मुक्त रहे। उन्होंने न कभी चापलूसी की कला सीखी और न ही कहीं गुणहीन धनिकों की शरण ली। वस्तुतः सही अर्थों में वे स्थितप्रज्ञ थे।

लोकेषणा से सर्वथा दूर यह महामानव आर्य समाज के प्रचारकों और प्रसारकों को सदैव ही यही बताता और जताता रहा कि "प्रचारकों और संन्यासियों को आरामतलब नहीं होना चाहिए।" मान-अपमान की उन्होंने कभी चिन्ता न की।

उन्होंने अपने गहन अध्ययन और अनुभवों का प्रतिदान अपनी पाँच पुस्तकों के रूप में समाज को प्रदान किया है। उनकी ये कृतियाँ हैं, 'ईश्वर भक्ति', 'आनन्द-संग्रह', 'सत्यार्थ दर्शन', 'कल्याण मार्ग' एवं 'प्रणव'।

प्रचार और प्रसार में अहर्निश कार्यरत रहने वाले इस महापुरुष का शरीर कृश और रोगग्रस्त हो गया। किन्तु शारीरिक शिथिलता ने भी उनकी कर्मठता में कमी न आने दी। प्रचार यात्रा में ही आप रोगग्रस्त हो गये और १९३८ में इस महा मानव ने लश्कर नगर में अपनी इहलीला समाप्त कर दी।

धुन के धनी
महात्मा नारायण स्वामी

सन् १८६६। वसन्त का पावन पर्व। अलीगढ़ के एक सरकारी कर्मचारी श्री सूर्यप्रसाद के परिवार में एक बालक ने जन्म लिया। प्रभु भक्त माता-पिता ने उसे नाम दे दिया नारायण प्रसाद। इस मेधावी बालक की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा उस समय की प्रचलित भाषाओं अर्थात् उर्दू, फारसी और अरबी में हुई। अभी उसकी शिक्षा का क्रम चल ही रहा था कि कृपालु पिता का वरद हस्त उनके सिर पर से हट गया। परिवार की कठिनाइयों ने उन्हें २२ वर्ष की अवस्था में ही मुरादाबाद कचहरी में नौकरी करने पर बाध्य कर दिया। तदुपरान्त २३ वर्ष की आयु में आपका विवाह हो गया।

कुशाग्र बुद्धि नारायण प्रसाद जिन दिनों हाथरस के एक विद्यालय में अंग्रेज़ी भाषा का अध्ययन कर रहे थे तो उन्हीं दिनों युग निर्माता महर्षि दयानन्द का शुभागमन हुआ। एक पौराणिक पण्डित के अपप्रचार के कारण नारायण प्रसाद उस दिव्य विभूति के प्रवचन श्रवणार्थ जाने से रुक गये। बाद में मुरादाबाद के निष्ठावान आर्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जन [illegible] सत्संग से नारायण प्रसाद ने सत्यार्थ प्रकाश का पठन किया तो उनके विचारों में नवीन क्रान्ति का प्रादुर्भाव हो गया। उस समय तक आप कट्टर मूर्तिपूजक और शैव ही थे। किन्तु शनैः शनैः वे आर्य समाज के रंग में रंग कर स्थानीय आर्य समाज के उप-मन्त्री निर्वाचित हो गये। आन्तरिक साधना, कठोर व्रत पालन और आत्म-परीक्षण ही उनकी प्रवृत्ति थी। १८९३ ईस्वी में अपने जन्म दिवस वसन्त पंचमी पर उन्होंने जो १० नियम निर्धारित किए उनमें आर्य समाज के नियमों और मन्तव्यों का दृढ़ता से पालन व ईमानदारी और परिश्रम से कमाए धन का ही उपयोग और माँगने से मर जाना अच्छा और एक पत्नीव्रत आदि शामिल थे।

विवाह के पाँच वर्ष बाद अर्थात् १८९७ से ही उनके क्रियात्मक पारिवारिक जीवन का आरम्भ हुआ। किन्तु उनका यह गार्हस्थ्य सुख अधिक दिन तक न चला क्योंकि पहला शिशु जन्मा तो जन्मते ही मर गया और दूसरा ६ मास की अवस्था में काल के कराल गाल में समा गया। वे लगभग २० वर्ष तक गृहस्थ आश्रम में रहे। उनके कठोर परिश्रम का परिणाम ही था कि मुरादाबाद में शुद्धि आंदोलन प्रभावी बना और उसका विरोध भी हुआ और आर्य समाजी जाति बहिष्कृत करने का निश्चय भी कट्टर पंथियों ने किया। किन्तु पौराणिकों के इस विरोध के बावजूद भी आर्य समाजियों ने सहनशीलता का परिचय दिया। उन्हीं दिनों मुरादाबाद में प्लेग के प्रकोप के समय भी आपके नेतृत्व में आर्य समाज ने पीड़ितों की महती सेवा की। उनकी लगन और निष्काम सेवा की ख्याति चतुर्दिक व्याप्त होने लगी। अब उनका कार्यक्षेत्र भी विस्तृत हो गया। वे आर्य प्रतिनिधि सभा युक्त प्रान्त की अन्तरंग के सदस्य चुने गये तथा उनके प्रस्ताव पर ही गुरुकुल खोलने का निश्चय हुआ। आपने नौकरी से ६ मास का अवकाश लेकर १३ हजार रुपये एकत्रित किए और फिर नौकरी छोड़ कर आर्य समाज के ही हो गए। आपके प्रयास से ही वृन्दावन में गुरुकुल की स्थापना हुई जिसके लिए सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी राजा महेन्द्रप्रताप ने भूमि दान दी थी। १९२० में उन्होंने वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश कर लिया। रामगढ़ के आश्रम को आपने अपना निवास स्थान बनाया और आप महात्मा नारायण प्रसाद कहलाने लगे। ४ मई १९२२ को आपने स्वामी सर्वदानन्द से संन्यास की दीक्षा ले ली और आप नारायण स्वामी हो गये। स्वामी श्रद्धानन्द के अस्वस्थ होने पर आप ही दयानन्द जन्म शताब्दि महोत्सव समिति के प्रधान बने और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का अध्यक्ष पद भी संभाला जिस पर आप १४ वर्ष तक (१९३७ ई० तक) रहे। हैदराबाद सत्याग्रह के प्रथम सर्वाधिकारी ही आप ही थे। १९४४ में आपने ही सिंध की लीगी सरकार द्वारा सत्यार्थ प्रकाश पर लगाए प्रतिबन्ध को निरस्त बनाया। सतत परिश्रम बढ़ती आयु ने शरीर को रोग ग्रसित कर दिया और १५ अक्तूबर, १९४७ को इस महान कर्मयोगी ने बरेली में अन्तिम श्वास ली।

★

शताब्दी वर्ष में हर घर पर

ओ३म् ध्वज लहराएँ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शास्त्रार्थ महारथी
पं० रामचन्द्र देहलवी

रामनवमी का पावन दिन, सन १८८१ ई०। मालवा की सुप्रसिद्ध नगरी नीमच में मुंशी छोटेलाल और श्रीमती रामदेई के घर पर एक बालक ने जन्म लिया। अवसर के अनुकूल ही उन्हें रामचन्द्र नाम दे दिया गया। पिता थे तेज मिजाज़ और अंग्रेज अधिकारियों के उर्दू-फारसी शिक्षक। धार्मिक कट्टरता भी उनमें कम न थी। परिवार के पाँचवें बालक रामचन्द्र थे। इनमें से तीन काल के कराल गाल में समाहित हो चुके थे और सबसे बड़े श्री शिवकरण ही जीवित थे। अतः माता ने अनेकों मनौतियाँ मानी थीं रामचन्द्र के जीवन के लिए। उनके जन्म के बाद आपके दो भाई और भी हुए। अभी रामचन्द्र सात वर्ष के ही थे तो माता जी चल बसीं। पिता ने दूसरा विवाह रचा लिया तो सौतेली माता से भी दो बालक हुए।

बाल्यकाल से ही कुशाग्र बुद्धि और तीव्र स्मृति-शक्ति के धनी थे रामचन्द्र। अजमेर के डी० ए० वी० स्कूल से प्रथम श्रेणी में मिडिल में सफलता पाने पर भी पिताजी आगे पढ़ाने को इच्छुक न थे। रामचन्द्र पढ़ना चाहते थे। अतएव घर से भाग कर बड़े भाई के पास जा पहुँचे जो रेल कर्मचारी थे। बड़े भाई ने पढ़ाई की व्यवस्था की तो इन्दौर कालेज से भी प्रथम श्रेणी में ही मैट्रिक की परीक्षा में सफलता-प्राप्ति का गौरव मिला। किन्तु शिक्षा यहीं तक हो सकी। १८ वर्ष की अवस्था में ही दिल्ली निवासिनी कमला देवी जी से उनका विवाह सम्पन्न हो गया। पहले तो रामचन्द्र नीमच के एक विद्यालय में शिक्षक रहे किन्तु फिर दिल्ली आ गये और देहलवी हो गए। कुछ दिन यहाँ एक फर्म में नौकरी की किन्तु स्वाभिमानी हृदय गुलामी न सह पाया। अतएव श्वसुर महोदय के साथ ही दुकान पर बैठ कर स्वर्णाभूषण बनाने के कार्य में जुट गए। युवावस्था में ही धर्मपत्नी ने चिर विदाई ले ली। अनेक शुभचिन्तकों ने दूसरे विवाह की भी सलाह दी किन्तु कर्त्तव्य-पथ के उस कर्मठ यात्री ने अपने जीवन की भावी मंजिल निर्धारित कर ली। आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद भी धार्मिक साहित्य का अध्ययन अबाध रूप से जारी रहा।

उन दिनों दिल्ली के चान्दनी चौक-स्थित फव्वारे पर दो दिन मुसलमान और दो दिन ईसाई अपना मजहबी प्रचार करते थे। पण्डित जी भी वहाँ सुनने जाते। हिन्दू धर्म पर लगने वाले निराधार आरोपों से तिलमिलाते। एक दिन साहस किया और घोषणा कर दी कि सप्ताह में दो दिन वैदिक धर्म पर व्याख्यान हुआ करेंगे। पण्डित जी हर सप्ताह में दो दिन वहाँ जाते। आधा घण्टे तक भजन गाते और फिर होते थे आपके प्रवचन। ईसाईयों और मुसलमानों के आक्षेपों का आप तर्क-संगत और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मुँहतोड़ उत्तर देते। धीरे-धीरे ऐसी स्थिति आई कि विधर्मियों ने अपने प्रचार का सिलसिला बन्द कर दिया और फिर तो प्रति दिन ही पण्डित जी के भाषणों का सिलसिला चल निकला। लोग बढ़ने लगे थे अतः यह क्रम आज के गान्धी मैदान में शुरू कर दिया गया था। आपका यह कार्यक्रम निरन्तर १५ वर्ष तक अर्थात् १९१० से १९२५ तक चलता रहा। इस व्याख्यानमाला को इतने वर्षों तक चलाने वाले इस मनस्वी पुरुष ने इस अवधि में अन्य धर्मों के ग्रन्थों का भी मनोयोग सहित अध्ययन किया, एक हाफिज से कुरान पढ़ी तो बाइबिल का स्वयं अध्ययन किया। इतना ही नहीं अपितु बौद्ध और जैन ग्रन्थों का भी आपने बड़े परिश्रम से पारायण किया और यह परिश्रम रंग लाया तथा सारे भारत में ही शास्त्रार्थ महारथी पं० रामचन्द्र देहलवी के नाम की धूम मच गई। उनकी हाजिरजबावी भी अद्वितीय थी। उनकी एक और अनूठी विशेषता यह रही कि उन्होंने कभी भी कोई अशिष्ट शब्द शास्त्रार्थों के बीच कभी अपने मुख से न उच्चारा।

कुरान् के उनके विशुद्ध पाठ पर मौलवी भी चकित हो उठते थे और बड़े-बड़े मौलवी भी प्रायः अपने शिष्यों से यह कहने लगे थे कि "अगर तुमने कुरान की आयत को सही ढंग से पढ़ना और बोलना है तो देहलवी से सीखो।"

शास्त्रार्थ की इस प्रक्रिया के अतिरिक्त आपने हैदराबाद सत्याग्रह और पंजाब में कैरोशाही के समय हुए हिन्दी रक्षा आन्दोलन में भी सक्रिय योगदान किया।

वर्षों तक निरन्तर प्रचार यात्राएँ, घण्टों तक भाषण का सिलसिला। परिणामतः स्वास्थ्य गिरता गया। स्वर्गवास से लगभग ५ वर्ष पूर्व उन्होंने बाहर की यात्राएँ तो बन्द कर दीं। एक दिन रिक्शा दुर्घटना में रीढ़ की हड्डी पर चोट आई तो फिर बांयें हाथ का कम्पन भी शुरू हो गया। आप दिल्ली छोड़ कर हापुड़ रहने लगे। स्वास्थ्य बिगड़ता गया तो अक्तूबर १९६७ में पहले दीवान नर्सिंग होम और फिर इर्विन अस्पताल में आपका उपचार कराया गया। किन्तु सभी उपचारों के बावजूद ३ फरवरी १९६८ को उनका निधन हो गया। उस दिन आर्य समाज ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त को खोकर शोक-विह्वल हो उठा।

कर्मयोगी स्वामी स्वतंत्रानन्द

पौष पूर्णिमा संवत् १९३४ को लुधियाना के समीप मोही ग्राम के एक सिख परिवार में सूबेदार स० भगवान सिंह के घर में एक बालक ने जन्म लिया। नाम रखा गया केहर सिंह। जालन्धर के छावनी स्कूल में अभी उसने मिडिल तक ही शिक्षा पाई थी कि आपका विवाह हो गया। किन्तु पत्नी ने शीघ्र ही चिर विदाई ले ली। १५ वर्ष की बाल्यावस्था में ही उनका उदासी साधुओं के डेरे में आवागमन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आरम्भ हो गया था और यहाँ पं० विशनदास नामक एक विद्वान् के मन में वैराग्य भाव जाग उठा। परिणामतः घर द्वार छोड़ कर कलकत्ता, रंगून और मलय आदि का भ्रमण कर २३ वर्ष की आयु में फिरोजपुर जिले के पखखड़ नामक ग्राम में पहुँच कर आपने स्वामी पूर्णानन्द से संन्यास की दीक्षा लेकर प्राणपुरी नाम ग्रहण कर लिया। संस्कृत पढ़ने की भी इच्छा मन में जाग उठी थी अतएव अमृतसर के एक उदासी साधु पं० स्वरूपदास से पढ़ते रहे। बाद में हाथ में बाल्टी थाम कर तीर्थ यात्रा पर निकल पड़े तो बाल्टी वाले बाबा के नाम से विख्यात हो गए। फिर एक दिन साधु मण्डली का भी त्याग कर काशी प्रयाण कर दिया और वहाँ लगभग ६ वर्ष तक संस्कृत का अध्ययन करते रहे। तदुपरान्त यात्रा का सिलसिला पुनः प्रारम्भ हुआ तो बम्बई पहुँच कर वनखण्ड को आपने अपना निवास स्थल बना लिया। उन दिनों लोग उन्हें सिद्ध बाबा के नाम से पुकारने लगे थे। आपकी प्रवृत्ति उन दिनों लोगों से दूर रह कर एकान्त में स्वतंत्र रूप से रहने की थी। इसी कारण बाद में वे स्वामी स्वतंत्रानन्द के नाम से ही पुकारे जाने लगे।

पुनः आपने बम्बई से भी प्रस्थान कर दिया और सिंघ, जामनगर, द्वारिका, सोमनाथ, टंकारा, मध्य प्रदेश, मालवा, सीमाप्रान्त, सिंध और राजस्थान की यात्रा करते हुए पंजाब लौट आए। यहाँ उनकी पं० विशनदास से पुनः भेंट हुई तो उन्होंने आपको आर्य समाज में सम्मिलित होकर सेवा एवं वैदिक धर्म के प्रचार की प्रेरणा प्रदान की। आपने भटिण्डा के निकट रामामण्डी में ६ मास तक रह कर आर्य साहित्य का अध्ययन किया और समीपस्थ ग्रामों में प्रचार भी करते रहे। तदुपरान्त आपने लुधियाना को केन्द्र बनाया और वेदप्रचारिणी सभा तथा पाठशाला का कार्यभार सँभाला। यहीं आपकी आर्य जगत के सुप्रसिद्ध पत्रकार एवं नेता महाशय कष्ण जी से भेंट हुई और वे आपको लाहौर ले आए। उन्होंने आपको आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अन्तर्गत प्रचार का कार्य सौंप दिया।

१९०१ में आपने विदेश यात्रा का भी आरम्भ किया और कलकत्ता से प्रस्थान कर आप मलय, सिंगापुर, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, फिलिपाइन्स आदि होते हुए १९०४ में भारत वापस लौटे और १९१३ में मारिशस भी गए तथा ३ वर्ष तक वहाँ वैदिक धर्म का प्रचार प्रसार कर आप १९१७ में स्वदेश वापस आए। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अनुरोध पर १९२० में आप प्रचारार्थ बर्मा गए और १ वर्ष लगा कर लौटे और फिर ६ मास तक पूर्वी अफ्रीका में भी आपने वैदिक धर्म का नाद गुंजाया। १९२५ में आप वेद प्रचार विभाग के अधिष्ठाता और दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर के आचार्य भी नियुक्त हो गए। तदुपरांत १९२९ से १९४१ तक आप सार्वदेशिक सभा के कार्यकर्त्ता प्रधान व उपप्रधान भी रहे। हैदराबाद सत्याग्रह के केन्द्र संचालक का भार भी आपने कुशलता सहित निभाया और सत्याग्रह के सिलसिले में ऐसा प्रचण्ड अभियान देश भर में चलाया कि आर्य जनता ने आपको फील्ड मार्शल के पद से विभूषित कर दिया। उन्हीं के सुदृढ़ संचालन का यह परिणाम हुआ कि ६ मास में ही हैदराबाद राज्य के अधिकारी घबरा गए थे और आर्य समाज के समक्ष उन्हें नतमस्तक होना पड़ा था। १९३८ में आपने ही दयानन्द मठ की दीनानगर में स्थापना की थी। लोहारु राज्य में भी आपने आर्य समाज पर लगे प्रतिबन्ध दूर कराए। १९४९ में आप पुनः विदेश में वैदिक धर्म के प्रचारार्थ रवाना हुए और मारिशस व पूर्वी अफ्रीका में पुनः आर्य-समाज को संगठित किया। १९५० में आप भारत लौटे और १९५४ में बम्बई में आपका जीवन दीप बुझ गया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

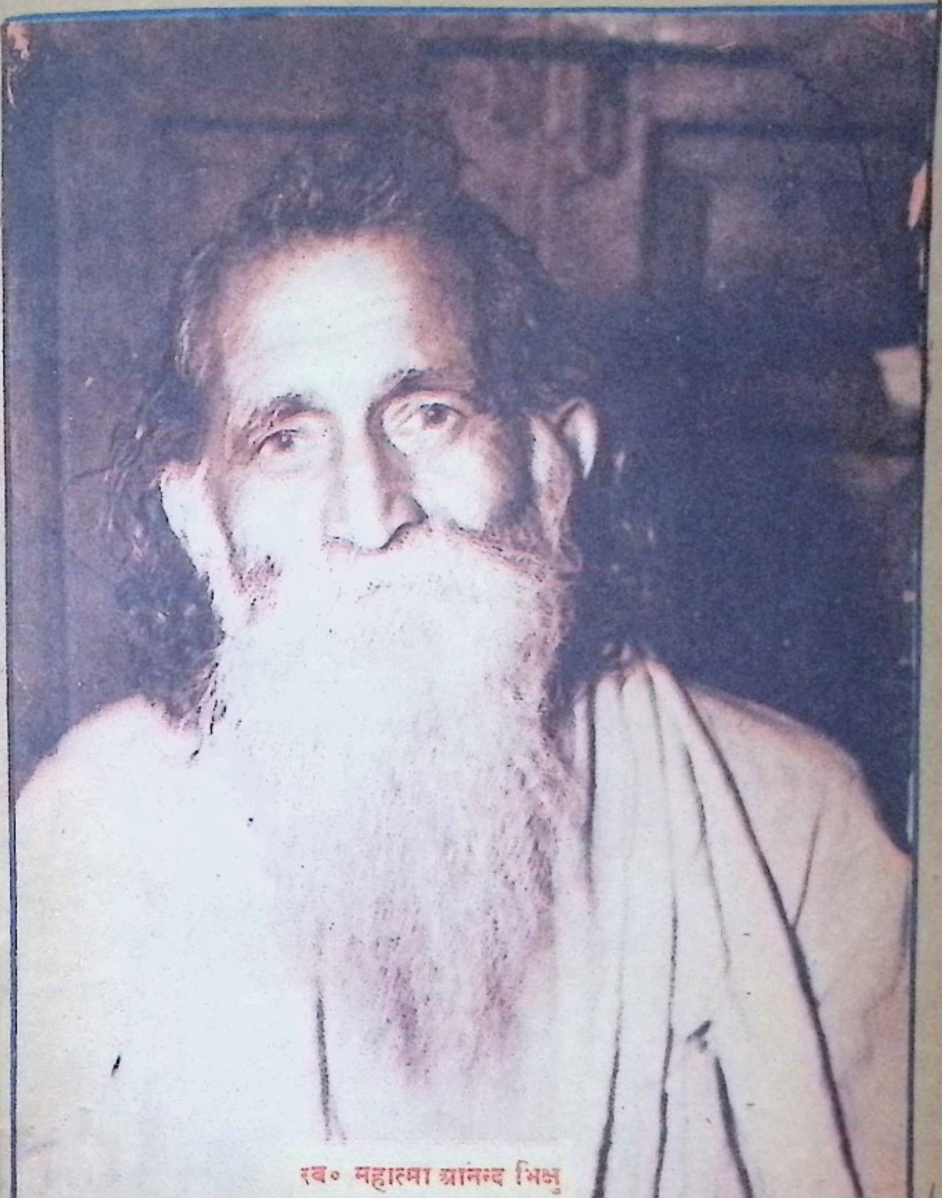

स्व० महात्मा आनन्द भिक्षु

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हुतात्मा
महाशय राजपाल

५ आषाढ़, संवत् १६४२। अमृतसर में एक सामान्य परिवार में जन्मे थे श्री राजपाल—जो आर्यसमाज के इतिहास में महाशय राजपाल के नाम से चिर-स्मरणीय रहेंगे। बालक राजपाल अभी बहुत छोटे ही थे कि पिता परिवार को निराश्रित छोड़कर कहीं चले गए। उन दिनों राजपाल विद्यालय में पढ़ते थे। कर्त्तव्य-परायण और परिश्रमी राजपाल इस विपरीत स्थिति से न घबराए और मिडिल की परीक्षा में सफलता प्राप्त कर उर्दू में किताबत कर परिवार पोषण का दायित्व निभाने लगे। प्रारम्भ से ही जहाँ विद्याध्ययन में आपकी गहन रुचि थी वहाँ आर्यसमाज के प्रति अडिग निष्ठा थी।

१६०६ ई० में आप महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) द्वारा संपादित सद्धर्म प्रचारक (उर्दू) के कार्यालय में लिपिक का कार्य करने लगे थे। महात्माजी का संपर्क आपके जीवन को नवीन दिशा दे रहा था और आपके स्वाभाविक गुण भी विकसित होते जा रहे थे। जब सद्धर्म प्रचारक उर्दू से हिन्दी में परिवर्तित कर हरिद्वार से प्रकाशित होने लगा तो महाशय राजपाल भी लाहौर चले गए और वहाँ आर्यसमाज के स्वनामधन्य पत्रकार महाशय कृष्ण जी के साप्ताहिक (उर्दू) प्रकाश के व्यवस्थापक नियुक्त हो गए। प्रारम्भ में आपको केवल २० रुपए मासिक ही वेतन मिलता था। किन्तु अपनी सत्यता, परिश्रम और सौम्यता के कारण आप महाशय जी के छोटे भाई और 'प्रकाश' के कर्णधारवत् ही हो गए। व्यवस्थापक तो थे ही आप उसके प्रमुख रिपोर्टर भी बना दिए गए और यदा-कदा आवश्यकता पड़ने पर तो आप पत्र का संपादन कार्य भी किया करते थे। वर्षों तक पंजाब की आर्य जनता की दृष्टि में 'प्रकाश' और महाशय राजपाल एक ही बात समझे जाते थे। प्रकाश के व्यवस्थापन के साथ ही साथ महाशय राजपाल ने पुस्तक-प्रकाशन कार्य भी आरम्भ कर दिया और धीरे-धीरे यह प्रकाशन पुस्तक भंडार का रूप धारण कर गया और उन्हें नाम दिया गया 'सरस्वती आश्रम' और आर्य पुस्तकालय। आप आर्य समाज के विद्वानों से लिखाकर मौलिक पुस्तकों का प्रकाशन किया करते थे।

उन्हीं दिनों '१६वीं सदी का महर्षि' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई थी जिसमें महर्षि दयानन्द के जीवन पर अनेक अभद्र और अनुचित आक्षेप किए गए थे। तदुपरांत मई १६२४ में महाशय राजपाल ने सरस्वती पुस्तकालय की ओर से उक्त पुस्तक के उत्तर में 'रंगीला रसूल' का प्रकाशन करा दिया। पहले तो सरकार ने इस पुस्तक पर कोई ध्यान नहीं दिया और न ही उसे बुरा समझा। किन्तु जब किसी मुसलमान

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बंधु ने यह पुस्तक महात्मा गांधी जी के पास भेजी तो उन्होंने सर्वप्रथम उसके विरुद्ध लिखा। उसके बाद तो 'रंगीला रसूल' के विरुद्ध एक अभियान ही छिड़ गया और पुस्तक जब्त कर ली गई। महाशय राजपाल पर पुस्तक प्रकाशन के अपराध में अभियोग चला जिसमें महाशय जी के हजारों रुपये लग गए। अभियोग की विशेषता यह थी कि अनेक मौलवियों की तुलना में महाशय राजपाल अकेले ही डटे रहे। महाशय राजपाल को अभियोग में पहले तो कैद हुई किन्तु हाईकोर्ट से साफ बरी हो गए।

राजपाल जी एक शांतिप्रिय सज्जन थे। हाई कोर्ट के निर्णय के बाद वे उस पुस्तक के कई संस्करण छाप सकते थे। किन्तु उन्होंने यह जानकर कि मुस्लिम बंधु इसके प्रकाशन से रुष्ट हैं उसका दूसरा संस्करण न छापने की घोषणा कर दी।

किन्तु मजहबी उन्माद में अंधे खुदाबख्श नामक एक व्यक्ति ने २६ सितम्बर, १९२७ को प्रातःकाल दुकान पर ही अचानक उन पर आक्रमण कर दिया और वे घायल होकर एक मास तक अस्पताल में पड़े रहे।

तदुपरान्त ६ अप्रैल, १९२९ को जब महाशय राजपाल अपनी दुकान पर बैठे हिसाब मिला रहे थे, इल्मुद्दीन नामक एक युवक वहाँ आया और तुरंत उन्हें छुरा भोंक दिया। इस प्रकार इस धर्मवीर की जीवन-लीला का अंत हो गया। एक बात और भी उल्लेखनीय है कि महाशय राजपाल ने उस पुस्तक के लेखक का नाम न तो न्यायालय में ही घोषित किया और न ही जीवन की अन्तिम घड़ी आ जाने पर ही। वस्तुतः सुप्रसिद्ध कवि वारिशशाह की ये पंक्तियाँ ही उस महाधन के संबंध में दोहराई जा सकती हैं—

वारिशशाह न भेद संदूक खुले।
भावे जान दा जंदरा टूट जाये।।

कर्त्तव्यशील श्री विद्यासागर

पौष संवत् १९७५ वि०। जिला जेहलम के ग्राम सुलोई में श्री मौलिक चन्द के यहाँ एक बालक ने जन्म लिया नामकरण हुआ विद्यासागर। पिता डाकघर में पोस्ट मास्टर थे और आर्य समाज के अनन्य विश्वासी भी। गुरुकुल जेहलम के निर्माण में भी उन्होंने प्रभावी भूमिका निभाई थी।

आर्यसमाजी पिता ने अपने कुलदीपक विद्यासागर को कमालिया स्थित गुरुकुल में विद्याध्ययन हेतु भेज दिया तदुपरांत संगीत प्रेमी विद्यासागर जालंधर चले गए और वहाँ संगीत में कार्यरत हो गए। पिता का स्थानान्तरण चूहा सदन शाह हो गया था। एक दिन किसी बात को लेकर पिता पुत्र में विवाद हुआ तो पुत्र ने गृह त्याग दिया।

श्री विद्यासागर की देहयष्टि नितांत ही सुदृढ़ थी कार्यक्षमता भी अनुकरणीय। इनके निर्भीक स्वभाव के कारण अनेक विधर्मी हृदय डाह कर उठे। और फिर एक दिन हाता नामक एक नारी ने अचानक ही उनकी छाती में खंजर सरीखा एक चाकू घोंप दिया। शरीर से रक्त प्रवाहित होता रहा, समय पर डाक्टरी चिकित्सा उपलब्ध न हो पाई और अन्ततः १९ अप्रैल, १९३६ ई० को नागरिक अधिकारों के लिए कार्यरत यह वीर आर्य युवक संसार के घरौंदे को त्याग कर अनन्त में विलीन हो गया। आर्यजाति की बलिदानी मालिका में एक पुष्प और गुंथ गया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हिन्दू धर्म रक्षक : श्री रामकृष्ण

तावसी ग्राम के एक कथित अस्पृश्य परिवार में एक महान् कर्मयोगी ने जन्म लिया जिन्हें आर्य जाति की बलिदान गाथा के अध्याय में रामकृष्ण जी के नाम से स्मरण किया जाता है। मृत्यु से लगभग दो सप्ताह पूर्व ही आपने यज्ञोपवीत धारण कर आर्यसमाज में प्रवेश किया था।

एक दिन ग्राम में धर्मान्ध पठानों की एक टोली ने सदर्प घोषणा की कि हम मन्दिर तोड़ते हैं, जो सूरमा हो वह घर से बाहर निकले और मन्दिर को टूटने से बचा ले।

इस चेतावनी को सुनकर बड़े-बड़े बलिष्ठ जनों ने भी घर से बाहर निकलने का साहस न संजोया किन्तु श्री रामकृष्ण का रक्त खौल उठा और वे हिन्दू मन्दिर की रक्षार्थ सिर पर कफन बाँध कर अपने घर से निहत्थे ही बाहर निकल आए। उन पर कई गोलियाँ दागी गईं वे घायल हो गए किन्तु डटे रहे और उन्होंने पठानों को भगाकर हिन्दू देवालय को टूटने से बचा लिया।

इस वीर ने धर्मोन्मादियों की चुनौती का तो सफल प्रतिकार कर दिया किन्तु घायल हो जाने के फलस्वरूप वे उस्मानाबाद के चिकित्सालय में प्रविष्ट करा दिए गए। वहाँ उपचार भी हुआ किन्तु बलिदानी श्री रामकृष्ण के जीवन की अन्तिम घड़ी आ पहुँची थी। अतएव चार दिन पश्चात् आपने सदा के लिए नेत्र मूंद लिए।

वीर रामकृष्ण ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम और योगीराज श्री कृष्ण द्वारा प्रदर्शित धर्म के मार्ग का निर्भीकता सहित अनुगमन करते हुए अपनी जीवन लीला समाप्त की। वे आत्मा की अजरता और अमरता के महान् वैदिक सिद्धांत के प्रति सच्ची निष्ठा रखते थे। अतएव उन्होंने जीवन की अन्तिम घड़ी तक भी टीस और वेदना को बड़ी ही शांति सहित झेला।

★

मेघ उद्धारक बलिदानी : पं० रामचन्द्र

१९ आषाढ़ संवत् १९५३! जम्मू राज्य के कठुआ जिले में स्थित तहसील हीरानगर में ला० खोजूशाह महाजन के यहाँ एक बालक ने जन्म लिया। माता-पिता ने उसे नाम दिया रामचन्द्र। प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा का क्रम चला और यह बालक मिडिल तक सदैव ही अपनी कक्षा मे प्रथम श्रेणी में सफलता पाता रहा। राज्य के कार्यालयों में कारंवाई डोगरी भाषा के स्थान पर उर्दू में होने लगी तो खजांची का पद पिता के स्थान पर पुत्र (रामचन्द्र) ने संभाल लिया।

बाल्यकाल से ही धार्मिक प्रवृत्ति वाले श्री रामचन्द्र ने आर्य समाज के सत्संग में धर्म-प्रचार की लगन लगा दी थी। वे खजांची के रूप में बसोहली स्थानान्तरित हो गए तो वहाँ भी दो वर्ष तक डट कर आर्यसमाज के प्रचार में लगे रहे। वहाँ से पुनः कठुआ लौटे तो वहाँ भी आपने अपनी यह टेक न छोड़ी। विरोधों के प्रबल प्रभंजन में भी वे हिन्दू समाज के बिछुड़े जनों को गले से लगाते रहे। तथाकथित अछूतों के प्रति उनका यह प्रेम ही उनके लिए आपदा ले आया और विरोध का ऐसा तूफान उठा कि आपका स्थानान्तरण १९१८ में साम्बा हो गया। १९२२ में वहाँ से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भी आप अखनूर स्थानान्तरित हो गए। वहाँ के लोगों में भी छूआछूत के भाव नितांत प्रबल थे। मेघ जाति तो अन्य जातियों के लिए घृणित ही बनी हुई थी। किन्तु वैदिक धर्म के मर्म को समझने वाले रामचन्द्र ने इस जाति के बालकों के लिए एक पाठशाला खोल दी। वे मेघों में शिक्षा और सुसंस्कारों के प्रति आसक्ति जगाते तो उनके दुख दर्द में भी हाथ बंटाते।

कतिपय कट्टरपंथी आपकी इन गतिविधियों से क्षुब्ध हो उठे। उन्होंने श्री रामचन्द्र के व्याख्यानों का विरोध किया तो अधिकारियों के भी कान भरे। जब और कोई पेश न चली तो हिन्दू धर्म के कतिपय ठेकेदारों ने १९२२ ई० के जुलाई मास में हिन्दू बिरादरी से आर्यसमाजियों का बहिष्कार भी करा दिया। विधि की विडम्बना की जिन 'अछूतों' को 'सछूत' बनाने के लिए आर्यसमाजी सक्रिय थे उन्हीं में से भंगियों ने भी उनके यहाँ सफाई करना छोड़ दिया। निरन्तर २४ दिन तक यह बहिष्कार चला। श्री रामचन्द्र उन दिनों यहाँ न थे। अतः कुछ आर्य समाजी कार्यकर्ता भी अधिकारियों के दबाव में आकर झुक गए और उन्होंने यह समझौता कर लिया कि हिन्दू-मुसलमानों की इस शिकायत को ध्यान में रखते हुए कि मेघ बालकों के नगर में पढ़ने से उन्हें भ्रष्ट होने का डर है, अतएव बस्ती से दो मील दूर पाठशाला खोली जाएगी।" जब खजांची जी (श्री रामचन्द्र) अखनूर लौटे तो उन्होंने इस समझौते को मानने से इनकार कर दिया। रामचन्द्रजी की निस्वार्थ सेवा से मेघ बंधु उन पर प्राण वारने लगे थे। श्री रामचन्द्र के प्रयास से १९२२ में में वेद मन्दिर का प्रवेश संस्कार समारोह सम्पन्न हुआ। अन्ततः पाठशाला खुल जाने से मेघों का उत्साह भी बढ़ा। एक सफलता दूसरी का मार्ग प्रशस्त कर देती है। अतएव श्री रामचन्द्र को आसपास के ग्रामों से भी भूमि के चयन और पाठशालाएँ खोलने के निमंत्रण मिलने लगे। किन्तु उन्हीं दिनों श्री रामचन्द्र के जम्मू स्थानान्तरण का आदेश आ गया। किंतु धुन के धनी श्री रामचन्द्र ने कार्य की पूर्ति हेतु चार मास का अवैतनिक अवकाश ले लिया। आपको अखनूर के समीप स्थित बटैहड़ा के मेघों का भी निमंत्रण मिला था। अतः आप ३१ दिसम्बर, १९२२ को कुछ आर्यसमाजी कार्यकर्ताओं और विद्यार्थियों सहित ओम् पताका संभाले वैदिक तराने गाते और वैदिक धर्म की जय की नाद गुंजाते बटैहड़ा जा पहुँचे। विरोधियों ने वहाँ उस दल का अपमान किया और पताका फाड़ दी तथा हवन-कुण्ड भी तोड़ दिया। रामचन्द्र जी इस विरोध के तूफान में भी अविचल रहे और उन्होंने जनवरी, १९२३ को वहाँ पाठशाला के आरम्भ करने की तिथि घोषित कर दी। उधर विरोधियों ने भी आपकी हत्या का षड्यंत्र रच लिया था। ४ जनवरी को जब श्री रामचन्द्र अनेक आर्य जनों के साथ बटैहड़ा पहुँचे तो कतिपय मुसलमान गूजरों के साथ १५० के लगभग राजपूतों ने आपके दल पर आक्रमण कर दिया। रामचन्द्र घायल हो गए और २० जनवरी, १९२३ को यह नरवीर धर्म की वेदी पर जीवन समर्पित कर अमरत्व प्राप्त कर गया।

★

ध्येयनिष्ठ बलिदानी : श्री शिवचन्द्र

३ मार्च, १९१६ ई०। दुवलागंडीपायगा नामक ग्राम में श्री अपवसप्पा के यहां पुत्र-रत्न ने जन्म लिया। इनका नामकरण किया गया श्री शिवचन्द्र। बाल्यकाल से ही मेधावी श्री शिवचन्द्र पठन-पाठन में दत्तचित्त रहने के साथ ही साथ वैदिक धर्म

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के प्रति भी जिज्ञासारत थे। १९३५ ई० में आपने मैट्रिक परीक्षा में प्रथम श्रेणी में सफलता प्राप्त की। अपनी इस गौरवपूर्ण सफलता के कारण आप सरकार द्वारा पुरस्कृत भी हुए और आपको १६५ रुपए की राशि प्रदान की गई। तदुपरांत आप इस्लामिया विद्यालय हुमनाबाद में अध्यापक के रूप में नियुक्त हो गए। यहीं आपने आर्य साहित्य का अध्ययन कर अपनी धार्मिक जिज्ञासा का शमन करने का प्रयास किया। इस अध्ययन ने आपके जीवन को नवीन दिशा प्रदान की और आप आर्य समाज के सभासद बन गए। आपकी कार्यकुशलता और ध्येयनिष्ठ जीवन से प्रेरित होकर आर्य प्रतिनिधि सभा के अधिकारियों ने आपको आर्योपदेशक बनने के लिए तैयार कर लिया।

आपने वैदिक धर्म का प्रचार और प्रसार ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया और हुमनाबाद, सदाशिव पेठ आदि स्थानों में आर्य समाजों और पाठ-शालाओं की स्थापना की। ये ऐसे क्षेत्र थे कि जहाँ अधिकांशतः मुस्लिम आबादी थी। वैदिक धर्म के प्रचार की आपकी लगन के कारण कई विद्यार्थियों के हृदय में जलन का ज्वार उठा और उन्होंने आपको अपने मार्ग का शूल समझना आरम्भ कर दिया।

ऐसे ही द्वेष के पुतले दुरभिसन्धि में संलग्न हो गए और अन्ततः ३ मार्च १९४२ ई० को होलिकोत्सव के अवसर पर जब आर्य समाज हुमनाबाद के तत्त्वावधान में एक चल समारोह निकल रहा था तो मजहबी उन्मादियों ने राज्य के मदान्ध पुलिस अधिकारियों के सहयोग से जलूस पर बन्दूकों से गोलियों की बौछार कर खूनी फाग खेला। इसी गोली-वर्षा के परिणामस्वरूप श्री शिवचन्द्र एवं सर्व श्री लक्ष्मणराव, रावजी रावइंगडे तथा नरसिंह राव आदि आर्यवीर गोलियों का निशाना बन गए। इन वीरों की हत्या कर शायद हत्यारों ने अपने कलेजे में ठंडक पैदा कर दी हो किन्तु उनका बलिदान आर्य समाज के इतिहास का अमर आख्यान अवश्य ही बन गया।

★

ध्येयनिष्ठ शहीद : पं० तुलसीराम

जिला गुरुदासपुर में डेरा बाबा नानक के समीप स्थित है एक ग्राम रूड़ा। यही पुंज वंशीय ब्राह्मण कुल में श्री हरिराम के कुलदीपक के रूप में जन्मे थे एक नरपुंगव पं० तुलसीराम। बचपन में ही जननी का वरद हस्त बालक के सिर से उठ गया तो १२ वर्ष की अल्पायु में ही पिता की सुखद छाया भी उस पर से उठ गयी। इन विपदाओं के अंधड़ों को सहन करते हुए भी पं० तुलसीराम ने दसवीं कक्षा में गुरुदासपुर के गवर्नमेन्ट हाई स्कूल से सफलता प्राप्त कर रुड़की में ओवरसीयर कक्षा में प्रवेश ले लिया। वहाँ अध्ययन करते हुए अभी आपको आठ मास ही हुए थे कि रोगग्रस्त होकर घर लौटने पर बाध्य हो गए। तदुपरांत आपने रेलवे में नौकरी प्राप्त कर ली। जिन दिनों आप सनावा में सहायक स्टेशन मास्टर थे उन्हीं दिनों पटना में लाजवंती देवी से उनका विवाह हो गया।

आप छात्रावस्था में आर्य समाज के संपर्क में आ चुके थे। अतः जहाँ कहीं भी जाते आर्य समाज का प्रचार और प्रसार भी आपका पावन कर्त्तव्य बना रहता।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation Chennai

१९०० ई० में जब आप सनावा में नियुक्त थे वहाँ के लोग समाज से अनभिज्ञ थे। अतः आपने सनावा नगर (जिला मुजफ्फरगढ़) तथा उसके आसपास के ग्रामों में आर्य समाज का प्रचार कार्य बड़ी लगन और निष्ठा के साथ किया। अनेक लोगों को उन्होंने मांस और मदिरा के व्यसनों से मुक्ति दिलाई तो मूर्तिपूजा से भी विरक्ति दिलाई।

१९०२ में आप फरीदकोट रेलवे स्टेशन पर स्टेशन मास्टर थे। इस रियासत में जैन मतालवम्बियों का प्राबल्य था। पं० तुलसीराम का शान्तिमय और निर्दोष धर्म-प्रचार भी कई जैन बन्धुओं को शूल-सा कसकने लगा। अतएव आवडा जाति के कतिपय उन्मादी जैन मतावलम्बियों ने राज्य के कई अधिकारियों से सांठगांठ कर पंडितजी की हत्या कराने का षड्यंत्र रचा।

पंडित जी ने गोपीराम नामक एक व्यक्ति की महिलाओं के डिब्बे के समक्ष शरारत करने के कारण भर्त्सना की थी। वह भी षड्यंत्रकारियों से जा मिला। एक रात पंडित जी आर्यसमाज फरीदकोट के वार्षिकोत्सव के उपलक्ष्य में सितार बजाते हुए नगर प्रचार में संलग्न थे तो अंधेरे में एक स्थान पर उन्हें किसी ने पूछा, "तुम कौन हो ?" उन्होंने निर्भीकता सहित उत्तर दिया, 'तुलसीराम।' बस फिर क्या था ? पूछने वाले ने उनके नेत्रों में लाल मिर्चें झोंक दीं और उन्हें छुरा घोंप दिया। बड़ी कठिनाई से घायल पंडित जी स्टेशन तक पहुँचे। वहाँ से उन्हें फीरोजपुर लाया गया। उनकी दुखी पत्नी लाजवन्ती देवी अनजान राहों में भटकती रहीं। पंडित जी अस्पताल पहुँचे तो वहाँ भी उनका उचित उपचार न हुआ। उस महाधन के अन्तिम शब्द थे—'बिना अपराध के मार दिया। अच्छा, अच्छा, धर्म के मार्ग पर मैंने प्राण दिए।'

बलिदान के समय उनकी आयु केवल ३२ वर्ष ही थी और उनकी हत्या भी ऐसे लोगों की डाह का परिणाम थी कि जिनसे उन्हें कोई द्वेष नहीं था। किन्तु जो सत्य के प्रचार से ही पीड़ा अनुभव करते थे उन्होंने शायद पंडित जी के प्राणान्त में अपनी पीड़ा का निवारण माना हो। किन्तु क्या सचमुच उनकी पीड़ा दूर हो गई होगी ?

★

आग्नेय जीवनव्रती : पं० गयाप्रसाद शुक्ल

उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले का स्वातंत्र्य आंदोलन में उल्लेखनीय योगदान रहा है। इसी जिले के बीघापुर ग्राम में १८८७ ई० में जन्मे थे आग्नेय जीवनव्रती पं० गयाप्रसाद शुक्ल। ग्राम में जन्मे गयाप्रसाद वहीं पले और बढ़े। बाल्यकाल से ही स्वदेश की परतंत्रता उन्हें शूलवत् चुभने लगी थी। अतएव किशोर अवस्था में ही बालक गयाप्रसाद ने एक थानेदार को परलोक पठा दिया। ऐसा उग्र पग उठाने के बाद उन्होंने स्वदेश में रहना असंभव समझा और विदेशों की राह ली। फ्रांस और जापान में क्रान्तिकारियों से आपका सम्बन्ध स्थापित हो गया था। देव दयानन्द और आर्यसमाज से आपका संपर्क बाल्यकाल में ही आ गया था।

शारीरिक दृष्टि से श्री शुक्ल अपार बलशाली थे तो आत्मबल से भी सुसंपन्न। जहाँ तक उनके शारीरिक बल का सम्बन्ध है श्री गयाप्रसाद शुक्ल के गुरु आचार्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नरदेव शास्त्री का कथन था कि जब वह राघव नाम से ज्वालापुर गुरु महाविद्यालय में थे तो एक एक पीपा दूध पी जाते थे।

शारीरिक और मानसिक दोनों ही दृष्टियों से सबल श्री शुक्ल की विदेशों में भारत माता के जिन वरेण्य सपूतों से निकट का संपर्क आया उनमें स्वातंत्र्य वीर सावरकर जैसे क्रान्तिकारियों के शिरोमणि नरपुंगव भी शामिल थे! स्वातंत्र्य महा-यज्ञ के लिए समिधा संग्रह का सुकार्य अर्थात् शस्त्रास्त्र संग्रह कर उन्हें भारत भेजने में भी आपने प्रमुख भूमिका निभाई।

विदेशों से क्रान्तिकार्य में प्रवीणता प्राप्त कर आप १९२४ ई० में भारत पधारे तो यहाँ भी क्रान्तिकारियों की गतिविधियों में आप सहयोगी थे और आर्य समाज की गतिविधियों में भी आपका योगदान रहा। १९३६ ई० में आपने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। विवाह भी किया तो एक क्रान्तिकारी पग ही उठाया अर्थात् उन दिनों में भी आपने जाति-पाति के बंधन तोड़कर सहधर्मिणी के रूप से राष्ट्र कार्य हेतु समर्पित विद्यावती शारदा को अपनी जीवन संगिनी बनाया। विवाह की संध्या को ही गिरफ्तारी भी आपके क्रान्तिकारी जीवन का एक प्रेरक पृष्ठ है। पति-पत्नी दोनों ही राष्ट्रकार्य और स्वदेश तथा स्वजाति के लिए सर्वस्व समर्पण हेतु संकल्प बद्ध थे। अतएव क्रान्तियज्ञ में श्री गयाप्रसाद का समिधा समर्पण जारी रहा। दमन और अत्याचार के प्रबल प्रभंजन में भी आपका शौर्य सुमेरु अविचल ही रहा। १९२९ ई० में भी एक क्रान्तिकारी षड्यंत्र में लिप्त होने के संदेह से आप लगातार ३६ घंटे तक पुलिस के द्वारा उत्पीड़ित हुए।

अनेक यातनाओं से शरीर विकारग्रस्त हो गया था। जिस हृष्ट-पुष्ट शरीर को देखकर बड़े-बड़े मल्ल भी चकित हो ज़ाते थे, जिसे देखकर देशभक्त हृदय पुलकित हो उठते थे, वही नरसिंह अब भीतर से टूटने लगा था। शरीर घुलने लगा था किन्तु वे स्वातंत्र्य आराधना में रत ही रहे। अन्ततः १९ अप्रैल, १९३२ को आपके महाप्रयाण की वेला आई और बीघापुर (उत्तर प्रदेश) में जन्मा यह नर केहरी डलहौजी में भौतिक शरीर को त्यागकर अनन्त में विलीन हो गया।

★

क्रांतिकारी आर्य देवी : विद्यावती शारदा

आर्यसमाज व महर्षि दयानन्द के सामाजिक सुधार, सत्य धर्म प्रचार और स्वातन्त्र्य साधना ही है, क्रान्ति त्रिवेणी की तीन धाराएँ। इस महान् संगठन के संपर्क में आए कई आर्य-जन समाज सुधार के क्षेत्र में लगे तो कई नरपुंगवों ने स्वदेश को विदेशी दासता से मुक्ति दिलाने-हेतु स्वातन्त्र्य साधना की। कई धर्म-प्रचार में रत हो गए। किन्तु देवी विद्यावती शारदा ने साथ-साथ ही इस त्रिवेणी की शीतल धारा में अवगाहन कर अपने जीवन को पुनीत बनाया।

देवी विद्यावती शारदा का जन्म सन् १९०१ ई० में सहारनपुर जिले के टोपरी नामक ग्राम के प्रमुख जमींदार चौ० न्यामतसिंह के यहाँ हुआ था। आपकी माता थीं आनन्दी देवी। माता-पिता दोनों ही महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के निष्ठावान अनुयायी थे। चौ० न्यामतसिंह ने अपने ग्राम में कई शास्त्रार्थों का भी आयोजन कर वैदिक धर्म के प्रचार कार्य में योग दिया था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऐसे पारिवारिक वायुमंडल में पली और पढ़ी विद्यावती जी की शिक्षा-दीक्षा शारदा निकेतन ज्वालापुर में हुई थी। वे दिन ऐसे थे कि जब कन्याओं की शिक्षा एक असाधारण बात थी। किन्तु महर्षि दयानन्द के अनुयायियों के परिवार में जन्मी विद्यावती जी छात्रावस्था में ही स्वजाति और स्वदेश के समक्ष विद्यमान समस्याओं से अवगत होकर स्वकर्त्तव्य का निश्चय कर चुकी थीं। अतः गहन चिन्तन मनन के उपरांत वे राजनीतिक कार्य क्षेत्र में उतर पड़ीं। कर्मठता और धारा प्रवाह भाषण की क्षमता ने आपको शीघ्र ही राजनीतिक क्षेत्र में महत्व प्रदान करा दिया और आप १९२१ में जिला महिला कांग्रेस की महासचिव भी रहीं।

आपका गृहस्थ-जीवन में प्रवेश भी एक क्रान्तिकारी पग ही था, क्योंकि आपने उस समय के प्रमुख क्रान्तिकारी पंडित गयाप्रसाद शुक्ल को अपने जीवन-संगी के रूप में जाति-पाँति के बंधनों को तोड़ कर वरण किया। समान विचारों का जीवन-संगी मिल जाने के कारण विवाह के उपरांत भी आपका सामाजिक और राजनीतिक गति-विधियों में योगदान जारी रहा। किन्तु पति-पत्नी का यह संग बहुत समय तक न निभ पाया क्योंकि १९३२ में ब्रिटिश अत्याचारों का शिकार बन कर शुक्लजी ने अपनी नश्वर काया त्याग दी।

इस वज्रपात के उपरांत विद्यावतीजी के जीवन ने एक नवीन दिशा ले ली और वे नारी-शिक्षा कार्य में लग गईं। १९३५ में उन्होंने नाहन (हिमांचल प्रदेश) में शारदा निकेतन की स्थापना की तो १९३६ ई० में देश के सुप्रसिद्ध महिला शिक्षा संस्थान अर्थात् कन्या महाविद्यालय बड़ौदा में प्राध्यापिका नियुक्त हो गईं। किन्तु आपके मन में अपने दिवंगत पतिदेव श्री गयाप्रसाद शुक्ल की जन्मस्थली बीघापुर (उन्नाव) में रहकर जनसेवा का विचार प्रबल हो उठा था। अतएव आपने बड़ौदा से विदाई ली और बीघापुर पहुँच कर कन्याओं को शिक्षा प्रदान करने के लिए विद्यालयों की स्थापना आदि प्रारम्भ कर दी। शीघ्र ही आपको जिले के सामाजिक कार्यकर्ताओं में प्रमुख स्थान प्राप्त हो गया और १९३७ ई० में तो आपकी उन्नाव जिले में ऑनरेरी मजिस्ट्रेट के रूप में नियुक्ति हो गई। किन्तु १९४० ई० में ही आपको मातृशक्ति सदन के संचालनार्थ कनखल आना पड़ा। उन सब गतिविधियों के साथ-ही-साथ आप नारी जाति में स्वातन्त्र्य संघर्ष हेतु नवजागरण का भी शंखनाद करती रहीं। आपकी ख्याति फैलती जा रही थी अतः १९४२ ई० के स्वातंत्र्य-संग्राम के महत्वपूर्ण वर्ष में ही आपको अलीगढ़ में प्रदेश कांग्रेस महिला सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए आमंत्रित किया गया।

स्वतंत्रता-संग्राम में आपने स्वयं तो कारा यातनाएँ सही हीं। साथ ही अपने एकमात्र पुत्र को भी गुरुकुल शिक्षा की समाप्ति के उपरांत सार्वजनिक रूप से दीक्षांत के अवसर पर यह व्रत दिलाया कि जीवन में कोई भी कार्य धनोपार्जन के लिए न करते हुए सारा जीवन देश और धर्म हेतु समर्पित करना।

१९४४-४५ में यह महान् विदुषी देवी पंजाब में आर्य समाज की महोपदेशिका रहीं और ८ अगस्त, १९४९ ई० को स्वतंत्रता की कामना को हृदय में लिए इस देवी ने महाप्रयाण कर दिया। दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५, उन्हीं के सपनों का मूर्त रूप एवं प्रतिदान है।

★

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बलिदानी विधिज्ञ : ला० लोरेन्दाराय

सीमा प्रान्त की सुप्रसिद्ध नगरी है बन्नू। अब तो यह क्षेत्र भारत का अंग नहीं रहा, किन्तु कभी था। इसी नगर में लाला आयाराम के यहाँ १८८६ ई० में एक मेधावी बालक ने जन्म लिया। बालक को नाम दिया गया लोरेन्दाराय। मेधावी बालक पठन-पाठन में था प्रवीण। अतः एम० ए० एल० एल० बी० की उपाधि धारण कर लोरेन्दाराय अपने क्षेत्र के एक सुप्रसिद्ध विधिज्ञ (वकील) हो गए। आर्य समाज की विचार धारा ने सेवा और त्याग के गुणों से इस महामानव का जीवन भंडार भर दिया था। वह सदैव ही निर्धनों की सेवा में तत्पर रहते थे। अतएव अनेक दुष्ट प्रकृति वाले व्यक्ति उनके स्वाभाविक रूप से ही शत्रु बन गए। उनके मन में डाह की ऐसी अग्नि प्रज्वलित हुई कि उन्होंने इस निर्धन वत्सल के प्राण लेने की ही ठान ली।

षड्यन्त्रों के तान-वितान तनते गए और एक दिन जब ला० लोरेन्दाराय कचहरी जा रहे थे तो उनकी हत्या का प्रयास किया गया। किन्तु वे सकुशल बच गए। इस असफलता से शत्रुजन और भी अधिक दग्ध हो उठे और एक रात्रि उन्हें किसी ने आवाज दी। जब वे अपने मकान से नीचे उतरे तो सहसा ही धाँय-धाँय का स्वर गूँजा और लाला जी घायल हो गए। हत्यारा भाग निकलने में सफल रहा। घायल लाला जी को उपचारार्थ रावलपिंडी ले जाने की व्यवस्था की गई। किन्तु मार्ग में ही उनका देहांत हो गया। इस महान् धर्मानुरागी ने अपनी जीवन लीला का समापन ६ नवम्बर, १९६४ को किया था।

★

धुन के धनी : धुन्नासिंह

सन् १८८१ ई०। पंजाब के सुप्रसिद्ध जिले लुधियाना के लताला ग्राम में श्री खम्मन सिंह के यहाँ देवी भागवदेवी की कोख से एक बालक ने जन्म लिया। उसे नाम दिया गया धुन्ना सिंह। बाल-विवाह उन दिनों की सामान्य प्रक्रिया थी। अतएव धुन्ना सिंह का विवाह ९ वर्ष की अल्पायु में ही कर दिया गया। सम्पन्न परिवार में जन्मे श्री धुन्ना सिंह को पं० लेखराम आर्यपथिक के ग्रन्थों के परायण ने सर्वथा नवीन दृष्टि प्रदान कर दी। अतएव आपने आर्यसमाज की सदस्यता ग्रहण कर ली। सत्य धर्म के प्रचार में तल्लीन धुन्ना सिंह की धुन से कई मदान्ध अकाली बंधु डाह कर उठे। ग्राम के इन मजहबी उन्मादियों ने घोघड़ नामक एक मुसलमान को भी धुन्ना सिंह के विरुद्ध अपना सहयोगी बना लिया। मजहबी उन्माद विवेक को हर लेता है। जलन की अग्नि सत् विचारों को अंगार लगा देती है। ऐसा ही हुआ और ११ मई, १९६९ को जब श्री धुन्ना सिंह एक दिन अपनी दुकान खोल ही रहे थे कि उन पर अनेक लोग एक साथ टूट पड़े। लाठियों और डंडों के प्रबल प्रहारों से यह ध्येय-निष्ठ आर्यजन घायल होकर गिर गया और अन्ततः इसने हँसते-हँसते जामे शहादत का पान कर लिया।

अपने क्षेत्र के ग्राम-ग्राम में घूम कर इस आर्य धर्म विश्वासी ने अंधविश्वासियों के हाथों मौत का वरण किया और यह अपने ऊपर अमर बलिदान से यह बता गया कि आत्मा की अमरता के विश्वासी को मृत्यु का भय कदापि ध्येय पथ से विचलित नहीं कर पाता।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

धर्मनिष्ठ धर्मप्रकाश नागप्पा

शक संवत् १८३९। कल्याण ग्राम में श्री साय बफाजी के यहाँ पुत्र रत्न ने जन्म लिया। उसे नाम दिया गया धर्मप्रकाश। कल्याणी ग्राम कभी चालुक्य वंशी नरेशों की राजधानी रह चुकी थी। उन दिनों भी इस स्थान पर मुस्लिमों का ही प्राबल्य था। अतएव हिन्दू जनता को अनेक प्रकार से दमन और उत्पीड़न तथा कष्ट सहन करने पड़ते थे। इन कष्टों और हिन्दू जनता की दयनीय स्थिति को देखकर श्री धर्मप्रकाश के मन में अनेक बार क्रोध उत्पन्न होता था। उन्होंने हिन्दू जनता के कष्ट निवारण का एक ही मार्ग देखा और वह था हिन्दू नवयुवकों का प्रबल संगठन। अतएव आप ने हिन्दू युवकों को संगठित कर उन्हें लाठी, भाला तथा तलवार आदि के चलाने का प्रशिक्षण देना आरम्भ कर दिया।

निर्बल हिन्दुओं को संगठित करने का श्री धर्मप्रकाश का यह प्रयास हिन्दुओं को अपना क्रीतदास मानकर व्यवहार करने वाले कतिपय मजहब के उन्मादी मुसलमान से सहन न हो पा रहा था। अतएव स्थानीय खाकसार पार्टी के कुछ धर्मोन्मादियों ने श्री धर्मप्रकाश के प्राण लेने की ठान ली।

उन्होंने धर्मप्रकाश जी की हत्या के कई षड्यन्त्र रचे और अन्ततः २७ जून, १९३८ ई० को रात्रि में आठ बजे उन्होंने अपनी दुरभिसन्धि पूर्ण कर ली। खाकसारों के एक दल ने उन्हें गली में अकेले ही घेर लिया। वे बर्छों, तलवारों और भालों से उन पर टूट पड़े और नितांत क्रूरता सहित इस धर्मवीर की हत्या कर अपने हृदय की आग बुझा ली।

बाद में कुछ लोग बन्दी भी बनाए गए। अभियोग की तैयारी और न्यायालय में सुनवाई का क्रम भी पूर्ण किया गया। किन्तु सभी अभियुक्तों को न्यायालय ने निर्दोष निरूपित कर रिहा कर दिया।

वीर धर्मप्रकाश की धर्म हेतु यह बलिदान आर्य समाज के बलिदानी इतिहास की अमरगाथा बना रहेगा।

★

अमर बलिदानी : वेदप्रकाश दासप्पा

श्री शिव बासप्पा के सुपुत्र थे श्री वेदप्रकाश। आपकी वन्दनीया माताजी थी श्रीमती रेवती बाई। श्री वेदप्रकाश की शिक्षा का सिलसिला सातवीं कक्षा तक ही चला। गुंजोरी पायगा में जन्मे श्री वेदप्रकाश को प्रारम्भ से ही धार्मिक कार्यों में रुचि थी। इसी रुचि ने आपको आर्यसमाज के सम्पर्क में आने की प्रेरणा प्रदान की और शनैः-शनैः आप महर्षि दयानन्द के महान् भक्त बन गए। हिन्दू जाति को सत्य पथ दर्शाने के कार्य में आपकी लगन के कारण अनेक मदान्ध मुस्लिम जनों का हृदय आपके प्रति रागद्वेष से भर उठा। इन लोगों ने श्री वेदप्रकाश पर अनेक बार कायरतापूर्ण आक्रमण करके भी अपने मन की साध पूर्ण करने का असफल प्रयास किया। किन्तु इन आक्रमणों से श्री वेदप्रकाश हतोत्साहित न हुए अपितु और भी अधिक दृढ़ संकल्प के साथ वैदिक धर्म के प्रचार में प्राणपण सहित जुट गए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ज्यों-ज्यों श्री वेदप्रकाश द्वारा वैदिक ज्ञान का पावन प्रकाश जन-जन में प्रसारित करने की कार्य गति पा रहा था त्यों-त्यों वैदिक धर्म विद्वेषियों का क्रोध भी बढ़ता ही जा रहा था। अतएव उन्होंने श्री वेदप्रकाश का जीवन लेने की ही ठान ली। एक दिन लगभग १०० ऐसे ही धर्मोन्मादियों ने आपको अकेला पाकर घेर लिया। उन्होंने श्री वेदप्रकाश से कहा कि "तुम मुसलमान बन जाओ तो तुम्हारे प्राण बच सकते हैं।" किन्तु वीरव्रतधारी वैदिक धर्म विश्वासी ने बड़ी दृढ़ता सहित उत्तर दिया "मुसलमान बनने की अपेक्षा तो मैं मृत्यु का वरण करना ही श्रेयस्कर समझता हूँ।"

यह वाक्य सुनते ही मजहब के अन्धे दीवाने क्रोध से दग्ध हो उठे और उन्होंने नितांत क्रूरता सहित इस वीर पर तलवारों से प्रहार किए। परिणामतः वेदप्रकाश जी की हत्या हो गई। वेदप्रकाश नहीं रहे किन्तु वेद के पावन प्रकाश हेतु सर्वस्व समर्पण की राह भी आने वाली पीढ़ियों को दिखा गए।

★

अमर हुतात्मा खंडेराव गणपतराव जगताप

१५ मार्च, १८८६ ई०। गुजरात के जिला सूरत स्थित सुप्रसिद्ध ग्राम बारदौली में खंडेराव का जन्म श्री गणपतराव जगताप के कुलदीपक के रूप में हुआ। पिता कट्टर शैव थे। बालक पर बाल्यकाल से ही धार्मिकता के संस्कार पारिवारिक वायुमंडल के परिणामस्वरूप पड़ चुके थे। किन्तु धर्म के मर्म को समझने की जिज्ञासा भी आप में थी। अतएव आप आर्य समाज के सम्पर्क में आकर सत्य वैदिक धर्म के पावन प्रकाश में जीवन की भावी दिशा खोजने में सफल हो गए।

१९१४ ई० में आपने आर्य समाज का सभासदत्व ग्रहण कर लिया और पूर्ण मनोयोग सहित वैदिक धर्म के प्रचार कार्य में जुट गए। आपने स्थानीय आर्यसमाज के पुस्तकाध्यक्ष का भार भी बड़ी कुशलता सहित निर्वाह किया।

स्वदेश में स्थितियाँ नया मोड़ ले रही थीं और वैदिक धर्म तथा हिन्दुत्व को मिल रही चुनौतियों से अनेक सजग आर्यजन हिन्दू राष्ट्रीयता के आंदोलन में सक्रिय योगदान देने लगे थे। अतएव श्री खंडेराव ने भी १९२६ में हिन्दू महासभा की सदस्यता ग्रहण कर ली। हिन्दू संगठन और वैदिक धर्म का प्रचार तथा हिन्दू हित रक्षण ही आपका जीवन ध्येय बन गया।

एक हिन्दू वीर की जमानत पर रिहाई कराने के लिए हिन्दुत्वनिष्ठ श्री खंडेराव प्राणप्रण सहित जुट गए थे। अतएव कई जनूनी मुसलमानों की आँखों में आप खटकने लगे। ऐसे ही उन्मादियों में से एक इनाम खाँ नूर खाँ नामक व्यक्ति ने एक दिन श्री खंडेराव पर कायरों के समान छिप कर प्रहार कर दिया। परिणामस्वरूप ६ मार्च १९६० को श्री खंडेराव ने अपना जीवन हिन्दू जाति के हित वार दिया।

★

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हुतात्मा श्री मेघराज

इन्दौर के होलकर राज्य के अन्तर्गत ही कभी नारायणगढ़ भी था। अब यह नगर मध्य प्रदेश के मंदसौर जिले के अन्तर्गत है। इसी नगर में संवत् १९३९ में जन्मे थे श्री मेघराज। आपको बाल्यकाल से ही वैदिक धर्म और हिन्दू जाति की सेवा की लगन लगी थी। अतएव आपने हिन्दू समाज के अभिन्न तथाकथित अस्पृश्यों को कुओं, मन्दिरों आदि स्थलों में प्रवेश का अधिकार दिलाने के लिए संघर्ष आरम्भ कर दिया था। आपकी यह गतिविधियाँ कतिपय कट्टर पंथी व्यक्तियों के लिए असह्य हो उठीं। ऐसे तत्त्वों की दृष्टि में यह धर्मवीर 'धर्म का शत्रु' समझा जाने लगा था।

मानसिक कूपमंडकता से ग्रस्त और धर्म के वास्तविक तत्त्वों से अनभिज्ञ कतिपय 'धर्मभीरुओं' ने इस हिन्दुत्वाभिमानी को अपने मार्ग में काँटा समझकर इसे अपने पथ से हटाने की दुरभिसन्धि रची। वे घात में लगे रहे कि कोई अवसर मिलते ही श्री मेघराज के रक्त से होली खेलकर अपनी उन्मादी प्यास बुझा लें।

अन्तत: एक दिन ऐसे लोगों को अवसर प्राप्त हो ही गया। दिन था राम-नवमी का पावन पर्व। श्री मेघराज को सात सशस्त्र व्यक्तियों ने घेर लिया। इतिहास ने मानो स्वयं को दोहरा दिया था। क्योंकि सात कौरव नायकों के बीच घिर गया था इस युग का धर्मवीर अभिमन्यु। उन्होंने श्री मेघराज के प्राण ले लिये। अपनों द्वारा ही लिया गया यह बलिदान भी आर्य जाति के इतिहास का एक चिरस्मरणीय आख्यान बन गया।

★

याद कर लो !

गड़ गए जो नींव में, उन पत्थरों को
याद कर लो !
जो नहीं देते दिखायी !
मुक्ति का मंदिर खड़ा है,
जो कि रत्नों से जड़ा है,
आज जिस के आँगनों में,
लग रहा मेला बड़ा है।
जो मिटे, इसको बनाते, उन करों को
याद कर लो।
जो नहीं देते दिखायी !

—हरिकृष्ण प्रेमी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हिन्दी सत्याग्रह के वीर बलिदानी आर्यजन

१९५७ भारतीय इतिहास की एक उल्लेखनीय तिथि है। तीन शताब्दियों का काल-खंड व्यतीत हो गया है और इनमें से प्रत्येक में ही सन् सत्तावन कोई न कोई उल्लेखनीय पृष्ठ भारतीय इतिहास के अध्यायों में जोड़ गया। सन् १७५७ ई० में प्लासी की रणभूमि में भारतीय इतिहास का एक निर्णायक युद्ध लड़ा गया था तो सन् १८५७ में महर्षि दयानन्द एवं उनके पूज्य गुरुदेव स्वामी विरजानन्द की प्रेरणा से भारतीय स्वातन्त्र्य हेतु अनेक जवाँमर्दों ने स्वातन्त्र्य लक्ष्मी का आह्वान किया था उन्होंने स्वतंत्रता के इस महायज्ञ में अपनी समिधाएं समर्पित कर उस तथ्य को पुनः दोहराया था कि आर्यजन दासता के पाश को काटने के लिए सतत संघर्षरत रहे हैं और उसकी रक्षार्थ अपने जीवन प्रसून समर्पित करने में वे कभी भी संकोच नहीं बरतते। १९५७ का जब आरंभ हुआ तो भारतीय जनमानस में यह स्वर पुनः उभर उठा था कि सन् सत्तावन खाली नहीं जाएगा और हुआ भी यही। इस वर्ष के प्रथम चरण में ही अनेक वैदिक धर्माभिमानियों और हिन्दुत्वनिष्ठों तथा महर्षि दयानन्द द्वारा प्रेरित स्वतंत्रता की भावना से प्रेरित होकर गोवा की स्वतंत्रता हेतु निःशस्त्र प्रतिकार चलाना तो पंचनद की पावन धारा में भी आर्य भाषा (हिन्दी) की रक्षार्थ हुए सत्याग्रह में आर्यसमाज प्रथम पंक्ति में खड़ा ही नहीं हुआ अपितु उसने ही इसका नियन्त्रण सूत्र संभाला।

जिस समय पंजाब की जनता पर बलात् एक भाषा थोपने का प्रयास किया तो स्वामी आत्मानन्द जी की अध्यक्षता में हिन्दी रक्षा समिति का गठन किया और सात माँगों को लेकर हिन्दी सत्याग्रह आंदोलन आरम्भ कर दिया गया। इनमें से प्रमुखतम माँग थी कि किसी भी विशेष स्तर पर गुरुमुखी और हिन्दी में से किसी एक भाषा का द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ाया जाना अनिवार्य नहीं होना चाहिए और शासन के प्रत्येक स्तर पर अंग्रेजी भाषा का स्थान हिन्दी को प्रदान किया जाना चाहिए।

सारी वैधानिक कार्रवाइयों के उपरांत भी जब सरकार ने हिन्दी रक्षा समिति की मांगों पर ध्यान न दिया तो समिति के सर्वाधिकारी स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने अपने ५ साथियों के साथ ३० मई ५७ को सद्भावना यात्रा आरम्भ की और चंडीगढ़ पहुँच कर उस समय के मुख्यमंत्री स० प्रतापसिंह कैरों के समक्ष अपनी सात माँगें प्रस्तुत कीं। यही था संघर्ष का आरम्भ तदुपरांत घटना क्रम चलता रहा और अन्ततः १० जून, १९५७ ई० को स्वामी आत्मानन्द जी ने सत्याग्रह की घोषणा कर दी।

सत्याग्रह छिड़ा तो स्वामी रामेश्वरानन्द, आचार्य भगवानदेव जी (स्वामी ओमानन्द जी) तथा श्री जगदेव सिंह सिद्धान्ती आदि अनेक आर्य महापुरुष बन्दी बनाये गए।

रोहतक और करनाल आदि इस सत्याग्रह के केन्द्र बने और ३० हजार से अधिक हिन्दी प्रेमियों ने सत्याग्रह किया तो १० हजार से भी अधिक बंदी बनाए गए। रोहतक जिले के कृषकों पर तो लगभग दो लाख रुपया जुर्माना भी किया गया। दमनचक्र अपनी पूर्ण पराकाष्ठा पर पहुँचा। 'वीर अर्जुन' और 'प्रताप' सरीखे आर्य समाज समर्थक समाचारपत्रों का गला घोंटने का प्रयास हुआ तो कई महर्षि भक्त जन-नेताओं को कांग्रेस से भी हटना पड़ा। इनमें प्रो० शेर सिंह आदि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
प्रमुख थे। इसी आंदोलन के दौरान कई आर्यवीर शहीद भी हुए। उनकी संक्षिप्त गाथा यहां प्रस्तुत है—

अमर हुतात्मा वीर सुमेर सिंह

हिन्दी रक्षार्थ जो सत्याग्रही बंदी बनाए गए थे उन्हीं में से एक थे आर्यवीर सुमेर सिंह। २५ अगस्त ५७ को फिरोजपुर जेल में भारी लाठी चार्ज हुआ। उसी में वीरवर सुमेर सिंह जी भी निर्मम लाठी प्रहार के कारण शहीद हो गए। उन्होंने हरियाणा के एक ग्राम में जन्म लिया था और आर्यसमाज के संपर्क में आकर स्वभाषा, स्वधर्म तथा स्वसंस्कृति के प्रति उनके हृदय में अडिग निष्ठा का सर्जन हुआ था।

इस कारागार में हुए अत्याचार के सम्बन्ध में जस्टिस कपूर ने अपने प्रतिवेदन में जो कुछ लिखा था उसका तात्पर्य यही है कि 'न भूतों न भविष्यति।

इस निर्ममता के फलस्वरूप जहाँ वीरवर सुमेर सिंह ने हँसते-हँसते जामे शहादत का पान किया वहाँ कई सत्याग्रही बेकार तथा अपंग भी हो गए थे।

बलिदानी वीर प्रो० किशोरीलाल

हिन्दी की रक्षार्थ पंजाब सरकार की हठधर्मी के विरुद्ध हुए सत्याग्रह में जिन नवयुवकों ने अपना बलिदान किया उन्हीं में से एक थे प्रो० किशोरीलाल भी। आप २ अगस्त, १९५७ को वाराणसी के आर्य नेता श्रीरामजी प्रसाद गुप्त के जत्थे में एक सत्याग्रही के रूप में सम्मिलित हुए थे। पंजाब के कारागार में यम यातनाएँ भुगतने के उपरांत २० दिसम्बर, १९५७ को अम्बाला केन्द्रीय कारागार से आप मुक्त हुए। जिस समय आप रिहा हुए तो आप अचेत थे। उसी अवस्था में खानखाना पहुँचे। २६ दिसम्बर को यह ध्येयनिष्ठ आर्यवीर लुधियाना अस्पताल में दाखिल कराया गया और २ जनवरी १९५८ को इसी अस्पताल में आपका निधन हुआ।

प्रो० किशोरीलाल जी वाराणसी के इंजीनियरिंग कालेज में शिक्षक थे। आपने सत्याग्रही जत्थे में सम्मिलित होने से १५ दिन पूर्व ही १५ जुलाई, १९५७ को नौकरी को ठोकर मारते हुए आपने पद से त्यागपत्र दे दिया था। कालेज की ओर से कारागार में ही उन्हें नोटिस प्राप्त हुआ कि या तो अपने स्थान पर आकर कार्य करें अन्यथा चार मास का वेतन उनके प्राविडेन्ट फन्ड में से काट लिया जाएगा। किन्तु इस साहसी आर्यवीर ने उत्तर दिया "मैं नौकरी नहीं करूँगा जो भी होना हो, हो।"

आपने २३ अगस्त को चंडीगढ में सत्याग्रह किया था और २४ अगस्त से १९ दिसम्बर तक आपने अम्बाला केन्द्रीय कारागार में कारावास भोगा। कारागार से जब आपको मुक्त किया गया तो आप नितांत दुर्बल हो गए थे।

इस आर्यवीर की आयु केवल २५ वर्ष की ही थी। उसने अपने अमर बलिदान से यह बता दिया था कि महर्षि दयानन्द के सच्चे अनुयायी ध्येय देव की अर्चना हेतु हँसते-हँसते अपना जीवन समर्पित करने को तत्पर रहते हैं। क्योंकि अपने सिद्धांतों के लिए प्राण समर्पण को भी वे अपनी कर्त्तव्य की पूर्त्ति का ही एक अंगमात्र मानते हैं। वीर किशोरीलाल का बलिदान निष्ठावान आर्ययुवकों को सदा प्रेरणा प्रदान करता रहेगा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ट्रेन दुर्घटना में बलि हुए सात आर्य वीर

२८ दिसम्बर, १९५७ को हिन्दी रक्षा आंदोलन में कारावास पा रहे, जिन आर्यवीरों की रिहाई का आदेश मिला था वे भी किराया प्राप्त न हो पाने के कारण १ जनवरी, १९५८ को ही अम्बाला कारागार में अपने-अपने घरों को प्रस्थान कर गए थे। ऐसे ही सात सत्याग्रही अम्बाला छावनी के समीप हुई एक ट्रेन दुर्घटना में शहीद भी हो गए।

इनमें से श्री पावनदास केसरांत आर्यसमाज के प्रमुख कार्यकर्ता थे और उन्होंने आर्यसमाज के आह्वान पर ऋषि की अन्तिम लीलास्थली अजमेर से प्रस्थान कर पंजाब में हुए इस सत्याग्रह में भाग लिया था। ट्रेन दुर्घटना में ही इस साहसी आर्यवीर ने अपने प्राणों का बलिदान दिया।

इसी दुर्घटना में एक अन्य सत्याग्रही श्री कैलाशचन्द जी की भी जीवन ज्योति बुझी थी। आप बृहत्तर ग्वालियर के मुरार उपनगर के निवासी थे। आपका वहाँ के आर्यसमाज और वैदिक धर्म के प्रति अनुरक्त जनों में प्रमुख स्थान था।

हरियाणा की जींद तहसील के निवासी श्री अमरसिंह ने भी हिन्दी रक्षा आँदोलन में आर्य समाज के आह्वान पर भाग लेकर स्वकर्त्तव्य का पालन किया था। कारागार की कठोर यातनाएँ तो आपने हँसते-हँसते झेली थीं किन्तु रिहाई के बाद हुई विदाई के उपरांत की गई ट्रेन यात्रा में ही आपने उस ट्रेन के दुर्घटनाग्रस्त होने के कारण वीरगति प्राप्त की।

तहसील जींद के ही एक अन्य सत्याग्रही श्री अमरसिंह भी इसी ट्रेन दुर्घटना में दिवंगत हुए थे। अम्बाला के निकट मौहरी नामक रेलवे स्टेशन पर हुई इसी ट्रेन दुर्घटना में लुधियाना के आर्य सत्याग्रही श्री कृपालराम तथा सम्वाह (ग्वालियर) के वीर सेनानी श्री नेतराम जी की भी मृत्यु हुई थी।

कुछ अन्य बलिदानी

हिन्दी सत्याग्रह में भाग लेने वाले बटाला के वीर सत्याग्रही श्री धर्मवीर ने तथा कानपुर के आर्य वीर श्री प्रियदर्शन भी अम्बाला में वीरगति को प्राप्त हुए थे। संगरूर के निकट तो दो आर्य संन्यासी जो इस सत्याग्रह अभियान में से एक थे स्वनामधन्य स्वामी ईशानन्द।

बिहार के एक कर्मठ आर्यसमाजी कार्यकर्त्ता श्री तारिणीप्रसाद सिंह का मार्ग में ही पटना में रोगग्रस्त हो जाने के कारण बलिदान चढ़ गया था तो ग्राम सिलानी तहसील झज्जर के एक अन्य सत्याग्रही भी कारागार से रिहा होने के बाद अपने गाँव में आ कर चिरविदाई ले गए।

जिन्होंने हंस-हंसकर गोलियाँ खाईं

सत्याग्रह के दौरान ही ८ फरवरी, १९५८ को आर्य नेता श्री घनश्याम सिंह गुप्त के जलूस पर गोली वर्षा की थी। जिसके फलस्वरूप जालन्धर निवासी श्री सोमदत्त तथा पटियाला के श्री गिरधारीलाल ने हँसते-हँसते सीने पर गोलियाँ खाकर अपना बलिदान चढ़ाया था।

इस प्रकार आर्यसमाज द्वारा हिन्दी की रक्षार्थ किए गए इस महान् संघर्ष में कुल १८ आर्यवीरों ने अपनी जीवन समिधएँ समर्पित की थीं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महर्षि दयानन्द-भक्त नरेश

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने समग्र विश्व के कल्याण का सुस्वप्न अपने नेत्रों में संजोया था। अपनी उस कल्पना को साकार करने के लिए उन्होंने शताब्दियों के उपरान्त पुनः यह उद्‌घोष किया था 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'। उस कार्य का प्रारम्भ उन्होंने पुण्यभूमि आर्यावर्त से ही किया। भारत के कल्याण की कामना करने वाले इस महापुरुष ने तत्कालीन परिस्थितियों का गहन गम्भीर अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला था कि भारत का भला तभी होगा, जब रजवाड़ों का उद्धार होगा। यदि राजा लोग सुधर जाएँ तो प्रजा के सुधरने में क्या विलम्ब हो सकता है? अपने उसी विश्वास को उन्होंने अनेक बार उद्‌घोषित भी किया था। अपनी आकांक्षा की पूर्ति हो, उन्होंने १८८१ ई० में आर्य (हिन्दू) जाति के प्रेरणा केन्द्र चित्तौड़ में पदार्पण ही किया था। अन्य सनातन वैदिक धर्म के प्रचार और प्रसार हेतु अहर्निश सक्रिय द्वारा महामानव के संपर्क में आकर अनेक नरेशों के जीवन की धारा ने एक सर्वथा नवीन मोड़ ले लिया था। उन्हीं में से कुछ का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है—

शाहपुराधीश महाराजा नाहरसिंह—१

महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त क्षत्रिय नरेशों में से एक थे तत्कालीन शाहपुराधीश महाराजा नाहरसिंह। शाहपुरा एक छोटा-सा राज्य था। आज इसका क्षेत्र भीलवाड़ा में स्थित है। चित्तौड़ के समीप स्थित इस राज्य के अधिपति महाराजा नाहरसिंह जी स्वामीजी के ऐसे निष्ठावान् भक्तों में थे कि जब महर्षि दयानन्द १८८१ ई० में चित्तौड़ पधारे तो स्वामीजी के सत्संग में प्रायः नियमित रूप से उपस्थित रहने वालों में से महाराजा नाहरसिर एक थे। स्वामीजी के द्वारा दिए गए दिशायाम के परिणामस्वरूप वे यज्ञ-हवन आदि के प्रति भी अनुरक्त हो गए थे और उन्होंने महर्षि दयानन्द द्वारा दिए गए सदुपदेशों के अनुसार प्रजा के कल्याण को ही अपने जीवन का परम ध्येय मान लिया था। इतना ही नहीं अपितु आपने ही उदयपुर नरेश महाराजा सज्जनसिंह का भी स्वामीजी से परिचय कराया था।

महाराजा नाहरसिंह के निमन्त्रण पर मई, १८८३ में स्वामी दयानन्द ने शाहपुरा में पधार कर धर्मवृष्टि भी की थी। जब आप शाहपुरा में वैदिक धर्म की अमृतवर्षा कर रहे थे तो महाराजा प्रतिदिन सायंकाल २ घंटे के लिए शिष्य भाव से उनके श्री चरणों में उपस्थित होते थे! उन्होंने स्वामीजी के निर्देशन में ही मनुस्मृति; वैशेषिक दर्शन आदि के आवश्यक भागों का पाठ समाप्त किया था। आपने ही महर्षि दयानन्द को १७ मई, १८८३ को जोधपुर प्रस्थान करते समय वहाँ की परिस्थितियों से भी अवगत कराया था।

आपके उपरांत आपके वंशज भी नितांत निष्ठाभावना सहित आर्य समाज को अपना पूर्ण योगदान प्रदान करते रहे हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

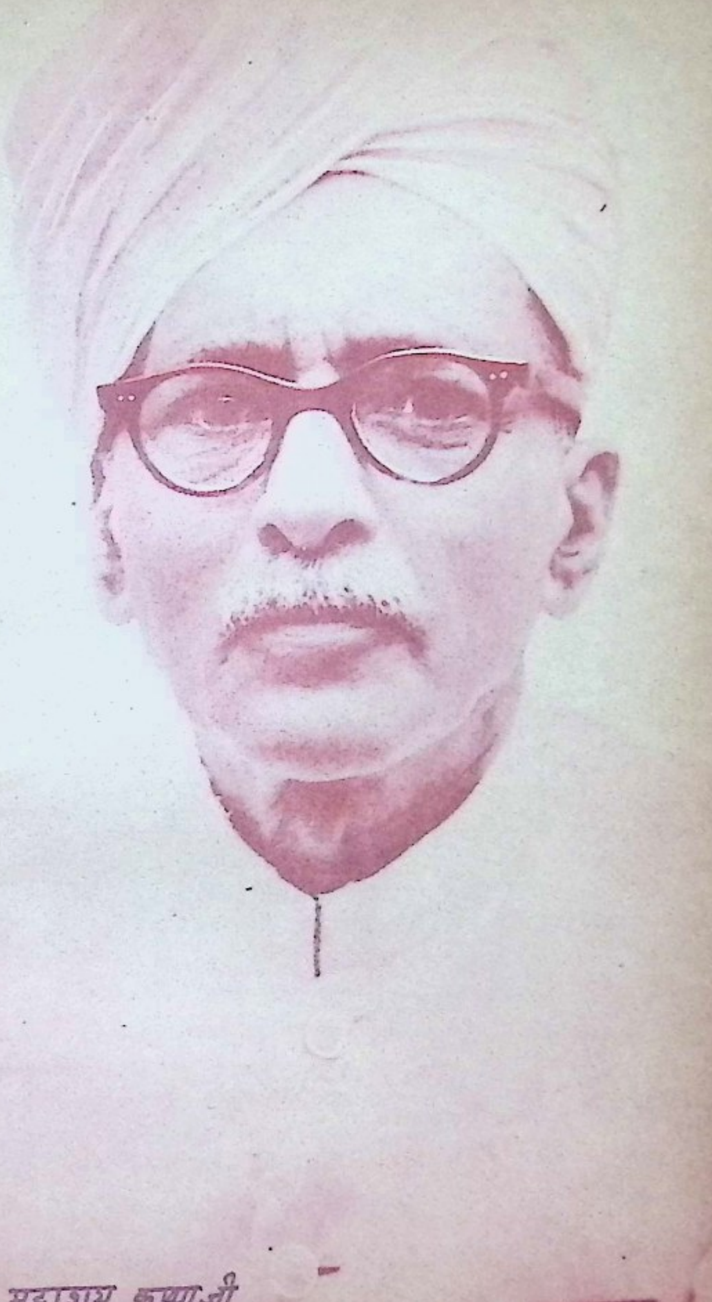

महाशय कृष्णजी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उदयपुर नरेश महाराणा सज्जनसिंह

१८८१ में चित्तौड़ में उदयपुर अधिपति महाराणा सज्जनसिंह का महर्षि दयानन्द से प्रथम परिचय हुआ था। इस प्रथम भेंट में ही इस विचारवान्, उदारमना और आर्य धर्माभिमानी नरेश ने महर्षि दयानन्द की तेजस्विता और विद्वत्ता से प्रभावित होकर उन्हें अपने गुरु के रूप में मान्य कर लिया था। १८८२ ई० के आरम्भ में जब स्वामी दयानन्द ने बम्बई आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में भाग लेने के लिए प्रस्थान किया तभी आपने महर्षि से विनम्र भाव सहित प्रार्थना की थी 'भगवन्, उदयपुर में यथासम्भव शीघ्र ही दर्शन दीजिएगा।'

बम्बई आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में भाग लेने के उपरांत महर्षि खंडवा, इन्दौर और रतलाम में वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार करने के उपरांत ११ अगस्त, १८८२ को उदयपुर पहुँचे थे। वहाँ महाराणा ने आपके ठहरने की व्यवस्था अपने सज्जन उद्यान में ही की थी।

उदयपुर पहुँचते ही आपने महाराणा सज्जनसिंह के जीवन में परिवर्तन लाने का उद्योग आरम्भ कर दिया था। महर्षि के प्रयास सफल भी हुए और अल्पकाल में ही महाराणा के जीवन में आश्चर्यजनक परिवर्तन भी परिलक्षित होने लगा था। पहले महाराणा विलासिता, शराब, वेश्यागमन आदि कुवृत्तियों और भ्रमात्मक विश्वासों से ग्रस्त थे। आपने स्वामी दयानन्द से प्रतिदिन पढ़ना आरम्भ कर दिया और आपके ही विशेष आग्रह पर स्वामीजी से संस्कृत की शिक्षा ली तथा मनुस्मृति का राज प्रकरण भी पढ़ा था। उसमें राजा के धर्मों का अनुशीलन करते ही महाराणा सज्जनसिंह के जीवन में एक नवीन मोड़ आ गया था। उसके उपरांत महाराणा ने अपना समय विभाग निश्चित कर लिया था तथा उन्होंने सुरा और वेश्यागमन त्याग कर प्रातः उठने तथा संध्या उपासना को अपना नियम ही बना लिया था।

अन्ततः महाराणा के प्रति स्वामी दयानन्द के मन में इतने अधिक विश्वास का सृजन हो गया था कि उनकी यह आस्था दृढ़ हो गई थी कि महाराणा सज्जनसिंह सरीखे नरेश की दृढ़ता के कारण आर्यसमाज को लौकिक सहारे की कमी न रहेगी। महर्षि ने परोपकारिणी सभा की स्थापना की और उसके २३ सभासद बनाए तो मेवाड़पति महाराणा को ही आपने उसका सभापति बनाया था।

वस्तुतः महर्षि की मृत्युपर्यन्त महाराणा सज्जनसिंह का उनके प्रति गुरु भाव ही बना रहा।

★

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उदयपुर के समान ही उस समय में जोधपुर की गद्दी पर आसीन महाराजा यशवन्तसिंह भी महर्षि दयानन्द के प्रति आस्थावान् राजपूत नरेशों में प्रमुख थे। महर्षि जब मई, १८८३ ई० में जोधपुर पधारे तो महाराजा यशवन्तसिंह ने उनकी आवभगत की यथोचित व्यवस्था की थी। जोधपुर के प्रमुख सामन्त महाराज प्रतापसिंह तो पहले ही महर्षि दयानन्द के शिष्य बन चुके थे।

महाराजा यशवन्तसिंह महर्षि के जोधपुर आगमन के उपरांत एक दिन स्वयं उनके दर्शनार्थ आए तो उनके सदुपदेशों में उन्होंने जीवन को सुधारने का मार्ग देखा। अतः महर्षि को आपने ससम्मान राजमहल में ही आमंत्रित किया और फिर तो प्रतिदिन ही महर्षि दयानन्द राजमहल में महाराजा की शंकाओं का निवारण करने जाते थे। ऐसे ही एक दिन जब निश्चित नियमानुसार महर्षि दरबार में पहुँचे तो उस समय नन्हीजान नामक महाराजा की मुँहलगी वेश्या भी वहाँ थी। स्वामीजी के आगमन का समय जानकर महाराज उसे डोली में रवाना कर रहे थे तो समीप ही स्वामीजी को आता देखकर महाराज ने घबराहट में स्वयं उसकी डोली को कंधा दे दिया था। महर्षि ने उस दिन राजधर्म भी महाराजा यशवन्तसिंह के समक्ष प्रस्तुत किया था। उन्होंने महाराजा को बताया था कि "राजा सिंह के समान है और वेश्याएँ कुतियों के समान। राजाओं के सम्बन्ध सिंहनियों से होना उचित है, कुतियों से नहीं।"

महर्षि के प्रति श्रद्धावान् महाराज यशवन्त सिंह ने सिर झुका कर अपने सुधार का निश्चय किया था और उनके जीवन को नया पथ भी मिल गया था।

वेश्या-सम्बन्धी उपरोक्त घटना के बाद ही जोधपुर से २९ सितम्बर, १८८३ को रात्रि के शयन से पूर्व गर्म दूध में विष दिया गया था। महाराजा यशवन्तसिंह को भी इस कांड पर हार्दिक दुःख हुआ था। उन्होंने खिन्न मन से ही आदरपूर्वक रुग्ण महर्षि को आबू पर्वत के लिए विदाई दी थी।

कोल्हापुर नरेश

इसी भाँति कोल्हापुर के तत्कालीन नरेश भी महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रति श्रद्धा की भावना रखते थे और स्वामीजी द्वारा प्रदर्शित की गई वास्तविक धर्म की ज्योति के प्रकाश में स्वधर्म के वास्तविक मर्म को उन्होंने समझा था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri.Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महाराजा सयाजीराव गायकवाड़

बड़ौदा नरेश महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ के मन में भी महर्षि दयानन्द के प्रति अपार सम्मान था। जनवरी, १८७५ में आर्यसमाज की स्थापना हो जाने के उपरांत महर्षि दयानन्द जब अहमदाबाद होते हुए बड़ौदा पधारे थे तो यहाँ आपका राज्य के अतिथि के रूप में स्वागत सत्कार किया गया था। महाराजा के स्वामीजी के प्रति आदर भाव के कारण राज्य के दीवान और अन्य उच्चाधिकारी भी आपके उपदेशों की अमृत वर्षा से स्वयं को कृत-कृत्य मानते थे। बड़ौदा में स्वामी दयानन्द का अनेक पंडितों से शास्त्रार्थ हुआ था। राजदीवान श्री मांधवराव जी की प्रार्थना पर स्वामी जी का बड़ौदा में ही राजधर्म पर भी एक व्याख्यान हुआ था। उसमें स्वामीजी के मुख से राजनीति के गंभीर सिद्धांतों की व्याख्या सुनकर राज्य के उच्चाधिकारियों को भी वह कारण विदित हो गया था कि जिससे प्रेरित होकर महाराजा गायकवाड़ महर्षि के भक्त बने थे।

★

वीर बच्चों की प्रतिज्ञा

हम धीर वीर प्रभु बालक हैं माता का नाम बढ़ायेंगे।
हम धर्म कर्म के सच्चे हैं कष्टों को दूर भगायेंगे॥
जीवन पथ समझें खेल अभी, पग पीछे कभी न धर देंगे।
हम न्याय सत्य की रक्षा में, निज जीवन अर्पित कर देंगे॥
गुण्डे हम से थर्रायेंगे, हम कभी नहीं घबरायेंगे।
ले साथ शक्ति अरमानों की, पापी को धूल बनायेंगे॥
हम धीर वीर प्रभु बालक हैं, माता का नाम बढ़ायेंगे।
उत्साह भरा मन ले करके, आलस्य कभी ना पास धरें।
प्राणों की ममता त्याग सदा, हम जन्म भूमि से प्रेम करें॥
हम ऐसी अलख जगायेंगे, मानव के भाग्य जगाएँगे।
हम राम कृष्ण बन कर जग में, सारे दुख दैन्य मिटायेंगे॥
हम धीर वीर प्रभु बालक हैं माता का नाम बढ़ाएँगे॥
कर दो हम पर भगवान् कृपा, हम जीवन सफल बना जावें।
हम ध्यान लगाकर तेरा ही, बस बीज प्रेम का बो जावें॥
हम अपनी नाव बढ़ाएँगे, तूफानों में भी गाएँगे॥
सुख चैन वेद की वंशी से, सारा संसार गुँजाएँगे॥
हम धीर वीर प्रभु बालक हैं माता का नाम बढ़ाएँगे॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

देवतास्वरूप भाई परमानन्द

सन् १८७६ में जेहलम जिले के एक ग्राम में इतिहास प्रसिद्ध बलिदानी भाई मतिदास के बलिदान से लगभग दो शताब्दी पश्चात् उन्हीं के वंश में एक महापुरुष ने जन्म लिया, जो महान् क्रान्तिद्रष्टा देव दयानन्द के दिव्य दर्शन से प्रेरित होकर भारत माता को बन्धन मुक्त कराने वाले विजिगीशु वृत्ति के नरपुंगवों में अग्रगण्य बन गया। यही दृढ़व्रती थे देवतास्वरूप भाई परमानन्द।

एम० ए० की उपाधि ग्रहण करके भी आपने ऐश्वर्य के जीवन का लोभ ठुकरा कर ७५) रुपये मासिक के गुजारे पर डी० ए० वी० कालेज की आजीवन सदस्यता ग्रहण करना ही वरेण्य माना।

उन्हीं दिनों अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों की पुकार कर महात्मा हंसराज ने भाई परमानन्द को वहाँ आर्य समाज के प्रचार और प्रसारार्थ भेज दिया। यही था इस महामानव के जीवन में एक नया मोड़। इस प्रथम अफ्रीकी प्रवास के दौरान ही जोहान्सबर्ग में महात्मा गांधी (उस समय मिस्टर गान्धी) से आपका परिचय हुआ और फिर ये दोनों महाप्राण एक-दूसरे के अभिन्न मित्र हो गए। गांधीजी ने ही उनका सम्पर्क महर्षि दयानन्द के महान् भक्त और प्रमुख क्रान्तिकारी श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा से कराया। बताया जाता है कि श्री वर्मा ने ही भाईजी को बम बनाने के तरीके से सम्बन्धित एक कागज दिया, जो तलाशी के दौरान आपके सामान से बरामद हुआ और आपके विरुद्ध ब्रिटिश सरकार द्वारा दायर प्रथम मामले का आधार बना।

राष्ट्रभक्ति के पावन अपराध में ब्रिटिश राज्यसत्ता ने भाई जी को मृत्यु दण्ड सुनाया था, किन्तु वह बाद में आजन्म कारावास में बदल गया। अतएव इस नरकेसरी को अपने यौवन के दिन अण्डमान की काल कोठरियों में बिताने पड़े। वहाँ उन्होंने स्वजीवन को समाप्त करने के विचार से अन्न जल भी त्यागा किन्तु एक सप्ताह के बाद ही उन्हें बलात् भोजन दिया जाने लगा। दो मास की अवधि इसी ढंग से बीतने के कारण आपका वजन ८२ पौंड घट गया। अन्ततः दीनबन्धु सी० एफ० एन्ड्रूज के प्रयास से भाई परमानन्द को अंडमान की यातनाओं से मुक्ति मिली और वे जर्जर काया लिये १९१९ में लाहौर लौट आए। किन्तु इन यमदण्डों के बावजूद भी स्वधर्म और स्वदेश सेवा की दुर्दम्य आकांक्षा प्रभावित न हो सकी।

लाहौर में आप विदेशी शिक्षा बहिष्कार के दौरान नेशनल कालेज के कर्णधार बने और आपके श्री चरणों में बैठ कर शहीदेआजम सरदार भगतसिंह ने देशभक्ति का पाठ पढ़ा। किन्तु कांग्रेस ने जब मुस्लिम तुष्टीकरण में ही देश के कल्याण की राह देखी तो भाईजी ने उससे पूर्णतः पृथक् होकर हिन्दू महासभा के मंच को संभाला। १९३४ में वे हिन्दू महासभा के अध्यक्ष भी बने और जीवन की अन्तिम घड़ी तक हिन्दू महासभा की गतिविधियों को बढ़ाने व हिन्दू जाति को जगाने में लगे रहे। अन्ततः भारत विभाजन की पीड़ा न सह पाए और १८ दिसम्बर, १९४७ को जालन्धर में अपनी जीवन लीला समाप्त कर दी।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मुस्लिम रियासतों में जनाधिकार आंदोलन

अन्याय, अत्याचार, अनीति और अधर्म के विरुद्ध संघर्ष आर्य समाज की अमर मान्यता है। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती ने वैदिक धर्म को पुनः उसके सत्य रूप में जन-जन के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए ही कृण्वन्तो विश्वमार्यम् का उद्घोष अनेक शताब्दियों के उपरांत इस आर्यभूमि हिन्दुस्थान में गुंजाया था। उनके द्वारा प्रदत्त दिशादान से अनेक निराश हृदयों में आशा की नई किरण जगी थी तो अनेक बलिदानी हृदय प्रचंड आत्मविश्वास को ग्रहण कर कर्त्तव्य समर में उतर पड़े थे। उन्होंने असत्य के प्रसारकों और प्रचारकों द्वारा दी गयी चुनौती को नितांत साहस के साथ स्वीकार किया। इस उपक्रम में उन्हें अपने प्राण समर्पित करने पड़े तो उससे भी वे हिचकिचाए नहीं। अनेक स्थानों पर आर्य समाज को सत्य की रक्षा हेतु हैदराबाद के समान ही सत्याग्रह का पथ भी अपनाना पड़ा।

सीहोर (भोपाल) में संघर्ष

वर्तमान मध्यप्रदेश की राजधानी है भोपाल। यह भोपाल महानगरी जिस जिले में स्थित है वह है सीहोर। सीहोर के जिलाधीश ने मजहबी संकीर्णता से प्रेरित होकर महर्षि दयानन्द की महान् कृति और आर्य समाज के महान् ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश पर प्रतिबंध लगाने का दुस्साहस किया था। किन्तु अन्याय के प्रतिकार हेतु देव दयानंद के अनुगामी आर्य जन तुरंत संघर्ष हेतु सन्नद्ध हो उठे। आर्य प्रतिनिधि सभा ने तुरंत इस संबंध में सक्रियता प्रदर्शित की। सीहोर रियासत की सत्ता को समय रहते ही अकल आ गयी और जिलाधीश महोदय का दर्प चूर हो गया। उन्होंने अपनी भूल स्वीकार कर सत्यार्थ प्रकाश पर लगाया गया प्रतिबंध हटा लिया।

इस प्रकार संघर्ष की घड़ी तो न आई किन्तु आर्यसमाज के अनुरागियों की प्रथम चेतावनी ही सत्ता के दर्प में चूर हुए मदान्धों को सही राह पर लाने में सफल हो गई। आर्य समाज व्यर्थ में ही किसी को छेड़ता नहीं किन्तु कोई असत्य और अज्ञान का समर्थक यदि उसे छेड़ने का दुस्साहस करता है तो उसे बिना प्रतिक्रिया किए छोड़ता भी नहीं।

लोहारू में लोहा लिया

भारतीय स्वतंत्रता से पूर्व लोहारू भी एक छोटी सी मुस्लिम रियासत थी। हिन्दू जनता को हेय और दासत्व में जकड़ा जानकर पग-पग पर उसका अपमान करने में ही सत्ताधीश अपनी शान समझते थे। यहाँ भी देव दयानंद के द्वारा गुंजाया गया वैदिक धर्म के प्रति निष्ठा का आह्वान अनेक निराश हृदयों को नवचैतन्य प्रदान कर रहा था। लोहारू में कतिपय वैदिक धर्म के अनुरक्त जनों ने १९४४ ई० में आर्यसमाज की स्थापना की थी। उसी वर्ष २९-३० मार्च को स्थानीय आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर स्वामी स्वतंत्रानंद जी, भक्त फूलसिंह आदि आर्य नेता पधारे थे। उनकी शोभा यात्रा निकाली गई तो पुलिस थाने के ठीक सामने ही कतिपय धर्मान्ध मुसलमानों ने इस शोभा यात्रा पर आक्रमण कर दिया। कई आर्यसमाजी कार्यकर्ता गंभीर रूप से घायल हो गए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

किन्तु इस्लाम के नशे में मदान्ध सत्ताधीशों को न्याय और अन्याय का विवेक ही कहाँ था। उन्होंने पीड़ित पक्ष अर्थात् आर्यसमाजी कार्यकर्ताओं को ही अभियुक्त बना दिया किन्तु १३ अप्रैल को रामकिशन एडवोकेट तथा ला० सुखदेव जी आदि आर्य नेता लोहारू पहुँचे तो आर्यसमाजी कार्यकर्ताओं पर से अभियोग वापस ले लिए गए। आर्यसमाज के धर्म प्रचार के अधिकार को अन्ततः लोहारू के नवाब को मान्य करना पड़ा और इसके साथ ही आर्यसनाज को मन्दिर निर्माण करने की स्वीकृति प्रदान करने पर भी उन्हें बाध्य होना पड़ा।

इस प्रकार आर्यसमाज के इतिहास में एक और गौरवपूर्ण पृष्ठ जुड़ गया। वैदिक धर्म की पावन ज्योति को अग-जग में प्रचारित करने के लिए संकल्पबद्ध आर्य-जनों ने विरोध और आपदाओं और अनाचार की आँधी को चुनौती देकर मदान्ध सत्ता को परास्त कर आर्यसमाज की कीर्ति पताका सगौरव लोहारू में फहरा दी।

सिंध में सत्यार्थ प्रकाश पर रोक का प्रतिकार

भारत विभाजन से पूर्व सिन्ध प्रान्त भारतवर्ष का ही एक भाग था। वहाँ मुस्लिम लीगी मुख्यमंत्री अल्लाह बख्श की सरकार थी। उनके मजहबी जोश ने जोर मारा तो उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश के १४वें समुल्लास पर प्रतिबंध लगाकर आर्यसमाज को चुनौती देने का दुस्साहस कर दिखाया। इस अन्यायपूर्ण प्रतिबंध के विरोध में आर्य जाति में हलचल मच गयी। रोष का एक प्रचंड वायुमंडल दिग्-दिगन्त में व्याप्त हो उठा। आर्यसमाज के वरिष्ठ नेताओं ने इस अन्याय के विरुद्ध शंखनाद किया तो स्वदेश के महान् हिन्दुत्वनिष्ठ नेता एवं क्रांतिकारियों के मुकुटमणि स्वातन्त्र्य वीर सावरकर ने भी हिन्दू महासभा अध्यक्ष के रूप में मदान्ध मुस्लिम लीगी सत्ता को चेतावनी दी। किन्तु इन चेतावनियों की उपेक्षा का ही उपक्रम होता दिखाई दिया तो महात्मा खुशहालचंद (महात्मा आनंद स्वामी) के नेतृत्व में आर्य वीरों की विजयवाहिनी सिन्ध जा पहुँची।

आर्य वीरों के पग सिंध की धरती पर पड़ते ही सत्ताधीशों के होश ठिकाने आ गए। उसने तुरन्त ही सत्यार्थप्रकाश के चतुर्दश समुल्लास पर लगाया गया प्रतिबंध वापस ले लेने की घोषणा कर दी और इस प्रकार संघर्ष टल गया।

महर्षि दयानंद सरस्वती ने वेद के धनुष को धारण कर वेद प्रतिपादित धर्म के प्रचार का पुनीत प्रारम्भ किया था। मिथ्यावाद के गढ़ उनके अनुयायियों द्वारा उद्घोषित रणनाद से दहल उठे थे तो उन्होंने अपनी कसमसाहट भी विभिन्न प्रकार के अवरोधों और विरोधों के माध्यम से व्यक्त की थी किन्तु आर्यसमाज के जयिष्णु अनुयायी अवरोधों और बाधाओं के उत्तुंग शिखरों पर पग धर कर उन्हें पार करना जानते हैं, क्योंकि उनका पथ प्रदर्शक है उनके महान् गुरु देव दयानंद को अत्यधिक प्रिय भर्तृहरि का निम्नलिखित श्लोक—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।

★

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यसमाज के विख्यात विद्वान् आर्यजन

स्वामी नित्यानन्द

आर्य समाज के महामंत्र को जन-जन में निनादित करने वालों में स्वामी नित्यानन्द का भी अपना स्थान था। यह अनथक आर्य धर्म प्रचारक जोधपुर राज्य के जालोर नामक नगर में जन्मे थे। बाल्यकाल से ही धर्म के प्रति जो जिज्ञासा आपके अन्तस्तल में थी उसी ने आपको ब्रह्मचर्य के उपरान्त सीधे ही संन्यास की दीक्षा लेने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने स्वामी विश्वेश्वरानन्द को गुरु धारण किया। आप एकाग्रचित्त होकर आर्य समाज के प्रचार कार्य में लग गए और जीवन की अन्तिम घड़ी तक उस पुनीत कार्य में लगे रहे। उनका कार्यक्षेत्र विशेष रूप से पंजाब, पश्चिमोत्तर प्रदेश और राजपूताना रहा। स्वामी नित्यानन्द का बूंदी का शास्त्रार्थ तो सुप्रसिद्ध है जिसमें उन्होंने अद्वैतवाद के समर्थक वेदान्तियों की शंका का समाधान किया था। विरोधी तो वहाँ उनके तर्कों से इतने अधिक घबरा गए थे कि उन्होंने स्वामीजी को राज्य से बाहर निकलवाने के लिए राजा का द्वार खटखटाया था।

स्वामीजी की विद्वत्ता और निर्मल चरित्र की धाक राजस्थान में अनेकों नरेशों पर भी थी। इन्दौर, बड़ौदा, उदयपुर आदि राज्यों के महाराजा तो आपको अपने गुरु तुल्य मानते थे और मैसूर नरेश ने आपसे ही विधिपूर्वक वैदिक धर्म का उपदेश ग्रहण किया था। आपके उपदेशों के प्रभाव से ही कश्मीर नरेश कश्मीर के मुसलमानों को वैदिक धर्म में वापस लेने को भी तैयार हो गए थे। किन्तु काशी के कट्टरपंथी पंडितों द्वारा शुद्धि के विरुद्ध व्यवस्था देने के परिणामस्वरूप ही देश की एक बहुत बड़ी समस्या का समाधान होते होते रह गया। आगे चलकर स्वामीजी ने वेद-सम्बन्धी अनुसंधान कार्य का भी बीजारोपण किया और वह केन्द्र आज भी होशियारपुर में वैदिक अनुसंधान केन्द्र के रूप में विद्यमान है।

स्वामी दर्शनानन्द जी

पं० कृपाराम के नाम से प्रारम्भ में आर्यजगत् में परिचित हुए कर्मठ सेनानी ही आगे चलकर आर्यजगत् में स्वामी दर्शनानन्द के नाम से विख्यात हुए थे। उनकी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा यद्यपि अरबी और फारसी में हुई थी किन्तु समाज के सम्पर्क में आकर उन्होंने हिन्दी और संस्कृत का भी मन लगाकर अभ्यास किया। छोटी-सी आयु से ही उनकी प्रवृत्ति वैराग्य और धार्मिक कार्यों में लग चुकी थी। इस का परिचय इस घटना से भी लग जाता है कि उनके पिताजी ने उन्हें एक दुकान खोल कर दी थी तो उसका नाम भी उन्होंने 'सच्ची दुकान' रख दिया। इस सत्य व्यवहार से दुकान को तो लाभ हुआ किन्तु साथ ही श्री कृपाराम जी का उत्साह उन्हें काशी ले गया। जहाँ उन्होंने व्याकरण और दर्शन का गहन अध्ययन किया। तदुपरान्त तो आर्य समाज का प्रचार कार्य ही आपका एकमात्र कार्य बन गया। लेखों द्वारा प्रचार कार्य की धुन मन में बसी तो आपने एक मुद्रणालय भी आरम्भ कर दिया तथा 'तिमिर नाशक' नामक एक पत्रिका का प्रकाशन किया। अनेक ग्रन्थों का भी आपने प्रकाशन किया। घाटे का सौदा करके आप वैदिक धर्म के प्रचार और प्रसार कार्य में ही लगे रहे।

महामहोपाध्याय पं० आर्यमुनि

वैदिक साहित्य को जनसाधारण तक पहुँचाने का स्तुत्य कार्य जिन महान् मनीषियों ने अपनी प्रबल कर्मठता के आधार पर चलाया उन्हीं में से एक थे पं० आर्यमुनि भी। आपने सभी दर्शनों और उपनिषदों के हिन्दी में भाष्य करके हिन्दी जानने वालों को भारतीय साहित्य का आनन्द लेने तथा उससे परिचित होने का सुयोग प्रदान किया।

आर्यजगत् में वैदिक साहित्य के प्रचार और प्रसार की आपकी धुन ने आपको भारी लोकप्रियता प्रदान की। आर्य समाज के कार्यकर्ताओं के मन में महान् कर्मयोगी पं० आर्यमुनि के लिए नितान्त श्रद्धा और आस्था तो थी ही साथ ही आपके द्वारा किए गए ठोस कार्य से सरकार भी प्रभावित हुए बिना न रह पाई और उसकी दृष्टि में भी पंडित जी का कार्य आदरणीय हो गया। इसीलिए पंडित जी को महामहोपाध्याय की उपाधि से विभूषित किया गया।

स्वामी विश्वेश्वरानन्द

महर्षि दयानन्द के जिन अनन्य भक्तों ने इस मूलमंत्र को हृदयंगम किया था कि 'जो बोले सो अभय—वैदिक धर्म की जय' का उद्घोष कर देना मात्र ही ऋषि ऋण से उऋण होने का साधन नहीं है अपितु वैदिक धर्म और उसके साहित्य पर अनुसंधान और शोध कार्य कर जनता को दिशाज्ञान कराना भी उनका आवश्यक कर्त्तव्य है, उनमें स्वामी विश्वेश्वरानन्द का नाम भी सदैव स्मरण किया जाता रहेगा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वामी विश्वेश्वरानन्द ने अपनी शोध की लगन का ही परिणाम पुरुषार्थ प्रकाश नामक पुस्तक का प्रकाशन कर प्रस्तुत किया था। उस ग्रन्थ ने आपको तथा स्वामी नित्यानन्द को आर्यजगत् में विशेष सम्मान प्रदान कराया था।

आपके परिश्रम और ज्ञान तथा विद्वत्ता के प्रकाश में जिन वरेण्य आर्यजनों ने अपने जीवन की भावी राह खोजी थी, उनमें से स्वामी नित्यानन्द भी आपकी भाँति ही आर्यजनों के प्रेम और आदर का पात्र बने थे। होशियारपुर स्थित वैदिक अनुसंधान केन्द्र आज भी आपके यशोगान का जीवित जाग्रत कीर्तिमान है। आप सरीखे मनीषियों और त्यागी तपस्वी विद्वानों पर आर्य समाज को सदा गर्व रहेगा।

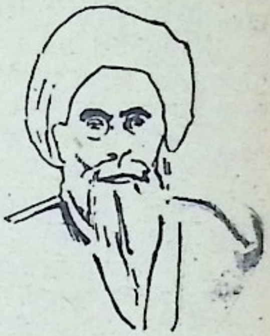

पं० तुलसीराम स्वामी

आर्य समाज के प्रारम्भिक वर्षों में मेरठ को उत्तर प्रदेश में वही स्थान प्राप्त था, जो पंजाब में लाहौर को था। समाज की अनेक प्रकार की प्रवृत्तियों का श्रीगणेश मेरठ की क्रान्ति नगरी से ही हुआ था। मेरठ में ही उपदेशक श्रेणी की योजना का भी आरम्भ हुआ था। मेरठ को जिन महान् मनीषियों ने आर्य समाज के क्षेत्र में और अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करा दिया उन्हीं में से प्रमुख थे प्रसिद्ध पत्रकार और साहित्यकार पं० तुलसीराम स्वामी भी। व्याख्यानों और शास्त्रार्थों द्वारा तो उन्होंने समाज की सेवा की ही थी लेखनी द्वारा भी आपने महर्षि के मिशन को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। आपने 'वेद प्रकाश' मासिक का संपादन भी नितान्त कुशलता सहित किया था। इसके अतिरिक्त आपने सामवेद भाष्य और मनुस्मृति का अनुवाद तथा भास्कर प्रकाश आदि ग्रन्थों की रचना करके भी आर्य-समाज की उल्लेखनीय सेवा की थी।

आपके द्वारा वैशेषिक, न्याय और मीमांसा पर किए गए भाष्य आर्यसमाज के साहित्य भंडार की अमूल्य निधि है। यह भी उल्लेखनीय है कि जब पं० भीमसेन शर्मा ने आर्यसमाज से पृथक् होकर सनातन धर्म का प्रचार कार्य आरम्भ किया तथा अपने इस नए मुखौटे को ओढ़कर आप महर्षि दयानन्द और समाज पर घोर प्रहार करने लगे तो पं० तुलसीराम जी ने आपसे डटकर लोहा लिया।

यह मेधावी विद्वान् जहाँ एक सिद्धहस्त लेखक और प्रभावी वक्ता थे, वहाँ आलोचकों की युक्तियों का युक्ति और प्रमाण से उत्तर देने में भी नितान्त प्रवीण।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पं० भीमसेन

पं० भीमसेन इटावा के निवासी थे और कभी आपकी गणना महर्षि दयानन्द के मुख्य शिष्य के रूप में की जाती थी। आप संस्कृत के विद्वान् थे तो हिन्दी के सुलेखक भी। आपने स्वामीजी के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद और संशोधन कार्य भी संपन्न किया था और उसके कारण भी आपके लेखन कार्य में निपुणता आ गई थी। देव दयानन्द के निर्वाण के उपरान्त आपने वैदिक सिद्धान्तों के समर्थन में अनेक ग्रन्थों की भी रचना की थी। ऐसी भी धारणा है कि संस्कार चन्द्रिका को लिखने में भी उन्होंने सहयोग दिया था। उस समय के सुविख्यात मासिक आर्य सिद्धान्त में आपके लेख प्रायः प्रकाशित होते रहते थे और उनमें आप प्रायः सनातन धर्म की मान्यताओं का खंडन किया करते थे। इसके अतिरिक्त आपने उपनिषद, भगवद्गीता और मनुस्मृति के अनुवादों का भी प्रकाशन किया था। वस्तुतः आर्यसमाज की जो सेवाएँ आपने की थीं उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती किन्तु अपने जीवन के अन्तिम प्रहर में पं० भीमसेन जी ने अपने ही लिखे का खंडन और कहे का विखंडन आरम्भ कर दिया। वे पौराणिकों के साथ जुट गए थे और इस प्रकार उन्होंने जिस साहित्य का सृजन किया था वह अन्ततः मूल्य की दृष्टि से शून्य ही रह गया।

पं० गणपति शर्मा

पं० गणपति शर्मा भी आर्यजगत् के ज्योतिर्मान नक्षत्र थे। आप संस्कृत के उत्कृष्ट विद्वान् तथा प्रवीण वक्ता थे। शास्त्रार्थों में तो आपकी कीर्तिपताका कश्मीर से कन्याकुमारी तक फहरा उठी थी। आपने देश के उत्तरी भागों में आर्यसमाज के प्रचारार्थ जो प्रचार यात्राएँ कीं उनमें आपकी कश्मीर यात्रा तो ऐतिहासिक ही सिद्ध हुई। जिन दिनों आप वहाँ वैदिक धर्म के प्रचारार्थ पहुँचे, उन दिनों कश्मीर में

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

संस्कृत के एक अच्छे विद्वान् पादरी जानसन की धाक जमी हुई थी। उनका कश्मीर अधिपति से भी अच्छा परिचय था। पादरी जानसन ने पंडितों को शास्त्रार्थ की चुनौती दी तो श्री गणपति शर्मा ने उस चुनौती को स्वीकार किया। पहले तो पादरी महोदय ने बचने का प्रयास कियां किन्तु अन्ततः उन्हें सामने आना ही पड़ा और शास्त्रार्थ के प्रारम्भ में तो पादरी साहब संस्कृत में बोले किन्तु जब पं० गणपति शर्मा के श्रीमुख से वेदवाणी की सरिता प्रवाहित हो उठी तो पादरी महोदय फिसल कर हिन्दी पर आ गए। तीन दिन हुए इस शास्त्रार्थ के अन्त में पादरी महोदय को परास्त होना पड़ा और शास्त्रार्थस्थल पं० गणपति शर्मा के जयनाद से गूंज उठा।

★

राजगुरु श्री धुरेन्द्र शास्त्री

जिन मनस्वी आर्य नेताओं ने प्राणपण सहित जीवनपर्यन्त वैदिक धर्म और आर्यसमाज के प्रचार और प्रसार को निष्ठापूर्वक किया, उनमें राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री भी अग्रगण्य थे। आपने आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध तपस्वी स्वामी सर्वदानन्द जी के चरणों में बैठ कर धर्म की दीक्षा प्राप्त की थी। आपने अपना सम्पूर्ण जीवन ही अध्ययन और प्रचार कार्य में लगाया था। जब आर्यसमाज ने शुद्धि आन्दोलन का प्रारम्भ किया तो आप पूर्ण जोर-शोर से उसमें कूद पड़े। बिहार तथा राजस्थान आपका मुख्य रूप से कार्य-क्षेत्र रहा। राजस्थान में तो आपकी मान्यता जनसाधारण में अत्यधिक रही और इस वीर प्रसविनी धरा के अनेक अधिकार सम्पन्न व्यक्तियों ने आपको अपने गुरुवर के रूप में मान्यता प्रदान की थी, इसीलिए आर्य जगत् में आपकी ख्याति राजगुरु के रूप में हो गई थी।

हैदराबाद में निजाम की निरंकुश सत्ता के विरुद्ध जब निःशस्त्र प्रतिकार आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ तो आप सत्याग्रह आन्दोलन के चौथे सर्वाधिकारी नियुक्त किए गए। इस आन्दोलन में सत्याग्रह करने के लिए आप २२ अप्रैल, १९३९ को ५३१ सत्याग्रही सैनिकों के साथ एक स्पेशल द्वारा गुलबर्गा के लिए चले थे।

आपके नेतृत्व में हुआ सत्याग्रह भी इस आन्दोलन की उल्लेखनीय घटना थी। आपके जत्थे के सत्याग्रहियों को दो-दो वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड दिया गया था। किन्तु शीघ्र ही निजामी सत्ता को झुकना पड़ा और आर्यसमाज ने विजय प्राप्त की। इस महान् आन्दोलन में सफलता का श्रेय भी बड़ी सीमा तक राजगुरु जी को ही दिया जा सकता है।

जीवन के अन्तिम दिनों में आपने संन्यास की दीक्षा ले ली थी और आप स्वामी ध्रुवानन्द के नाम से आर्य जगत् में सम्बोधित किए गए।

★

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महाशय कृष्ण जी

महाशय कृष्ण भारत की ऐसी महान् विभूति थे जिनको एक निर्भीक पत्रकार के रूप में सारे देश में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। वस्तुतः आप ऐसे व्यक्ति थे कि जिन्होंने यश-कीर्ति और धन सभी का अर्जन अपनी कर्मठता और प्रतिभा के फल-स्वरूप किया था। युवा अवस्था से ही आप आर्यसमाज के संपर्क में आ गए थे और १९०५ में कुछ मित्रों के साथ मिलकर आपने साप्ताहिक 'प्रकाश' का प्रकाशन आरम्भ किया था और उसका उद्देश्य आर्यसमाज की सेवा करना ही घोषित किया था। १९१९ से आपने दैनिक 'प्रताप' (उर्दू) का प्रकाशन लाहौर से आरम्भ किया और भारत विभाजन के बाद यह निर्भीक दैनिक दिल्ली और जालंधर दो स्थानों से प्रकाशित हो रहा है। आर्य सामाजिक जीवन में महाशय जी को ऐसा स्थान प्राप्त हो गया था कि आपकी लेखनी से लिखित एक-एक अक्षर का पारायण आर्यसमाजी कार्यकर्ता किसी ग्रंथ का पाठ करते समय अपनाई जाने वाली गम्भीर दृष्टि से किया करते थे।

आप हैदराबाद सत्याग्रह के छठे सर्वाधिकारी रहे तो हिन्दी सत्याग्रह में भी आपने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। महाशय जी का स्थान देश के प्रमुख आर्य-समाजी नेताओं और ख्यातनामा पत्रकार के रूप में तो रहा ही, साथ ही हिन्दुत्व-निष्ठ संस्थाएं भी आपसे परामर्श लेने में स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करती रहीं।

महाशय कृष्ण की लेखनी ने देश के राजनीतिक आन्दोलनों को भी सदा ही सही दिशा प्रदान की थी। उन आन्दोलनों में कश्मीर में शेखशाही के विरुद्ध हुआ आन्दोलन भी प्रमुख था। आप जीवन की अन्तिम घड़ी तक ध्येय पथ पर अटल और अडिग रहे। सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री वीरेन्द्र और श्री के० नरेन्द्र आपके पुत्र हैं और आर्यसमाज की गतिविधियों में सक्रिय रुचि ले रहे हैं।

★

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पं० केशवराव

हैदराबाद राज्य में हाईकोर्ट के न्यायाधीश थे पंडित केशवराव। इसके साथ ही आप निजाम के विश्वासपात्र परामर्शदाताओं में भी थे। किन्तु निजाम का विश्वास-पात्र होने पर भी आप नितान्त निर्भीकता सहित आर्यसमाज के कार्य को गति प्रदान करने में अग्रसर रहे। इस संबंध में आपने कभी भी संकोच को अपने पास न फटकने दिया। इसका एक उदाहरण यह है कि जब महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने गुरुकुल की स्थापनार्थ तीस हजार रुपए की राशि एकत्रित करने के लिए देश का भ्रमण किया तो आपने उन्हें हैदराबाद निमन्त्रित करके वहाँ धन संग्रह कराया। आपके नेतृत्व में ही हैदराबाद राज्य में आर्यसमाज ने महान् प्रगति की थी।

पं० विनायकराव विद्यालंकार

पं० केशवदेव जी के पुत्र पं० विनायकराव जी भी आर्यसमाज के प्रमुख नेताओं में रहे। आप गुरुकुल की शिक्षा समाप्ति के बाद इंगलैंड गए थे और वहाँ से बैरिस्टर बनकर स्वदेश लौटे थे। वहाँ से लौटने पर एक ओर आपने वकालत आरंभ की तो दूसरी ओर आर्यसमाज को बलशाली बनाने में जी-जान से जुट गए। उनमें एक सार्वजनिक नेता में आवश्यक सभी गुण विद्यमान थे। आपके विचारों में जहाँ दृढ़ता थी वहाँ स्वभाव में शांति और व्यवहार कुशलता थी। सत्याचरण तो आपके चरित्र की ऐसी विशेषता थी कि जो आज विरले ही लोगों में दिखाई पड़ती है। आप हैदराबाद राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान रहे तो सत्याग्रह के समय आठवें सर्वाधिकारी भी घोषित किए गए थे। आपने सत्याग्रह की सफलता के लिए देश के विभिन्न भागों का दौरा किया था। जिससे निजामशाही के पैर लड़खड़ा चुके थे और २२ जुलाई, १९३९ को आपके द्वारा सत्याग्रह करने से पहले

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ही निजाम ने घुटने टेक दिए थे। इस प्रकार आन्दोलन की सफलता का सेहरा आपही के सिर बंधा।

श्री मदनमोहन सेठ

उत्तर प्रदेश में आर्यसमाज के प्रारम्भिक काल में जिन तेजस्वी पुरुषों ने समाज के प्रचार और महर्षि के मिशन की पूर्ति का संकल्प ग्रहण कर कार्यक्षेत्र में पदार्पण किया था उनमें बाबू मदनमोहन सेठ वकील भी प्रमुख थे। आप १९११ में सभा के मन्त्री निर्वाचित हुए तथा निरन्तर आठ वर्ष तक सफलता सहित इस पद पर कार्य करते रहे। तदुपरान्त आप कई बार सभा के प्रधान भी चुने गए। इसके बाद सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के भी कई वर्ष तक प्रधान रहे और अन्त तक किसी-न-किसी रूप में आर्यसमाज की सेवा में लगे ही रहे।

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश की रजत जयन्ती के भी आप ही संयोजक थे। आपके नेतृत्व में उत्तर प्रदेश में आर्यसमाज ने भारी प्रगति की थी।

पं० केशवदेव शास्त्री

आर्यसमाज के अवैतनिक प्रचारकों और मुख्य कार्यकर्ताओं में पं० केशवदेव शास्त्री का नाम चिरस्मरणीय रहेगा। आपने अपना सार्वजनिक जीवन रावलपिंडी से प्रारम्भ किया था। वहीं आपने आर्यकुमार सभा की स्थापना की थी। भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् के जन्मदाता भी शास्त्रीजी ही थे। आपमें नवयुवकों को अपनी ओर आकृष्ट करने की असाधारण क्षमता विद्यमान थी। रावलपिंडी में संस्कृत का अध्ययन करने के उपरांत आप संस्कृत की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए काशी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गए थे और बाद में उसी को अपना कार्य क्षेत्र बना लिया था। आपने आर्य नर-नारियों में नवजागरण का शंखनाद करने के लिए 'नवजीवन' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी निकाला था। आप जीवन की अन्तिम घड़ी तक निष्ठापूर्वक आर्यसमाज के प्रचार कार्य में लगे रहे।

विचार के पुंज ला० रामकृष्ण

पंजाब में आर्यसमाज के महात्मा दल के नेताओं में जालन्धर के सुप्रसिद्ध वकील ला० रामकृष्ण जी का स्थान अग्रगण्य था। कई दृष्टियों से आप अद्भुत व्यक्तित्व के धनी थे। आप ला० मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) के अनन्य सहयोगी रहे और लगभग ४० वर्ष तक महात्मा मुंशीराम के साथ उनका सम्बन्ध ऐसा रहा कि लोगों में वे दोनों राम-लक्ष्मण की जोड़ी के रूप में विख्यात हो गए। किन्तु इतना सन्निकट सहयोग होते हुए भी आप दोनों की प्रवृत्तियाँ सर्वथा भिन्न थीं। स्वामी श्रद्धानन्द (महात्मा मुंशीराम जी) भावुकता की प्रतिमूर्ति थे और लाला रामकृष्ण भावुकता से कोसों दूर। वस्तुतः वे विचार के पुंज थे। वे लगातार १२ वर्ष तक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान पद पर आसीन रहे। उनके अध्यक्ष काल की एक विशेषता यह रही कि बड़े-से-बड़े विक्षोभ का अवसर आने पर भी, आवेश का प्रभंजन उठने पर भी आप पर्वत के तुल्य अडिग रहते थे और प्रत्येक उलझन का मार्ग शान्त होकर खोज निकालते थे। आप जहाँ नितान्त कर्त्तव्यपरायण नेता थे, वहाँ अत्यन्त सीधे-सादे और मितभाषी मेधावी भी।

पं० गंगाप्रसाद जी एम० ए०

आर्यजगत् के स्वनामधन्य महारथियों में पं० गंगाप्रसाद जी एम० ए० का नाम भी चिरस्मरणीय है। आप अपनी विद्वत्ता और सामाजिक स्थिति के कारण सर्वत्र सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थे। समय समय पर आप आर्यसमाज के उत्सवों में भी जाते थे और प्रमुख वक्ता के नाते स्थान पाते थे। जहाँ आपने अपनी वाणी से आर्यसमाज की निष्काम सेवा की वहाँ आपकी लेखनी ने भी आर्यसमाज के प्रचार और प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। आपने अंग्रेजी और हिन्दी में भी प्रतिष्ठा योग्य पर्याप्त साहित्य की रचना की। उत्तर प्रदेश में आर्यसमाज को एक बलशाली संगठन का रूप देने में आपने प्रमुख भूमिका निभाई थी।

उन्होंने भी अन्य प्रमुख विद्वानों के समान अपने लेखों और पुस्तकों द्वारा आर्यजनों में गहन आत्म-विश्वास का सृजन किया और वैदिक धर्म के मंडन का महान् कार्य संपन्न किया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विद्वत्रत्न श्री हरविलास शारदा

राजस्थान में आर्यसमाज और सत्य सनातन वैदिक धर्म के प्रचार की पुनीत पताका स्वयं महर्षि दयानन्द ने फहराई थी। इस प्रदेश में १८८८ ई० से विधिवत् आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना हुई तो उस समय जिन कार्यकर्ताओं ने समाज के संगठन कार्य को गति प्रदान की उनमें श्री हरविलास शारदा का स्थान प्रमुख था। उन्होंने अपने जीवन में महर्षि दयानन्द सरस्वती की जीवनी अंग्रेजी भाषा में लिखने का कार्य संपन्न किया। आर्यसमाज का प्रचार कार्य राजस्थान में सुसंगठित रूप से चलाने में भी आपका प्रमुख हाथ था।

महर्षि दयानन्द की जीवनी के अतिरिक्त आपने 'हिन्दू सुपीरियारिटी' नामक एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ की भी अंग्रेजी भाषा में रचना की थी। इस ग्रन्थ में आपने सप्रमाण वैदिक धर्म तथा हिन्दू संस्कृति और सभ्यता की वरीयता सिद्ध की है और साथ ही प्राचीन भारत के उन्नत साहित्य कला कौशल एवं अन्य दृष्टियों से श्रेष्ठता का वर्णन किया है।

मा० आत्माराम अमृतसरी

युवा अवस्था से जीवन की अन्तिम घड़ी तक आर्यसमाज के प्रचार और प्रसार का सत्संकल्प ग्रहण कर जो ध्येयनिष्ठ महर्षि भक्त सक्रिय रहे उनमें प्रमुख थे मास्टर आत्माराम जी। आप अपनी प्रबल लगन के परिणामस्वरूप ही १८९५ ई० में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के मंत्री निर्वाचित हुए थे। जहाँ आप कुशल संगठक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वामी अभेदानन्द जी सरस्वती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और वक्ता थे वहाँ एक श्रेष्ठ लेखक भी थे। आपने नितान्त गहन अध्ययन किया था। आपने 'हितकारी' नामक एक पत्र का भी प्रकाशन आरम्भ किया था। उसमें वेद-प्रचार तथा आर्यसमाज के कार्यों का विवरण, लेख और समाचारों को भी स्थान दिया जाता था। कुछ समय के उपरान्त आप में अछूतोद्धार के कार्य की ऐसी लगन लगी कि आपने अमृतसर छोड़कर बड़ौदा के लिए प्रस्थान कर दिया। वहाँ उस समय के उन्नतिशील महाराजा सयाजीराव ने आपको राज्य की ओर से कथित अस्पृश्यों के लिए खोली गई शिक्षण संस्था का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया। आपके रचनात्मक कार्य का जीता जाता प्रतीक आज का बड़ौदा कन्या महाविद्यालय है।

★

डा० चिरंजीव भारद्वाज

१९वीं शताब्दी के आरम्भ में हिन्दू नारियों की दशा नितान्त दयनीय थी। पर्दा तो समाज में इस कठोरता के साथ प्रचलित था कि आर्यसमाज के आयोजनों में भी महिलाओं के बैठने के लिए जो स्थान निर्धारित किया जाता था उसके समक्ष चिकें तान दी जाती थीं। किन्तु यह हास्यास्पद सिलसिला बहुत दिनों तक न चल सका। क्योंकि आर्यसमाज के जागरूक वर्ग ने इस ढोंग के विरुद्ध उद्घोष किया।

पर्दा प्रथा के उन्मूलन हेतु जो आर्य नवयुवक सक्रिय हुए उनमें प्रमुख थे डा० चिरंजीव भारद्वाज। उन्होंने डा० धर्मवीर, डा० सुखदेव आदि उत्साही कार्यकर्ताओं के सहयोग से आर्य-धर्म सभा नामक एक संगठन स्थापित किया। डा० भारद्वाज के नेतृत्व में उत्साही आर्ययुवक इस कुप्रथा और जाति-पाँति की विभीषिका के विरुद्ध सक्रिय हो उठे। उनकी इन गतिविधियों से कई 'सुस्त गति' के पक्षपाती आर्यसमाजी कार्यकर्ता कुछ रुष्ट भी हुए। विधवा विवाह की दिशा में भी यह नव-स्थापित संगठन सक्रिय रहा। इसकी गतिविधियों के संचालन और विस्तार का श्रेय मुख्य रूप से डा० भारद्वाज को ही दिया जा सकता है। उनकी उग्रता की पराकाष्ठा यहाँ तक थी कि वे इस बात पर बल दिया करते थे कि आर्यपुरुषों के सिर और दाढ़ी मूंछ के बाल भी उस्तरे से मुंडवा कर रखने चाहिए। इसी कारण कई आर्यसमाजी आर्य धर्म सभा को सिरमुन्नी सभा भी कहते थे।

★

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पं० रामभजदत्त चौधरी

आर्य समाज के प्रारम्भिक दिनों में जिन ध्येयनिष्ठ विद्वान् जनों ने वैदिक धर्म के प्रचार हेतु अपनी पूर्ण शक्ति लगाई थी, उन्हीं में से थे पं० रामभजदत्त चौधरी। आप लाहौर के सुप्रसिद्ध वकील थे। आपने अपनी विद्वत्ता से अनेक युवकों को आर्यसमाज की ओर आकृष्ट किया था। आप सरीखे मनस्वियों के प्रयास का ही यह परिणाम था कि लाहौर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव का महत्त्व केवल पंजाब तक ही सीमित न रहकर उससे भी बहुत अधिक बढ़ गया था। १८९९ में तो लाहौर आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव में उत्तर प्रदेश की भी कई भजन मंडलियों ने भाग लिया था। इसी अवसर पर पं० रामभजदत्त ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर सविस्तार प्रकाश डाला था।

मुंशी लक्ष्मणस्वरूप

१९वीं शताब्दी में जब अनेक कर्मठ आर्यजन महर्षि के संदेश को ग्राम-ग्राम और नगर-नगर तक पहुँचाने के लिए सक्रिय हो उठे थे तो लाहौर में प्रतिनिधि सभा की बैठक के समय मेरठ के कुछ प्रतिनिधि भी दर्शक रूप में उपस्थित हुए थे। तदुपरांत २८-२९ दिसम्बर, १८८६ ई० को आर्यसमाज मेरठ के उत्सव के साथ ही प्रतिनिधियों का जमाव भी हुआ। उस समय पश्चिम उत्तर प्रदेश तथा अवध की ४८ आर्यसमाजों के प्रतिनिधि एकत्रित हुए थे। उस अवसर पर मुंशी लक्ष्मणस्वरूप जी का योगदान इस सारे आयोजन में उल्लेखनीय रहा था। उस समय कार्य संचालन के लिए जो चुनाव किया गया था उसमें भी मुँशी जी को ही आर्य समाज का प्रधान बनाया गया। आपने आजीवन नितांत श्रद्धा और विश्वास के साथ आर्य समाज का कार्य किया था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

श्री अमन सिंह

महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द जी) ने जब गुरुकुल शिक्षा पद्धति के पुनरुद्धार हेतु गुरुकुल की स्थापना का निश्चय किया तो उस समय जिस निष्ठावान् महर्षि भक्त ने गुरुकुल कांगड़ी के लिए भूमि प्रदान की थी, वह थे चौधरी अमनसिंह । आप नजीबाबाद के सुप्रसिद्ध रईस थे और आपने श्यामपुर कांगड़ी स्थित अपनी जमींदारी की १२० बीघा जमीन तो स्वामी श्रद्धानन्द जी को दी ही साथ ही ११ हजार रुपये दान में भी दिया । आप वैदिक शिक्षा के प्रति अनन्य निष्ठा रखते थे ।

राजा महेन्द्रप्रताप

राजा महेन्द्रप्रताप का नाम स्वदेश के उन वरेण्य क्रान्तिदूतों में अग्रगण्य है, जिन्होंने मातृभूमि को दासता के बन्धनों से मुक्त कराने के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया । आप मुरसान राज्य के भूतपूर्व शासक हैं । किन्तु महर्षि दयानन्द द्वारा दिए गए स्वराज्य के महान् मन्त्र की अनुगूंज यौवन में ही आपके कानों में गूंज उठी थी । उसी से प्रेरित होकर आपने वृन्दावन में गुरुकुल के निर्माण हेतु भूमि प्रदान की । आप स्वराज्य प्राप्ति की अग्नि को हृदय में बसाकर अनेकों विदेशों में भी क्रान्ति की अग्नि को प्रज्वलित करते हुए घूमे और आपके नेतृत्व में ही स्वतन्त्र भारत की प्रथम निर्वाचित सरकार का जन्म भी विदेशों में सम्पन्न हुआ ।

आप भारतीय स्वतन्त्रता के बाद मथुरा से लोकसभा के सदस्य भी रहे और इस वृद्धावस्था में भी देशभक्ति की भावनाओं और मानव मात्र में सत्य धर्म की प्रवृत्ति जगाने के लिए सक्रिय हैं तथा स्वयं को बड़े गौरव के साथ आर्यान देशान कह कर सम्बोधित करते हैं ।

कुँ० चांदकरण शारदा

अजमेर के शारदा परिवार का आर्य समाज और हिन्दू संगठन में महान् योगदान रहा है । देशभक्त कुँ० चाँदकरण शारदा इसी परिवार के [illegible] । आपने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्य समाज के कार्य को विस्तार देने में केवल राजस्थान ही नहीं अपितु समस्त भारत में प्रमुख योगदान दिया था। आप हिन्दू महासभा के प्रमुख नेताओं में से भी थे।

कुं० चाँदकरण शारदा ने हैदराबाद में आर्य समाज के नेतृत्व में हुए महान् धर्मयुद्ध में भी सक्रिय योगदान दिया था और आर्य समाज द्वारा चलाए गए शुद्धि तथा शिक्षा प्रचार के कार्यों में भी आप आजीवन पूर्ण निष्ठा सहित लगे रहे। आप सिद्धान्तों के सम्बन्ध में कभी भी समझौता न करने वाले महान् आर्य सेनानियों में से थे।

पं० विश्वनाथ जी

महर्षि दयानन्द ने आर्य जाति को संस्कारों के नाम पर चल रहे कुसंस्कारों से मुक्ति का जो मार्ग दिखाया था, उस पर चलने वाले जिन आर्यजनों को नितांत ही कठोर परीक्षाकाल से गुजरना पड़ा उन्हीं में से एक थे पं० विश्वनाथ शर्मा भी। विधवा विवाह का भी आर्य समाज ने प्रचार डटकर किया। सर्वप्रथम इस ओर पग बढ़ाने वालों में जो महर्षि भक्त शामिल थे, उन्हीं में से एक थे पं० विश्वनाथ शर्मा। आप कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और आपने श्री भगवानदीन की विधवा कन्या से विवाह कर अपने समय में बड़ा ही साहसपूर्ण पग उठाया था।

पं० घासीराम

आर्यजगत् में पं० घासीराम जी एम० ए० का नाम भी चिरस्मरणीय रहेगा। आप की गणना आर्य समाज के सुप्रसिद्ध विद्वानों में की जाती है। सन् १९२५ में शिवरात्रि के अवसर पर मथुरा में महर्षि दयानन्द की जन्म शताब्दी समारोह नितांत धूमधाम से मनाया गया था। इस अवसर पर धर्म परिषद् का भी आयोजन किया गया। इस परिषद् में जिन विद्वानों ने भाग लिया उनमें पं० घासीराम भी प्रमुख थे और आपने ईश्वर-जीव और प्रकृति विषय का जो निबन्ध वहाँ पढ़ा था वह अपने आप में एक ऐसा निबन्ध है कि जिससे अनेक पथ भ्रमित जन नव चैतन्य और नई दृष्टि पा सकते हैं।

आप आजीवन निःस्वार्थ भाव से आर्यसमाज की सेवा में लगे रहे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ला० नारायणदत्त जी

ला० नारायणदत्त जी दिल्ली के प्रमुख आर्य समाजी नेता थे। आपने आजीवन आर्य समाज की निःस्वार्थ भावना से सेवा की थी तथा आर्यसमाज को यथाशक्ति आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया था। दिल्ली में हुए आर्य सम्मेलनों की सफलता में भी लाला जी का योगदान नितांत महत्त्वपूर्ण रहा। आप सार्वदेशिक सभा के कोषाध्यक्ष भी रहे। उनकी प्रेरणा पर ही सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड की योजना ६ अक्तूबर, १९४७ को क्रियान्वित हुई थी और उसके बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स में भी आप शामिल थे। बोर्ड के प्रथम प्रधान भी आप ही थे। कम्पनी ने ही सार्वदेशिक प्रेस की भी स्थापना भी की थी और पुण्यभूमि नामक एक साप्ताहिक पत्र भी निकाला था जो १९५१ ई० के जुलाई मास तक चला। किन्तु बाद में आपसी कलह के कारण यह बन्द करना पड़ा। लालाजी का हिन्दू महासभा के नेताओं में भी प्रमुख स्थान था।

पं० पद्मसिंह शर्मा

गुरुकुल कांगड़ी के कार्यकर्ताओं में प्रारम्भ में कतिपय प्रश्नों पर मतभेद हो जाने के फलस्वरूप-पं० पद्मसिंह शर्मा गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में आ गए थे। अंग्रेजी शिक्षा का समावेश भी इस मनोमालिन्य का एक प्रमुख कारण था। इसी महाविद्यालय ज्वालापुर में पंडितजी चार वर्ष तक भारतोदय के संपादक के रूप में कार्यरत रहे थे। आप गुरुकुल कांगड़ी में भी कई वर्ष तक संस्कृत के अध्यापक रह चुके थे। आप विज्ञान और अंग्रेजी को गुरुकुलीयता का विरोधी मानते थे, इसीलिए गुरुकुल से पृथक् होकर महाविद्यालय ज्वालापुर में चले गए थे।

★

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आचार्य रामदेव जी

आचार्य रामदेवजी का भी आर्य विद्वानों में प्रमुख स्थान रहा है। आप पहले जालंधर के हाई स्कूल में प्रधानाध्यपक थे। किन्तु गुरुकुल की स्थापना होने पर आपने उस पद का त्याग कर निर्वाहमात्र पर गुरुकुल में कार्य करना स्वीकार कर लिया था। जब आचार्य गंगादत्त जी ने गुरुकुल छोड़ दिया था तो मास्टर (आचार्य) रामदेव जी ने ही वहाँ मुख्याध्यापक का पद संभाला था। उनकी देखरेख में गुरुकुल का विकास निश्चित दिशा में जारी रहा।

आचार्य रामदेव जी का शैक्षणिक ही नहीं अपितु आर्य समाज की अन्य गतिविधियों में भी प्रमुख स्थान रहा है। आप अपने मंतव्य पर इस्पात के समान दृढ़ रहते थे। आपकी स्मरण शक्ति बड़ी प्रबल थी। आपके भाषणों में उद्धरणों और प्रमाणों की भरमार रहती थी।

पं० पूर्णानन्द जी

महर्षि दयानन्द के मन में निरन्तर यह इच्छा रही थी कि देश-देशान्तरों में वैदिक धर्म का प्रचार किया जाए। विदेशों में रहने वाले भारतीयों में वैदिक धर्म की भावनाओं का पुनर्जागरण भी युग की आवश्यकता रहा है। आर्यसमाज के आह्वान पर विदेशों में धर्म का ज्ञान प्रसार करने के लिए जो मनीषी सन् १९०४ ई० में सर्वप्रथम नैरोबी गया था, उसी का नाम था पं० पूर्णानन्द।

पं० पूर्णानन्द जी पहले संन्यासी थे। आपने छोटी आयु में ही संन्यास ले

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लिया था। आप संस्कृत के प्रकांड पंडित और कुशल वक्ता भी थे। प्रचार कार्य में आरम्भ से ही आपके सिर पर सफलता का सेहरा बँधा था। किन्तु कुछ समय के उपरांत ही आपने ऐसा अनुभव किया कि यौवनावस्था में ही संन्यास ले लेना सामान्य स्थिति में उचित नहीं है। सर्वसाधारण के लिए यही नियम उचित है कि युवा अवस्था में गृहस्थ बने और वृद्धावस्था में संन्यास ग्रहण करे। मन में जब यह विचार उत्पन्न हुआ तो आपने बड़े साहस का परिचय दिया और भगवे वस्त्र उतार कर विवाह कर लिया।

पंडित जी ने चिरकाल तक आर्यसमाज की महान् सेवा की। आपकी गणना आर्यसमाज के शास्त्रार्थ महारथियों में की जाती थी। विदेशों में आप ही वैदिक धर्म के प्रथम प्रचारक थे।

पं० बालकृष्ण शर्मा

आर्यसमाज के प्रारम्भिक दिनों में आर्यसमाज के जो विद्वान् प्रचारक थे उनमें बम्बई के पंडित बालकृष्ण शर्मा को उच्च स्थान प्राप्त था। आप एक उद्भट विद्वान् और प्रभावशाली व्याख्याता थे। आपका स्वभाव भी बहुत सौम्य था। शर्माजी मराठी के अतिरिक्त संस्कृत के भी प्रकांड पंडित थे। मथुरा शताब्दी पर जो विद्वत् सभा हुई थी, उसके सभापति भी आप ही बनाए गए थे। इसके अतिरिक्त आप राजाराम कालेज कोल्हापुर में धर्म शिक्षा के महोपाध्याय भी रहे।

स्वामी सत्यानन्द जी

प्रारम्भिक युग के सार्वदेशिक ख्याति प्राप्त संन्यासी प्रचारकों में मधुरभाषी स्वामी सत्यानन्द जी का नाम भी चिरस्मरणीय रहेगा। आर्यसमाज में प्रवेश करने से पहले आप जैन मत के गुरु थे। युवा होते हुए आप अपने निर्मल चरित्र तथा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भाषण-शक्ति के कारण जैनियों में पूज्य माने जाते थे। ईश्वर में दृढ़ विश्वास ही उन्हें आर्यसमाज में खींच लाया था। उन्होंने १८९९ में वैदिक धर्म की दीक्षा ली। आपका जीवन जब साधना की सान पर चढ़ा तो दमक उठा। आर्यसमाज में आने के बाद आपने अपने अध्ययन को और भी अधिक परिमार्जित किया। आपने अनेक वर्षों तक वेदादि धर्मग्रन्थों तथा महाभारत, रामायण आदि ऐतिहासिक ग्रन्थों का भी पारायण किया।

आपने आर्यसमाज की वेदी से कथाओं द्वारा धर्म का संदेश सुनाना आरम्भ किया और इसमें आपको भारी सफलता भी मिली। आपकी कथाएं कभी-कभी तो एक-एक मास तक चला करती थीं।

स्वामी मुनीश्वरानंद

उन्हीं दिनों के अन्य संन्यासी प्रचारकों में स्वामी मुनीश्वरानन्द का नाम भी उल्लेखनीय है। आपने बिहार को अपना कार्यक्षेत्र बनाकर वहाँ वैदिक धर्म की दुन्दुभि बजाई थी। इस प्रदेश में आर्यसमाज के आन्दोलन को जो गति मिली उसमें आपका योगदान चिरस्मरणीय रहेगा। आप नीर-क्षीर-विवेक के सिद्धान्त को मानते थे।

स्वामी सर्वदानंद

अपनी व्याख्यान रूपी शंखध्वनि से आर्य (हिन्दू) जनता की प्रगाढ़ निद्रा को तोड़ने वाले महान् आर्य संन्यासी थे स्वामी सर्वदानन्द। उनका जन्म तो पंजाब में हुआ था, किन्तु समग्र भारत ही उनका कार्यक्षेत्र रहा। उनकी भाषा में साधारण-सा पंजाबीपन जीवन के अन्त तक रहा। अतएव कुछ लोग इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते थे कि स्वामी जी का जन्म पंजाब में हुआ होगा। भाषा तो आपकी बड़ी सरल थी, किन्तु ऐसी हृदयस्पर्शी कि एक-एक वाक्य श्रोता के हृदय को छू जाता था। आपकी एक अन्य विशेषता यह थी कि आप कटु सत्य कहने में भी संकोच न करते थे। वस्तुतः आपका प्रत्येक व्याख्यान एक चेतावनी ही होता था।

आपका जन्म सं० १९१६ में होशियारपुर नगर के समीप स्थित बड़ी बस्सी नामक ग्राम में सुप्रसिद्ध विद्वानों के कुल में हुआ था। बाल्यकाल से ही आपकी रुचि सत्संग के प्रति थी। इस कारण जब गृहस्थ हो जाने के कुछ दिन उपरान्त आपकी जीवन-संगिनी चल बसीं तो आप गृह त्याग कर विरक्त अवस्था में विचरने लगे। सं० १९५३ के लगभग सत्यार्थ प्रकाश के पाठ द्वारा आपमें लोकसेवा का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तीव्र भाव जाग उठा। तदुपरांत आप निरन्तर स्थिरमति होकर सद्-विचार और निष्काम कर्म के मार्ग को अपनाकर सं० १९९९ तक लगातार ४६ वर्ष निष्ठापूर्वक कार्यरत रहे।

●

स्वामी अनुभवानन्द जी

जब आर्यसमाज का यौवनकाल था तो इस मंच पर अनेक ऐसे कर्मठ प्रचारक आए थे कि जिन्होंने अहर्निश कर्मरत रहकर वैदिक धर्म के प्रचार के व्रत का निर्वाह किया था। उन्हीं में से एक थे स्वामी अनुभवानन्द जी। आर्यसमाज में आने से पूर्व आप एक सनातन मठ के समृद्धिशाली मठाधीश थे। आप एक कुशल वक्ता थे, तो उद्भट विद्वान् भी। आपने वृद्धावस्था तक सारे देश में घूम-घूम कर वैदिक धर्म का प्रचार और प्रसार किया था।

●

श्री ताराचंद जी गाजरा

श्री ताराचन्द जी गाजरा गुरुकुल कांगड़ी में उन दिनों आंग्ल भाषा के सहायक उपाध्याय थे, जिन दिनों महात्मा मुंशीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द) स्वयं वहां आचार्य थे। सिन्ध प्रांत में जो १९४७ तक भारत का ही भाग था आर्यसमाज के कार्य को गति प्रदान करने वाले ध्येयनिष्ठ आर्यजनों में श्री गाजरा का प्रमुख स्थान था। आपके प्रयासों से सिन्ध में हैदराबाद के धर्मयुद्ध में भाग लेने के लिए अनेक सत्याग्रही आए तो दलितोद्धार, वेद प्रचार एवं आर्य वीर दल के संगठन में भी आपका उल्लेखनीय योगदान रहा।

प्रो० ताराचन्द गाजरा ने आर्य प्रतिनिधि सभा सिन्ध की ओर से सत्यार्थ प्रकाश का प्रकाशन किया तो १० अक्तूबर, १९४६ को सिन्ध सरकार की ओर से उस पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। इस अन्यायपूर्ण प्रतिबन्ध को समाप्त कराने में श्री खुशहालचन्द खुरसंद (महात्मा आनन्द स्वामी) ने प्रमुख भूमिका निभाई थी।

★

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ठा० माधोसिंह

आर्यसमाज ने इस देश के सामाजिक क्षेत्र में जो महान् योगदान दिया है उसी में से एक है शुद्धि आन्दोलन। स्वामी श्रद्धानन्द ने इस अभियान को प्रभावी रूप से गतिमान किया था। आपने अपने प्रयास से क्षत्रिय महासभा के कर्णधारों को इस बात के लिए प्रेरित किया था कि वे अपने राजपूत भाइयों को पुनः अपने साथ मिला लें जो अतीत में हिन्दू जाति से कई कारणों से अलग हो गए थे। स्वामी श्रद्धानन्द ने शुद्धि कार्य को गतिमान करने के लिए भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा के नाम से जो संस्था गठित की थी, उसके अध्यक्ष जहाँ स्वामी श्रद्धानन्द बने थे, वहाँ उसके महामंत्री का दायित्व कुंवर माधोसिंह जी को सौंपा गया था।

आपने नितान्त निष्ठा से शुद्धि यज्ञ को प्रबल किया और सहस्रों राजपूत, गूजर तथा अन्य सैनिक वृत्ति के उन लोगों को पुनः वैदिक धर्म की गोदी में ला बैठाया, जिनके पूर्वज अन्य मतों की शरण में चले गए थे। शुद्धि आन्दोलन में आपका योगदान सदैव उल्लेखनीय रहेगा।

यज्ञ की वेदी से पुकारता हूं......

अग्नि प्रदीप्त है यज्ञ कुण्ड में, ज्योति पुंज दहक रहा है,
आत्मसात करने को, कलुष और अन्तर की कालिमा,
भाग जाए इसलिये, यज्ञ की वेदी से आहुति देने का—
सभी को निमंत्रण दे रहा हूँ।
आसन बिछे हैं, घृत सामग्री भी तैयार है। किन्तु होता नहीं,
ब्रह्मा, यजमान, पुरोहित नहीं, आसन खाली है,
और अग्नि पुकार रही है, आओ मन्त्रोच्चार कर आहुति दो।
पर सभी पता नहीं कहाँ चले गये।
कौन जाने किस माया से छले गये ?

हम यज्ञ की वेदी से दूर भाग रहे हैं। प्राणों की पीड़ा अंतर में नृत्य कर रही है।
जीवन का सौरभ खोया खोया सा, घुमड़ घुमड़ कर विलीन हो चुका।
कुछ पाना है पर कैसे, यह प्रश्न है जिसका उत्तर, किसी के पास नहीं है।
और मैं अभी तक पुकार रहा हूँ, आओ यज्ञ की वेदी पर आओ !
मिल कर बैठो, एक साथ आहुति दो उन सबकी, जिसने तुम्हें छला है।
अंतर का प्रकाश मन की थिरकन, सभी कुछ मिलेगा, पर अरे !
यज्ञ वेदी पर तो आओ !

—भारतेन्द्र नाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैदराबाद धर्म युद्ध के अमर बलिदानी

★

सत्य के मार्ग पर पग बढ़ाने वाले व्यक्ति को स्वजीवन में त्याग और बलिदान को ही अपना सम्बल मानकर कर्त्तव्य पथ पर पग बढ़ाना होता है। अतएव जिस संगठन का प्रादुर्भाव ही सत्य धर्म के प्रचार प्रसार हेतु हुआ हो उसके जीवन में भी त्याग और बलिदान की प्रक्रिया का समावेश सुनिश्चित है। एतदर्थ आर्य समाज ने भी अपने १०० वर्ष के जीवन में अधर्म और अन्याय के विरुद्ध संघर्षरत रहते हुए अनेकानेक बलिदान दिए हैं। हैदराबाद में १६३६ में धर्म और नागरिक स्वातन्त्र्य के लिए उसके द्वारा किया गया निःशस्त्र प्रतिकार आंदोलन भी इस महा-संगठन के इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ है। इस अध्याय की रचना अनेक आर्य हुतात्माओं ने स्वजीवन प्रसून समर्पित कर और पाशवी सत्ता को परास्त कर की थी तो सहस्रों ने कारावरण कर मजहबी उन्माद की अलम्बरदार हैदराबाद (दक्षिण) की निजामी सत्ता का दर्प चकनाचूर किया था।

उल्लेखनीय है कि १६३६ के दिन वे दिन थे, जब हैदराबाद रियासत की सत्ता मतान्ध शासक के हाथों में थी। उसका लक्ष्य था हिन्दू जनसंख्या का ह्रास और मुस्लिम जनसंख्या की वृद्धि। आर्य समाज का प्रचार और प्रसार उनके नापाक इरादों को खाक में मिलाता सा लगा तो पाशवी सत्ता क्रोध में तप्त हो उठी और धीरे-धीरे हैदराबाद की निजामी सत्ता ने हिन्दुओं और विशेषतः आर्यसमाजियों के लिए धार्मिक कृत्य और साप्ताहिक सत्संग तथा मन्दिरों में पूजन वन्दन में भी व्यवधान डाल दिया। प्रतिबंधों की यह श्रृंखला इतनी कठोर बनी कि राज्य की आज्ञा बिना मन्दिरों का निर्माण ही नहीं अपितु उन पर पताकाएं फहराना भी संभव न रह गया। उन अंकुशों के विरुद्ध निरन्तर ६ वर्ष आर्य समाज के अधिकारी वृन्द संबद्ध शासकों से पत्रव्यवहार करते रहे। अन्ततः उर्दू की उक्ति 'तंग आमद बजंग आमद' चरितार्थ हो उठी और ३० जनवरी १६३६ से आर्य समाज ने अन्याय और दमन के विरुद्ध अहिंसात्मक ढंग से धर्मयुद्ध आरम्भ कर दिया। इस महान् आंदोलन में स्वातन्त्र्यवीर सावरकर के नेतृत्व में हिन्दू महासभा का पूर्ण सहयोग आर्य समाज को मिला।

आंदोलन का श्रीगणेश हुआ तो आसेतु-हिमाचल विभिन्न प्रदेशों से आर्य जनों, हिन्दुत्व प्रेमियों के दल के दल आकर प्रतिबंधों को भंग करते हुए हैदराबाद राज्य में प्रविष्ट होने लगे। राज्य के अधिकारियों ने इन धर्मवीरों को कारागारों में असह्य यातनाएं दी। इन अमानुषिक अत्याचारों के कारण २८ धर्मवीरों का राज्य की जेलों में प्राणान्त हो गया तो कई ऐसे भी नरवीर थे जो इन यातनाओं से इतने टूट चुके थे कि रिहाई के कुछ ही दिनों बाद वे अपनी नश्वर काया को त्यागकर अनश्वर वीरत्व में परिणत हो गए। किन्तु इन सबका त्याग और बलिदान रंग लाया और निजामशाही को झुकना पड़ा और विजयश्री ने आर्य समाज का वरण किया।

इस महान् सत्याग्रह संग्राम के बलिदानी वीरों की प्रेरणाप्रद झलक यहाँ प्रस्तुत है:—

धर्मवीर पं० श्यामलाल

हैदराबाद धर्मयुद्ध के अमर बलिदानी वीरों में अग्रगण्य थे धर्मवीर पं० श्यामलाल। यह नरपुंगव हैदराबाद राज्य के बीदर जिले के आलकी नामक ग्राम में उत्पन्न हुआ था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आपके पिता पं० भोलानाथ थे कट्टर सनातनी पौराणिक सज्जन। पैतृक परम्परा ने श्यामलाल जी को भी मारुति और माणिक प्रभु के देवालयों के प्रति आस्था जगा दी थी। पिताश्री का देहांत हो जाने के उपरांत श्यामलाल जी का संपर्क राज्य के सुप्रसिद्ध आर्य मनीषी पं० वंशीलाल और गोकुल प्रसाद जी से हुआ और आपने महर्षि दयानन्द प्रणीत ग्रन्थों का अध्ययन किया तो आपकी विचारधारा को नया मोड़ मिला और आप आर्य समाज के सभासद् बन गये। आप आर्य समाज के प्रेम में ऐसे रंगे कि उसी के हो गए। उनकी वैदिक धर्म निष्ठा की पराकाष्ठा का परिचय हैदराबाद हाई कोर्ट के तत्कालीन न्यायाधीश असग़र यार जंगबहादुर ने लिखा था कि इसे धार्मिक पागलपन है।

१९३१ ई० में जब हैदराबाद राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना हुई तो तीन वर्ष उपरांत अर्थात् १९३४ में पं० श्यामलाल जी उसके मंत्री निर्वाचित हो गए। निर्भीकता ही उनका स्वभाव था और सत्य हेतु संघर्ष ही दैनिक जीवन वृत्त। अंतः आपदाओं का आना भी स्वाभाविक ही था। ऐसा ही हुआ और मतोन्मादी सत्ता ने अनेक जाली अभियोग रचकर पंडित जी को फंसाने की चालें चलीं। १९३८ ई० में उदगीर में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ तो जो १८ हिन्दू बन्दी बनाये गए, उनमें पंडित श्यामलाल जी भी सम्मिलित थे। कारागार की यमयातनाओं के परिणाम स्वरूप आपका स्वास्थ्य गिरता गया। नेत्र की शल्य क्रिया हुई तो अत्याचारी अधिकारियों ने डाक्टरों द्वारा निर्धारित पथ्य भी न दिया। परिणामतः एक नहीं अनेक बार आपको अनशन करना पड़ा। अन्ततः कारागार में ही १६ दिसम्बर, १९३८ को आपका स्वर्गवास हो गया। उस समय शोलापुर के प्रसिद्ध डाक्टर श्री नीलकंठ राव एल० एम० एस० के० एल० ओ० (विएना) ने शव परीक्षा करने के उपरांत यह टिप्पणी की थी—"पेट सिकुड़ कर पीठ से जा लगा था। हाथ के नाखून काले पड़ गए थे। दाईं टांग के गिट्टे के पास आधा इंच घेरे का एक घाव पाया गया। दाईं टांग पर भी एक लम्बा घाव था। इन चिह्नों से यह संशय प्रकट किया गया कि उन्हें कोड़े मारे गए थे तथा अन्य प्रकार की यातनाएँ दी गयी थीं।"

जिन दिनों सत्याग्रह का शंखनाद करने के लिए शोलापुर में आर्य महासम्मेलन की तैयारियाँ की जा रही थीं उनका अन्तिम संस्कार नितान्त श्रद्धा सहित सम्पन्न हुआ।

हुतात्मा प्रवर : स्वामी सत्यानंद

राम और कृष्ण की जन्मदायिनी उत्तर प्रदेश की धरती में जन्म ग्रहण कर एक निर्भीक युवक ने देव दयानन्द द्वारा प्रदर्शित पावन पथ का अवलम्बन कर स्वयं को धर्म प्रचारार्थ समर्पित कर संन्यास की दीक्षा लेकर नाम ग्रहण किया था स्वामी सत्यानन्द। उन्होंने निरन्तर २० वर्ष तक दक्षिण भारत में वैदिक धर्म के प्रचारार्थ अहर्निश प्रयास किया। अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानंद के बलिदान से प्रेरणा ग्रहण कर उन्होंने बंगलौर में उनके नाम पर एक आश्रम भी स्थापित किया था। हैदराबाद में निजामशाही के अत्याचार के विरुद्ध आर्य समाज का आह्वान हुआ तो आप भी १८ वानप्रस्थी साथियों सहित धर्म युद्ध में कूद पड़े। गुलबर्गा में वे सत्याग्रह करते हुए बंदी बना लिए गए। तदुपरान्त उन्हें चंचलगुडा कारागार में आबद्ध कर दिया गया। यहाँ अत्याचारी सत्ता के इंगित पर कारा के क्रूर अधिकारियों ने आपको अनेक अवर्णनीय यातनाएँ दीं जिनके परिणामस्वरूप आपका निधन हो गया।

सरकार ने आपके निधन पर सफाई प्रस्तुत करते हुए घोषणा की कि "२३

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अप्रैल को जब स्वामी जी को कारागार में लाया गया तो आप तीव्र ज्वर से पीड़ित थे। २६ अप्रैल को आपको उस्मानिया अस्पताल में दाखिल करा दिया गया। यहाँ अगले दिन हृदय-गति अवरुद्ध हो जाने के परिणामस्वरूप मृत्यु हो गई। सरकारी डाक्टर ने शव की जांच के बाद प्रमाणित किया कि शरीर पर घाव का कोई चिह्न नहीं है।"

अगले दिन आपकी पार्थिव देह आर्य समाज के एक प्रतिनिधि को सौंप कर उनसे उस आशय की रसीद प्राप्त कर ली गयी थी कि शव अच्छी हालत में पाया गया। सरकार से कोई अन्य शिकायत न की गई और शव का दाह संस्कार सम्पन्न कर दिया गया। किन्तु वस्तुस्थिति तब सामने आई जब शव की जांच करने वाले डा० अंचोलीकर का प्रतिवेदन समक्ष आ गया। इसमें कहा गया था कि स्वामी जी के बाएँ कान के पीछे घाव और रक्त जमा हुआ था। इसमें यह भी बताया गया कि आंख के समीप तथा पीठ और भुजाओं पर भी चोट के कुछ निशान थे।

इसके उपरांत् एक और सूत्र से भी सरकारी घोषणा के तथ्यानुरूप न होने की पुष्टि हुई। क्योंकि आर्य समाज सुलतानपुर के मंत्री पं० श्रीराम शर्मा का भी २८ अप्रैल का एक पत्र मिला, जिसमें उन्होंने लिखा कि "स्वामी जी ने हवन न करने देने पर २३ सत्याग्रहियों के साथ भूख हड़ताल की हुई थी।" इसके अतिरिक्त जेल से शव को लाने वाले श्री चन्द्रपाल ने भी बताया कि स्वामी जी के कान तथा नेत्र के निकट घाव थे। इसके अतिरिक्त कई अन्य आर्यजनों ने भी इन्हीं तथ्यों की पुष्टि की।

इस प्रकार स्वामी सत्यानन्द ने धर्म और न्याय के लिए संघर्षरत रहकर स्वजीवन प्रसून जन स्वातन्त्र्य हेतु समर्पित कर अमरत्व को प्राप्त किया था।

हुतात्मा युवक : श्री परमानन्द

तरुणाई जब ध्येयनिष्ठ बनकर कर्त्तव्य पूर्ति की दिशा में प्रवृत्त हो उठती है तो राष्ट्र की जीवन शक्ति प्रखर हो उठती है और जब वह रास रंग की रंगीनी में सराबोर होने लगती है तो जाति के दुर्दिन आ जाते हैं। हैदराबाद के धर्मयुद्ध के समय भी राष्ट्र की तरुणाई ने नागरिक स्वातन्त्र्य की रक्षार्थ सक्रिय होकर जातीय जीवन में शक्ति का ज्वार सरसाया था।

उसी ऐतिहासिक निःशस्त्र प्रतिकार आन्दोलन में हरिद्वार निवासी श्री गोकुल प्रसाद के सुपुत्र श्री परमानन्द भी हिन्दुत्व और वैदिक धर्म के हैदराबाद में हो रहे अपमान का प्रतिकार लेने हेतु सिद्ध होकर वहाँ पहुंचे। आपकी आयु केवल २० वर्ष की ही थी। आपने भी सत्याग्रह किया और २० सत्याग्रहियों के साथ लातूर कारागार में बन्दी बना दिए गए। गुलबर्गा से उन्हें भी चंचलगुडा कारागार पहुंचा दिया गया, जहाँ से १ अप्रैल को आपका देहान्त होने का समाचार प्राप्त हुआ।

सरकारी विज्ञप्ति में तो यही कहा गया कि मानसिक चिकित्सालय में सामान्य अवस्था में ही आपकी मृत्यु हुई और आपकी देह पर घाव के कोई चिह्न न थे। किन्तु एक बात उल्लेखनीय है कि इससे पूर्व परमानन्द जी के मानसिक विकार से ग्रस्त होने की कोई जानकारी नहीं दी गई थी। अन्य साक्षियाँ भी सरकारी दावे के झूठ का पर्दाफाश कर रही थीं। इसके अतिरिक्त डा० फड़के ने तो नाक के निकट चोट होने और नाक से रक्तस्राव का भी रहस्योद्घाटन किया था।

डा० फड़के ने कहा था कि परमानन्द जी की बाईं भुजा पर भी तीन इंच लम्बा एक तिरछा घाव था और दाईं भुजा तथा छाती पर भी आघात लगने से व्रण

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हो गए थे तथा नाक और मुख की परीक्षा के समय भी रक्त बह रहा था। पं० धर्मदत्त एवं श्री चन्द्रपाल को जेल से शव लेने में भी घोर प्रयास करने के उपरान्त ही सफलता प्राप्त हुई थी। डा० फड़के ने यह भी सुस्पष्ट मत व्यक्त किया था कि शव का विस्तृत पोस्टमार्टम होना अपेक्षित था। इन सब तथ्यों से स्पष्ट है कि श्री परमानन्द ने रोगग्रस्त होकर नहीं अपितु क्रूरता और अत्याचारों से त्रस्त होकर अपने प्राण जाति के सम्मान और स्वाभिमान को अक्षुण्ण रखने की खातिर प्रदान कर जामे शहादत का पान किया था।

युवा शहीद : विष्णु भगवंत तेन्दुरकर

वैदिक धर्म का आदेश है कि प्रत्येक व्यक्ति श्रद्धावान् बने तथा अपने कार्यों, संकल्पों, उद्देश्यों और आदर्शों में पूर्ण विश्वास और निष्ठा रखे। वह 'हविर्दान' का जीवन विताए और अपने कार्यों, संकल्पों, उद्देश्यों और आदर्शों की सिद्धि हेतु सब प्रकार के त्याग और बलिदान के लिए उद्यत रहे। आवश्यकता पड़ने पर वह अपने प्राणों की आहुति देने हेतु भी तत्पर रहे।

उसी वैदिक आदर्श को जीवन में चरितार्थ करने वाले वीर युवक थे विष्णु भगवंत तेन्दुरकर। आप हैदराबाद राज्य के तेन्दुर नामक स्थान के निवासी थे। बाल्यकाल से ही जहाँ हिन्दुत्व के प्रति अडिग आस्था आपके मानस पटल पर घर किए हुए थी, वहाँ निजामी राज्यसत्ता के दमन और उत्पीड़न की कसक भी आपके हृदय को कुरेदती थी। अतएव जब १९३९ ई० में आर्य समाज एवं हिन्दू महासभा ने अन्यायी सत्ता के विरुद्ध संग्राम का शंखनाद किया तो यह ३० वर्षीय युवक भी समरांगण में कूद पड़ा।

विष्णु भगवंत तेन्दुरकर गुलबर्गा में सत्याग्रह करते हुए गिरफ्तार हुए और वहाँ से आपको हैदराबाद कारागार में भेज दिया गया। वहीं १ मई को आपका निधन हुआ। सरकारी अधिकारी इसी प्रकार से अन्य कई सत्याग्रहियों के प्राण उत्पीड़न और दमन द्वारा ले चुके थे। उनके पास कारागार में किसी सत्याग्रही का प्राणान्त हो जाने की स्थिति में जनता की आँखों में धूल झोंकने के गढ़े-गढ़ाये बहाने थे। अतएव श्री तेन्दुरकर के निधन पर भी घोषित कर दिया गया कि उदर रोग से पीड़ित होने के कारण ३० अप्रैल को उन्हें उस्मानिया अस्पताल में भेज दिया गया था, जहां हृदय-गति अवरुद्ध हो जाने से १ मई को उनका देहान्त हो गया। इन शब्दों के जाल में निरंकुश सत्ता ने अपने मुख पर लगी कालिख को छिपाने का प्रयास किया किन्तु डा० अंचोलीकर और डा० फड़के की सम्मतियों ने सत्य का उद्घाटन कर दिया।

सर्वश्री विनायकराव विद्यालंकार, श्री नरसिंह राव एवं श्री हनुमन्त राव आदि नेताओं ने गृह विभाग के सचिव से शव की परीक्षा कराने का अनुरोध किया। किन्तु जिनके हृदय पर मजहबी उन्माद का रंग चढ़ा हो वे किसी की न्यायपूर्ण मांग को भला स्वीकार क्यों करते? ये सब नेता सुस्पष्ट घोषणा करते रहे कि श्री तेन्दुरकर के शव पर चोट के निशान थे। वस्तुतः इस वीर युवक ने हँसते-हँसते यातनाएं सहकर धर्म की वेदी पर अपने प्राण समर्पित किए थे।

बलिदानी लाल : छोटे लाल

हैदराबाद के धर्म युद्ध में जिन विशाल जत्थों ने सामूहिक सत्याग्रह कर निरंकुश सत्ता को चुनौती दी थी, उन्हीं में से एक था उत्तरप्रदेश के ५३१ सत्याग्रहियों का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एक जत्था भी। उसके नेता राजगुरु श्री धुरेन्द्र शास्त्री (स्वामी ध्रुवानंद) थे। अलालपुर नामक स्थान के निवासी श्री छोटे लाल भी जो अपनी जननी के इकलौते लाल थे, कर्त्तव्य की पुकार पर अपने माता की ममता को छोड़ कर हैदराबाद पहुंचे थे। आप भी अन्य सत्याग्रहियों सहित बंदी बनाए गए। रुग्णहो जाने पर भी धूप में क्रूर जेल अधिकारी आपसे कठोर काम लेते रहे। अन्ततः एक दिन लू लग जाने के फलस्वरूप आप अचेत हो गए। अचेत अवस्था में ही आपको एक छत के नीचे लिटा दिया गया। वहां उन्हें वमन और दस्त हो गए। अर्धरात्रि तक भी जब आपकी हालत न सुधरी तो आपको अस्पताल पहुंचा दिया गया। २ मई को उनकी दशा बिगड़ी और ३ मई को इस नरवीर ने अन्तिम श्वास ली। पिंजरे का पंछी उड़ गया और यह वीर युवक बंधनमुक्त हो गया।

।बाद में २० सत्याग्रहियों को साथ जाने की अनुमति देकर जेल के अधिकारियों ने ही अ पका दाह-संस्कार कर दिया। शव का चित्र लिए जाने तक की आज्ञा न दी गई। किन्तु कुछ दिन के पश्चात् सरकार की ओर से जो विज्ञप्ति प्रकाशित की गई उसमें भी वह छोटे लाल की मृत्यु के लिए कोई बहाना गढ़ कर बताने में समर्थ न हो पाई और उस विज्ञप्ति में स्वीकार किया गया कि 'श्री छोटे लाल से बीमारी में और धूप में काम लिया गया था।'

जिस समय राजगुरु श्री धुरेन्द्र शास्त्री हैदराबाद के इस निःशस्त्र प्रतिकार आंदोलन में विजयश्री प्राप्त करने के उपरान्त कारागार से रिहा हुए तो उसके बाद आप अलालपुर पहुंचे और आपने वीर छोटे लाल जी की माता जी से भेंट कर उस वीर जननी को सांत्वना प्रदान की, जिसका इकलौता लाल धर्म की वेदी पर समर्पित हो गया था।

धर्मवीर श्री नानूमल

महाराष्ट्र की सुप्रसिद्ध नगरी अमरावती के निवासी श्री नानूमल भी उन नरपुंगवों में से एक थे, जिन्होंने हैदराबाद में निजामी राज्यसत्ता के अत्याचार और अनाचार को चुनौती दे कर वैदिक धर्म की पताका फहराते और 'जो बोले सो अभय; वैदिक धर्म की जय' का उद्घोष करते हुए कारावरण किया था। आप भी अन्य सत्याग्रहियों के साथ बंदी बना लिए गए और २६ मई को चंचलगुडा कारागार में ही रोगग्रस्त हो गए। बाद में आप उस्मानिया अस्पताल में ले जाए गए। वहीं निमोनिया से आपका देहांत हो गया। किन्तु विचित्र बात यह हुई कि न तो आपकी मृत्यु की ही किसी को जानकारी दी गई और न ही आपका शव दिया गया। श्री हरिश्चन्द्र विद्यार्थी ने शव प्राप्ति के लिए पर्याप्त प्रयत्न किए तो सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेत्री श्रीमती सरोजिनी नायडू ने भी अपने प्रयासों में कोई कोर कसर न छोड़ी। अनेक आर्य (हिन्दू) नेताओं ने भी अपनी संपूर्ण शक्ति शव प्राप्त करने हेतु लगा दी। किन्तु उन सभी के प्रयास असफल ही सिद्ध हुए।

यह रहस्य तो शायद आज तक भी एक रहस्य ही बना हुआ है कि आपके शव को छिपा कर दाह संस्कार के लिए क्यों ले जाया गया था। अन्ततः अनेक प्रयासों के उपरान्त उस स्थान का तो पता लग गया जहां इस वीर सत्याग्रही के शव की दाह क्रिया की गई थी किन्तु यह सब कुछ रहस्यमय ढंग से किया जाना एक रहस्य ही बन कर रह गया।

वीर नानूमल ने स्वकर्त्तव्य की पूर्ति की ठान को हृदय में ठानकर धर्म स्वा-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तन्त्र्य के इस महायुद्ध में वीर गति पाई। वह स्वयं अपना जीवन दीप बुझाकर आने वाली पीढ़ियों के लिए भी प्रकाश की राह दिखा गए। उन्होंने दूसरों के कल्याण के लिए अपने प्राण समर्पित किए थे और उन्हें भी जाति के मान सम्मान हेतु सर्वस्व दान की प्रेरणा प्रदान की थी। अमरावती का निवासी यह ५२ वर्षीय जीवन इस प्रकार आत्मार्पण कर अमरत्व पा गया।

युवक हुतात्मा : पांडुरंग

उस्मानाबाद (हैदराबाद) निवासी एक वीर युवक थे श्री पांडुरंग। २२ वर्ष की अवस्था, मदमाता यौवन। सिर पर कफन बांध कर धर्म हेतु सर्वस्व समर्पण का संकल्प साध हैदराबाद में छिड़े धर्म स्वातन्त्र्य संग्राम में सम्मिलित हो गया। अन्य सत्याग्रहियों के समान ही इस वीर युवक को भी बंदी बनाया गया और गुलबर्गा कारागार में रखा गया। वहीं आप इन्फ्लूएंजा से पीड़ित हो गए। अत्याचार के पुतले अधिकारी भला आपका ठीक ढंग से उपचार क्यों कराते? परिणामतः २५ मई को आपकी हालत चिन्ताजनक हो गई। जेल के अधिकारियों ने अपने मुख पर कालिख लगने से बचने के लिए इस वीर युवक को अस्पताल पहुंचा दिया। वहाँ २६ मई को वीर पांडुरंग की जीवन-लीला समाप्त हो गई।

आपकी मृत्यु का समाचार नगर में फैला तो भारी आतंक के बावजूद अस्पताल पर आपके शव के दर्शनार्थ सहस्रों लोगों की जनमेदिनी घहरा उठी। इस स्थिति से सहमे हुए अधिकारी और सहम उठे और उन्होंने इस वीर युवक के शव को अस्पताल से वापस कारागार पहुंचा दिया। शव का चित्र लेने की अनुमति प्रदान न की गई। किन्तु इसके बलिदान का चित्र तो हजारों नर नारियों के हृदय पर खिंच गया था। शव को कारागार में वापस भेजकर कुछ सत्याग्रहियों और पुलिस के एक दस्ते के साथ बलिदानी पांडुरंग का शव श्मशान भूमि में पहुंचाया गया। वहीं उसके साथियों ने सजल नयनों से वीर की पार्थिव देह के दर्शन किए और फिर अग्नि की लाल ज्वालमालाओं में शव की अन्त्येष्टि सम्पन्न हो गई। पांडुरंग नहीं रहे किन्तु उनका बलिदान रंग लाया और जिस उद्देश्य की सिद्धि हेतु यह वीर युवक कर्त्तव्य समर में उतरा था वह उसी जैसे अनेक बलिदानियों के फलस्वरूप पूर्ण भी हुआ। हां अत्याचारी नवाबी सत्ता ने २६ मई को दिवंगत इस वीर की मृत्यु की स्वीकारोक्ति ५ जुलाई को कर अपनी हठवादिता का एक प्रमाण और जुटा दिया।

शहीद सुनहरा सिंह

हैदराबाद में आर्य समाज द्वारा १९३९ में किए गए निःशस्त्र प्रतिकार आंदोलन में जिन हुतात्माओं ने अपनी जीवन समिधाएँ समर्पित कीं, उन्हीं में से एक थे सुनहरा सिंह जी। आप बुराना, जिला रोहतक (हरयाणा) के निवासी श्री जगतराम के सुपुत्र थे। स्वस्थ, सुदृढ़ और गठा हुआ शरीर। जितने शरीर से सबल उतने ही मन से मजबूत। ५ जून को आपको आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध पत्रकार महाशय कृष्ण जी के जत्थे के साथ बंदी बनाया गया।

श्री सुनहरा सिंह कारागार में ही रोग ग्रस्त हो गए। साथ ही बांह में एक फोड़ा भी निकल आया। जो सत्ता हर सत्याग्रही को अपना शत्रु समझ कर उसके खून की प्यासी हो उसकी रोगग्रस्त सत्याग्रही के प्रति उदासीनता कोई अनहोनी बात नहीं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

देहलवी

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

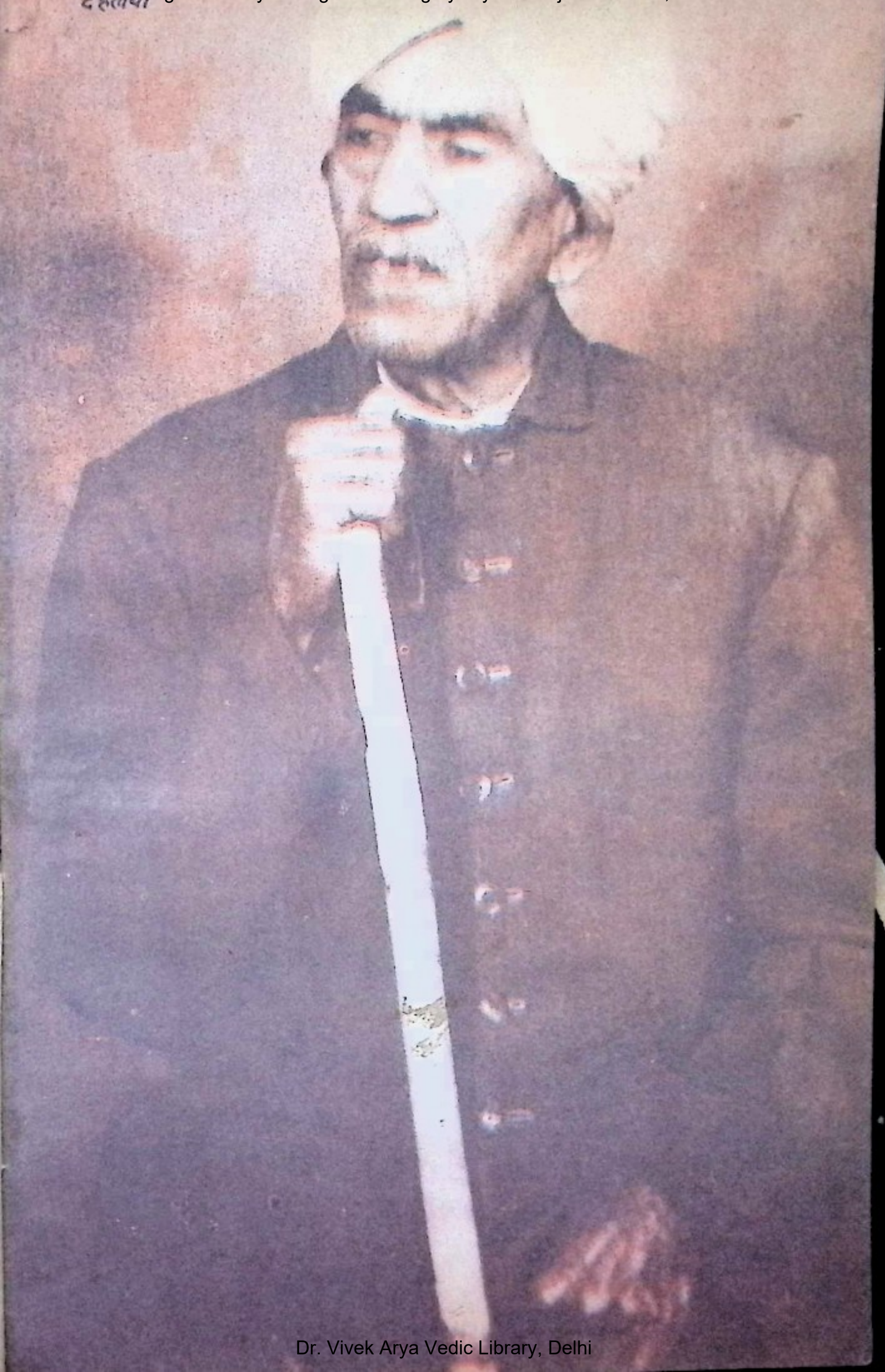

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

थी। इस लापरवाही के कारण रोग बढ़ता गया और फोड़े के कारण सुनहरा सिंह जी तीव्र ज्वर और सन्निपात में भी ग्रस्त हो गए।

८ जून को प्रातः काल ६।। बजे ही इस कर्त्तव्य परायण वीर ने अपने प्राण धर्म की वेदी पर समर्पित कर अमरता प्राप्त कर ली। सरकारी डाक्टरों ने यही कहा कि मृत्यु का कारण रोग ही है। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि श्री सुनहरा सिंह के साथ अस्पताल में जो उपेक्षा बरती गई, उससे ही सुस्पष्ट था कि उपचार में लापरवाही हुई थी। इतना ही नहीं इस नरवीर के निधन की सूचना भी महाशय कृष्ण जी तथा अन्य आर्य नेताओं को कई घंटे के पश्चात् दी गई।

उनके निधन के कुछ दिन बाद श्री खुशहालचंद खुरसन्द (अब महात्मा आनन्द-स्वामी जी) ग्राम बुटाना में पहुंचे तथा आपने इस नरपुंगव के पिता श्री जगतराम से भेंट कर उन्हें सांत्वना प्रदान की और उनके शहीद पुत्र की स्मृति में ग्राम में आर्य मन्दिर की आधारशिला भी रखी।

वीर बालक : बदनसिंह

जिला सहारनपुर (उत्तरप्रदेश) का एक ग्राम है मुजफ्फराबाद। उसी ग्राम के निवासी ठाकुर टीका सिंह प्रबल हिन्दुत्वाभिमानी और निष्ठावान् आर्य समाजी थे। जब हैदराबाद में धर्म युद्ध का बिगुल बज उठा तो उस क्षत्रिय वीर के मन में भी एक प्रेरणा हुई और जिस भांति प्राचीन काल में वीर क्षत्रिय अपने पुत्रों को राष्ट्र रक्षार्थ समर भूमि में सहर्ष भेजा करते थे, उसी भांति आपने इकलौते पुत्र कुंवर बदन सिंह को उस धर्म युद्ध में भाग लेने के लिए सहर्ष और सोत्साह विदाई दी तथा साथ ही यह आशीर्वाद भी प्रदान किया कि 'या तो विजयश्री को वरण करना अथवा मृत्यु को गले लगा लेना।'

राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री ने ठाकुर साहब को समझाया कि वह गम्भीर रूप से रोग ग्रस्त हैं अतएव अपने पुत्र को सत्याग्रह में न भेजें। किन्तु आपका एक ही उत्तर [illegible] "क्षत्रिय लाल यदि इस धर्म युद्ध से निर्लिप्त रहे तो भला धर्मरक्षा के लिए और [illegible]ग आगे क्यों आएंगे।" अन्ततः पिता का पावन संकल्प ही विजयी हुआ और वीर [ब]दन सिंह जी सत्याग्रह के लिए प्रस्थान कर गए।

१७ जून, १९३९ को इस १८ वर्षीय वीर बालक बदन सिंह ने बेजवाड़ा में [सत्]याग्रही जत्थे के साथ सत्याग्रह किया। भोजन में मिले कंकड़ पत्थर। और पत्थर तोड़ने आदि की कठोर सजा। परिणामतः बालक आन्त्र ज्वर से पीड़ित हो गया। रोगग्रस्त बदन सिंह को जेल के अस्पताल में दाखिल तो करा दिया गया किन्तु उस समय जबकि रोग गंभीर रूप धारण कर गया था। अतएव कथित उपचार के बाद भी इस वीर बालक ने २४ अगस्त को प्रसन्नमना मृत्यु का वरण कर लिया।

बाल वीर बदनसिंह धर्म की वेदी पर समर्पित हो गए। ऐसे ही वीरों के त्याग, तप, कष्टसहिष्णुता और विशुद्ध धर्म ने पाशवी सत्ता को परास्त करने का पथ प्रशस्त किया था। इकलौते पुत्र की मृत्यु का समाचार मुजफ्फराबाद में ठाकुर टीका सिंह को भी मिला। उस समय भी वे रोग से गम्भीर रूप से ग्रस्त थे। इस नितांत वेदनापूर्ण समाचार को सुनकर वे क्षण भर तो मौन रहे और फिर उन्होंने नितांत ही सन्तोष के साथ कहा 'मेरा एकमात्र पुत्र धर्म की वेदी पर समर्पित हुआ है। मेरा कुल धन्य हो गया।'

अपने पुत्र के बलिदान के डेढ़ मास बाद ठा० टीका सिंह जी ने भी अपनी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नश्वर काया का समर्पण कर दिया, क्योंकि उनका मन अपने बलिदानी पुत्र से मिलने के लिए कसमसाने लगा था।

बलिदानी श्री राधाकृष्ण

पौष शु० ३ सं० १९५३। हैदराबाद नगर के ईसा मियां बाजार नामक मुहल्ले में श्री जीतमल नामक एक मारवाड़ी सज्जन के कुलदीपक के रूप में जन्मे थे श्री राधाकृष्ण। पिता वैष्णव मत के कट्टर अनुगामी थे। अतएव बालक पर भी वही संस्कार पड़े। अतएव आप भी निष्ठावान् वैष्णव बन गए। किन्तु आपका संपर्क कतिपय आर्य समाजी कार्यकर्ताओं से हुआ। जिज्ञासु थे अतएव आर्य समाज के संबंध में जानने की जिज्ञासा जगी। महर्षि दयानन्द कृत ग्रन्थों का पारायण किया तो जीवन में नवीन दृष्टि मिली। परिणामतः १९३४ ई० में आप विधिवत् आर्य समाज के सभासद् बन गए। तभी से आर्य समाज के प्रचार और प्रसार की धुन आपके मन और मस्तिष्क पर सवार हो गई।

निजामाबाद को आपने अपना कार्यक्षेत्र बनाया और वहां आर्य सिद्धांतों का मौखिक प्रचार आरम्भ कर दिया। आर्य समाज के संपर्क में अनेक लोगों के आने पर १९३५ ई० में उस नगर में आर्य समाज की स्थापना भी हो गई और वैदिक धर्म और साहित्य का प्रचार प्रसार सुचारु ढंग से चलने लगा। इस प्रचार कार्य से निजामशाही के क्रीतदास अनेक अधिकारी क्षुब्ध हो उठे। पुलिस अधिकारी भी अपनी तत्परता दिखाने में पीछे नहीं रहे और उन्होंने मुहर्रम के अवसर पर श्री राधाकृष्ण पर नियम-धारा १०४ के अन्तर्गत अभियोग चलाया। एक वर्ष के लिए हजार रुपए का मुचलका देने पर ही आप छूट पाए। किन्तु यह बाधा भी आर्य धर्म के प्रचार के आपके संकल्प में बाधक न बन पाई और आप पूर्ववत् निष्ठा सहित आर्य समाज को बलिष्ठ बनाने में लगे रहे। आर्य सत्याग्रह का पुनीत प्रारम्भ हुआ तो आपने धन संग्रह की व्यवस्था भी संभाली और उसमें पूर्ण मनोयोग सहित जुट गए।

जब वरिष्ठ अधिकारियों ने यह देखा तो श्री राधाकृष्ण के विरुद्ध उनका क्रोध और भी अधिक भड़क उठा। उनका द्वेष भी सीमा तोड़ गया। कतिपय मजहबी उन्मादी भी श्री राधाकृष्ण जी के रक्त के प्यासे हो उठे और उनके प्राण लेने के लिए जुट गए।

अन्ततः २ अगस्त, १९३९ को एक धर्मान्ध जन द्वारा श्री राधाकृष्ण की हत्या करा दी गई। उनकी यह हत्या हुई भी पुलिस थाने के समक्ष। न्याय के कथित रक्षक इस अन्याय पर नेत्र खोले सब कुछ देखते रहे। इस प्रकार धर्म का यह दीवाना शलभ वैदिक ज्योति को अखण्ड रखते हुए आर्य समाज के प्रत्येक अनुगामी को अपना जीवन दान देकर भी अपने सिद्धान्तों के प्रति अडिग आस्थावान् रहने तथा वेद की पताका को जीवन की अन्तिम घड़ी तक फहराते रहने की अमर प्रेरणा प्रदान कर गया।

श्री राधाकृष्ण ने अपना बलिदान देकर यह सिद्ध कर दिया कि जब आत्म-त्याग की भावना अपनी प्रचण्ड सीमा तक पहुंच जाती है तो आवश्यकता होने पर प्राणों का उत्सर्ग करने के लिए भी वीर जन उद्यत हो जाते हैं। इस प्रकार इस बलिदानी आर्य वीर ने धर्म रक्षा के महायज्ञ में आत्माहुति प्रदान की।

बालवीर श्री ताराचंद

उत्तरप्रदेश के सुप्रसिद्ध जिले मेरठ ने ही ब्रिटिश राज्यसत्ता के विरुद्ध १८५७ ई० में हुए प्रथम स्वाधीनता संग्राम में अग्रगण्य भूमिका निभाई थी। इसी परम्परा को

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
अक्षुण्ण रखते हुए हैदराबाद के निजाम की निरंकुशता के विरुद्ध हुए धर्मयुद्ध में भी मेरठ के आर्यवीरों ने उल्लेखनीय योगदान दिया।

इसी जिले के लुम्ब नामक ग्राम में एक दिन अद्भुत समारोह देखा गया जब चौधरी केहरसिंह नामक एक हिन्दुत्वनिष्ठ सज्जन ने अपने १९ वर्षीय बालक को हैदराबाद के धर्मयुद्ध में भाग लेने के लिए सहर्ष विदाई दी। इस अवसर पर परिवार के ही नहीं आसपास के ग्रामों के भी अनेक लोग एकत्रित हुए। बालक के मस्तक पर विजय तिलक सुशोभित कर उसे आशीर्वाद दिया गया। २० अप्रैल, १९३९ को यही वीर बालक ताराचन्द एक सत्याग्रही जत्थे के साथ तुलजापुर पहुंचा। वहां सत्याग्रही जत्थे पर लाठी चार्ज करके निरंकुश अधिकारियों ने अपनी निर्ममता का परिचय दिया। लाठियां पड़ती रहीं तथा हिन्दू धर्म की जय और जो बोले सो अभय, वैदिक धर्म की जय के उद्घोष गूंजते रहे।

बंदी सत्याग्रही जत्थे को २१ अप्रैल को नलदुर्ग में रखने के उपरान्त सत्याग्रही राज्य की विभिन्न जेलों में भेज दिए गए। अन्ततः ८ अगस्त को विजयश्री का वरण करते हुए जब सत्याग्रही मुक्त हो गए तो वीर किशोर श्री ताराचंद जी बंधन मुक्त होकर चाँदा शिविर में पहुँचे। किन्तु जेल में जो यातनाएँ इस बाल वीर ने झेली थीं उनके कारण शरीर जर्जर हो रहा था अतएव रोग ने आपको जकड़ लिया। चांदा से आपको नागपुर भेज दिया गया। वहाँ सुप्रसिद्ध चिकित्सक डा० लक्ष्मणराव परांजपे ने आपका उपचार किया किन्तु आप रोगमुक्त न हो सके। जब रोग गंभीरता ही धारण करता गया तो आपके परिवार को सूचित किया गया। आपके चाचा श्री रामचन्द्र जी भी नागपुर आ गए। किन्तु अन्ततः विधि का विधान ही बलवान सिद्ध हुआ और २ सितम्बर को प्रातः ५ बजे जब अंशुमाली प्राची दिशा में उदित हो रहे थे, ताराचंद का जीवन दीप बुझ गया।

इस बलिदानी बालक के निधन से मानो समग्र नागपुर नगरी शोक विह्वल हो उठी। सैकड़ों लोग इस शहीद की शवयात्रा में सम्मिलित हुए और इसका दाह संस्कार हिन्दू महासभा और आर्य समाज की ओर से मिलकर किया गया। इस अवसर पर नगर के अनेक हिन्दू नेताओं और आर्यसमाजी कार्यकर्ताओं ने इस बाल वीर को श्रद्धांजलियाँ समर्पित कीं और इसे अमर हुतात्मा, धर्मवीर आदि की संज्ञा के साथ स्मरण किया। आर्य जगत् को ऐसे बलिदानी बालकों का बलिदान सदैव प्रेरणा देता रहेगा और निराशा में भी आशा का दीप बनकर भावी पीढ़ियों को राह दिखाता रहेगा।

बलिदानी बालक : शान्ति प्रकाश

जिला गुरुदासपुर के कलानौर अकबरी नामक स्थान पर श्री रामरत्न शा[illegible] के यहाँ जन्मे थे श्री शान्ति प्रकाश। पिता नई दिल्ली स्टेशन पर टिकट कलेक्टर थे। बालक शान्ति प्रकाश के मन पर धर्म निष्ठा के संस्कार बाल्यकाल से ही प्रभावी थे और अन्याय के प्रतिकार की क्षमता भी आप में प्रभु प्रदत्त ही थी। आप अभी [illegible] वर्ष के ही थे कि हैदराबाद के धर्मयुद्ध का आह्वान आपके कानों में पड़ा। आपने सो[illegible] विचार किया तो आपको ऐसा प्रतीत हुआ कि माता पिता ममतावश इस धर्म समर में भाग लेने की आज्ञा न देंगे। अतएव आप चुपचाप घर से चल दिए और बम्बई जा[illegible] धर्मवीरों के सत्याग्रही जत्थे में सम्मिलित हो गए। ९ मई को उस जत्थे ने गुंजोटी में सत्याग्रह किया। सत्याग्रही बन्दी बनाकर उस्मानाबाद के कारागार में भेज दिए ग[illegible]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

क्रूर अधिकारी बालकों और युवकों को यातनाएँ देने में ही विशेष आनन्द की अनुभूति करते थे। अतएव इसका परिणाम श्री शांति प्रकाश को भी भोगना पड़ा। वे भी अन्य कई सत्याग्रहियों के समान कारागार में ही रोगग्रस्त हो गए। बीमारी ने उग्र रूप धारण कर लिया तो श्री शांति प्रकाश सिविल अस्पताल में स्थानान्तरित कर दिए गए। रोग ने और भी उग्र रूप धारण किया। उन्हें अस्पताल से जेल और तदुपरांत पुनः सिविल अस्पताल पहुंचाया गया।

साथ ही अधिकारियों ने सोचा कि यदि अब इस वीर बालक के पिता को बुला लिया जाए तो वह उसे क्षमा मांगने और रिहाई प्राप्त करने पर तैयार कर लेंगे। बालक के पिताजी को नई दिल्ली में तार प्राप्त हुआ तो पिता की ममता ने जोर मारा और वह उस्मानाबाद जा पहुंचे। वहाँ उन्होंने अपने अपने दृढ़ संकल्पी बालक पर क्षमा मांगने हेतु काफी जोर डाला। किन्तु शांति प्रकाश के समक्ष तो धर्मवीर हकीकत राय की बलिदानी गाथा प्रेरणा का पुंज बनी हुई थी। अतएव उन्होंने वीर हकीकत के समान ही अपने पूज्य पिता के समक्ष आत्मा की अमरता के वैदिक धर्म के संदेश का सगर्व उच्चार किया और क्षमा याचना कर रिहाई प्राप्त करने से साफ इन्कार कर दिया।

जब अपने वीर पुत्र के साहस और धर्म निष्ठा को पिता ने देखा तो वे भी गौरवान्वित हो उठे और माफी मंगवाने के स्थान पर उन्होंने अपने धर्मवीर बालक को आशीर्वाद प्रदान कर दिया।

२७ जुलाई १९३९ को यह बालवीर धर्म की वेदी पर समर्पित होकर अमरत्व प्राप्त कर गया। ज्यों ही इस बलिदानी बालक के निधन का समाचार नगर में फैला, सारे नगर में शोक व्याप्त हो गया और फिर नगर भर में अभूतपूर्व हड़ताल हुई। सहस्रों लोगों ने इस बालवीर के अन्तिम दर्शनार्थ उसका शव देने की भी प्रबल मांग की। किन्तु क्रूर अधिकारियों का पत्थर का कलेजा न पसीजा और उन्होंने जनता की मांग ठुकरा दी।

२८ जुलाई को कुछ सत्याग्रहियों के साथ इस बालक का शव श्मशान भूमि में पहुंचाया गया, जहाँ पूर्ण वैदिक रीति से वैदिक धर्म के दीवाने इस हुतात्मा बालक का दाह संस्कार सम्पन्न हुआ।

हैदराबाद धर्मयुद्ध के कतिपय अन्य हुतात्मा

बलिदानी माधवराव

हैदराबाद में हुए धर्मयुद्ध में जो नर रत्न बलिदान हुए थे उन्हीं में से एक श्री माधवराव भी थे। आप राज्य के ही लातूर नामक नगर के निवासी थे। जिस समय आपने सत्याग्रह किया तब आप ३० वर्ष के हृष्ट-पुष्ट युवक थे। वन्दी बनाए जाने के उपरान्त आपको गुलवर्गा जेल में रखा गया। तीव्र ज्वर और फिर लू का भी प्रकोप। २१ मई को आपने रोग शय्या पकड़ ली। बीमारी की अवस्था में भी अधिकारियों की क्रूरता में कोई कमी न आई। परिणामतः आपके रोग के उपचार का भी कोई सुचारु प्रबन्ध न किया गया और २६ मई को आपका देहान्त हो गया।

सत्याग्रह समिति की ओर से मृत युवक के विषय में जाँच करने के लिए नियुक्त प्रतिनिधि को भी नराधम अधिकारियों ने दाह संस्कार में सम्मिलित हुए सत्याग्रहियों से भेंट करने की आज्ञा न दी। न ही इस शहीद के शव का फोटो लेने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

की अनुमति प्रदान की गई। उल्लेखनीय है कि जेल के अधिकारियों ने ही इस नरवीर का दाह संस्कार कुछ सत्याग्रहियों को साथ लेकर कर दिया था।

गुलबर्गा की जनता शहीद की शवयात्रा में सम्मिलित होने की माँग करती ही रही किन्तु अधिकारियों ने उस पर भी कोई ध्यान न दिया। वीर माधवराव की बलिदानी गाथा आर्यजनों को सदैव ध्येय प्राप्ति के लिए सक्रिय रखेगी।

स्वामी कल्याणानन्द की आत्माहुति

उत्तर प्रदेश के जिला मुजफ्फरनगर से वैदिक धर्म के जो मतवाले हैदराबाद में नागरिक स्वातन्त्र्य के रखवाले बनकर सत्याग्रह रूपी यज्ञ में समिधाएँ समर्पित करने गए थे, उन्हीं में से एक थे स्वामी कल्याणानन्द जी। स्वामी जी की आयु तो ७५ वर्ष की थी किन्तु उनमें उत्साह युवकों के तुल्य ही था। सत्याग्रह करने के बाद आप भी अन्य सत्याग्रहियों के साथ बन्दी बना लिए गए। वृद्धावस्था के कारण शरीर ने जब अनेक कष्ट झेले तो अज्ञात परिस्थितियों में यह वृद्ध संन्यासी ८ जुलाई को महाप्रस्थान कर गया। दो दिन तो अधिकारियों ने आपके निधन का समाचार भी किसी को न दिया। १० जुलाई को ही आपकी मृत्यु का समाचार सुनाया गया।

हुतात्मा सदाशिव राव पाठक

उत्तरी भारत के अनेक बलिदानी आर्य वीरों के समान ही हैदराबाद के धर्म-युद्ध में दक्षिण के जिन हुतात्माओं ने अपना अस्थिदान देकर आर्य जाति का मान बचाया था, उन्हीं में से एक थे श्री सदाशिवराव पाठक। आप लडवाल ग्राम (शोलापुर) के निवासी श्री विश्वनाथ राव जी के इकलौते पुत्र थे। आपने भी धर्म की रक्षार्थ हुए इस सत्याग्रह में भाग लेकर स्वकर्त्तव्य की पूर्ति की। कारागार में आपसे पत्थर ढुल-वाने और तुड़वाने का कठोर श्रम लिया गया। इस कठोर परिश्रम से जर्जरित देह रोगग्रस्त हो गयी। किन्तु जहाँ सत्य के पुजारियों को सताना ही रीतिनीति थी, वहाँ कौन चिन्ता करता। अतएव रोग की अवस्था में भी कठोर परिश्रम कराने का क्रम पूर्ववत् जारी रहा। अन्ततः शरीर ने भी चिर विश्राम की ठान ली और रोगग्रस्त अवस्था में भी लिया गया कठिन काम ही आपकी जीवन लीला के विश्राम का कारण सिद्ध हुआ।

आपके बलिदान से आर्य जाति और हिन्दू धर्म की रक्षार्थ हवि प्रदान करने वालों की शृंखला में एक और की वृद्धि हो गई।

गोविन्दराव की वीर गति

जिला बीदर में स्थित है एक ग्राम नलगीर। उसी के निवासी थे धर्मवीर गोविन्दराव। आपने भी निजामी सत्ता को चुनौती देते हुए सत्याग्रह के महान् अनुष्ठान में सहयोग प्रदान किया था। बन्दी बनाए जाने के उपरान्त आपको हैदराबाद के केन्द्रीय कारागार में बन्दी वास भोगना पड़ा। कठोर यातनाओं ने शरीर को रोगी बना दिया। उसके उपरान्त आपका उपचार हुआ या नहीं, यह भी कोई नहीं जानता, क्योंकि नितान्त ही रहस्यमय परिस्थितियों में इस वीरवर का बलिदान हुआ था। वे परिस्थितियाँ इतने वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी भेद का आंचल ही ओढ़े हैं, जिनमें वीर गोविन्दराव वीरगति को प्राप्त हुए थे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

युवारत्न : अशरफीप्रसाद

हैदराबाद में १९३९ ई० में आर्य समाज और हिन्दू महासभा के तत्त्वावधान में किया गया सत्याग्रह वस्तुतः एक महान् बलिदान ही था। धर्म के इतिहास की यह सत्याग्रह एक अद्भुत गाथा है तो आर्य समाज के लिए अमर गौरव का प्रदाता भी। इस सत्याग्रह में उत्तर से लेकर दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक स्थित भारत के प्रायः सभी प्रदेशों के वेद धर्म निष्ठ जयिष्णु जन सम्मिलित हुए थे। जिस भांति पंजाब, सीमाप्रांत, हरयाणा और उत्तरप्रदेश से अनेक आर्य (हिन्दू) सत्याग्रही हैदराबाद के इस धर्मयुद्ध में भाग लेने के लिए पहुंचे थे, उसी भांति चन्द्रगुप्त और चाणक्य की कर्मस्थली बिहार भी इस संग्राम में पीछे नहीं रहा था।

इसी राज्य में स्थित है एक जिला चम्पारण। इस जिले के नरकटियागंज नामक नगर के निवासी श्री फिरंगीशाह के सुपुत्र श्री अशरफी प्रसाद भी उन्हीं सत्याग्रहियों में से एक थे। आपकी आयु उस समय २२ वर्ष की थी और २२ मार्च को ही वे बन्दी भी बनाए गए। कठोर परिश्रम और भोजन भी प्रतिकूल। परिणामतः युवक अशरफी प्रसाद जेल में रुग्ण हो गए। अधिकारियों ने क्षमा माँग कर रिहा होने क लिए प्रेरित किया। किन्तु यह युवक तो देव दयानन्द का अनुयायी था। अतएव प्रलोभन और दमन दोनों ही निरर्थक रहे। अन्त में अधिकारियों ने २३ अगस्त को उन्हें रिहा कर दिया। आप अपने घर लौट आए। रोगी तो थे ही; आया २९ अगस्त का वह दिन जब इस युवक ने अपनी देह का त्याग कर दिया।

श्री मलखानसिंह का बलिदान

सहारनपुर जिला (उ० प्रदेश) की प्रसिद्ध नगरी है रुड़की। इसी रुड़की नगर के निवासी थे श्री मलखानसिंह। आर्यसमाज के प्रति अनुरक्त इस युवक ने सत्याग्रह के लिए अधिकाधिक संख्या में सत्याग्रहियों को तैयार करने में प्रमुख भूमिका निभाई थी। आपके परिश्रम का परिणाम भी सामने आया; सहारनपुर जिले से भारी संख्या में सत्याग्रही हैदराबाद के धर्मयुद्ध में भाग लेने के लिए पहुँचे। आपने दूसरों को प्रेरित करके ही सन्तोष नहीं माना अपितु स्वयं भी कर्त्तव्य की पूर्ति हेतु सत्याग्रह में सक्रिय भाग लिया। रुड़की के जत्थे के साथ पुसद में सत्याग्रह करते हुए आप बन्दी बनाए गए और चंचलगुडा के कारागार में भेज दिए गए।

कारागार की यम यातनाएँ आप के मन के हिमगिरि को तो न हिला पाईं किन्तु शरीर को उन्होंने अवश्य ही तोड़ दिया। परिणामतः आप रोगग्रस्त हो गए। रोग बढ़ता गया और १ जुलाई को आपने अपनी नश्वर काया त्याग कर अनन्त में स्वयं को विलीन कर लिया। किन्तु आपकी कारागार में मृत्यु का समाचार भी जेल के अफसरों ने सत्याग्रह समिति को न दिया और चुपचाप जेल के श्मशान में ही इस नरवीर का दाह संस्कार कर इस तथ्य को उजागर कर दिया कि श्री मलखानसिंह का बलिदान क्रूर यातनाओं का ही परिणाम था।

महाशय फकीरचन्द का आत्मार्पण

हरयाणा के शारदा ग्राम में जो कैथल के समीप स्थित है, निवास करते थे महर्षि के अनन्य भक्त नरपुंगव श्री फकीरचन्द। नाम से तो वे फकीरचन्द थे किन्तु विचारों और निष्ठा के महान् धनी थे। हैदराबाद में जब सत्याग्रह का शंखनाद हुआ तो आपने भी कर्त्तव्य की पुकार को सुना और पंजाब के सुप्रसिद्ध आर्य नेता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पत्रकार प्रवर महाशय कृष्ण जी के जत्थे में शामिल होकर सत्याग्रह करने हेतु हैदराबाद पहुंचे। आपने औरंगाबाद में सत्याग्रह किया। कारागार में कंकड़ पत्थर मिश्रित रोटियां खाने से उदर विकार से ग्रस्त होकर ये रोगी हो गए तो उन्हें कारागार के अस्पताल में दाखिल करा दिया गया। उपचार तो नाममात्र को ही हो रहा था अतः पीड़ा ने 'ऐपैंडेसाइटिस' का रूप ले लिया। रोग की गंभीरता को देखकर इन्हें सिविल अस्पताल पहुंचाया गया। वहां ३० जून, १९३९ को आपका आपरेशन किया गया। वह तो सफल रहा किन्तु उसके बाद समुचित देखभाल न किए जाने के कारण यह नरपुंगव १ जुलाई को प्रातः ६ बजे चिर विदाई ले गया।

बलिदानी ब्रह्मचारी : रामनाथ

गुजरात प्रान्त महर्षि दयानन्द की जन्म स्थली है। इसी प्रांत के सुप्रसिद्ध नगर अहमदाबाद में जन्मे थे श्री रामनाथ। वैदिक धर्म के ज्ञान सम्पादन हेतु आप भी अन्य कई विद्यार्थियों के समान गुरुकुल कांगड़ी में शिक्षा दीक्षा प्राप्ति हेतु आए थे। जब हैदराबाद में आर्य समाज ने धार्मिक और नागरिक अधिकारों के लिए धर्मयुद्ध का शंखनाद किया तो इस गुरुकुल के अनेक ब्रह्मचारियों ने सत्याग्रह में सहर्ष भाग लिया। ऐसे महाभाग ब्रह्मचारियों में से ब्रह्मचारी रामनाथ को ही सर्वप्रथम सत्याग्रह करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उन्होंने जेल में अनेक प्रकार की क्रूर यातनाएँ झेलीं। वे रिहा होकर गुरुकुल लौटे तो वहां की नृशंसता के अनेक संस्मरण भी साथ लाये, जिन्हें वे अपने साथियों को सुनाया करते थे। आपकी टांग और पीठ पर हुए कई घाव निजाम की सत्ता की क्रूरता के सजीव उदाहरण बने हुए थे।

कारागार में रुग्ण होने के कारण ही आपको रिहा किया गया था। रिहाई के बाद आप गुरुकुल तो लौट आए, किन्तु रोग ने आपका पीछा न छोड़ा था। उपचार की पूर्ण व्यवस्था के बावजूद आप रोग मुक्त न हो पाए और धीरे-धीरे आपका रोग गंभीर रूप धारण करता गया और शरीर क्षीण होता गया। अन्ततः आपके जीवन की अन्तिम वेला आ पहुंची और आपका जीवन दीप अनेक जीवनों को धर्म हेतु सर्वस्व समर्पण का प्रकाश प्रदान कर तिरोहित हो गया।

महर्षि दयानन्द का शिक्षाप्रद ग्रन्थ
बच्चे-बड़े सभी के लिए उपयोगी

व्यवहार भानु

[बढ़िया कागज पर]

३०) सैकड़ा। एक प्रति ५० पैसे
भारी संख्या में मँगावें : और बाँटें

दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सुन्दर फरनीचर का प्रगतिशील नाम

डिलाईट

वर्षों के अनुभव और कार्यकुशलता के कारण आज डिलाईट की अलमारियाँ और फरनीचर सारे भारत में प्रसिद्ध हैं क्योंकि यह देखने में सुन्दर, मजबूत, टिकाऊ और पक्के रंगों में उपलब्ध हैं। दुकान हो या घर, विवाह हो या कोई शुभ अवसर, यह सब की शोभा बढ़ाता है।

आप भी आज डिलाईट फरनीचर खरीद कर अपने घर, आफिस व दुकान की शोभा बढ़ावें और आनन्द पावें।

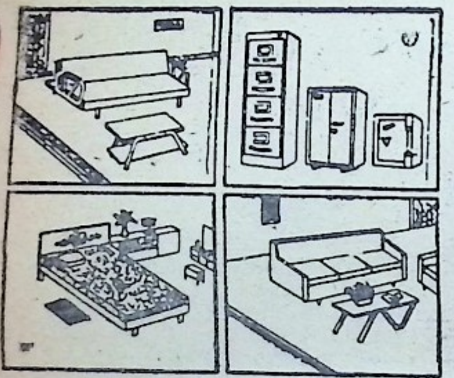

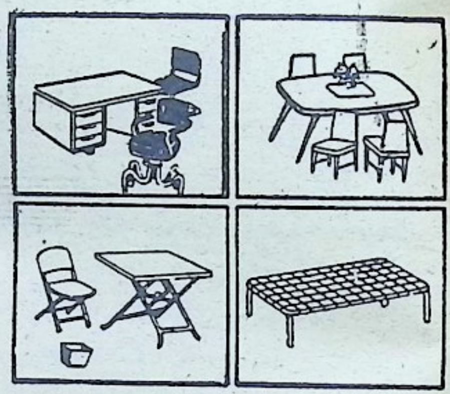

डिलाईट सेफ वर्क्स

कुतुब रोड, दिल्ली-६. फोन 511380

विक्रेता

१. काटेज स्टोर, २० विनय नगर मार्कीट, नई दिल्ली।
२. काश्मीर क्राकरी हाऊस, लक्कड़ बाजार, लुधियाना।
३. मित्तल ब्रादर्स, सिरकी बाजार, भटिण्डा। ४. निहालचन्द गोपालदास अबोहर।
५. महेन्द्रा ब्रादर्स, कोर्ट रोड, मोगा।
६. जैम सेल्स कार्पोरेशन, सेक्टर ७-सी दु० नं० ३० मध्य मार्ग, चण्डीगढ़।
७. हरयाणा आयरन एण्ड स्टील इण्डस्ट्रीज, बाजार हिसारिया, सिरसा।
८. लीला इलैक्ट्रिक कं०, ७० कोतवाली रोड, श्री गंगानगर (राज०)।
९. राणा इण्डस्ट्रीज, लाडपुरा बाजार, कोटा (राज०)
१०. आदर्श इलैक्ट्रिक एण्ड जनरल सप्लायर्ज, नैका आोली, नीमच (म० प्र०)।
११. ओवरसीज ट्रेड एजेन्सीज, केसर गंज, अजमेर।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

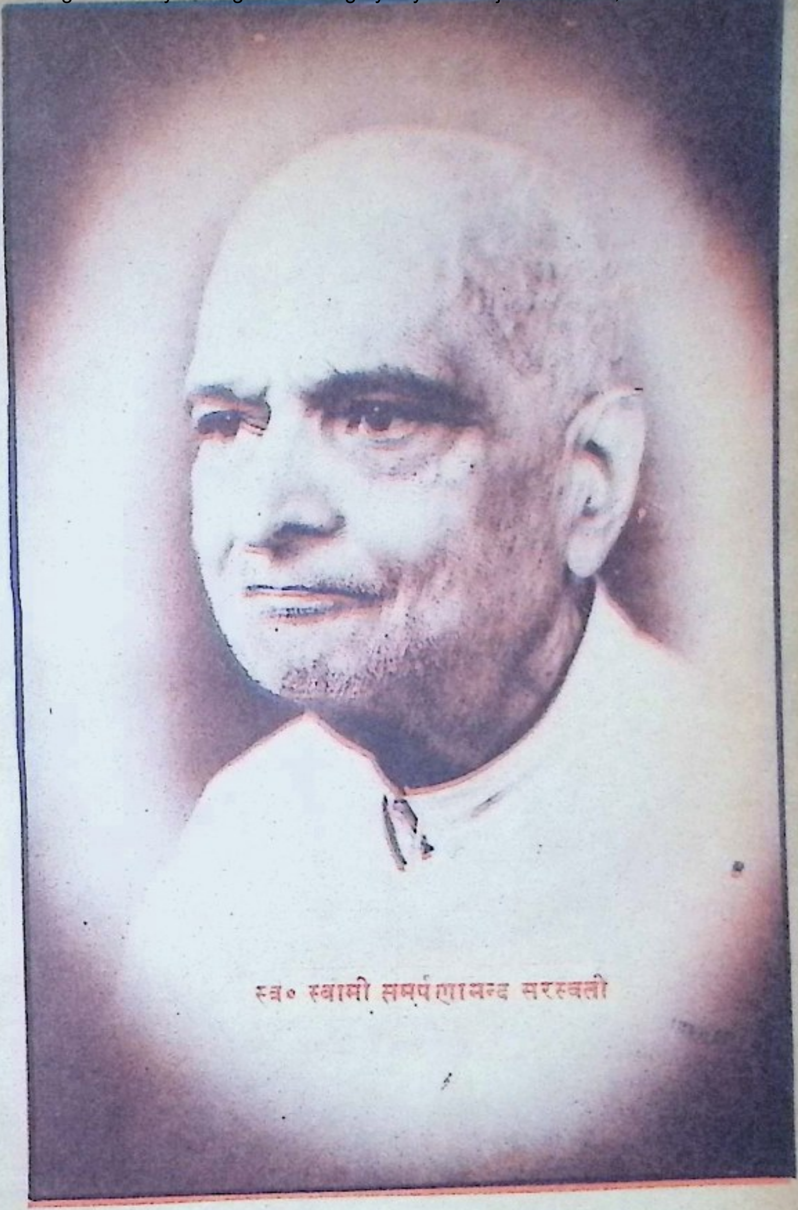

स्व० स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यसमाज का अर्थशास्त्र

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति
भूतपूर्व कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी
विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रत्येक मनुष्य की पांच प्रधान मूलभूत आवश्यकतायें हैं। वे हैं—घर, भोजन, वस्त्र, चिकित्सा और शिक्षा। किसी भी राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को रहने के लिए खुला, जिसमें हवा और प्रकाश कां भली-भांति प्रवेश हो सके, मकान मिलना चाहिए। उसे पेट भर खाने के लिए पौष्टिक भोजन मिलना चाहिए। ऋतु की कठोरता से बचने के लिए अनुकूल वस्त्र पहनने को मिलने चाहिएँ। रोगी हो जाने पर अच्छी से अच्छी चिकित्सा मिलनी चाहिए। उसे और उसके बच्चों को ऊँची से ऊँची शिक्षा मिलनी चाहिए। इनमें से प्रथम चार शरीर की भौतिक आवश्यकतायें हैं और अन्तिम पाँचवीं बुद्धि, दिमाग, और आत्मा की आवश्यकता है। किसी भी व्यक्ति की ये दोनों प्रकार की आवश्यकतायें भली-भाँति पूरी होनी चाहिएँ। इन पांचों की पूर्ति पर ही किसी व्यक्ति का जीवन और उसकी उन्नति तथा उसके सुख-आराम अवलम्बित रहते हैं। ये पांचों जीवन के अवलम्बन पदार्थ हैं। ये प्रत्येक व्यक्ति को यथेष्ट मात्रा में सुलभ होने चाहिएं।

किसी समाज अथवा राष्ट्र की शासन-व्यवस्था और आर्थिक नीति इस प्रकार की होनी चाहिए कि उसमें रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ये पाँचों मौलिक आवश्यकतायें पूरी करने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो। महर्षि दयानन्द ने आपने वेदभाष्य और सत्यार्थ प्रकाशादि ग्रन्थों में एक ऐसी शासन व्यवस्था और आर्थिक नीति का वर्णन किया है जिसका अवलम्बन करने पर किसी भी राष्ट्र में रहने वाले व्यक्तियों की ये पाचों मूलभूत आवश्यकतायें आसानी से पूरी हो सकती हैं। ऋषि दयानन्द ने वेद तदनुकूल मनु-स्मृति आदि प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर अपने ग्रन्थों में राज्य-अर्थ की जिस व्यवस्था का प्रतिपादन किया है उसका नाम

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वर्णाश्रम व्यवस्था है। वर्णाश्रम व्यवस्था की पद्धति का प्रयोजन ही यह है कि राष्ट्र की राज्य-व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था इस प्रकार की बन जाये कि राष्ट्र निवासियों की सब आवश्यकतायें सुगमता से पूरी हो सकें और उनके जीवन में आनंद ही आनंद रहे यदि एक शब्द में कहना हो तो वैदिक धर्म का निचोड़ वर्णाश्रमधर्म या वर्णाश्रम व्यवस्था है। यदि विश्व में या किसी राष्ट्र में वैदिक धर्म का पूर्ण प्रचार हो जाय और उसके निवासियों का जीवन पूर्ण रूप से वैदिक धर्म के अनुसार बीतने लग जाये, इसके निवासी चार वर्णों में विभक्त होकर रहेंगे तथा उसके प्रत्येक निवासी का व्यक्तिगत जीवन चार आश्रमों की मर्यादा में बंधकर बीतेगा। ऋषि दयानन्द ने अपना सारा जीवन इसी विचार धारा के प्रसार-कार्य में समर्पित कर रखा था। आर्यसमाज ऋषि दयानन्द का अनुयायी है और उनकी इसी विचारधारा का प्रचार करने वाली संस्था है। इसलिए आर्यसमाज की राजनीति और अर्थनीति वर्णाश्रम की राजनीति है और यही अर्थनीति आर्यसमाज का आर्थिक दृष्टिकोण है। आर्य समाज की अर्थनीति का स्रोत वर्णाश्रम धर्म से प्रवाहित होता है।

वर्णाश्रम व्यवस्था के मर्म को भली भांति हृदयंगम करने के लिए यह समझ लेना आवश्यक है कि आर्य समाज जिस वैदिक धर्म का प्रचार करता है उसके अनुसार मानव जीवन का लक्ष्य और उद्देश्य क्या है। वैदिक धर्म के अनुसार मानव जीवन का जो लक्ष्य है वह महर्षि कणाद के "अभ्युदय" और "निःश्रेयस" इन दो शब्दों में आ जाता है। जब तक मनुष्य इस संसार में रहता है तब तक उसे सांसारिक उन्नति करते रहकर अपने लिए सब प्रकार का अभ्युदय, सब प्रकार का ऐश्वर्य सञ्चित करना चाहिए जिससे उसकी सभी भौतिक आवश्यकतायें भली भांति पूरी हो सकें और उसे अभ्युदय का जीवन बिताते हुए प्राप्त करना चाहिए कि उसे किसी प्रकार का पाप, किसी प्रकार का असत्याचरण, किसी प्रकार का अन्याय, किसी के प्रति न करना पड़े, उसके मन और आत्मा पर किसी प्रकार के पाप और अधर्म की कालिमा ने चढ़ने पाये।

अन्त में वह इस धर्माचरण, पवित्रता और पूर्ण निष्पापता के परिणाम-स्वरूप एक दिन निःश्रेयस प्राप्त करने का, मोक्ष में जाने का, प्रभु का साक्षात्कार करके उसकी गोद में जाकर ब्रह्मानन्द रस का पान करने का अधिकारी बन जाये। मनुष्य जो कुछ करता है, सुख प्राप्त करने के लिए करता है। इसी उद्देश्य से वह सांसारिक अभ्युदय और ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहता है, परन्तु यह ससार कुछ इस प्रकार का बना है कि इसमें रहते हुए मनुष्य पूर्ण रूप से सुखी नहीं हो सकता। उसके जीवन में कोई न कोई दुःख लगा ही रहता है। यह इच्छा मोक्ष में जाकर ब्रह्मानन्द-रस को प्राप्त करके पूर्ण हो सकती है। जब तक संसार में है तब तक यथासम्भव धर्म का आचरण करते हुए सांसारिक सुखों को अर्जित करने का प्रयत्न करे और परिपूर्ण आनंद प्राप्त करने के लिए मोक्ष प्राप्त करने का प्रयत्न करे। यह है वैदिक धर्म में मनुष्य जीवन का आदर्श।

वर्णाश्रम धर्म इन दोनों प्रकार के सांसारिक और मोक्षावस्थीय सुखों की प्राप्ति के उपाय बताता है। वर्णाश्रम व्यवस्था वर्णों और आश्रमों की मर्यादा में से गुजार कर मनुष्य को इस योग्य बना देती है कि वह इस संसार में रहते हुए भी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यथासम्भव अधिक से अधिक सुखी रहे और मोक्ष के सुख को पाने का अधिकारी भी बन जाये।

मनुष्य का सांसारिक सुख ऊपर वर्णित मूलभूत पांच आवश्यकताओं की पूर्ति पर निर्भर करता है। उनमें से पांचवीं आवश्यकता "शिक्षा" शेष चारों आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन जुटाने में सहायक होकर सांसारिक सुख प्राप्त करने में भी सहायक होती है। मोक्ष प्राप्त करने में भी सहायक होती है। मनुष्य के जीवन को सुखी बनाने के लिए ये पाँच चीजों के प्रसंग से कुछ और गौण चीजें भी हो सकती हैं। परन्तु स्थानाभाव के कारण यहाँ उनके सम्बन्ध में कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। वर्णाश्रम व्यवस्था उनकी प्राप्ति में भी सहायता करेगी। परन्तु प्रधान आवश्यकतायें ऊपर वर्णित ये पांच ही हैं। इन के अभाव में मनुष्य का जीवन दुःख का सागर बन जाता है। राष्ट्र निवासियों की ये सभी आवश्यकतायें सुगमता से पूरी हो सकें। राष्ट्रवासियों को इन आवश्यकताओं की पूर्ति न हो सकने के तीन कारण होते हैं। (१) अभाव (२) अन्याय और (३) अज्ञान। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक सामग्री का अभाव यदि राष्ट्र में होगा तो जनता कष्ट में रहेगी। सामग्री तो राष्ट्र में पर्याप्त है, पर कुछ अन्यायी लोग उसे जनता तक पहुंचने नहीं देते। यदि लोगों को आवश्यक सामग्री उत्पन्न करने का तथा उसके उपयोग करने का आवश्यक ज्ञान नहीं है तो भी जनता कष्ट में रहेगी।

उदाहरण के लिए राष्ट्र में अन्न उत्पन्न न होता हो उसके अभाव में जनता भूखी मरेगी। अन्न तो पर्याप्त मात्रा में होता है परन्तु व्यापारी आदि स्वार्थ में पड़ कर उसका वितरण ठीक नहीं होने देते, अथवा लोगों के घर से चोर डाकू आदि ले जाते हैं तो इस अन्याय के कारण भी लोग भूख का कष्ट सहेंगे। लोगों को प्रचुर मात्रा में और बढ़िया अन्न उत्पन्न करने के उपयोग का ज्ञान न हो अथवा भोजन करके उससे पुष्टि प्राप्त करने का सही ज्ञान न हो तो भी लोग भूख से पीड़ित रहेंगे अथवा भांति भांति के रोगों का शिकार होकर कष्ट पायेंगे। लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के बाधक इन तीनों कारणों का प्रतिविधान वर्णव्यवस्था करती है।

वर्ण व्यवस्था जनता को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों में विभक्त करती है। चारों के कर्त्तव्य भिन्न-भिन्न हैं। चारों अपने कार्य द्वारा राष्ट्र की जनता की सेवा करते हैं। ब्राह्मण वे लोग होते हैं जो ज्ञान के द्वारा जनता की सेवा करते हैं। क्षत्रिय वे लोग होते है, जो अन्याय से जनता की रक्षा करते हैं। वैश्य वे लोग होते हैं, जो राष्ट्र की भौतिक सम्पत्ति को उत्पन्न करने और उसके सम्यक वितरण करने के द्वारा जनता की सेवा करते हैं। शूद्र वे लोग होते हैं जो किसी भी प्रकार का बुद्धि का काम नहीं कर सकते, केवल शारीरिक श्रम द्वारा शेष तीनों वर्णों की सेवा का काम ही कर सकते हैं।

वर्ण शब्द संस्कृत की "वृञ्" धातु से बनता है जिसका अर्थ चुनाव करना होता है। अतः "वर्ण" का अर्थ है जिसे चुना जाये। ब्राह्मण आदि चारों को वर्ण इसलिए कहते हैं क्योंकि इनका चुनाव किया जाता है, कोई व्यक्ति उस-उस वर्ण के कर्त्तव्य कर्मों का चुनाव करके उनके द्वारा जनता की सेवा करने का व्रत लेता है। संस्कृत मे ब्रह्मचारी अर्थात् विद्यार्थी को "वर्णी" भी कहा जाता है। बालक ब्रह्मचर्याश्रम में,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अपने विद्यार्थी काल में, किसी न किसी वर्ण का चुनाव करके उसके द्वारा जनता की सेवा करने के उद्देश्य से विद्याध्ययन करता है, अपने को उसके योग्य बनाता है। संस्कृत में ब्रह्मचारी को "व्रती" भी कहते हैं। उसे व्रती इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह किसी न किसी वर्ण की योग्यता प्राप्त करके उसके द्वारा जनता की सेवा करने का 'व्रत" लेता है। व्रत लेने के कारण वह अपने मार्ग से विचलित नहीं हो सकता। यह व्रत लेकर विद्याध्ययन करने की प्रणाली वर्णाश्रम-व्यवस्था की शिक्षा जगत को एक निराली देन है। आज की शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थी का कोई "व्रत" नहीं होता। उसके जीवन का कोई निश्चित उद्देश्य नहीं होता जिसकी तैयारी में वह अपने सारे विद्यार्थी जीवन में उत्कट निष्ठा और लगन के साथ लगा रहे और उसका ध्यान व्यर्थ की आवश्यक बातों में न बिखरता रहे। शिक्षा जगत में यदि वर्णाश्रम व्यवस्था इस "व्रत" की प्रणाली को अपना लिया जाय तो मानव जाति का असीम कल्याण हो सकता है।

चारों वर्णों में बने हुए जन-समाज को वेद में मनुष्य के शरीर से उपमा दी गयी है। ब्राह्मण को जन समाज का मुख अर्थात् सिर कहा गया है, क्षत्रिय को उसकी भुजा कहा गया है, वैश्य को उसका मध्य भाग अर्थात् उसका पेट और उससे संलग्न प्रदेश कहा गया है, तथा शूद्र को उसके पैर कहा गया है। सिर में पाचों ज्ञानेन्द्रियां होती हैं और वह शरीर का अङ्ग होकर अपने ज्ञान के द्वारा शरीर की रक्षा करता है। भुजाओं में शक्ति होती है और वे शरीर का अङ्ग होकर अपनी शक्ति के द्वारा शरीर पर होने वाले प्रहारों अत्याचारों से उसकी रक्षा करती है। पेट शरीर का अङ्ग होकर, अन्न को पचा कर, उसका रस बनाकर सारे शरीर को पोषण प्रदान करता है। पैर सारे शरीर को अपने ऊपर उठाकर उसे स्थान से स्थान पर ले जाते हैं और इस प्रकार सारे शरीर की सेवा करते हैं। शरीर के इन चारों अङ्गों में पूर्ण सहयोग और अपनापन है। इनमें से किसी को भी कष्ट हो तो शेष तीनों उसके निवारण का प्रयत्न करते हैं। यदि पैर में कांटा लग जाये तो उसे निकालने के लिए हाथ भी वहां पहुंचते हैं और मुंह के दाँत भी। वेद की इस उपमा से समाज में चारों वर्णों के महत्त्व और कर्तव्यों को समझा जा सकता है। जिसमें औरों से पांच गुना अर्थात् बहुत अधिक ज्ञान हो, वह ब्राह्मण है और अपने ज्ञान से जनता की सेवा करना उसका काम है। जो भांति-भाति के विद्या-विज्ञानों के आविष्कार और अध्ययनाध्यापन में लगा रहता हो, सत्य का शोध और प्रचार जिसका उद्देश्य हो, जनता की अज्ञानान्धकार से रक्षा करना जिसके जीवन का लक्ष्य हो, वह ब्राह्मण है। विविध विषयों को पढ़ाने वाले अध्यापक, विविध प्रकार के अन्वेषणों और शोधकार्यों में लगे हुए लोग, सत्य और धर्म के प्रचार में लगे हुए प्रचारक और उपदेशक, तथा इसी प्रकार के अन्य ज्ञान-संबंधी कार्यों में लगे हुए लोग ब्राह्मण कहलायेंगे। जो लोग अन्याय और अत्याचार से जनता की रक्षा करने के काम में अपनी शक्ति लगा देंगे, वे क्षत्रिय कहलायेंगे। राज्य का प्रशासन चलाने वाले लोगों तथा सेना और पुलिस में काम करने वाले लोगों को क्षत्रिय कहा जायेगा। निर्धारित न्यूनतम स्तर की समान्य शिक्षा के अतिरिक्त अपने कार्य क्षेत्र से संबंध रखने वाले विषयों का उत्कृष्ट ज्ञान क्षत्रिय के लिए आवश्यक होगा। जो लोग राष्ट्र की भौतिक सम्पत्ति की अभिवृद्धि करेंगे और लोगों के जीवन-यापन के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लिए आवश्यक उपभोग सामग्री को जनता तक पहुंचाने का काम करेंगे उन्हें वैश्य कहा जायेगा। भांति भांति की खेती करने वाले, विविध प्रकार के पशुओं का पालन करने वाले, विभिन्न प्रकार के उद्योग-धन्धे और कारखाने चलाने वाले, और अनेक प्रकार के व्यापार करने वाले लोग वैश्य कहे जायेंगे। निर्धारित स्तर की सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त अपने कार्य क्षेत्र से संबन्ध रखने वाले विषयों का उत्कृष्ट ज्ञान वैश्यों के लिए आवश्यक होगा। जो लोग पढ़ने-लिखने का अवसर दिये जाने पर भी कुछ विशेष सीख नहीं सके, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य में से कुछ भी अपने को बना नहीं पाये, और इस प्रकार जो कोई ऐसा काम नहीं कर सकते जिसमें कुछ विशेष समझ और बुद्धि की आवश्यकता पड़ती हो और अतएव जो टोकरी ढोने आदि का तथा इसी प्रकार के अन्य शारीरिक श्रम के सेवा के काम ही कर सकते हैं, उन लोगों को शूद्र कहा जायेगा। अपने लिये उन्हें इसी प्रकार के काम चुनने पड़ते हैं और इन्हीं के द्वारा वे जनता की सेवा करते हैं। इस प्रकार के शूद्र तो किसी भी राष्ट्र में अति न्यून होंगे और कभी किसी राष्ट्र में इस प्रकार के शूद्र न भी रहें तो भी राष्ट्र की कोई हानि नहीं होगी। उनके द्वारा किये जाने वाले कामों को ब्राह्मणादि वर्णों के लोग स्वयं भी कर सकते हैं, तथा उन कामों को मशीनों के द्वारा भी कराया जा सकता है।

किसी भी राष्ट्र में ब्राह्मणों की संख्या भी अपेक्षाकृत बहुत कम होगी। इसी भाँति क्षत्रियों की संख्या भी अपेक्षाकृत बहुत कम होगी। राष्ट्र में बहुत अधिक संख्या तो सदा वैश्यों की ही होगी। वेद में जनता के लिए एक नाम "विश:" भी आता है वैश्य को वैश्य इसीलिए कहते हैं क्योंकि वह "विश:" अर्थात् जनता में सबसे अधिक संख्या में होते हैं। किसी भी राष्ट्र में लोगों की अधिक संख्या तो भौतिक सम्पत्ति उत्पन्न करने तथा उसके व्यापार में ही लगी रहती है। ब्राह्मण लोग धन-सम्पत्ति कमाने के काम में नही लगेंगे। यदि वे इस काम में लग जायें तो राष्ट्र के लिए परम उपयोगी ज्ञान के क्षेत्र का कार्य नहीं कर सकेंगे। इसी भाँति क्षत्रिय भी धन-सम्पत्ति के उपार्जन के काम में नहीं लगेंगे। यदि वे इस काम में लग जायें तो वे अन्याय अत्याचार से राष्ट्र की जनता की रक्षा का महान उपयोगी काम नहीं कर सकेंगे। ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों को ही अपने-अपने कार्य करने में अपना सारा समय और समग्र शक्ति लगा देनी होगी। अतएव वे सम्पत्ति उपार्जन के काम में नहीं पड़ सकेंगे। शूद्र में तो योग्यता न होने के कारण वह वैसे ही धन-सम्पत्ति उपार्जन के काम करने में असमर्थ रहेगा। राष्ट्र में धन-सम्पत्ति और अन्य भौतिक सामग्री को उत्पन्न करने और उसके वितरण का काम वैश्यों को ही करना होगा। उन्हीं के द्वारा उत्पादित सम्पत्ति और सामग्री से राज्य के नियमों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्रों को जीवन यापन के लिए आवश्यक सम्पत्ति और सामग्री दी जायेगी। जैसे कि शरीर के सिर आदि चारों अङ्गों का लक्ष्य और प्रयोजन अपने-अपने कार्यों के द्वारा समग्र शरीर की रक्षा करना होता है और चारों मिलकर ही शरीर कहलाते हैं, उसी प्रकार ब्राह्मणादि चारों वर्णों का प्रयोजन और लक्ष्य भी राष्ट्र की समग्र जनता की रक्षा तथा सुखसमृद्धि होता है और चारों मिलकर ही राष्ट्र कहलाते हैं। चारों वर्णों के लोग निष्काम भाव से अपना कर्त्तव्य और धर्म समझकर अपने अपने-कार्यों के द्वारा राष्ट्र सेवा करेंगे। क्योंकि उन्होंने अपने शिक्षा काल में ब्रह्मचर्याश्रम में, उन कार्यों का चुनाव कर लिया था, "वर्ण" ले लिया था, ऐसा व्रत

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लेकर कार्य क्षेत्र में उतरे हुए वैश्य वर्ण के लोग जो कुछ भी सम्पत्ति अर्जित करेंगे असल में उसे राष्ट्र की सेवा में समर्पित करने के उद्देश्य से ही करेंगे। ऐसे वैदिक धर्मी वैश्य अपने मजदूरों और नौकरों को अधिक से अधिक वेतन देंगे जिससे ऊपर वर्णित उनकी पांचों आवश्यकतायें भली भाँति पूरी हो सकें और वे अपनी कुछ अन्य ऐसी आवश्यकतायें भी थोड़ी-बहुत पूरी कर सकें जिनसे उनके जीवन में आनन्द की कुछ अभिवृद्धि हो सके। ऐसे वैश्य कम नहीं नापेंगे, कम नहीं तोलेंगे, एक निर्धारित सीमा से अधिक मुनाफा नहीं कमायेंगे, चोर-बाजारी और काला-बाजारी नहीं करेंगे, ग्राहकों को नहीं ठगेंगे, सरकार द्वारा लगाये गये करों को ठीक-ठीक अदा करेंगे तथा शास्त्र की मर्यादा के अनुसार अपनी सम्पत्ति का कुछ अंश दान में भी देते रहेंगे। ये वैश्य लोग यह सब कुछ इसलिए करेंगे क्योंकि उनका तो "व्रत" ही यह है कि राष्ट्र की सेवा में लगाने के लिए ही धन-सम्पत्ति का अर्जन करना है, उस सम्पत्ति के द्वारा अपने अतिरिक्त राष्ट्र के ब्राह्मण क्षत्रियों और शूद्रों की भी आवश्यकताओं को पूरा करना है।

धन-सम्पत्ति के लोभ में पड़कर वही वैश्य लोग, और दूसरे वर्णों के लोग भी, स्वार्थ के वशीभूत होकर, अन्याय और असत्य के मार्ग का अवलम्बन करके, धन-सम्पत्ति का अनुचित रूप में संग्रह न करने लग जायें और इस प्रकार दूसरों के अधिकारों को हड़पने और उनका खून चूसने के मार्ग पर न चलने लग पड़ें, इसका उपाय भी वर्णाश्रम व्यवस्था में किया गया है। चारों वर्णों के छात्रों की शिक्षा काल में ब्रह्मचर्याश्रम में, विभिन्न विद्या-विज्ञानों के साथ-साथ चरित्र-निर्माण की शिक्षा भी दी जायेगी। प्रारम्भ से ही उन्हें शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान, इन पांच यमों की तथा अहिंसा, सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य इन पाँच नियमों की शिक्षा दी जायेगी। इन पर चलने का अभ्यास कराया जायेगा। इन यम-नियमों के पालन से उनमें पूर्ण पवित्र जीवन बिताने की भावना जागेगी, वे सभी प्रकार के झूठ, सभी प्रकार की चोरी, किसी भी प्रकार से किसी के अधिकारों का हनन करके उसे दु:खी करने की प्रवृत्ति से अलग रहेंगे। वे तपस्वी अर्थात् सादा जीवन व्यतीत करने की वृत्ति वाले बनेंगे। अपरिग्रह की भावना से उनमें अनुचित रूप से सम्पत्ति का संग्रह करने की भावना नहीं उभरेगी। वे अपने पास उतनी ही सम्पत्ति रखेंगे जितनी अपने वर्ण और आश्रम के कर्तव्यों को ठीक से पूरा करने के लिए नितान्त आवश्यक होगी, उससे अधिक नहीं। वेद के उपदेशों के आधार पर उन्हें त्याग का जीवन बिताने की शिक्षा दी जायेगी! आश्रम-व्यवस्था भी इस कार्य में सहायता करेगी। ब्रह्मचर्याश्रम में सभी को त्याग-तपस्या का जीवन बिताना होगा, वहां धन-सम्पत्ति संग्रह करने का प्रश्न ही नहीं उठता। वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों में भी त्याग और तपस्या का जीवन ही बिताना होगा, वहां भी धन व सम्पत्ति संग्रह करने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। केवल एक गृहस्थ आश्रम में ही धन-सम्पत्ति संग्रह करने का कार्य होगा। वहाँ भी कोई व्यक्ति अनुचित तरीके अपना कर, दूसरे के अधिकारों का हनन करके, दूसरों के खून को चूसकर, धन-सम्पत्ति का संग्रह करने की ओर प्रवृत्त नहीं होगा। ब्रह्मचर्याश्रम में प्राप्त की गई यम-नियमों की शिक्षा उसे सदा इस अनुचित रास्ते से रोकेगी। इन यम-नियमों का पालन गृहस्थों का भी कर्त्तव्य है। इनका पालन करना चारों आश्रम वालों का ही कर्त्तव्य है। जब केवल गृहस्थ आश्रम में ही धन संग्रह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

किया जा सकता है और गृहस्थ आश्रम के बाद वानप्रस्थाश्रम में धन सम्पत्ति फिर छोड़ देनी है तो हर कोई सोचेगा कि फिर इस धन-सम्पत्ति को कमाने में पाप, झूठ, चोरी और अन्याय का सहारा क्यों लिया जाये । इस विचार से कोई भी व्यक्ति अनुचित उपायों का अवलम्बन नहीं करेगा ।

यदि फिर भी कोई भूला-भटका व्यक्ति अनुचित उपायों का अवलम्बन कर ही बैठेगा तो उसे रोकने के लिए राज-दण्ड भी होगा । अपराधी को राज्य की ओर से दण्ड मिलेगा । राज्य राष्ट्र-निवासियों से उनके वर्णों और आश्रमों के नियमों और धर्मों का पालन करायेगा । इसीलिए राजा को "वर्णाश्रमधर्म गोप्ता" कहा जाता है । ब्रह्मचर्याश्रम वर्णों की तैयारी का काल है । ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति पर स्नातक होने के समय आचार्य छात्रों को ब्राह्मण आदि वर्णों की उपाधि देगा । यों तो सभी व्यक्तियों में थोड़ी-बहुत मात्रा में सभी वर्णों के गुण-कर्म पाये जाते हैं । उस-उस प्रकार के गुणों की अधिकता तथा उनके आधार पर राष्ट्र की सेवा के लिए गये व्रत के कारण विभिन्न व्यक्तियों को ब्राह्मण आदि वर्ण की संज्ञा दी जाती है तथा उसके आधार पर ही गृहस्थाश्रम में उन्हें अपने कर्त्तव्यकर्म करने होते हैं । राज्य उनका पालन करवाता है । यह स्मरण रहे कि वर्ण-व्यवस्था जन्म पर आधारित नहीं है, वह गुण-कर्म पर आधारित है । शूद्र का बालक भी योग्यता के आधार पर ब्राह्मणादि बन सकता है और ब्राह्मण का बालक भी योग्यता न होने पर शूद्र बन सकता है ।

मनुष्यों में चार प्रकार की प्रवृत्तियां होती हैं । कुछ लोग ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में रहकर कार्य करना पसन्द करते हैं; वे ब्राह्मण वृत्ति के लोग हैं । कुछ लोग बल और साहस के कार्य करना पसन्द करते हैं । अतएव वे सेना, पुलिस और राज्य प्रबन्ध के क्षेत्र में रहकर काम कराना चाहते हैं वे क्षत्रिय वृत्ति के लोग है । अधिकांश लोग धन-सम्पत्ति कमाने की विशेष इच्छा रखते हैं वे वैश्य वृति के लोग हैं और कुछ लोग बुद्धि का कोई कार्य नहीं कर सकते, वे शारीरिक श्रम द्वारा दूसरों की सेवा ही कर सकते हैं, वे शूद्र वृत्ति के लोग हैं । वर्ण-व्यवस्था में इन चारों प्रकार की प्रवृत्तियों को ध्यान में रख कर इन प्रवृत्तियों वाले लोगों को अपनी-अपनी रुचि के अनुसार राष्ट्र की सेवा में प्रवृत्त किया जाता है ।

वर्ण-व्यवस्था की अपनी एक और विशेषता है । ऊपर वर्णित पांचों आलम्बन पदार्थ तो सभी राष्ट्रवासियों को चाहिए । इस आवश्यकता की पूर्ति के पश्चात्, कुछ लोग ऐसे होते हैं कि उन्हें अपनी सेवा के बदले में विशेष धन-सम्पत्ति की इच्छा नहीं रहती । इसलिए उन्हें सम्मान मिल जाये तो वे सन्तुष्ट रहते हैं । कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें शक्ति की, अधिकार की, शासन की इच्छा रहती है । उन्हें अधिकार मिल जाये और आलम्बन पदार्थ मिल जायें तो उन्हें और कुछ नहीं चाहिए । कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें धन-सम्पत्ति और उससे मिलने वाले सुख-आरामों की विशेष इच्छा रहती है । ये तीनों प्रकार के लोग क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वृत्ति के लोग होते हैं । वर्ण-व्यवस्था में इन तीनों का शक्ति-संतुलन कर दिया गया है । ब्राह्मणों को आलम्बन पदार्थों के अतिरिक्त सम्मान विशेष मिलेगा । उन्हें सभी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रकार के उत्सवों, सभा-समारोहों, दरबारों और गोष्ठियों आदि में सबसे आगे का, प्रतिष्ठा का, स्थान बैठने को मिलेगा। उनके आने पर राजा या राष्ट्रपति भी उनके आदर में खड़ा हो जायेगा। ब्राह्मण बनना बड़ा कठिन काम है। उन्हें प्रतिष्ठा मिलती देखकर लोगों में ब्राह्मण बनने की भावना प्रबल होगी। इससे राष्ट्र को लाभ होगा। स्वयं तो सच्चा ब्राह्मण प्रतिष्ठा भी नहीं चाहता, वह प्रतिष्ठा को विष के समान समझता है। राष्ट्र अपने कल्याण के लिए ब्राह्मणों का सम्मान करता है। क्षत्रियों को आलम्बन पदार्थों के अतिरिक्त अधिकार और शासन का गौरव मिलेगा। वैश्यों को आलम्बन पदार्थ तो मिलेगें ही इनके अतिरिक्त उन्हें अन्य वर्णों के लोगों से अधिक कुछ और भी धन-सम्पत्ति मिलेगी जिससे वे औरों की अपेक्षा कुछ अधिक सुख-आराम का जीवन व्यतीत कर सकें, सम्मान उन्हें तीसरे दर्जे का मिलेगा। शूद्र को भी आलम्बन पदार्थ मिलेंगे। उन्हें प्राप्त करने लायक वेतन आदि मिलेगा। उन्हें सामान्य प्यार भी मिलेगा। उन्हें तुच्छ और घृणित नहीं समझा जायेगा। किसी भी सभा-समारोह में ब्राह्मणों को प्रथम श्रेणी की कुर्सियां बैठने को मिलेंगी, क्षत्रियों को दूसरी श्रेणी की, वैश्यों को तीसरी श्रेणी की और शूद्रों को चौथी श्रेणी की। वर्णों के इस शक्ति-संतुलन से धन की प्रतिष्ठा कम हो जायेगी जिसका परिणाम यह होगा कि धन प्राप्त करने के लिए लोग अनुचित मार्गों का अवलम्बन नहीं करेंगे। आज तो समाज में धन की बेहद पूजा है। आज धन से सुख, आराम, अधिकार और मान-प्रतिष्ठा सब कुछ मिलता है। इसलिए धन के पीछे लोग पागल होकर दोड़ते हैं और उसे प्राप्त करने के लिए किसी भी अनुचित उपाय का अवलम्बन करने से नहीं हिचकते।

अभी ऊपर की पंक्तियों में हमने कहा है कि वैश्यों को अन्य वर्णों के लोगों की अपेक्षा धन-सम्पत्ति कुछ अधिक रखने की छूट होगी। यह छूट कितनी होगी ? इसका निश्चय देश-काल की परिस्थितियों के अनुसार किया जायेगा। महात्मा गांधी जी के मतानुसार कम से कम और अधिक से अधिक आमदनी में १ और १२ का अनुपात होना चाहिए। कुछ वर्ष पूर्व भारत सरकार ने श्री जॉन मथाई की अध्यक्षता में एक जांच-आयोग नियुक्त किया था। उस आयोग ने राय दी थी कि कम से कम और अधिक से अधिक आमदनी में अनुपात १ और ३० का होना चाहिए। इस विषय में विचार करके कोई भी निश्चय देश और काल की परिस्थिति के अनुसार किया जा सकता है। परन्तु यह अनुपात अवश्य रहना चाहिए कि वैश्यों को राष्ट्र की धन-सम्पत्ति को बढ़ा कर उसका अभ्युदय बढ़ाने में उत्साह और प्रेरणा मिलती रहे। जो अनुपात निश्चित होगा उसके भीतर लोगों की अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार उनकी भिन्न-भिन्न आमदनियाँ रहेंगी।

वर्ण-व्यवस्था की पद्धति में वैयक्तिक सम्पत्ति का अधिकार स्वीकार किया गया है। अपनी कमाई सम्पत्ति पर कमाने वाले का अपना अधिकार होगा। उसकी सम्पत्ति को उससे राज्य छीन नहीं सकता। वह अपनी सम्पत्ति को अपनी सन्तान को उत्तराधिकार में भी दे सकेगा। इस सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों से और वेद से कितने ही प्रमाण दिये जा सकते हैं। विस्तार भय से उन्हें नहीं दिया जा रहा। यह अधिकार देकर वर्णाश्रम-व्यवस्था की पद्धति में "ममत्व" के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का लाभ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उठाया गया है । जहां ममत्व होता है वहाँ व्यक्ति अपनी सारी शक्ति और समय लगा कर काम करता है । इससे वस्तुयें अधिक अच्छी बनती हैं, अधिक संख्या में बनती हैं और सस्ती बनती हैं और इस प्रकार राष्ट्र की श्रीवृद्धि होती है । वैश्यों को इस प्रकार कमाई हुई अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग करना होगा । जो उसका दुरुपयोग करेगा उससे उसकी सम्पत्ति छीनी भी जा सकती है । उसे अपने मजदूरों और नौकरों को उचित वेतन देना होगा, राज्य को दिये जाने वाले सब कर भी ठीक-ठीक अदा करने होंगे और शास्त्रों की मर्यादा के अनुसार अपनी सम्पत्ति का कुछ अंश दान भी करना होगा जिससे राष्ट्र में इस प्रकार के अच्छे कार्य हो सकें जिन्हें राज्य नहीं कर सकता। यदि इस प्रकार वह अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग नहीं करेगा तो उसकी सम्पत्ति छीनी भी जा सकती है ।

वर्णाश्रम व्यवस्था की पद्धति में पूंजीवादी पद्धति के गुण तो हैं, उसके दोष नहीं है । इस पद्धति में साम्यवाद के भी गुण तो हैं, उसके दोष नहीं हैं। पूंजीवादी व्यवस्था में धन की पूजा होती है, उसमें धन का सीमातीत महत्त्व है और उसमें लोभ की वृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है। इस के कारण बड़े अन्याय और अनर्थ होते हैं, डाके पड़ते हैं, हत्याएँ की जाती हैं, व्याज अधिक लिया जाता है जिसके अदा न किए जाने पर ऋण लेने वाले की जमीन-जायदाद कुड़क करा ली जाती है, व्यापारी वर्ग कम नापता और तोलता है, चोर-बाजारी करता है, आमदनी छिपाता है और राज्य को देय कर नहीं देता । इस व्यवस्था में एक व्यक्ति सारी आयु भर कमाने में लगा रहता है जिसके कारण अनेक लोगों को काम करने का अवसर ही नहीं मिलता । पूंजीवादी व्यवस्था मनुष्य की आत्मा को पतित और भ्रष्ट कर देती है । वर्णाश्रम-व्यवस्था की पद्धति में यह सब कुछ नहीं होगा । वहां धन की पूजा नहीं है । वहाँ धन का महत्त्व सीमित है । इस पद्धति में लाभ की वृत्ति पर अंकुश लगाया जाता है । शिक्षा काल से ही व्यक्ति में लोभ की वृत्ति को दबाने का प्रयत्न किया जाता है। परिणामस्वरूप धन कमाने वालों में वे बुराइयाँ उत्पन्न नहीं हो पातीं जिनका अभी ऊपर की पंक्तियों में संकेत किया गया है । वर्णाश्रम की पद्धति में गृहस्थ आश्रम के बाद कमाना छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति को वानप्रस्थ आश्रम में जाना होगा । इससे नये आने वालों के लिए काम के अवसर निकलते रहेंगे । बेरोजगारी नहीं होगी । आजकल की पूंजीवादी व्यवस्था में तो यह बड़ी भारी समस्या है । अमेरिका जैसे महासमृद्ध पूंजीवादी देश में भी ७०-७५ लाख लोग बेरोजगार हैं । सभी पूंजीवादी देशों में बेरोजगारी की विकट समस्या है । वर्ण-व्यवस्था की पद्धति में व्यक्ति का आत्मा पतित और भ्रष्ट नहीं हो पाता ।

साम्यवाद के दोष भी वर्ण-व्यवस्था की पद्धति में नही हैं । साम्यवाद प्रजाजनों की गरीबी दूर करना चाहता है, यह उद्देश्य तो उसका अच्छा है । परन्तु उसमें विचारों की स्वतन्त्रता का हनन कर दिया जाता है, यह उसका महान् दोष है। वर्ण-व्यवस्था की पद्धति में यह दोष नहीं है । साम्यवाद में "ममत्व" के महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक तत्त्व को भुला दिया जाता है । वहां किसी को व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार नहीं दिया जाता । इसका परिणाम यह होता है कि लोग मन लगाकर काम नहीं करते। अतः चीजें उत्कृष्ट कोटि की नहीं बनतीं; थोड़ी मात्रा में बनती हैं और मंहगी बनती हैं । उत्पादन जितना और जैसा चाहिए उतना और वैसा नहीं होता । रूस में अक्टूबर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१९१७ की क्रान्ति के बाद जब किसानों की भूमि छीनी जाने लगी और सामूहिक कृषि फार्म बनाये जाने लगे तो किसानों में बड़ा असन्तोष हुआ और उन्होंने ठीक से काम करना बन्द कर दिया। कृषि उत्पादन बहुत कम होने लगा। इस पर वहां की साम्यवादी सरकार ने लाखों व्यक्तियों को गोली के घाट उतार दिया। शुरू में किसी को वेतन नहीं मिलता था। काम के बदले में सबको पर्चियां दी जाती थीं और उन पर्चियों को दिखाकर स्टोरों से आवश्यक सामान ले लेने की व्यवस्था थी। सबके साथ एक जैसा बर्ताव था, चाहे कोई कुछ भी काम क्यों न करता हो। इससे भी लोगों में मन लगा कर काम करने की प्रवृत्ति जाती रही और सब प्रकार का उत्पादन गिर गया। इस पर आगे चलकर स्टैलिन को काम के बदले में योग्यतानुसार कम-ज्यादा वेतन देने की पद्धति चलानी पड़ी। पहले वहाँ बचाकर कोई व्यक्ति बैंक में रुपया जमा नहीं कर सकता था। स्टैलिन ने यह पद्धति भी बदली। काम ज्यादा और अच्छा करने के लिए कुछ अंशों में ठेके और इनाम देने की पद्धति भी फिर से चलाई। अपना बचाया हुआ रुपया और अन्य सामग्री उत्तराधिकार में सन्तानों को देने की प्रथा, जो कि बन्द कर दी गयी थी, स्टैलिन ने फिर से चलाई। वेतन भी काम के अनुसार कम-अधिक दिये जाने लगे। रूस में कम से कम और अधिक से अधिक आमदनी का अनुपात लगभग १ और ८० का है। वहाँ मजदूरों को सामान्यतया ४००-५०० रुबल वेतन प्रति मास दिया जाता है, जबकि विशिष्ट विशेषज्ञों और बहुत महत्त्वपूर्ण काम करने वालों को ३० और ४० हजार रुबल तक भी वेतन दे दिया जाता है। इन सीमाओं के भीतर लोगों को उनकी योग्यताओं के अनुसार भिन्न-भिन्न वेतन मिलते हैं। आमदनी में भिन्नता की ये सब बातें पूंजीवादी पद्धति की हैं जो साम्यवादी रूस को विवश होकर फिर से अपनानी पड़ी हैं। वहां पूंजीवादी पद्धति से अब यही भिन्नता है कि कोई व्यक्ति अपने रुपये को उत्पादन में नहीं लगा सकता, केवल उसका उपभोग ही कर सकता है। वहां उत्पादन सभी प्रकार का सरकार द्वारा होता है। इस प्रकार साम्यवाद पूर्ण रूप में भी नहीं चल पाया। वहां यह इसलिए हुआ कि साम्यवादियों ने "ममत्व" के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त को भुला दिया था जिसके कारण व्यक्ति अपनी सारी शक्ति और सारा समय किसी काम के करने में लगा देता है। वर्ण-व्यवस्था की पद्धति में "ममत्व" के इस महत्त्वपूर्ण तत्त्व को ध्यान में रखा जाता है और उससे पूरा लाभ उठाया जाता है। वर्ण-व्यवस्था में सबको अपनी रुचि और योग्यता के अनुसार कोई भी काम निजी रूप में करने का अधिकार दिया जाता है। उत्पादन और वितरण सम्बन्धी सब काम वैश्यों के हैं। कोई भी वैश्य अपनी रुचि और योग्यता के अनुसार उत्पादन और वितरण का कोई भी काम निजी रूप में कर सकता है। निजी रूप में वस्तुएँ उत्कृष्ट बनेंगी, अधिक मात्रा में बनेंगी और सस्ती बनेंगी तथा उनका वितरण भी ऐसा अच्छा होगा कि सब राष्ट्रवासियों की आवश्यकताएँ भली-भांति पूरी हो सकेंगी। वर्णाश्रम व्यवस्था पद्धति की "वर्ण" और "व्रत" की दीक्षा में दीक्षित वैश्य लोग कभी भी अपनी सम्पत्ति का दुरुपयोग नहीं करेंगे। यदि कभी उन्होंने इस प्रकार का आचरण किया तो उनकी सम्पत्ति छीनी भी जा सकती है और उन्हें दण्डित भी किया जा सकता है।

वर्णाश्रम-व्यवस्था की पद्धति की अपनी एक और भी निराली विशेषता है, वह है शिक्षा का समान अवसर और सर्वथा निःशुल्क शिक्षा। वर्णाश्रम व्यवस्था की पद्धति में

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

राष्ट्र के प्रत्येक बालक और बालिका को पढ़ने योग्य आयु का हो जाने पर आवश्यक तौर पर पढ़ने के लिए विद्यालय में भेजना होगा। जो माता-पिता ढील करेंगे उन्हें राज्य की ओर से दण्डित किया जायेगा। बालकों और अभिभावकों को शिक्षा पर कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ेगा। सारी शिक्षा, ऊंची से ऊंची शिक्षा भी सर्वथा निःशुल्क होगी। पुस्तकें आदि सब सामान भी राज्य द्वारा विद्यालय की ओर से निःशुल्क दिया जायेगा। यहां तक कि भोजन-वस्त्र भी राज्य की ओर से ही दिये जायेंगे चाहे निर्धन का बालक हो, चाहे धनी का और चाहे ऊंचे से ऊंचे किसी राजकर्मचारी का, सबके साथ यही व्यवस्था लागू होगी। इसका लाभ तो यह होगा कि राष्ट्र के सभी परिवारों के बालक निश्चिन्त होकर निर्बाध रूप से ऊंची से ऊंची शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे। यह नहीं होगा कि गरीब और शूद्रों के बालक धनाभाव के कारण शिक्षा से ही वञ्चित रह जायें। राष्ट्र के सभी बच्चों को विद्यालयों में सभी प्रकार की उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त करके ब्रह्माणादि में से कुछ भी बनने का अवसर प्राप्त होगा। दूसरा लाभ इस व्यवस्था का यह होगा कि क्योंकि सभी बच्चे राष्ट्र के व्यय पर सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त करेंगे इसलिए उनमें राष्ट्र के प्रति कृतज्ञता और उसकी सेवा करने की भावना जागृत होगी। अतः वे जिस भी "वर्ण" की दीक्षा और "व्रत" लेंगे उसे राष्ट्र की सेवा करने की भावना से ही लेंगे। इसका एक तीसरा लाभ यह भी होगा कि क्योंकि शिक्षा-काल में सब को भोजन-वस्त्र और अन्य सब सामान एक समान मिलेगा इसलिए उनमें ऊंच-नीच की भावना उत्पन्न नहीं होगी और उनमें एक-दूसरे के प्रति बन्धुत्व के भाव जागृत होंगे जिससे राष्ट्र को बड़ा लाभ होगा। शिक्षा के क्षेत्र में वर्णाश्रम-व्यवस्था पराकाष्ठा की साम्यवादी है। जिस दिन धरती पर वर्णाश्रम व्यवस्था पूर्ण रूप से व्यवहार में आने लगेगी उस दिन धरती स्वर्ग बन जायेगी और धरती पर रहने वाले लोग देवता बन जायेंगे। ●

स्वामी दयानन्द सरस्वती

आदि मनुज से सुन्दरतम तुम,
आदि 'प्राण' से सुन्दर प्राण।
तुम 'मानव' थे युग मानव या,
मानवता के ही अभियान।
तुम अद्भुत थे मंजुल कवि की
शाश्वत वीणा के अनुरूप।
तुम में झाँक रहा था ऋषिवर!
सतयुग का अभिनव प्रारूप!
बीच भंवर जग नाव पड़ी थी, तुम ही खोज सके पतवार।
हे युग-स्रष्टा! हे युग द्रष्टा! हे युग-गौरव! युग आधार!!!

—राकेश रानी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार
विद्यामार्तण्ड

योग मोक्ष ईश्वर प्राप्ति

१. योगसाधना की तैयारी

मोक्ष और ईश्वर प्राप्ति के लिए योग साधना एकमात्र उपाय है। योग साधना मार्ग पर आरूढ़ होने के लिये योग साधना की तैयारी करनी होती है। जैसे भूमि में बीज बोने से पूर्व भूमि को जोतना होता है ताकि भूमिगत अवाञ्छनीय घास-पात तथा जड़ी-बूटी अलग की जा सके, वैसे ही योग साधना से पूर्व चित्तभूमि को, उपायों द्वारा, प्रथम सुसंस्कृत अर्थात् विशुद्ध करना होता है। इस सम्बन्ध में श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा है कि—

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ।।अ० २ खण्ड १३।।

शरीर का लघुपन, अर्थात् भारीपन न होना। नियमित, परिमित और सात्विक आहर द्वारा शरीर हल्का और कार्यक्षम रहता है। आरोग्य अर्थात् शारीरिक वात पित्त कफ़ की समता द्वारा शरीर और मन का रोगरहित होना। अलोलुपत्व अर्थात् खान-पान में लोभ का न होना। सदा सुपाच्य तथा उचित मात्रा में ही खान-पान करना! वर्णप्रसाद अर्थात् चित्त की प्रसन्नता द्वारा मुखारविन्द को सदा प्रफुल्लित रखना। स्वरसौष्ठव अर्थात् गले में कफ़ का जमा न होना ताकि श्वास-प्रश्वास क्रिया में बाधा न हो, तथा परस्पर भाषण में कठोरता और कटु वाक्यों का प्रयोग न करना, सदा सत्य और प्रिय वाणी का प्रयोग करना। शुभ गन्ध अर्थात् स्नान द्वारा शरीर को सदा स्वच्छ रखना, ताकि शरीर से बदबू न आए। मूत्र और पुरीष का अल्प होना, इसे योगमार्ग की प्रथम प्रवृत्ति कहते हैं।

योगदर्शन में भी चित्तभूमि के संस्कार का वर्णन है। व्यास मुनि ने इस

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

संस्कार को परिकर्म कहा है, अर्थात् चित्तभूमि को परिष्कृत करने के कर्म। इस सम्बन्ध में योगदर्शन का सूत्र है "मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुख दुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातः चित्त प्रसादनम्" (१।३३) अर्थात् सुखियों के साथ स्नेह करना, दुःखियों पर करुणा करना, पुण्यात्माओं को देख कर प्रसन्न होना, और अपुण्यात्माओं की ओर उपेक्षावृत्ति धारण करना, इन उपायों द्वारा चित्त की प्रसन्नता होती है, स्वच्छता होती है। मैत्री भावना से ईर्ष्या की कालिमा दूर होती है, करुणा द्वारा हृदय उदार होता, मुदिता द्वारा असूया की भावना दूर होती, तथा उपेक्षा द्वारा असहिष्णुता की कालिमा दूर हो जाती है। इस प्रकार साधक का चित्त प्रसन्न रहता, और उस में सत्वगुण का आविर्भाव होता है। कई समाज सुधारवादी यहां यह आपत्ति कर सकते हैं कि पापियों के प्रति उपेक्षा की भावना न कर उनके सुधार के लिये यत्नवान होना अधिक श्रेयस्कर है। यह आपत्ति उपेक्षणीय नहीं। अपितु इस में बल है। परन्तु यह सुधार का काम मोक्षमार्गी के लिये नहीं। मोक्षमार्गी को इस प्रकार का सुधार का काम कुछ काल के लिये परित्याग के योग्य है। सुधार मार्ग का अवलम्ब मोक्षमार्गी के ध्येय के अनुकूल नहीं होता। प्राचीनकाल के योगी सांसारिक धन्धों से अलग होकर योग साधना द्वारा पहले अपने आप को सुधारते रहे हैं, तत्पश्चात् निज आचरणों और प्रचार द्वारा प्रजा का कल्याण करते रहे हैं। इस सम्बन्ध में गौतम बुद्ध, शंकर, महर्षि दयानन्द आदि समुज्ज्वल दृष्टान्त हैं। ऐसे सब महात्मा जब प्रचार करते हैं तो उन का प्रचार प्रजानज का वास्तविक और चिरस्थायी सुधार करता है, जबकि संसारी सुधारकों द्वारा किया गया प्रचार रागद्वेष, स्वार्थ भावना, तथा नौकरी-पेशे को साथ लिये होता, और प्रभाव में भी अल्पस्थायी होता है। योगदर्शन में यम-नियमों को भी चित्तभूमि के परिष्कार का आवश्यक साधन माना है। यम-नियमों में कायिक, वाचिक और मानसिक हिंसा का परित्याग, सत्यमय जीवन, ब्रह्मचर्य, त्याग भावना तथा सन्तोष आदि—चित्तभूमि की स्वच्छता के लिये परम आवश्यक है।

२. योग साधना की सफलता के चिह्न

चित्तभूमि की शुद्धि के अनन्तर योग साधना आरम्भ करनी चाहिये। चित्त भूमि की शुद्धि किये बिना योग साधना में सफलता नहीं मिल सकती। योगाभ्यासी जब योगसाधना की ओर पग बढ़ाता है, तो कालान्तर में, उसे कई प्रकार की अनुभूतियां होने लगती हैं। इन अनुभूतियों के होने पर योगी को निश्चय हो जाता है कि वह योगमार्ग पर ठीक प्रकार चल रहा है, इस प्रकार उसे योगसाधना में प्रोत्साहन मिलता है। ये अनुभूतियां चिह्नरूप होती हैं। योग साधना की सफलता में श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा है कि ये अनुभूमियां पूर्वरूप होती हैं ब्रह्माभिव्यक्ति में। यथा—

नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योत विद्युत्स्फटिक शशीनाम्।
एतानि रूपाणि पुरः सराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्ति कराणि योगे॥ अ० २। खण्ड ११।

अर्थात् अन्तर्दृष्टि में कोहरा दीखना, धूआं उठता हुआ दीखना, सूर्य ज्योति का चमकना, वायु का संचार दीखना, अग्नि ज्वाला का दीखना, सितारों का दीखना, विद्युत की चमक, स्फटिकों तथा चान्द का दीखना,—ये रूप, ब्रह्म की अभिव्यक्ति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के पूर्ववर्ती चिन्ह हैं। योगदर्शन (१।३६) के व्यास भाष्य में कहा है कि ध्यानाभ्यास के प्रकर्ष द्वारा चित्तवृत्ति,—सूर्य, चन्द्र, यह तथा मणियों की प्रभा के आकार में नानारूप से भासित होती है। यथा—"बुद्धिसत्त्वं हि भास्वरमाकाशकल्पं तत्र स्थिति वैशारद्यात्, प्रवृत्तिः सूर्येन्दुग्रहमणि प्रभा रूपाकारेण विकल्पते यथा योगिनः चित्तं पदं लभते।" इस प्रकार की नानाविध दिव्यदृष्टियां योगी के उत्साह की वृद्धि करती हैं। इस सम्बन्ध में योगदर्शन के (१।५२, २।४३;) सूत्र भी द्रष्टव्य हैं।

३. योग का लक्षण

योगदर्शन में योग का लक्षण किया है "चित्तवृत्ति निरोध" (१।१), अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध अर्थात् रुक जाना, विलीन हो जाना। सम्पूर्णतया चित्त-वृत्तियों का निरोध हो जाने पर योगी मुक्त हो जाता है, मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार चित्तवृत्ति निरोध, योगाभ्यास का अन्तिम परिणाम है। परन्तु योग शब्द "युज" धातु से निष्पन्न होता है जिसके कि दो अर्थ हैं, युज् अर्थात् सम्बन्ध और युज् समाधि। धात्वर्थ की दृष्टि से योग शब्द द्वारा धारणा, ध्यान और सम्प्रज्ञात-समाधि का ग्रहण होता है। चित्त के परिकर्म अर्थात् परिमार्जन के पश्चात् योगाभ्यास "धारणा" से प्रारम्भ होता है। "देशबन्धः चित्तस्य धारणा" (योग ३/१)। अर्थात् शरीर के देश-विशेष के साथ चित्त को बान्ध रखना,—धारणा है। व्यासभाष्य में देश विशेष निम्नलिखित निर्दिष्ट किये हैं,—नाभिचक्र, हृदयकमल, मूर्धा में प्रकट हुई ज्योति, नासिकाग्र, जिह्वाग्र आदि।

धारणा द्वारा चित्त को जिस देश विशेष में बान्धा है उसी देश विशेष में चित्त को बन्धा रख कर, उसी देश विशेष में ध्येय की स्थिति की कल्पना करके ध्येय का चिन्तन करना, और इसी ध्येय के चिन्तन का सतत प्रवाह बने रहना, अर्थात् इस चिन्तन में अन्य वस्तु के चिन्तन का मिश्रण न होने देना,—ध्यान कहलाता है। यथा "तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्" (योग ३।२)। एकतान का अभिप्राय है "सदृश प्रत्यय का प्रवाह", अर्थात् एक ही चिन्तन का धारारूप में प्रवाह (ध्यानाभ्यास में तीन वस्तुओं का भान होता रहता है, (१) ध्याता अर्थात् ध्यान करने वाले का, ध्यान अर्थात् चिन्तन के स्वरूप का और ध्येय का जिस को कि ध्येय बनाया जाता है, अर्थात् जिस वस्तु का ध्यान चिन्तन किया जा रहा है। इन तीन को "त्रिपुटी" कहते हैं। ध्यान जैसे-२ परिपक्व होता जाता है वैसे-वैसे 'चिन्तन करने वाले का भान" अल्प अल्पतर होता जाता है, और ध्येयमात्र का चिन्तन दृढ़ होता जाता है। जब केवल ध्येय का चिन्तन ही रह जाता है और चिन्तन करने वाले तथा चिन्तन का और चिन्तन का भान नहीं रहता तो इसे समाधि कहते हैं। यह समाधि सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है, क्योंकि इस समाधि में ध्येय वस्तु सम्प्रज्ञात रहती है, जानी जा रही होती है। यथा—"तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः" (योग ३।३), अर्थात् वह ध्यान ही समाधि है, जिसमें कि केवल "अर्थमात्र" भासित हो रहा होता है और ध्यान मानो अपने निजस्वरूप में नहीं रहता शून्य सा हो जाता है। ध्यान के निज स्वरूप में ध्यान और ध्येय भासित होते रहते हैं। इस त्रिपुटी में जब ध्याता और ध्यान (चिन्तन का निजस्वरूप) विलुप्तप्राय हो जाते हैं और केवल ध्येयमात्र अवशिष्ट रह जाता है तो इसे समाधि कहते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सम्प्रज्ञात समाधि के प्रकर्ष में फिर ऐसी अवस्था भी आ जाती है जबकि ध्येय का भी भान नहीं रहता, इस प्रकार की समाधि को असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। हम अपने दैनिक जीवन के दृष्टान्त द्वारा चित्त की उपर्युक्त अवस्थाओं को हृदयङ्गम कर सकते हैं। जागरित अवस्था में हमारा चित्त बाह्य विषयों में रमण करता रहता है। जब हम सो जाते और स्वप्न ले रहे होते हैं तब चित्त का सम्बन्ध बाह्यविषयों से हट कर आन्तरिक देश विशेष के साथ बन्ध कर स्वप्न ले रहा होता है। स्वाप्निक विषय के भान की एकतानता को हम सम्प्रज्ञात समाधि कह सकते हैं। जब चित्त स्वप्नावस्था से निकल कर सुषुप्ति-अवस्था में चला जाता है तब मानो यह सुषुप्ति-अवस्था असम्प्रज्ञात-समाधिरूप है। इस अवस्था में स्वप्नावस्था के विषयों का भी भान नहीं रहता। परन्तु इस सुषुप्ति-अवस्था में जीवात्मा को निज-चैतन्य का भान अवश्य रहता है, क्योंकि पुनः जागरण पर व्यक्ति कहता है कि "मैं खूब सोया, उस समय कुछ भी परिज्ञान मुझे न था"। व्यक्ति निज चैतन्यावस्था के भान को इन शब्दों में कह रहा होता है। यह अवस्था कैवल्यावस्था तथा मोक्षावस्था के सदृश है। कैवल्य का अर्थ है जीवात्मा का अकेला हो जाना, शरीर चित्त और चैत्तों से छूट जाना। मोक्ष में भी जीवात्मा शरीर और चित्त से छूट जाता है। मोक्ष का अर्थ ही है छूट-जाना। इसी लिये "समाधि सुषुप्ति मोक्षेषु ब्रह्मरूपता" इस सूत्र में समाधि, सुषुप्ति, और मोक्ष को समाररूपता का कहा है। महाप्रलय में जैसे ब्रह्म, जगत् के निर्माण, धारण, तथा पोषण से दूर कर निज केवल चैतन्यावस्था में अवस्थित रहता है, इसी प्रकार की अवस्था जीवात्मा की हो जाती है जबकि वह मोक्ष पा लेता है।

४. योगसाधना की विधि

श्वेताश्वतर उपनिषद् में योगसाधना की विधि निम्नलिखित कही है—

प्राणान् प्रपीड्येह स युक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्तः ॥अ० २, खं० ९॥

योग साधक प्राणों अर्थात् इन्द्रियों को दृढ़तापूर्वक वश में करके, और शारीरिक चेष्टाओं को नियंत्रित करके, नासिका द्वारा श्वास लेता रहे। दुष्टाश्व से युक्त रथ के सदृश इस शरीर को जान कर सावधानी से मन को हृदय आदि किसी प्रदेश में बान्धे रखे ॥अ० २, खं० ९॥

समे शुचौ शर्करावह्नि बालुका विवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः।
मनोऽकूले न तु चक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत् ॥अ० २ खं१०॥

समतल, शुद्ध, कंकर, आग, तथा रेत से रहित, और शब्द तथा जलाशय की दृष्टि से मनोऽनुकूल स्थान में, गुफा या वायु के झोंकों से रहित स्थान में, योग साधना करे, आंखों को दबाए नहीं।

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिरुध्य।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ॥अ२, खं० ८॥

छाती, गर्दन और सिर को सीधी रेखा में ऊँचा रख कर, तथा शरीर को समतल में स्थापित कर, मन सहित इन्द्रियों को हृदय में रोक कर, उपासक, शब्द ब्रह्म अर्थात् ओ३म् के जप रूपी नौका द्वारा भयावह सब इन्द्रिय-स्रोतों को तैरे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

५ ज्ञानेन्द्रियां ५ भयावह स्रोत हैं, जिन में ज्ञान-जल प्रवाहित होता रहता है। प्रत्येक इन्द्रिय स्रोत भयावह हैं। किसी इन्द्रिय का कोई भी विषय मनुष्य को विषय-नदी में बहा सकता, और डुबा सकता है। इन स्रोतों को तैरने का एक उपाय है ब्रह्मरूपी नौका आश्रय, और ओ३म् का श्रद्धापूर्वक जप।

५. योग साधना द्वारा ज्ञानप्रकर्ष

योग साधना के परिपक्व हो जाने पर योगी में ज्ञान की वृद्धि होती जाती है। धारणा, ध्यान और समाधि ये तीनों जब किसी एक ध्येय को विषय बनाएं तो इन तीनों को संयम करते हैं। जिस ध्येय में संयम का प्रयोग किया जाय उस ध्येय का यथार्थ ज्ञान संयम द्वारा हो जाता है। यथा "तज्जयात् प्रज्ञालोकः" (योग ३/५), अर्थात् संयम पर अधिकार हो जाने पर ज्ञान का प्रकाश बढ़ता जाता है। सूक्ष्म विषयों के सम्बन्ध में जब संयम का अधिकार हो जाता है तब ऋतम्भरा प्रज्ञा प्रकट हो जाती है "ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा" (योग १/४८)। यह प्रज्ञा ऋतम्भरा है, ऋत अर्थात् सत्य से भरपूर होती है। इस द्वारा जो लाभ होता है वह सत्यमय होता है, यथार्थ होता है, उस में संशय, भ्रम तथा, असत्यता का लेशमात्र भी नहीं होता। वस्तु में तीन प्रकार के परिणाम होते हैं, भूत काल में हुआ वस्तु से परिणाम, वर्तमान काल में हुआ वस्तु में परिणाम, तथा भविष्यत् काल में होने वाला वस्तु में परिणाम। इन तीन परिणामों पर संयम द्वारा वस्तु के अतीत और भविष्यत् के परिणामों का ज्ञान हो जाता है। यथा:-"परिणामत्रय सयमात् अतीतानागतज्ञानम्" (योग ३/१६। परव्यक्ति के विचारों पर संयम द्वारा उस व्यक्ति के चित्तगत भावों का परिज्ञान हो जाता है 'प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम्' (योग ३/१६)। नाभिचक्र में संयम द्वारा शरीरिक रचना का परिज्ञान हो जाता है। यथा:—"नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम्" (योग ३/२६) आत्मा का निरात्मचित से जब भेदज्ञान अर्थात् विवेकज्ञान हो जाता है तब योगी में सर्वज्ञातृत्व अर्थात् सर्वज्ञता प्रकट हो जाती है। यथा:—"सत्त्व पुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च" (योग ३/४६)। सर्वज्ञातृत्व का अभिप्राय यह है कि योग जिस तत्त्व को जानना चाहता है उस तत्व के हुए, तथा होने वाले क्रमिक विकासों पर संयम द्वारा उस तत्त्व के यथार्थ स्वरूपों को जान लेता है। यथा—"क्षण तत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम्" (योग ३/५२)। अन्त में एक ऐसी अवस्था आ जाती है जब कि योगी में "तारक" ज्ञान प्रकट हो जाता है। तारक ज्ञान के प्रकट हो जाने पर योगी भवसागर से तर जाता है, और योग के अन्तिम फल मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। तारक ज्ञान के सम्बन्ध में कहा है कि "तारकं सर्वविषयं सर्वथा विषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम्" (योग ३/५४)। अर्थात् तारक ज्ञान द्वारा सब विषय जान लिये जाते हैं, तारक ज्ञान के प्रकट होते कोई भी विषय योगी को अज्ञात नहीं रहता। तारक ज्ञान "सर्वथा-विषयक" होता है, अर्थात् तारक ज्ञान में अतीत, अनागत, तथा वर्तमान सभी प्रकार के विषयों को योगी, उन के सब स्वरूपों में जान लेता है। तारक ज्ञान अक्रम होता है, क्रमों से रहित होता है, इस से योगी एक ही क्षण में अर्थात् युगपत् सब विषयों को सब प्रकार से जान लेता है। इस प्रकार योग विधि द्वारा योगी सब प्रकार से तत्त्व ज्ञानी हो जाता है। इसीलिये प्राचीन काल के आचार्य अपने शिष्यों को लौकिक ज्ञान देने के साथ-२ योगाभ्यास की भी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म् भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात्।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

अथर्व०१९-७१-१

स्तुति करते हम वेद ज्ञान की,
जो माता है प्रेरक~पालक,
पावन करती मनुज मात्र को।
आयु, बल, सन्तति,-पशु कीर्ति,
धन, मेधा, विद्या का दान।
सब कुछ देकर हमें दिया है,
मोक्ष मार्ग का पावन ज्ञान।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

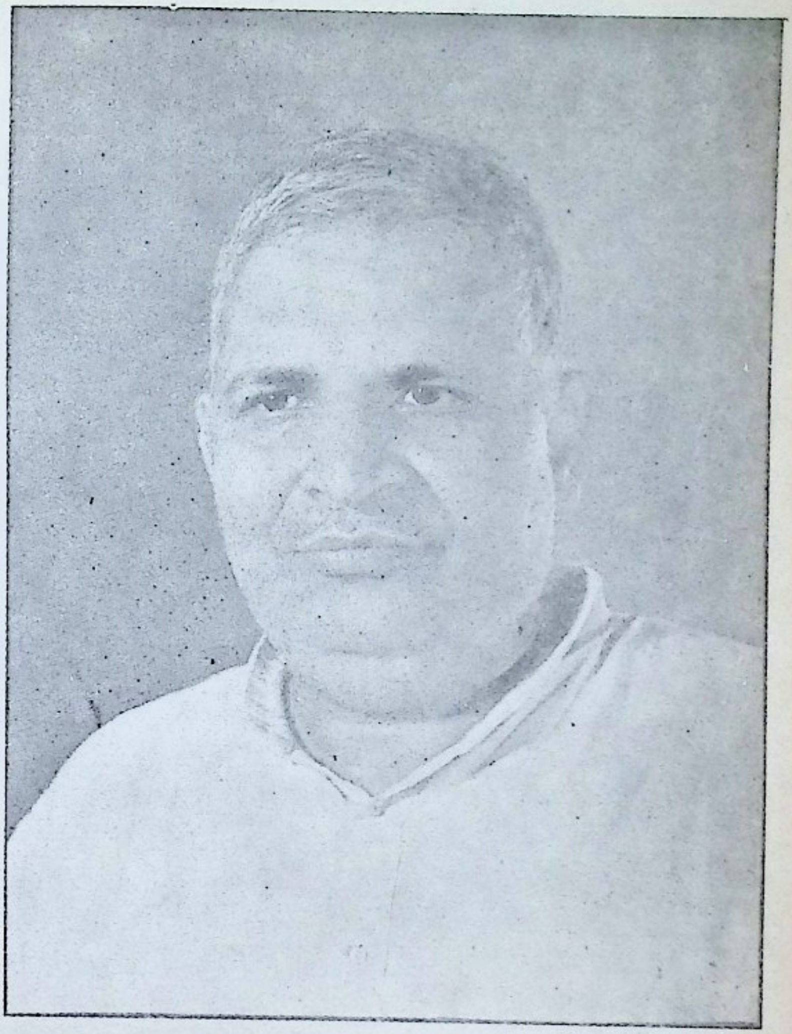

संसार के इतिहास में प्रथम वार १२५०० वेद-भाष्य प्रसारित कर
घर, घर में वेद पहुंचाने के लिए कृतसंकल्प
पं० भारतेन्द्र नाथ साहित्यालंकार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

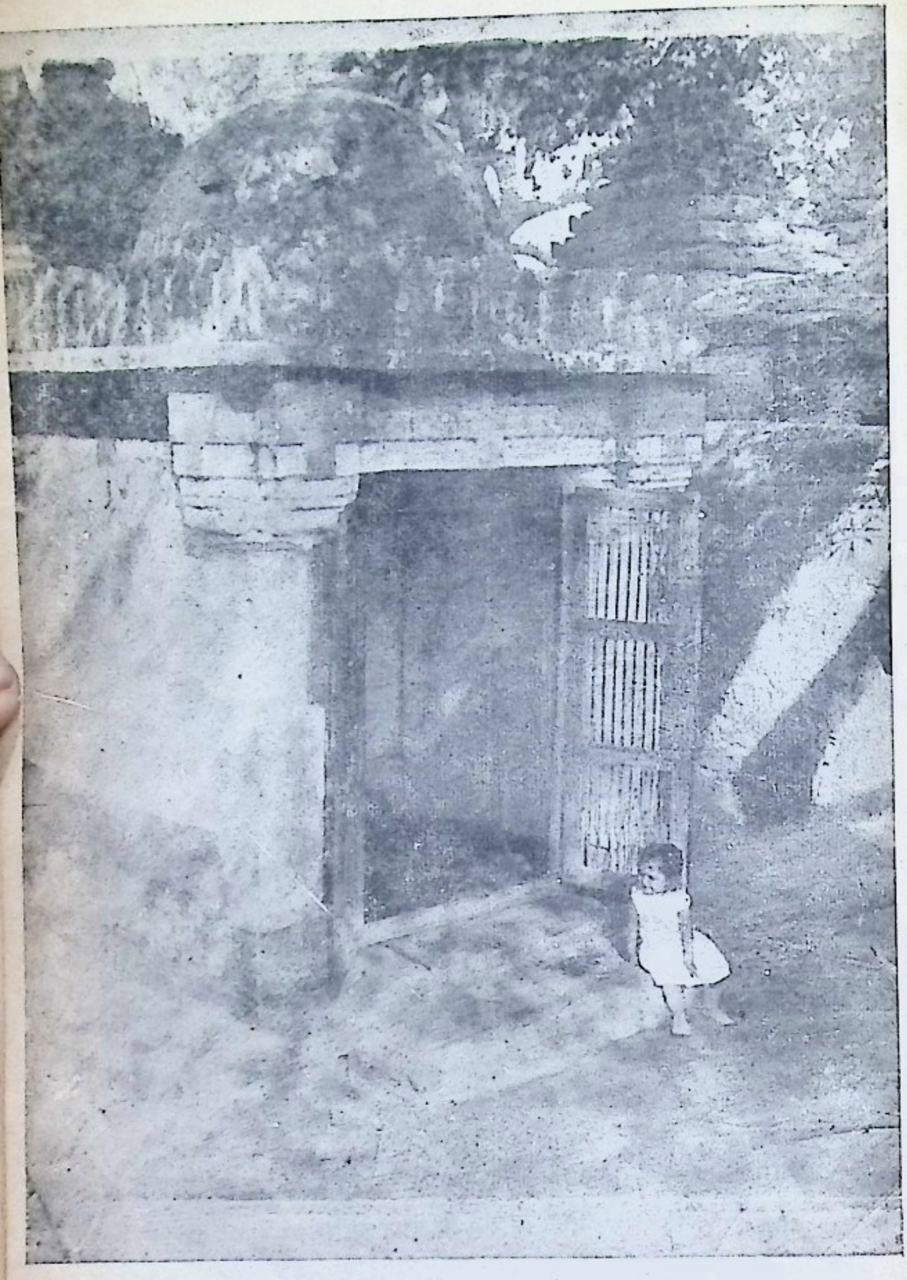

टंकरा का वह मन्दिर जहाँ मूलशंकर को बोध हुआ था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भूमंडल में वैदिक अध्यात्म प्रसारित करने में रत ९५ वर्षीय
महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

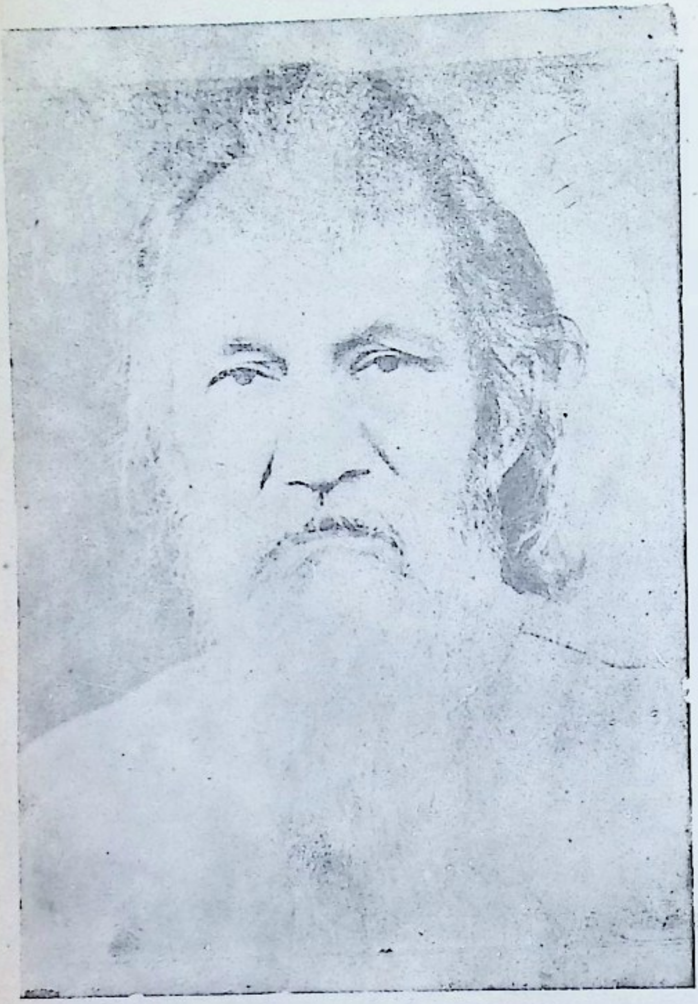

वेदवाणी के प्रसारक
श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पंजाब-केसरी
लाला लाजपतराय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अहर्निश वेद-प्रचार में व्यस्त

पंडिता राकेश रानी, मंत्री, दयानन्द संस्थान

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शिक्षा दिया करते थे, ताकि शिष्य वास्तविक तत्त्वज्ञानी बन सके। योग की महिमा द्वारा ही महर्षि दयानन्द यथार्थ ज्ञानी बने थे।

६. ईश्वर प्राप्ति

"ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः" बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती। इस उक्ति में ज्ञान का अभिप्राय है "विवेकज्ञान"। विवेकज्ञान द्वारा मुक्ति, मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति होती है। मुक्ति, मोक्ष और कैवल्य समानार्थक हैं। मुक्ति और मोक्ष का अर्थ है,—छूट जाना और कैवल्य का अर्थ है,—अकेला हो जाना। अपने पूर्व के संगी-साथी अर्थात् शरीर और मन तथा चित्त से छूट जाना। मोक्ष या कैवल्य मिल सकता है, ईश्वर प्राप्ति के बिना भी। ईश्वर प्राप्ति के लिये ओ३म् का जप, तथा ओ३म् वाच्य ईश्वर का ध्यान, तथा उस के प्रति अपने सब कर्मों और कर्मफलों को समर्पित करना होता है। योग दर्शन में ईश्वर प्राप्ति के दो उपाय कहे हैं। एक उपाय है "ध्यान योग" और दूसरा उपाय है "क्रिया योग।" ध्यान योग के सम्बन्ध में सूत्र है—"तज्जपः तदर्थभावनाम्" तथा "ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावञ्च" (१/२८, २९)। इस ध्यान योग द्वारा प्रत्यक् चेतना अर्थात् जीवात्मा को अपने स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है, और परमेश्वर की प्राप्ति भी हो जाती है, तथा परमेश्वर की प्राप्ति में जो बाधाएँ थीं उन का भी अभाव हो जाता है। इन बाधाओं को सूत्र में "अन्तराय" कहा है। क्रिया योग में स्वाध्याय, तप तथा ईश्वर प्रणिधान करना होता है। स्वाध्याय द्वारा योग स्वरूप, योगोपायों तथा परमेश्वर के स्वरूप का शाब्दिक ज्ञान होता है, तप द्वारा शरीर और इन्द्रियों की अशद्धि का विनाश होता "कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः" (२/४३), तथा शरीर और इन्द्रिय सम्बन्धी सिद्धियां प्राप्त होती हैं। ईश्वर प्रणिधान द्वारा ईश्वर के प्रति अपनी सब भावनाओं को समर्पित करना होता है।

७. ईश्वर प्राप्ति के बाद

ईश्वर प्राप्ति या ईश्वर साक्षात्कार एक ही बात है। ईश्वर व्यापक है, सर्वत्र विद्यमान है। इसलिये ईश्वर की प्राप्ति क्रियाजन्य नहीं। उस का साक्षात्कार अर्थात् दर्शन ही उस की प्राप्ति है। जब परमेश्वर का साक्षात्कार हो जाता है तब मुक्त हुआ जीवात्मा निज आत्मास्वरुप से परमात्मारूप ईश्वर में प्रवेश पा जाता है यथा

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च।
उपस्थाय प्रथमजागृतस्यात्मनाऽऽत्मानमभिसंविवेश ॥यजु. ३२/११॥

मंत्र में "परीत्य" का अर्थ है प्रदक्षिणा, अर्थात् "मनसा परिक्रमा"। योगी मनसा परिक्रमा द्वारा सब भूतों में, सब लोकों में, तथा सब अवान्तर दिशाओं में ईश्वर को व्याप्त हुआ जान कर, और नियमों तथा सत्यज्ञान के प्रथम-जनयिता का उपस्थान कर के, अर्थात् यह निश्चय जान कर कि मैं सर्वव्यापक पमेश्वर के "समीप सदा स्थित" हूँ, प्रकृति से छूटे हुए निज आतम-स्वरूप से जगदात्मस्वरूप परमेश्वर में प्रवेश पा जाता है। इसी भावना को अगले मंत्र में और अभिव्यक्त किया है। यथा:—ऋतस्य तन्तुं सततं विचृत्य, तदपश्यत् तदभवत् तदासीत् ॥ ३२/१२॥ अर्थात् सत्य नियमों तथा सत्य ज्ञानों के कारणभूत परमेश्वर की, निज आत्मा के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

साथ गठजोड़ करके, मुक्त जीवात्मा पहिले तो परमेश्वर का दर्शन करता है, उस का साक्षात्कार करता है, अर्थात् उसे पा लेता है, वह परमेश्वर तो उस के समीप था ही। मन्त्र में "अभवत्" पद "भू प्राप्तौ" का रूप जानना चाहिये। अन्य एक मन्त्र में इस अवस्था का और अधिक स्पष्ट वर्णन हुआ है। यथा:—यत्र देवा अमृतमानशानः तृतीये धामन्तध्यैरयन्त ।।यजु. ३२/१०।।

अर्थात् देव लोग अर्थात् मुक्त आत्मा अमृत-परमेश्वर को प्राप्त कर के उस तृतीयधाम-परमेश्वर में विचरते हैं। धाम का अर्थ है,—ज्योति। एक ज्योति है प्रकृति जिस पर कि सांसारिक पतङ्ग न्यौछावर हो रहे हैं। दूसरी ज्योति है मुक्तात्मा की आत्म ज्योति। परमात्मादर्शन से विहीन मुक्तात्मा, निज कैवल्य में, स्वात्म-ज्योति अर्थात् निज चैतन्यरूप में रहते हैं। तृतीय ज्योति है परमात्म ज्योति, जिस में कि परमेश्वर के द्रष्टा मुक्तात्मा विचरते रहते हैं।

अर्चना हो

आज उनकी अर्चना हो !

जो जले दिन रात हर पल, धर्म की ही याद में,
आज उनकी अर्चना हो ।।

जो मिटे, आगे बढ़े, निज शीश हाथों में लिए,
घोर संकट में खड़े जो 'प्राण' पाने के लिए।
आज युग के बाद उनकी दीप-मानस वन्दना हो ।।
आज उनकी अर्चना हो ।।

देख पाए जो नहीं आंसू किसी की आँख में,
एक भी सूखे न पत्ता राष्ट्र की मधु साख में,
ध्येय लेकर जो चले वह चाल उनकी बन्द न हो।
आज उनकी अर्चना हो ।।

जो बने थे खाद जन हित, पुण्य मानवता रहे,
स्वप्न हों साकार सारे हम रहें या न रहें,
उन शहीदों के लिए प्रिय आज पावन अर्घ्य क्या हो ।।
आज उनकी अर्चना हो ।।

—राकेशरानी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

—निरंजनदेव शर्मा पत्रकार

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली

सामाजिक-प्रवृत्तियों का रूप समयानुसार बदलता रहता है, परन्तु इस परिवर्तन की प्रक्रिया से वही समाज लाभान्वित हो सकता है, जो पूरी तरह सचेत और सजग हो।

भारतीयों को विदेशी-साम्राज्य की बुराइयों से सचेत करने में आर्य समाज ने अभूतपूर्व कार्य किया है। आर्य समाज ने बुराइयों की जड़ को पकड़ा और सबसे पहले उसने शिक्षा के क्षेत्र को सुधारने का कार्य किया। स्वनामधन्य स्वामी श्रद्धानन्द ने प्राचीन गुरुकुलों के आधार पर हरिद्वार के समीप गंगा के उस पार कांगड़ी ग्राम के निकट उसी ग्राम के नाम से गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की।

इसकी स्थापना और संचालन में उन्हें अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ा था। गुरुकुल में यह नियम था कि वहां विद्याध्ययन के समय ब्रह्मचारियों को घर जाने की छूट नहीं थी। वर्ष में एक बार वार्षिकोत्सव के समय पर ही माता-पिता अपने बच्चों से मिल सकते थे। सामूहिक जीवन में किसी तरह की विषमता न आ पाये, इसलिये यह नियम था कि कोई भी माता-पिता अपने बच्चों को खाने-पीने की चीजें न दें। यदि वह देना भी चाहे तो कक्षा के अन्य विद्यार्थियों के लिये भी वही फल लाकर सबको समान रूप से बांटे। मिठाई आदि तो लाना ही मना था। इसी तरह भोजन सादा, स्वच्छ एवं स्वास्थ्य-वर्धक दिया जाता था। लाल मिर्चों का प्रयोग वर्जित था, सिर्फ काली मिर्चों का प्रयोग होता था।

गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली की सबसे बड़ी विशेषता है ब्रह्मचारियों का चरित्र-निर्माण। फैशन या शान-शौक़त का वहां कोई स्थान नहीं। कपड़े सादे, मोटे और स्वच्छ होते थे। केश बढ़ाना निषिद्ध था। महीने में एक बार बालों की छटाई हो जाती थी और कक्षा का अधिष्ठाता ब्रह्मचारियों पर नजर रखता था कि किसी के बाल बढ़े न हों, कपड़े मैले न हों और नियमानुकूल सीधे-सादे सिले हों। कालर व आस्तीन को

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रखना नियम-विरुद्ध था, घर के कपड़े पहनना मना था। यदि किसी ब्रह्मचारी को उसके माता-पिता, कपड़े या रुपये-पैसे अनजाने में दे जाता था, तो वह गुरुकुल कोष में जमा हो जाता, उसे व्यवहार में लाने की इजाजत नहीं थी। जब वह गुरुकुल से जाने लगता था, तब उसे लौटा दिया जाता था।

सादा जीवन और उच्च विचार व्रताभ्यास गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में मुख्य बात है। यदि कोई ब्रह्मचारी पुस्तकें रटकर पहले नम्बर पर पास हो जाता था और यदि उसे व्रताभ्यास में उत्तीर्ण होने के लिए आश्यक अंक प्राप्त न होते तो उसे अनुत्तीर्ण घोषित किया जाता था। व्रताभ्यास के नियमों में ब्राह्ममुहूर्त में उठना, नित्य कर्मों से यथासमय निबटना, संध्यावन्दन में नियमित सम्मिलित होना, समय पर भोजन करना और समय पर सोना आदि सम्मिलित था। इन सब नियमों के पालन के लिये अंक दिये जाते थे और परीक्षा में इसे अनिवार्य विषय रखा गया था।

व्यायाम और खेल कूद में भाग लेना प्रतिदिन की दिनचर्या में सम्मिलित था। सुबह प्रातराश, दोपहर को भोजन, तीसरे पहर नाश्ता और शाम को पुनः भोजन का नियम है। सन्ध्या-वन्दन प्रातः सायं इस प्रणाली के अन्तर्गत आवश्यक है। इनमें सम्मिलित न होना, अपराध समझा जाता है। गुरुकुलों की दिनचर्या ऐसी है कि ब्रह्मचारी दिन भर उसमें व्यस्त रहता था।

गुरुकुल कांगड़ी का सम्पूर्ण अध्ययन चौदह वर्ष का रखा गया था। दसवीं कक्षा के बाद ब्रह्मचारी को अपने घर जाने की अनुमति नहीं थी। ग्यारहवीं कक्षा में वह ग्रीष्म के अवकाश में घर जा सकता था। पहली चार कक्षा में हरिद्वार के समीप गंगा पार के घने जंगलों में प्रकृति के सुरम्य वातावरण में रखी गई थी। पांचवीं से दसवीं कक्षा तक ब्रह्मचारी को दिल्ली के समीप इन्द्रप्रस्थ गुरुकुल में भेज दिया जाता था और दसवीं कक्षा के बाद उसे पुनः गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार में जाना पड़ता था।

संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, विज्ञान, भूगोल, गणित और भौतिकी शास्त्र के विषय गुरुकुल में पढ़ाये जाते थे। प्राचीनता के साथ नवीनता का समन्वय गुरुकुल शिक्षा की अपनी विशेषता रही, जो और किसी विश्वविद्यालय में नहीं पाई जाती।

कांगड़ी गांव के समीप गुरुकुल के भवन गंगा के किनारे बने हुए हैं, अतः तैरने की कला में गुरुकुल के विद्यार्थी विशेष योग्यता प्राप्त कर सकते थे। देसी खेल-कूद के साथ-साथ गुरुकुल में विदेशी खेल, हॉकी, फुटबाल, वॉलीबाल और क्रिकेट का भी प्रचलन था। देश के हॉकी के अखिल भारतीय टूर्नामेंटों में गुरुकुल के विद्यार्थियों ने अनेक बार विजय पायी है। इसी तरह विश्वविद्यालयीन वाक्प्रतियोगिता में भी गुरुकुल के विद्यार्थी स्वर्ण एवं रजत-मंजूषा विजय के उपहार स्वरूप लाते रहे हैं अतः यह समझना कि गुरुकुल का विद्यार्थी आधुनिक शिक्षा के गुणों से शून्य है, गलत है। हां, ब्रह्मचारी आधुनिक भौतिकवाद से दूर रहता है, उसके जीवन का लक्ष्य सिर्फ पैसा कमाना नहीं, अपितु मानव मात्र का कल्याण करना ही होता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्वामी श्रद्धानंद ने इस युग में एक नया प्रयोग किया। नवीन और पुरातन शिक्षा पद्धतियों का समन्वय कर इन्होंने यह प्रतिपादित कर दिया

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कि हमारे प्राचीन ऋषिमुनियों ने वेदों में जो ज्ञान भरा है, वह आधुनिक सभ्यता-संस्कृत से कहीं अधिक व्यापक और उत्कृष्ट है।

काशी, मेरठ, आगरा और देश के अन्य अनेक विश्वविद्यालयों ने गुरुकुल की उपाधि को अब मान्यता प्रदान कर दी है। गुरुकुल से विद्यालंकार की उपाधि के बाद वह सीधे एम० ए० का प्रवेश पा सकता है।

इस तरह आर्यसमाज ने शिक्षा के क्षेत्र में जो नये प्रयोग किये, उसके अनेक परिणाम सामने आ चुके हैं। हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी भाषा की वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने लगातार तीन वर्षों तक विजय पाई है। गुरुकुल में प्रत्येक विद्यार्थी बुनियादी शिक्षा अवश्य प्राप्त करे। काष्ठकला, सिलाई और शिल्प कला में से किसी एक कला को सीखना अनिवार्य था।

व्यावहारिक जीवन में गुरुकुल के स्नातक पत्रकारिता आर्योपदेशक अथवा अपने पैतृक व्यवसाय में लगे हैं। स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों में गुरुकुल के विद्यार्थियों ने प्रमुख रूप से भाग लिया। श्रमदान द्वारा सड़कों व भवन-निर्माण के कार्य भी वे करते रहे। इस प्रकार जीवन-व्यवहार के क्षेत्र में वे किसी से भी पीछे नहीं रहते। आदर्श जीवन की परिपाटी का पालन करते हुए भले ही वे धन का अम्बार न लगा सके, पर अपने नैतिक आचरण से अपने आसपास के क्षेत्रों को प्रभावित करते रहे हैं और यही वह उल्लेखनीय बात है, जिससे आर्यसमाज का प्रतिष्ठा में उन्होंने चार चांद लगाये हैं।

सच कहा जाय तो स्वामी दयानन्द ने जिस शिक्षा सुधार व नैतिक आचरण की चर्चा "सत्यार्थ प्रकाश" में की उसे ही स्वनामधन्य स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल की स्थापना से मूर्त रूप दिया और उसकी शिक्षाप्रणाली आज इतनी व्यापक हो चुकी है कि देश के अनेक शिक्षा-शास्त्रियों ने भी भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

चैत्र सुदी प्रतिपदा २०३३ तक अर्थात् अप्रैल १९७६ तक पूरे एक वर्ष में से किसी भी एक सप्ताह अपने क्षेत्र में

आर्य समाज-स्थापना शताब्दी सप्ताह मनाएं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

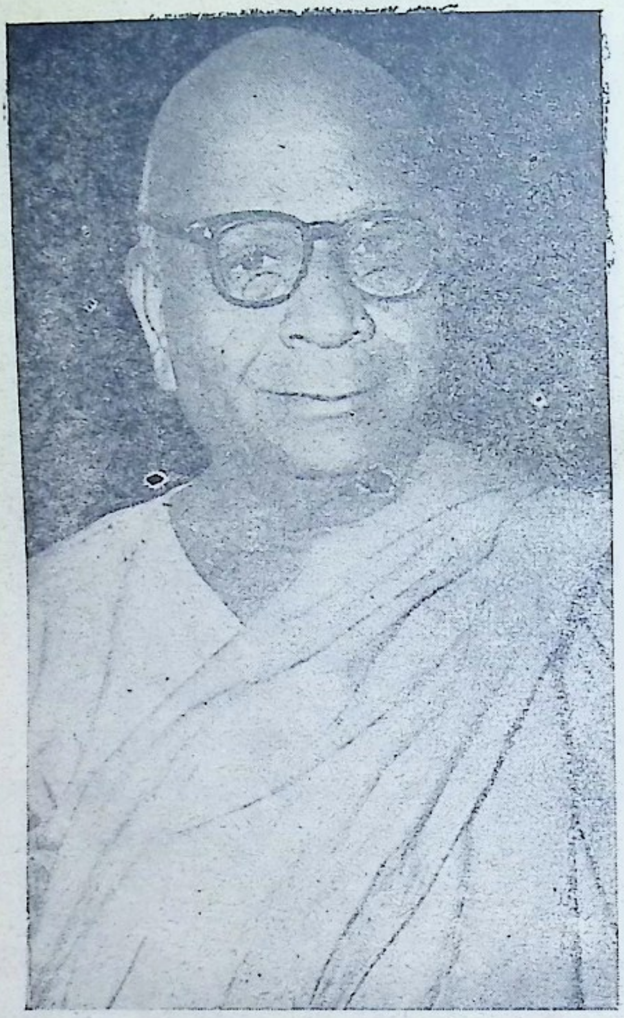

राष्ट्र के गौरव : प्रसिद्ध वैज्ञानिक
आर्य संन्यासी : स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

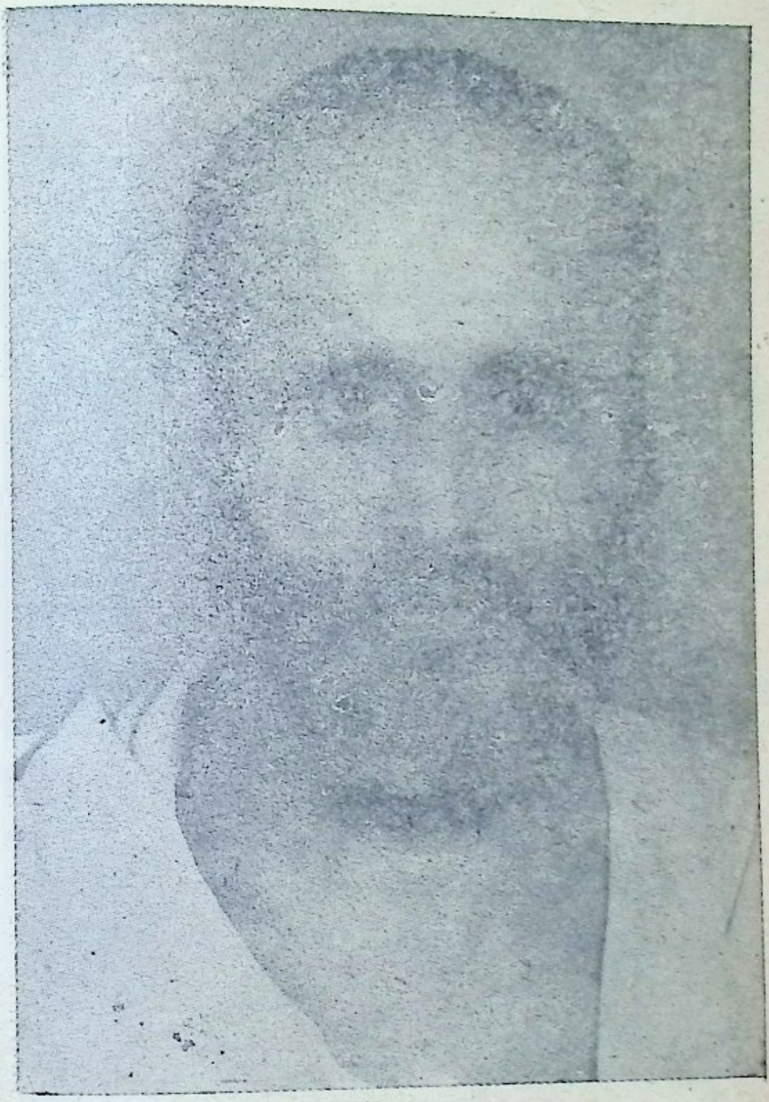

आर्यसमाज के प्रचार कार्य में दिन रात लगे संन्यासी
स्वामी ओमानन्द सरस्वती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यसमाज से प्रेरणा प्राप्त

शहीद भगत सिंह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यसमाज हमारा !

विश्व गगन पर चम-चम चमका आर्यसमाज हमारा ।
दीन दुखी जन जीवन पाएं, ज्योतित हो जग सारा ।।

कोटि-कोटि की आकुलता से गूंज रही थी धरणी ।
पाप ताप में झुलस रहे सब, भोग रहे निज करनी ।।
भांति-भांति के मत निर्मित कर, भूले भटके प्राणी ।
खोज रहे थे ज्योति कहां ? पर करते थे मनमानी ।।
अनाचार की मूल ध्वजा को, किसने कहो उखाड़ा ।
विश्व गगन पर चम-चम चमको आर्यसमाज हमारा ।।१।।

आशाएं थीं मानवता की उजड़ रहीं इस जग में ।
अगणित कांटे बिछे हुए थे, सत्य धर्म के मग में ।।
धर्म बना था आड़ पाप की, छाई थी व्याकुलता ।
सिसक रही थी पुण्य भावना फैली मूढ़ विषमता ।।
निर्भयता से सारी कलुषित माया को ललकारा ।
विश्व गगन में चम-चम चमका आर्यसमाज हमारा ।।२।।

एक अकेला, देव दयानन्द, सम्मुख पापी आए ।
ऋषि ने ज्ञान शक्ति के बल से सारे ही समझाये ।।
झूठ और पाखण्ड छोड़ दो, सच्ची राह बताई ।
वेदामृत की अमृत गंगा जन मन में फैलाई ।।
सारा मानव एक बने, यह ऊंचा ध्येय हमारा ।
विश्व गगन में चम-चम चमका आर्यसमाज हमारा ।।३।।

आज पुनः घनघोर घटाएं घिर-घिर कर हैं आयीं ।
फिर अशान्ति की ज्वालाएं, भूमण्डल पर फैलाईं ।।
सभी खोजते दिव्य औषधि, पर वे पार न पाते ।
अपने स्वार्थों की भट्टी में सब कुछ स्वयं जलाते ।।
ऐसी विकट अवस्था में यह कर पाये उजियारा ।
विश्व गगन पर चम-चम चमका आर्यसमाज हमारा ।।४।।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सभी मिल, मिल-जुल कर सोचें, यही हमारी आशा ।
यही हमारी शुभ्र भावना और सत्य परिभाषा ।।
मानव हैं हम मानव बनकर केवल जग में रह लें ।
जितने भी जो आयें संकट सारे मिल कर सह लें ।।
यही भावना ध्येय लिये हमने है आज पुकारा ।
विश्व गगन पर चम-चम चमका आर्यसमाज हमारा ।।५।।

आर्य बन्धुओ ! आज उठो ! अब समय परीक्षा आया ।
चिर व्याकुल आकुल संसृति ने तुमको वीर बुलाया ।।
रक्षा हित तुम सत्य धर्म की, आगे बढ़ते जाओ ।
जो भी आयें बाधाएं, तुम उनसे लड़ते जाओ ।।
जागो ! करो प्रयत्न ! बढ़ो ! अब गूंजे यह जयकारा ।
विश्व गगन में चम-चम चमका आर्यसमाज हमारा ।।६।।

आर्यसमाज हमारा जग का पीड़ा मोचन होवे ।
कष्टों की छाया में बढ़ता प्रेम-बीज मधु बोवे ।।
खोये सारी क्रूर मलिनता चहुं दिशि सुख बरसाये ।
स्वयं उठाकर कष्ट व्यथित को फिर से राह बताये ।।
ऐसे चलो सेनानी ! तुमसे प्यार करे जग सारा ।
विश्व गगन में चम-चम चमका आर्यसमाज हमारा ।।७।।

स्वप्न यही साकार करो प्रिय ! मेरे विजयी भाई ।
आज मांगने भीख यही, मैं पास तुम्हारे आयी ।।
लाज बचाओ दयानन्द की, ऋषियों की अरुणाई-।
लहर लहर लहराये जग पर ओ३म् का झण्डा प्यारा ।
विश्व गगन पर चम-चम चमका आर्यसमाज हमारा ।।८।।

—राकेश रानी

**
**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करेंगे क्रांति मन्त्र गुंजार !

गगन से दूर, धरा के पास, चलो, हम कर लें नव-निर्माण !
विजय-जय का लेकर संदेश, करेंगे धरती पर अभियान ।।
सिसकती दीन दशा को देख, विकल ना होंगे किसके प्राण ?
मनुज का ऐसा होगा अन्त, किया था किसने कब अनुमान ?
लिया था सोच स्वप्न में क्रूर, निशा का करना है अवसान ।
निरन्तर कर सबसे संघर्ष, मिलेगा मन चाहा वरदान ।
खिलेंगे मुरझाये से फूल, श्रवण कर शाश्वत मंगल गान !
गगन से दूर, धरा के पास, चलो, हम कर लें नव-निर्माण ।।
बिखरते पीड़ा के उद्‌गार, लगा है आहों का अम्बार ।
नहीं है ज्ञान, कहां पर मोल, मिलेगा सत्य शांति का सार ।
सरलता प्रेम न्याय के राग, कहां पर भूली धरती मौन ?
जली है कैसी ज्वाला आज, बचेगा इससे ऐसे कौन ?
यही है, प्रश्न, जिन्हें दिन रात, हमें सुलझाना निश्चित मान ।
गगन से दूर, धरा के पास, चलो, हम कर लें नव-निर्माण ।।
जगत् की आभा का अनुराग, सुनाता आमन्त्रण है आज ।
चलो अब चलना है अविराम, सजा लो सारे टूटे साज ।
जला कर पाप-ताप को दूर, मिटा कर व्याकुल हाहाकार ।
जला कर हिंसा और अशान्ति, धरा के छलनामय व्यापार ।
उदित होगा स्वर्णिम रवि-कांत, सुमंगल-शोभित-शुभ्र विहान ।
गगन से दूर, धरा के पास, चलो, हम कर लें नव-निर्माण ।।
यही है लक्ष्य यही है चाह, यही है वेद-धर्म उद्देश्य ।
यही है "आर्य" शब्द का भाव, यही है दयानन्द सन्देश ।
सभी हों एक, न कोई दूर, किसी से रह पाए अनजान ।
बंधे हों ऐक्य भाव में पूर्ण, सभी का एक सत्य हो ज्ञान ।
करेंगे क्रान्ति मंत्र गुंजार, किया है प्रण वीरों ने आन ।
गगन से दूर, धरा के पास, चलो, हम कर लें नव-निर्माण ।।

—राकेश रानी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कौन करे निर्माण ?

दयानन्द के दिव्य स्वप्न का कौन करे निर्माण ?
अन्धकार में चेतनता खो, व्यथित हुआ संसार !
पथ विभ्रम में विकल दीन-सा, किसको रहा पुकार !
और निराशा की आंधी में, डगमग-डगमग प्राण—
सोच रहे हैं चला चलूं मैं, कहां करूं अभियान ?
कौन बताये, जग को बोलो, जीवन लक्ष्य महान् !
दयानन्द के दिव्य स्वप्न का कौन करे निर्माण ?
दूर-दूर तक एक प्रश्न है, एक राह हो कौन ?
जाति, पंथ, मत, वाद, दुर्ग को, तोड़े, कैसे, कौन ?
कौन करे मानव संरक्षण, दानव का संहार ?
कौन सभी को दे पाएगा, शान्ति सुधा उपहार ?
गूंज रहे हैं मस्तिष्कों में, प्रश्न यही अविराम ?
दयानन्द के दिव्य स्वप्न का कौन करे निर्माण,
जटिल वेदना, सिसक रहे हैं, मानवता के गान !
महानाश की ज्वालाओं में, धधक रहे वरदान !
उजड़ चुकी है रम्य वाटिका, धरती है श्मशान !
लाश पड़ी है मनुज पुत्र की, क्रंदन की है तान !
टूटी वीणा गा न सकेगी, बिन पाए बलिदान !
दयानन्द के दिव्य स्वप्न का, कौन करे निर्माण ?
यही प्रश्न है जिनका उत्तर, मांग रही हूं आज !
कौन बजाएगा फिर उनको, टूट चुके जो साज !
सत्य ज्ञान गौरव को भू पर, फैलाएगा कौन !
"ओ३म्" ध्वजा को लेकर, भाई ! बढ़ पाएगा कौन ?
कौन करेगा, प्राण दान दे, नूतन युग आह्वान !
दयानन्द के दिव्य स्वप्न का कौन करे निर्माण ?

—राकेश रानी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आमन्त्रण !

मैं विजय की मुग्ध लहरों को निमन्त्रण दे रहा हूं।
और सबको साथ चलने के लिए मैं कह रहा हूं ।।

आज जो मिल जाएं मुझको 'प्राण' के सामान सारे,
मैं मिटा पाऊं जगत् से कष्ट के व्यवधान सारे।
आज सपनों में नहीं, मैं सच बना दूं शांति गाथा,
हर्ष औ' उल्लास ले मैं फिर चलूं आभा बिछाता।
विश्व मेरे साथ आए, मैं सभी कुछ सह रहा हूं,
मैं विजय की मुग्ध लहरों को निमन्त्रण दे रहा हूं ।।

× × ×

रक्त कण से लिख रहे हैं आज जो जग की कहानी,
स्वयं मिटकर भी मिटा दूं, क्यों न मैं उनकी निशानी।
क्यों न मैं सागर पलट कर विश्व के सब पाप धो दूं,
जो बचे तब शेष भू पर, मैं उसी में दीप्ति खो दूं।
दीप्ति से सब जगमगाएं, कामनाएं ले रहा हूं,
मैं विजय की मुग्ध लहरों को निमन्त्रण दे रहा हूं।

× × ×

विश्व के व्याकुल, पतित भय-ग्रस्त नर फिर से जगेंगे,
जो दबाए चिर युगों से, वे उभरते अब उठेंगे।
रोक पाए कौन उनकी चाल को जो ज्ञान चाहें,
कौन ऐसा है जगत् में, जो सबल की राह आए।
पाप की, अभिशाप की, मैं शृंखलाएं खो रहा हूं।
मैं विजय की मुग्ध लहरों को निमन्त्रण दे रहा हूं ।।

× × ×

वह विजय, जो स्वर भरे आकुल हृदय में मुस्कराता,
दीनता की क्रूर गलियों में फिरे ना बिलबिलाता।
एक भी प्राणी जगत् में कह न पाए मैं व्यथित हूं,
रोग से, या भूख से या क्षुब्ध चिन्ता से ग्रसित हूं ।।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वर्ग जो साकार लाए, 'लहर' उसको ला रहा हूं।
मैं विजय की मुग्ध लहरों को निमन्त्रण दे रहा हूं।।

× × ×

रूढ़ियों का नाश, मेरा स्वप्न होगा, ध्येय होगा,
गन्दगी के कीट से किसको भला क्या नेह होगा!
लड़खड़ाती, मूक, जर्जर भेद भावों की चिताएं,
आज आओ सब मिलें, मिलकर उन्हें ऐसे जलाएं।।
शेष हों सब शून्य केवल, मौन चिन्तन कर रहा हूं।
मैं विजय की मुग्ध लहरों को निमन्त्रण दे रहा हूं।।

× × ×

है निमन्त्रण, आज लाखों बन्धुओं को भी हमारा,
है निमन्त्रण, कोटि बहनों को, हृदय ने भी पुकारा।
प्राण संसृति के बिलखते, मांगते हैं, भीख तुमसे,
खाद बन-बन मिट सकोगे? पूछता हूं आज तुमसे!
तुम मिटो, फूले जगत् यह, यह निमन्त्रण दे रहा हूं।
मैं विजय की मुग्ध लहरों को निमन्त्रण दे रहा हूं।।

—भारतेन्द्र नाथ

आर्यसमाज को श्रद्धा सुमन

१—आर्यसमाज शिक्षित हिन्दुओं के सामने सुनिश्चित सिद्धान्त प्रस्तुत करता है जिनका मूल स्रोत वेद और आर्य परम्पराएं हैं। आर्यसमाज सामाजिक और शैक्षिक उन्नति की ऐसी योजनाएं प्रस्तुत करता है जिनके बिना वास्तविक उन्नति
—सर हर्बर्ट रिस्ले
सम्भव नहीं है।
—मैक्समूलर
२—आर्यसमाज के आन्दोलन के साथ मेरी पूर्ण सहानुभूति है।
३—संगठित कार्य, दृढ़ता, उत्साह और समन्वयात्मकता की दृष्टि से आर्यसमाज की
—सुभाषचन्द्र बोस
४—क्षमता कोई समाज नहीं कर सकता।
आर्यसमाज धार्मिक शक्ति के रूप में समाज-सुधार के लिए कार्य कर रहा है। भारत के राष्ट्रीय जीवन में यह बात अत्यन्त महत्व की है जिसे भविष्य में
—रामानन्द चटर्जी
५—भुलाया नहीं जा सकता।
आर्यसमाज एक वास्तविकता है जिससे जन-साधारण का आश्चर्यजनक उत्थान
—यदुनाथ सरकार
हुआ है।
—लाजपतराय
६—आर्यसमाज मेरी माता है।
७—आर्यसमाज ने हिन्दू समाज को भले आदमी के रहने योग्य बनाया।
—राजगोपालाचारी
—महात्मा गान्धी
८—जहां-जहां आर्यसमाज है वहां-वहां जीवन ज्योति है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आज फिर आह्वान तेरा !

स्वामी आत्मानन्द जी महाराज का अमर गीत

फिर वही छाया अन्धेरा, आज फिर आह्वान तेरा ।
सो गये फिर तान चादर, था जिन्हें ऋषि ने जगाया ।
भटकते फिरते पथिक, मग आपने जिनको दिखाया ।।
भूल ही सबको गया वह, दान तेरा, ज्ञान तेरा ।
फिर वही छाया अन्धेरा, आज फिर आह्वान तेरा ।।
गुरुकुलों के राग गाते, जो फिरे डफली बजाते ।
आज कालिज के तराने, गा रहे वे ही पुराने ।।
पश्चिमी घन ने प्रभो ! फिर प्राच्य रवि को आन घेरा ।
फिर वही छाया अन्धेरा, आज फिर आह्वान तेरा ।।
कन्या कुमारों के विनय-नय-शील हित का ध्यान कर ।
पृथक् शिक्षा योजना दी, आर्य मत का मान कर ।।
आज सह-शिक्षा कुनय का स्थान में उसके बसेरा ।
फिर वही छाया अन्धेरा, आज फिर आह्वान तेरा ।।
धर्म हित में प्राण देना, आपने जिनको सिखाया ।
कथन से केवल नहीं, बलिदान देकर भी सिखाया ।।
खेद पद की भूख ने, लाया उन्हीं के द्वार डेरा ।
फिर वही छाया अन्धेरा, आज फिर आह्वान तेरा ।।
वेद के मृदु गान को, आचार की शुभ आन को ।
फंस रेडियो के जाल में, भूले सुपथ के मान को ।।
छिप ब्रह्मचर्य प्रभा गई, आया न यौवन का सबेरा ।
फिर वही छाया अन्धेरा, आज फिर आह्वान तेरा ।।
हे दया के पुण्य आकर, हे ऋषि ! आनन्द रस घर ।
वेद की वंशी सुनाकर, फिर न आये आप जाकर ।।
देख लो फिर आप आकर, छिप रहा वैदिक प्रभाकर ।
जो गये थे तम हटाकर, मिट रहा वह राज मेरा ।
फिर वही छाया अन्धेरा, आज फिर आह्वान तेरा ।।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वैदिक धर्म अभय है !

विदेशी शासन से पूर्व—

धर्म-प्राण इस आर्य-देश का कण-कण बोल रहा था,
न्याय-तुला पर सदा यहां का सच्चा तोल रहा था,
पावन तपोमयी वसुधा सुख साज सदा सरसाती—
ऋषियों का उपदेश हृदय की घुण्डी खोल रहा था।

विदेशी शासन में—

देख दिवाकर की ढलती स्वर्णाभ मनोहर लाली,
जाने किस अज्ञात देश से आई रजनी काली,
यह उत्थान पतन का पहिया निशिदिन रहता चालू—
शिशिर निहित उपवन में, लाता है वसन्त हरियाली।

पराधीन था देश कि जब गोरों का राज्य यहां था,
एक यहां ही क्या उनका व्यापक साम्राज्य जहां था,
वह समस्त भूखण्ड क्रान्ति की लपटों में था झुलसा—
कहने को थी शान्ति घोर दुख दैन्य विनाश वहां था।

दम्भ, अनय, आचार हीनता ठग्गी डाका चोरी,
कूट-कूट विष भरा हुआ हो जिनकी पोरी-पोरी,
उन विदेशियों से भारत की सुख समृद्धि की आशा—
शश-विषाण आकाश-कुसुम या कहूं कल्पना कोरी।

राजनीति पटु उन वणिजों ने छल से भारत-भू के,
खण्ड कर दिए देवदु-लंभा स्वर्णिम पुण्य-प्रसू के,
स्वार्थ-परायण, लोलुप, कपटी, छली, अकारण द्वेषी—
पर-पीड़न में भला कभी क्या ऐसे मानव चूके ?

बड़ा मनोमालिन्य, हुए हम एक-एक से न्यारे,
माता-पिता भगिनी सुत भाई मित्र पड़ोसी प्यारे,
क्रूर विदेशी शासक ने जो बीज फूट के बोये—
लगने ही थे दुःख बेल पर फल उनके ये खारे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्य देश की सुख समृद्धि उनको अभीष्ट क्यों होती ?
भारतीय वैभव के जिनको हरने अनुपम मोती,
निश्छल, सौम्य स्वभाव, आप में मस्त सदा रहती जो—
घात बाज की समझ न पाती, वह आजाद कपोती।

पावन, सुधामयी वसुधा पर वे कपूत जब आए,
पाप ताप दुख दैन्य निराशा साथ सभी कुछ लाए,
उसके दूषण यहां, यहां के भूषण और कहीं थे—
सुधा वृष्टि थी जहां वहां शोणितवर्षी घन छाए।

शासित था अब देश विदेशी शासक ही सब कुछ थे,
हम उनके थे दास और वे अपने अब सब कुछ थे,
अपने ध्वज की जगह यूनियन जैक यहां लहराया—
कहने भर को नहीं, दीन बन गए, आर्य सचमुच थे।

वैदिक संस्कृति और आर्य सभ्यता रही कुछ ऐसी,
भूमण्डल की और सभ्यताएं न बन सकीं वैसी,
अन्यायी शासक ने चाहा जी भर इन्हें मिटाना—
रही आज तक अमिट, देख लो, ये जैसी की तैसी।

छल से या अनीति से जिसने चाहा जिसे दबाना,
स्वार्थ वृत्ति वश अपने बल से जड़ से उसे मिटाना,
प्रकृति प्रताड़ित वह अन्यायी स्वयं नष्ट हो जाता—
विधि-विधान से आप मृत्यु का बनता वही निशाना।

विदेशी शासन के बाद—

शासक गए अवश्य, रही पर उनकी गन्दी छाया,
दूषित बनी हुई भारत की अभी सुनहरी काया,
आज देश स्वाधीन यहां अनहित होने पाए क्यों—
यही प्रश्न व्यापक होकर साकार सामने आया।

पूज्य पूर्वजों का प्रिय प्रतिनिधि, आत्मवाद का हामी,
आर्य विचारों का पोषक फिर वैदिक-पथ-अनुगामी,
तज वैदिक सिद्धान्त सभ्यता सार्वभौम संस्कृति को—
भारत कभी न सहना चाहेगा अपनी बदनामी।

धर्म प्राण यह देश सदा स्वागत करता आगत का,
जिससे वह निःशंक प्रचारक होता अपने मत का,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पथ न देश का नियम चाहिए, कभी भूलना उसको—
यहां सदा डंका पिटता आया है अविचल सत् का।

आज असत् का दानव सत् के मानव से टकराया,
तूफानी बल साथ मगर फिर भी मन में घबराया,
सत्य हमेशा मिथ्या से ऊंचा रहता आया है—
संभवतः दम्भी दानव यह नियम देख थर्राया।

हम सत् का विश्वास लिए बढ़ रहे, हमें क्या भय है,
विजय अन्त में सत् की होगी अपना दृढ़ निश्चय है,
'सत्यं शिवं सुन्दरं' को आधार बनाने वाला—
अपना सुन्दर 'सत्य-सनातन-वैदिक-धर्म' अभय है।

—आचार्य श्री हरिप्रसाद जी शास्त्री
(दीनानाथ बाजार सहारनपुर)

गीत

नहीं प्रभु से प्यार अगर है तो जीवन बेकार।
बिना ज्ञान सम्बल के साथी सूना है संसार।।
जो मिट जाए, जल जाए रे! उससे कैसी प्रीति।
अजर अमर अविनाशी प्रभु को भूला है यह रीति।।
कभी न पहुंचा पायेगी रे, पागल प्रिय! उस पार।
नहीं प्रभु से प्यार अगर है तो जीवन बेकार।।
माया की इस नगरी में फिर-फिर क्यों अनजान।
स्वयं मिटाता जीवन बल क्यों रोता है नादान।।
चन्द घड़ी हैं जीवन की, कर सोच समझ व्यवहार।
नहीं प्रभु से प्यार अगर है तो जीवन बेकार।।
पत्ते पत्ते में खोजे क्यों पागल, हीरे मणियां।
प्राण निरख ले रे अन्तस् में मिल जाएं मधुकलियां।।
जगमग-जगमग स्वर्ण दीप सा, चमके जीवन हार।
नहीं प्रभु से प्यार अगर है, तो जीवन बेकार।।

—राकेश रानी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अगर ज्ञान वेदों का पाया न होता ?

अमा घोर युग को सदा ही भुलाती,
कठिन काल चक्कर में सब कुछ मिटाती !
नया विश्व कैसे उभरने भी पाता ।
न मालूम जीवन बसाया भी होता ।
अगर ज्ञान वेदों का पाया न होता ? । १ ।

कहीं मूर्ति पूजा कहीं घोर गुरुडम,
कहीं नर्क लीला, कहीं क्रूर बन्धन ।
कहीं जुल्म होते थे नारी पै भारी ।
कहीं रोती गौएं थी, आकुल बिचारी ।
हमें भी यह पाखण्ड भाया न होता ?
अगर ज्ञान वेदों का पाया न होता ॥ २ ॥

धरा जल रही, साधना जल रही थी,
अहर्निश विलय की घड़ी चल रही थी ।
हृदय थे भटकते कहां राह पायें,
कहां जाके अपना सभी कुछ बचायें ।
यह हालत थी जग की, बताओ ! क्या होता ?
अगर ज्ञान वेदों का पाया न होता ॥ ३ ॥

किसी पर चढ़ी थी यीशु की खुमारी,
किसी को मुहम्मद की थी बस बीमारी,
कोई बह रहा था विदेशी लहर में ।
कोई सोचता था है जीवन जहर में ।
सभी कुछ हमारा मिटाया न होता ?
अगर ज्ञान वेदों का पाया न होता ॥ ४ ॥

न मालूम कब तक सताती गुलामी,
न मालूम क्या कुछ बनाती गुलामी ।
न होता अन्धेरा, कभी भी उजाला ।
न बनता विजय पन्थ अपना निराला ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

होता ?
निराशा भरा राष्ट्र मानस न होता ?
अगर ज्ञान वेदों का पाया न होता ॥ ५ ॥

ध्वजा धर्म ले हम बढ़े जा रहे हैं,
सचाई का जय नाद सब गा रहे हैं।
सभी को मिला ज्योति जीवन खजाना।
सभी ने है समझा कि किस ठोर जाना।
क्या सब कुछ सभी ने यह जाना भी होता ?
अगर ज्ञान वेदों का पाया न होता ॥ ६ ॥

यह सच है कि दुनियां थी ठोकर लगाती,
हमें मूर्ख औ' पागल औ' जाहिल बनाती।
मगर आज देखो सभी सिर झुकाते,
वे भारत के चरणों पर पलकें बिछाते।
यह सपनों सा बर्ताव साकार होता ?
अगर ज्ञान वेदों का पाया न होता ॥ ७ ॥

न हम हर मुसीबत का हल जान पाते,
न हम आज निज को सबल मान पाते।
न हम हो निडर आज बढ़ते ही जाते,
न पापों के तूफान जग से भगाते।
क्या डर डर के सिर खुद छिपाया न होता ?
अगर ज्ञान वेदों का पाया न होता ॥ ८ ॥

समझ लो यही वेद जीवन हमारा,
समझ लो यही प्राण का है सहारा।
इसी के बिना थी यहां कष्ट माया,
इसे भूल कर विश्व ने दुःख पाया।
प्रलय काल चक्कर भी छाया न होता ?
अगर ज्ञान वेदों का पाया न होता ॥ ९ ॥

जगा राष्ट्र मेरा ! जगी कामनायें,
जगे विश्व सारा सफल साधनायें।
उभरते हुए हम उठें औ' उठायें,
जो सोए हैं, चलकर उन्हें भी जगायें।
यह नारा भी हमने लगाया न होता ?
अगर ज्ञान वेदों का पाया न होता ॥ १० ॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कहां शस्त्र अपना, कहां धर्म होता,
कहां प्राणियों में बचा कर्म होता ।
कोई दीन बाला की सुनता कहानी,
या कहता अडिग हो है पीड़ा मिटानी,
विजय गीत भारत ने गाया भी होता ?
अगर ज्ञान वेदों का पाया न होता ॥ ११ ॥

मैं कहता हूं जग से मिटा दो निराशा,
मैं कहता हूं जागो ! जगे साथ आशा ।
धरा स्वर्ग बन कर रहेगी, यह कह दो,
न कष्टों में व्याकुल जलेगी यह कह दो ।
यही मन्त्र जग में गुंजाया न होता ?
अगर ज्ञान वेदों का पाया न होता ॥ १२ ॥

सभी एक हैं, एक पथ के पुजारी,
भटकते हुए हैं, बनें सब भिखारी ।
हैं लिखनी अगर शान्ति सुख की कहानी,
न रूठो कभी प्रेम पथ से ओ प्राणी !
यह सन्देश घर-घर सुनाया न होता ?
अगर ज्ञान वेदों का पाया न होता ॥ १३ ॥

—भारतेन्द्र नाथ

वेद ज्ञान विस्मृत कर जग में छाया था चहुंदिशि अविवेक ।
महा नाश के काल चक्र में क्रन्दन का करुणामय वेग ।
क्रूर कुटिल खल-दल बल ने था सोचा हुई हमारी जीत ।
ऐसे काल मिला विश्व को दयानन्द-सा अनुपम मीत ।
वेद ज्योति की प्रखर किरण ने भरा सभी में दिव्य प्रकाश ।
मिटी पिपासा युग-युग संचित पाकर प्रभु का मधु आभास ।

—भारतेन्द्र नाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

युग निर्माता--आर्य समाज !

आज धरा पर सत्य धर्म का, प्राण प्रसारक आर्य समाज।
क्षुब्ध रुद्ध मानवता रक्षक, केवल मेरा आर्य समाज॥

भेद भाव की खाई भर कर, ऐक्य भाव का गाकर गान।
स्वयं जला कर द्वेष ईर्ष्या, और मनुजता के अनुमान॥
ढोंग और कुविचार मिटाता, जीवन मय ज्योतित वरदान।
शुभ प्राणों से पूरित करता, धरती का अंचल सम्मान॥
दिव्य मधुरता मन्त्र प्रदाता, धन्य ! धन्य ! हे आर्य समाज।
आज धरा पर सत्य धर्म का, प्राण प्रसारक आर्य समाज॥

मानव की ममता का प्रहरी और विजय गरिमा का गीत।
भ्रान्ति काल की छल छाया में, भरता जीवन का संगीत॥
शुभ्र प्राण संबल जीवन का, जन मन आता पुण्य विहान।
कण कण में उल्लास बिछाता करता नूतन जय आह्वान॥
हर्ष, हास समता व्यवहारी भ्रातृ भावना पूर्ण समाज।
आज धरा पर सत्य धर्म का, प्राण प्रचारक आर्य समाज॥

ऋषि के स्वप्न सत्य का पूरक लिए विकल हित सुख सन्देश।
पाप ताप को भस्म करेगा फैलाएगा प्रभु आदेश॥
कष्ट कठिन में जले न कोई, आत्म-आत्म का हो कल्याण।
क्रूर निशा का भैरव क्रन्दन छल न सके बन कर व्यवधान॥
इसी लिए तैयार खड़ा है, युग निर्माता आर्य समाज।
आज धरा पर सत्य धर्म का, प्राण प्रचारक आर्य समाज॥

कोटि कोटि से पूछ रहे हैं मेरे झंकृत मानस तार।
उच्च शिखर से गूंज उठी है, वदिक वीणा की झनकार॥
युग ने फिर से पाया है फिर प्रिय, सत्य धर्म का उच्च निशान।
धरती अम्बर पर लहराये, शीघ्र करो यह कार्य महान्॥
पाप ग्रस्त पीड़ित भूलों का, शरण प्रदाता आर्य समाज।
आज धरा पर सत्य धर्म का, ज्ञान प्रचारक आर्य समाज॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्य कौन है, कर्म श्रेष्ठ जो करता भूतल पर दिन रात।
कभी किसी को नहीं सताता, कभी नहीं देता सन्ताप ॥
जीवन की इस गाड़ी में जो पा पाए आनन्द अपार।
स्वर्ग समझ कर इस धरती को स्वर्ग बनाएगा संसार ॥
सत्य 'सत्य' का सत्य पुजारी, सत्य समझ लो आर्य समाज।
आज धरा पर सत्य धर्म का, प्राण प्रचारक आर्य समाज ॥

करुण रागिनी छिड़ी आज है, सिसक रहा मानव का दीप।
धू धू कर जलती ज्वाला में धधक रहे हैं प्राण पुनीत ॥
गहन गर्त में घोर तमस में, भटक रहा भू-मण्डल व्यर्थ।
किन्तु न अब तक समझ सका वह, इस जीवन का सच्चा अर्थ ॥
महानाश की ज्वाला से भी, बचा सकेगा आर्य समाज।
आज धरा पर सत्य धर्म का, प्राण प्रचारक आर्य समाज ॥

आओ मिल कर कर लें प्रण अब, हम भी दे देकर बलिदान।
मिट जाएंगे किन्तु बढ़ा कर वेद ज्ञान का गुरु सम्मान ॥
एक ओर से छोर दूसरी तक फहराएं आर्य निशान।
भाव भरी भाषा में गूंजे, वैदिक गौरव जय-जय गान ॥
शान्ति मन्त्र साकार विधाता, जग का साथी आर्य समाज।
आज धरा पर सत्य धर्म का, प्राण प्रचारक आर्य समाज ॥

—राकेश रानी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वसुधा में वैदिक-ज्ञान जगे

बलिदान जगे, सम्मान जगे, युग-युग का गौरव गान जगे ।
सदियों के गहन निराशा-घन, अब दूर भगें, रवि-ज्ञान जगे ।।

जगें कणाद, महर्षि पतंजलि, जगे राम कृष्णार्जुन का बल ।
जगे सत्य का वर सिंहासन, जगे शास्त्र ऋषियों का शासन ।।
भारत की मिट्टी के कण से, जीवन का अभिमान जगे ।।
बलिदान जगे, सम्मान जगे, युग युग का गौरव गान जगे ।।

हम एक बनें, हम एक रहें, मत ऐक्य भावना की भाषा ।
हो शान्ति न्याय का प्रिय दर्शन, सतयुग की पावन प्रत्याशा ।
पापों की गद्दी डोल उठे, वह दूर कहीं उस पार भगे ।
बलिदान जगे, सम्मान जगे, युग युग का गौरव गान जगे ।।

हे आर्य जगो ! आलस्य तजो ! धरती है तुम्हें पुकार रही ।
यह देखो दुनियाँ उजड़ रही, आशा की भिक्षा मांग रही ।
बलिदेवी का इतिहास स्वयं, हो पूर्ति रूप उत्थान जगे ।
बलिदान जगे, सम्मान जगे, युग युग का गौरव गान जगे ।।

आलस्य यहीं पर छोड़ो तुम, जीवन मद माया कुचलो रे ।
इन महानाश की लहरों के, आने से पहले संभलो रे ।
वह वेग लिए तुम चाल चलो, वीणा की भैरव तान जगे ।
बलिदान जगे, सम्मान जगे, युग-युग का गौरव गान जगे ।।

हिमगिरि का आसन डोल उठे, सागर का पानी खौल उठे ।
उन प्रलयकारिणी लहरों का, यौवन भी जय जय बोल उठे ।
तुम शक्ति रूप हो गरज उठो, वसुधा में वैदिक ज्ञान जगे ।
बलिदान जगे, सम्मान जगे, युग युग का गौरव गान जगे ।।

—भारतेन्द्र नाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महर्षि दयानन्द का दार्शनिक दृष्टिकोण

□ प्रो० रत्नसिंह, एम. ए., गाजियाबाद

ऋषि दयानन्द क्रान्तदर्शी-वेदोद्धारक-अध्यात्म वेत्ता-योगी और मानव उद्धारक थे। इसके साथ उनका गहन गंभीर दार्शनिक दृष्टिकोण था। वैदिक विचारधारा के आधार पर उन्होंने जो 'दर्शन' दिया है वह विश्व के सुप्रसिद्ध विचारक की लेखनी से प्रस्तुत है।

—संपादक

क्या ऋषि दयानन्द एक दार्शनिक थे ? इस प्रश्न का उत्तर दार्शनिक शब्द की व्याख्या पर निर्भर करता है। पाश्चात्य दृष्टिकोण से किसी भी व्यक्ति को, जो इस जगत् के वैचित्र्य के सम्बन्ध में गम्भीर एवं विचार पूर्ण चिन्तन करता है, दार्शनिक की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। यह गम्भीर चिन्तन जीवन की समस्याओं को सुलझाने में मानव जीवन के परम लक्ष्य (मोक्ष) की प्राप्ति में साधक है, या नहीं इससे कोई वास्ता नहीं। चिन्तन गम्भीर व क्रमबद्ध होना चाहिये, इतना मात्र ही दार्शनिक होने के लिए पर्याप्त है। जी. टी. डब्ल्यू. पैट्रिक ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Introduction to Philosophy' में दार्शनिक की परिभाषा इस प्रकार की है, "जब हमारा आश्चर्य गम्भीर और नियमित खोज का रूप धारण कर लेता है तो हम दार्शनिक बन जाते हैं।" अपनी इस स्थापना को लेखक ने एक काल्पनिक उदाहरण से पुष्ट किया है। लिखता है, "A little girl stood looking out of the window, very thoughtful presently she turned and said, 'Mother, what I don't understand is how there came to be any world,' with this reflection she became a philosopher."

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थात् बड़ी गम्भीर मुद्रा में एक छोटी कन्या खड़ी हुई, खिड़की के बीच देख रही थी। तुरन्त उसने मुड़ कर कहा, "माता जी ! इस जगत् की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? यह बात मेरी समझ में नहीं आ रही है।" इसके ऊपर उसने चिन्तन किया और वह दार्शनिक हो गई। प्रसिद्ध पाश्चात्य दार्शनिक प्लेटो का कथन है कि "दर्शन की उत्पत्ति आश्चर्य से होती है।" आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों के मत में "दर्शन की उत्पत्ति सन्देह से होती है।" आज लोग वर्तमान आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक उत्तमोत्तम पद्धतियों के सम्बन्ध में भी सन्देह करते हैं। उन्हें ईश्वर व जीवात्मा की सत्ता के सम्बन्ध में भी सन्देह है। उनका यह सन्देहयुक्त चिन्तन जब तर्कयुक्त व नियमित हो जाता है तो इसे ही दर्शन (फिलासफी) कहा जाता है। अब कुछ इस प्रकार की विचारधारा चल पड़ी है कि दर्शन शास्त्र का सम्बन्ध जीवन की समस्याओं से भी होना चाहिये। दर्शन को व्यावहारिक होना चाहिए। परन्तु मुख्य विचारधारा यही है कि दर्शन एक मानसिक अध्ययन है जिसका जीवन की समस्याओं से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। इसी कारण वर्तमान में हमें अनेक ऐसे दार्शनिक दिखाई देते हैं जो बड़ी ऊंची कल्पनायें करते हैं, अनेक सिद्धान्तों का निर्माण करते हैं, परन्तु अपने सिद्धान्तों व विश्वासों को अपने जीवन में कभी कार्यान्वित नहीं करते। यदि 'दार्शनिक' शब्द का यही अभिप्राय है तो हम निःसंकोच कहना चाहते हैं, और गर्व के साथ कहना चाहते हैं कि ऋषि दयानन्द दार्शनिक न थे।

दर्शन व दार्शनिक की उपरोक्त परिभाषा का भारतीय दृष्टिकोण से कोई मूल्य नहीं है। ऋषि दयानन्द भारतीय थे, उनका दृष्टिकोण भारतीय था, अतएव उनके दार्शनिक होने वा न होने का निर्णय दर्शन की भारतीय परिभाषा के आधार पर ही करना चाहिए। निषेधात्मक रूप में हम इतना ही लिखना पर्याप्त समझते हैं कि "जो व्यक्ति अपने लेख, वार्त्तालाप व भाषण में तर्क के आधार पर केवल बाल की खाल खींचता है परन्तु अपने विचारों के अनुकूल अपना जीवन यापन नहीं करता और जिसकी कथनी और करनी में घोर विरोध रहता है तथा जिसका यह विश्वास है कि दर्शन केवल एक मानसिक व्यायाम मात्र है, उसे हम दार्शनिक कदापि नहीं कह सकते, चाहे और कुछ भले ही कह लें। "दृश्य व अदृश्य, चेतन व जड़ जगत् की समस्याओं का पूर्ण समाधान ही दर्शन का मुख्य लक्ष्य है।" इन समस्याओं का समाधान वही व्यक्ति कर सकता है जिसने अपने को सांसारिक एषणाओं से ऊपर रखकर, सुख दुःख की चिन्ताओं से अपने को विमुक्त कर, अपने जीवन को पूर्ण निष्ठा के साथ सत्य की खोज में अर्पित कर दिया हो। हमारी दृष्टि में ऐसे ही व्यक्ति को दार्शनिक की संज्ञा प्रदान की जाती है। इसी दृष्टि से ऋषि दयानन्द शत प्रतिशत दार्शनिक थे।

हम लोगों के कान ऋषि दयानन्द को एक धार्मिक सुधारक के रूप में सुनने के ही अभ्यस्त हैं। आर्य समाज की वेदी से सदैव यही प्रचारित किया जाता रहा है कि आर्यसमाज एक विशुद्ध धार्मिक संस्था है और इसके संस्थापक ऋषि दयानन्द सरस्वती एक महान् समाज सुधारक तथा धार्मिक महापुरुष थे। गौतम, कणाद, पतञ्जलि, शंकर, माधव, रामानुज आदि की भांति ऋषि दयानन्द भी एक दार्शनिक थे, ऐसा पढ़ने व सुनने में नहीं आता, और आता भी है तो बहुत कम और यदा-कदा। ऐसा होने के कई कारण हैं।

प्रथम तो यह कि समयाभाव से ऋषि दयानन्द ने गौतम, कणाद की भांति किसी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वतन्त्र दर्शन ग्रन्थ की रचना नहीं की। उनके दार्शनिक विचार हमें उनके रचित दो प्रसिद्ध ग्रन्थों, सत्यार्थ प्रकाश व ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका से ही उपलब्ध होते हैं। दूसरा कारण, हम आर्य समाजियों की उदासीनता रही है। हम लोगों ने भी ऋषि के दार्शनिक विचारों को संग्रह कर उन्हें पुस्तकाकार देकर उन पर विवेचन करने का प्रयास नहीं किया। ऋषि दयानन्द के दार्शनिक विचारों के सम्बन्ध में हमें अब तक केवल दो ही पुस्तकें देखने को मिली हैं। तीसरा कारण धर्म और दर्शन का पारस्परिक सम्बन्ध है। भारतवर्ष में तो धर्म तथा दर्शन में परस्पर सामंजस्य है। धर्म दर्शन का साधक है, बाधक नहीं। किन्तु पाश्चात्य देशों में "धर्म" दर्शन का बाधक रहा है, साधक नहीं। इसका कारण धर्म के प्रति उनके दोषयुक्त विचार हैं और इसका उत्तरदायित्व ईसाइयत पर है। पाश्चात्य विचारधारा का परिणाम यह हुआ कि वहां के विद्वानों तथा उनके भारतीय भक्तों ने तो यह समझ लिया कि यतः दयानन्द एक धार्मिक महापुरुष हैं, अतः दार्शनिक हो ही नहीं सकते। चौथा कारण देश की सामाजिक स्थिति रही। ऋषि दयानन्द के जन्म व उनके प्रचार के समय भारत में धार्मिक घोर अन्धविश्वास विद्यमान थे और वे अब तक अनेक अंशों में विद्यमान हैं। इस कारण ऋषि दयानन्द व आर्यसमाज का सारा समय इन धार्मिक अन्धविश्वासों को दूर कर उनके स्थान पर वास्तविक धर्म का प्रचार करने में ही लगा है।

ऋषि दयानन्द के दार्शनिक विचारों को समझने के लिए संक्षेप में धर्म और दर्शन के पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार करना भी आवश्यक है। अभी ऊपर संकेत किया गया है कि इस प्रश्न पर भारतीय व पाश्चात्य दृष्टिकोणों में विरोध है। पाश्चात्य देशों में अभी तक दर्शन धर्म का विरोधी समझा जाता है। इसी कारण शुद्ध तर्क के द्वारा विवेचन करने वाले अनेक विद्वानों को वहां पर धर्म के ठेकेदार ईसाई पादरियों द्वारा शूली पर चढ़वाकर उनके प्राण ले लिये गये। ईसाइयत की नींव अन्धविश्वास पर खड़ी है। फिर भला वह तर्क संगत विचारों को कैसे सहन कर सकती है? परन्तु आजकल पिछले कुछ समय से पाश्चात्य देशों में धर्म और दर्शन के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध समझा जा रहा है। पैट्रिक का कथन है कि "दर्शन विज्ञान की अपेक्षा जगत् का अधिक सुसंगठित व पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करता है पर धर्म उससे भी कहीं अधिक पूर्ण एकता की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता है।" "विज्ञान, धर्म और दर्शन इस बात में समान हैं कि उन सबका उद्देश्य संसार को समझना है परन्तु समझने का उद्देश्य प्रत्येक का भिन्न है।" लेखक के अनुसार धर्म और दर्शन दोनों प्रायः समान विषय का ही अध्ययन करते हैं। जैसे आत्मा, इसकी उत्पत्ति और लक्ष्य, परमात्मा, जगत् आदि। हमारे देश में धर्म व दर्शन में घनिष्ठ मेल रहा है, इसका एक प्रमाण तो यही है कि हमारे धार्मिक व दार्शनिक अनेक ग्रन्थ एक हैं, जैसे वेद, उपनिषद् गीता, छः शास्त्र आदि। ईसाइयत में ऐसा नहीं हैं, वहां बाईबल धार्मिक ग्रन्थ ही है दार्शनिक नहीं और जो उनके दार्शनिक ग्रन्थ हैं वे धार्मिक नहीं। महर्षि कणाद ने धर्म का लक्षण इस प्रकार किया है—"यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः।" अर्थात् जिससे लौकिक उन्नति तथा पारलौकिक कल्याण की सिद्धि हो, वह धर्म है। यदि दर्शन जीवन की उन्नति में सहायक नहीं, तो इसका क्या मूल्य? दार्शनिक अनुसन्धानों का हमारे जीवन पर प्रभाव पड़ना चाहिये। दार्शनिक सत्य का जीवन में कार्यान्वित होना ही धर्म है। दर्शन का सम्बन्ध विचार से है और धर्म का सम्बन्ध आचार से। मनुष्य का जैसा विचार होता है वैसा ही

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आचार। यदि दार्शनिक विचार धार्मिक आचार द्वारा कार्यान्वित नहीं होते, तो दर्शन निष्फल है। इसी प्रकार बिना दार्शनिक विचारों के धर्म की कोई प्रतिष्ठा नहीं। दर्शन नींव है तो धर्म उस पर खड़ा भव्य भवन है। मेरे विचार में धर्म और दर्शन का एक दूसरे से पृथक् कोई मूल्य नहीं है। अतएव अधार्मिक व्यक्ति को दर्शन के अध्ययन का कोई अधिकार नहीं है। क्योंकि उसके हाथों अधार्मिकता के कारण दर्शन का दुरुपयोग ही होने की सम्भावना बनी रहती है। ऋषि दयानन्द जैसा विचारते थे, वैसा ही कहते थे और जैसा कहते थे वैसा स्वयं करते थे। उनके विचार और आचार में सामञ्जस्य था। इसे हम किसी भी दार्शनिक का एक महान् गुण समझते हैं और इसी आधार पर हम ऋषि दयानन्द को एक महान् दार्शनिक समझते हैं।

ऋषि दयानन्द किसी विद्यालय वा विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर दार्शनिक नहीं बने। हमारे विचार में दयानन्द जन्म से ही दार्शनिक थे। ईश्वर है या नहीं? उसका स्वरूप क्या है? जीवन क्या है? मृत्यु दुःख से निवृत्ति किसी प्रकार प्राप्त हो सकती है? दार्शनिक समस्याओं में से ये कुछ समस्याएँ हैं जो कि ऋषि दयानन्द के सामने उनकी छोटी आयु में ही उपस्थित हो जाती हैं। और देखते हैं कि उन्होंने अपना सारा जीवन इन और इसी प्रकार की अन्य अनेक समस्याओं का समाधान करने में ही व्यतीत किया है। उनके बाल्यकाल में तीन घटनाएँ घटित हुईं, जिन्होंने उनके जीवन के भविष्य को ही परिवर्तित कर दिया। प्रथम घटना शिवरात्रि व्रत की है। बालक मूलशङ्कर (ऋषि दयानन्द का जन्म का नाम) के धर्म-निष्ठ पिता ने उनको विधिपूर्वक शिवरात्रि का व्रत रखने का आदेश देते हुए विश्वास दिलाया कि उपवास रखने से अर्द्धरात्रि में उन्हें शिव के दर्शन होंगे। मूलशङ्कर ने विधिपूर्वक उपवास रखा और अपने साथियों के साथ शहर के बाहर बड़े शिवालय में पूजा के लिए पहुँच गये। ज्यों-ज्यों रात्रि व्यतीत होती गई मन्दिर के पुजारी तथा अन्य व्रतधारी, मन्दिर से बाहर जाकर सोते रहे। उनके पिता भी कालान्तर में सो गए। अब बालक मूलशङ्कर अकेले जाग रहे थे। इतने में एक घटना उपस्थित हुई। कई चूहे बाहर निकल कर महादेव की पिण्डी के ऊपर दौड़ने लगे, और बीच-बीच में महादेव पर चढ़ाये गए चावलों को भक्षण करने लगे। इस घटना को देखकर मूल-शङ्कर के मन में जो ऊहापोह हुआ, उसका सजीव चित्र ऋषि दयानन्द अपने शब्दों में प्रस्तुत करते हैं, "देखते-देखते मेरे मन में आया कि यह क्या है? जिस महादेव की शान्त पवित्र मूर्ति की कथा, जिस महादेव के प्रचण्ड पाशुपतास्त्र की कथा और जिस महादेव के विशाल वृषारोहण की कथा गत दिवस व्रत के वृत्तान्त में सुनी थी क्या वह महादेव वास्तव में यही हैं? मैंने सोचा कि यदि यथार्थ में यह वही प्रबल प्रतापी, दुर्दान्त दैत्य दलन कारी महादेव है तो यह अपने शरीर पर से इन थोड़े से चूहों को क्यों प्रताड़ित नहीं कर सकता? जो चलते फिरते हैं, खाते हैं, पीते हैं, सोते हैं, हाथ में त्रिशूल धारण करते हैं, डमरू बजाते हैं और मनुष्य को शाप दे सकते हैं, क्या वह यही वृषारूढ़ देवता हैं और मेरे सामने उपस्थित हैं?" इस घटना ने मूल शङ्कर के मन को अशान्त कर दिया। उन्होंने अपने पिता को जगा कर अपनी शङ्का उनके सामने उपस्थित कर दी। उन्होंने पिता से पूछा, "जो महादेव प्रबल पराक्रमी प्रसिद्ध है वह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

थोड़े से चूहों को भी भगाने में असमर्थ क्यों है ?" पिता ने केवल यही उत्तर दिया, "यह साक्षात् शिव नहीं, केवल उसकी मूर्ति है। कलिकाल में भला भगवान् के दर्शन कहाँ ?" यह उत्तर सुन कर मूल शङ्कर ने निश्चय कर लिया कि यथार्थ महादेव का दर्शन किए बिना मैं मूर्ति की पूजा नहीं करूँगा। इस घटना ने दयानन्द के सम्मुख दार्शनिक समस्या उपस्थित कर दी। समस्या है, ईश्वर के वास्तविक स्वरूप तथा तत् प्राप्ति सम्बन्धी। ईश्वर के स्वरूप के सम्बन्ध में निषेधात्मक रूप में दयानन्द ने यह ज्ञान प्राप्त कर लिया कि ईश्वर मूर्ति का नाम नहीं है।" (न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यशः)।" इस ज्ञान के साथ ही सच्चे शिव की प्राप्ति के लिए उन्हें एक प्रेरणा प्राप्त हुई।

इस घटना के पाँच वर्ष पश्चात् उनके जीवन में एक और घटना हुई जिसका विवरण स्वामी दयानन्द के अपने शब्दों में इस प्रकार है—"एक दिन रात्रि के समय अपने एक बन्धु के यहाँ नृत्योत्सव देख रहा था। उस समय एक भृत्य ने घर से आकर एक विषम संवाद दिया। उसने कहा कि मेरी चौदह वर्ष की भगिनी सांघातिक रोग से रुग्ण हो गई है। भगिनी की चिकित्सा के लिए सारे ही उपायों का अवलम्बन किया गया, परन्तु दुःख है कि मेरे घर आने के दो घण्टे के भीतर ही वह मृत्यु का ग्रास हो गई। उस भगिनी के वियोग का शोक ही मेरे जीवन का प्रथम शोक था। उस शोक से हृदय में बड़ा आघात लगा। उस शोकप्रद घटना के समय जब आत्मीय स्वजन-गण मेरे चारों ओर खड़े हुए क्रन्दन विलाप कर रहे थे, मैं पाषाण-निर्मित मूर्ति के समान अवचलित रह कर चिन्ता के स्रोत में डूबा हुआ था। **मनुष्य जीवन की क्षण-भंगुरता की बात सोचकर अपने मन में** कह रहा था. कि **जब पृथ्वी पर सबको ही इस प्रकार मरना है तो मैं भी एक** दिन मरूँगा। **परन्तु कोई ऐसा स्थान भी है या नहीं जहाँ जाकर मृत्यु समय की यन्त्रणा से रक्षा हो सके।** और **मुक्ति का उपाय मिल सके।** अन्त में उसी स्थान में खड़े-खड़े उसी क्षण मैंने यह संकल्प किया कि मुझ जैसा ईश्वर विश्वासी **जिस प्रकार से अवर्णनीय मृत्यु क्लेश से अपने आपको बचा सके ऐसे उपाय का चाहे वह जैसा भी हो अवलम्बन करने का प्रयत्न करूँगा।** इसके अतिरिक्त उस चिन्ता और विचार के समय मैंने सुदृढ़ रूप में जान लिया कि **बाहर की कठोरता व किसी प्रकार का बाह्यानुष्ठान किसी अंश में भी धर्मलाभ के लिए अनुकूल नहीं है, और** आत्मिक प्रयत्न की आवश्यकता भी मैं दिन प्रतिदिन समझने लगा।" इस घटना के वर्णन को हम प्रयत्न करने पर भी संक्षिप्त नहीं कर सके, क्योंकि इसका एक-एक वाक्य ऋषि दयानन्द की प्रारम्भिक विचार धारा को समझने में सहायक है। इसके कुछ दिन पश्चात् मूल जी के चाचा की मृत्यु हो गई। इस घटना को स्वामी दयानन्द ने स्वयं इस प्रकार वर्णन किया है—"चाचा के वियोग से मैं और भी अप्रसन्न हो गया। मैंने सोचा कि **संसार की सारी वस्तुएँ अस्थायी और चंचल हैं, तब ऐसी कौन सी वस्तु है जिसके लिए संसार में रहकर सांसारिक लोगों के समान जीवन यापन करूँ।**

इन अन्तिम दो घटनाओं से दयानन्द के सम्मुख दो प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हुईं—एक तत्त्व विज्ञान सम्बन्धी और दूसरी नैतिक। नीतिशास्त्र सम्बन्धी समस्या का हल तो उन्होंने उसी समय यह निकाल लिया कि—"बाहर की कठोरता व किसी प्रकार का बाह्यानुष्ठान किसी अंश में भी धर्मलाभ के लिए अनुकूल नहीं है।" तत्त्व विज्ञान सम्बन्धी समस्या ने तीन रूप धारण किए। जीवन क्या है ? मृत्यु का क्या

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थ है ? इससे कैसे छुटकारा प्राप्त किया जा सकता है ? जीवन के प्रारम्भिक काल में उत्पन्न इन सभी समस्याओं का अपने ढङ्ग से ऋषि दयानन्द ने समाधान किया है जिसका हम आगे अन्यत्र यथावसर विवेचन करेंगे।

ऋषि दयानन्द के दार्शनिक विचार जीवन के एक विशेष क्षेत्र तक ही सीमित नहीं हैं। अन्य भारतीय आस्तिक दार्शनिकों की भांति ऋषि दयानन्द के अनुसार भी जीवन का परमोद्देश्य अपवर्ग (मोक्ष) की प्राप्ति है। 'स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश' में ऋषिवर लिखते हैं, "सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्त जनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे, जिससे सब लोग सहज से धर्मार्थ काम मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें, यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।"

इस साध्य (मोक्ष) की प्राप्ति के साधन क्या हैं ? ऋषि दयानन्द के विचार में इसका मुख्य साधन अज्ञान से निवृत्ति और ज्ञान की प्राप्ति है। परन्तु किसका ज्ञान ? क्या इस भौतिक विश्व का ज्ञान पर्याप्त होगा ? गणित-शास्त्र, भूगोल इतिहास, भूगर्भ विद्या, नक्षत्र विद्या आदि का ज्ञान क्या मोक्ष प्राप्ति के लिए आवश्यक है ? मुझे अब तक यह ज्ञान था कि भारत की जन संख्या ४५ करोड़ है परन्तु आज ही सरकारी रिपोर्ट द्वारा जाना कि यहां की जनसंख्या ५५ करोड़ से भी अधिक है। क्या इसे मेरी अविद्या कहा जाएगा ? क्या यह अविद्या मोक्ष प्राप्ति में बाधक होगी ? बात ऐसी नहीं है। जिस अविद्या की ओर दर्शनों में संकेत किया गया है, (और जिससे ऋषि दयानन्द सहमत हैं) वह विशेष घटनाओं के ज्ञान का अभाव नहीं, वरन् जीवन के भिन्न-भिन्न प्रमुख विभागों के सम्बन्ध में दोषयुक्त दृष्टिकोण हैं। ये विभाग क्या हैं और इनके सम्बन्ध में क्या मिथ्या-ज्ञान हो सकता है ? योग दर्शन में अविद्या के चार आकार वर्णित हुए हैं और 'सत्यार्थ प्रकाश' में ऋषि दयानन्द ने भी उद्धृत किया है। सूत्र इस प्रकार है—"अनित्याशुचिदु:खानात्मसु नित्य शुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।" (१) अनित्य को नित्य और नित्य को अनित्य समझना (२) शुचि और अशुचि में भेद न करना (३) दु:ख को सुख और सुख को दु:ख समझना तथा (४) आत्मा और अनात्मा में भेद न करना अविद्या के लक्षण हैं। इन सबका विवेचन दर्शन शास्त्र के तत्त्व विज्ञान, नीतिशास्त्र, और मनोविज्ञान के विभागों के अन्तर्गत आता है। इन सब विभागों का समावेश ऋषि दयानन्द के अन्तर्गत है और इनके साथ ही ज्ञान मीमाँसा सम्बन्धी समस्याओं का भी उन्होंने विवेचन किया है।

जगत् के मूल तत्त्व

प्रत्येक कार्य का कारण होता है। यह दृश्य जगत् कार्य रूप है, अतएव इसका कोई कारण अवश्य होना चाहिए। जगत् के मूल कारण अथवा मूल तत्त्व की खोज में दार्शनिकों की प्रारम्भ से ही रुचि रही है। वह मूल तत्त्व क्या है, जिसका यह सारा जगत रूपान्तर मात्र है। इस समस्या पर विचार करने के साथ हमारे सामने एक जटिल प्रश्न उपस्थित हो जाता है। प्रश्न है आभास और तत्त्व का भेद। हमारा दैनिक व्यावहारिक अनुभव है कि एक पदार्थ मनुष्य को भिन्न परिस्थितियों में भिन्न प्रतीत होता है। दौड़ती रेलगाड़ी में बैठ कर उसके आस पास खड़े वृक्ष, मकान, पहाड़ चलते दृष्टिगोचर होते हैं। शान्त स्वच्छ जल में सीधी लकड़ी टेढ़ी दीखती है। बाह्य आकृति से एक दुष्ट व्यक्ति भी सदाचारी सज्जन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रतीत हो सकता है। इस प्रकार की घटनाएं चिन्तनशील मनुष्य के सम्मुख एक समस्या उपस्थित कर देती हैं। कौन वास्तविक है ? चलते हुए घर, वृक्ष, पहाड़ या उनका स्थिर रूप ? पानी में टेढ़ी दिखने वाली लकड़ी या उसका सीधा रूप? सम्भवतः अनेक पाठक विचारेंगे कि यह भी कोई समस्या है। सभी जानते हैं कि मकान, वृक्ष व पर्वत स्थिर रहते हैं और पानी में तिरछी दीखने वाली लकड़ी वास्तव में सीधी है। परन्तु इतना कह देने या विचारने मात्र से समस्या का समाधान नहीं हो जाता। हम पूछना चाहते हैं कि मकान वृक्ष व पहाड़ चलते हुए क्यों दिखाई देते हैं जब कि वे स्थिर हैं ! लकड़ी टेढ़ी क्यों प्रतीत होती है ? और क्यों उसके टेढ़ेपन को उसका अवास्तविक रूप कहा जाता है ? ऐसी-ऐसी घटनाओं से ही तत्त्व और आभास समस्या उपस्थित होती है। क्या यह सम्पूर्ण दृश्य जगत् और इसमें होने वाली घटनाएं किसी एक मूल तत्त्व के आभास मात्र तो नहीं हैं ? क्या यह जगत् वास्तव में ऐसा ही है जैसा कि दिखाई पड़ता है अथवा यह किसी अदृश्य वास्तविक तत्त्व की अभिव्यक्ति मात्र है। सामान्यतः जगत् के सभी पदार्थ चेतन और जड़ दो विभागों के अन्तर्गत आ जाते हैं। जिस प्रकार विश्व के समस्त पदार्थ इन दो रूपों में परिवर्तित हो गए हैं क्या उसी प्रकार यह सम्भव नहीं है कि मूल तत्त्व केवल एक हो और उसी से विश्व का निर्माण हुआ हो। यह समस्या इस जगत् के मूल तत्त्व की ओर संकेत करती है।

सारांश रूप में समस्या यह है कि मूल तत्त्व कौन है, जड़ या चेतन, या दोनों अथवा कोई नहीं ? मूल तत्त्व की संख्या क्या है ? वे कितने प्रकार के हैं ? इन समस्याओं पर विचारकों के विभिन्न मत रहे हैं। मूल तत्त्व की संख्या के सम्बन्ध में मुख्यतः तीन मत रहे हैं। पहिला मत है कि मूल तत्त्व केवल एक है। विश्व के विभिन्न पदार्थ उसी एक तत्त्व से निर्मित हुए हैं। इस मत को एकवाद कहा जाता है। मूल तत्त्व जड़ है या चेतन, इस प्रश्न को लेकर एकवाद दो प्रकारों में विभक्त हो जाता है। जड़वाद तथा चैतन्यवाद, जिनके अनुसार मूल तत्त्व क्रमशः जड़ व चेतन है। दूसरा मत है कि मूल तत्त्व एक नहीं वरन् दो हैं। दोनों ही स्वतन्त्र तथा वास्तविक बतलाए जाते हैं। विश्व के सभी पदार्थ इन्हीं दो तत्त्वों के अभिव्यक्त रूप हैं। इन दोनों तत्त्वों को अरस्तू ने द्रव्य तथा आकार और डैकार्ट ने द्रव्य और मन नाम से पुकारा है। इस मत को द्वैतवाद कहा जाता है क्योंकि मूल तत्त्व दो माने गए हैं। तीसरा मत है कि मूल तत्त्व अनेक हैं। यह गलत धारणा है कि विश्व के भिन्न पदार्थ एक या दो प्रकार तत्त्वों से बने हैं। जितने प्रकार के पदार्थ हैं उतनी ही संख्या मूल तत्व की है। इस मत को अनेकवाद कहा जाता है, क्योंकि इसके अनुसार मूल तत्त्व अनेक हैं। अनेकवादी विश्व की एकता को मिथ्या नहीं बतलाते, पर उनके अनुसार यह एकता विविधता या अनेकता का योग मात्र है। जिस प्रकार मेरे सामने रक्खी मेज अनेक अवयवों का योग है, उसी प्रकार विश्व भी अनेक स्वतन्त्र तत्त्वों का योग है। प्रत्येक तत्त्व वास्तविक है, वह किसी दूसरे तत्त्व पर निर्भर नहीं है।

महर्षि दयानन्द का मत इन सब मतों से निराला है। उनके अनुसार जगत् का मूल तत्त्व न एक है न दो, न अनेक अपितु तीन और केवल तीन। तीन से न न्यून और न अधिक। इस विचारधारा को "त्रैतवाद" नाम से पुकारा जाता है। वे मूल तत्त्व ईश्वर, जीव व प्रकृति हैं और वे तीनों अनादि हैं। अनादि किसे कहते हैं ? इसका उत्तर ऋषिवर 'आर्योद्देश्यरत्नमाला' में इस प्रकार देते हैं, "जो न कभी उत्पन्न हुआ हो, जिसका कारण कोई भी न होवे, अर्थात् जो सदा से स्वयं सिद्ध हो, वह अनादि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कहाता है।" भाव पदार्थों के साथ यह नियम सामान्य रूप से लागू होता है कि जो अनादि है वह अनन्त भी है। अतएव ईश्वर, जीव, प्रकृति तीनों अनादि व अनन्त भी हैं। ये अनादि पदार्थ संख्या में तीन हैं। स्वमंतव्यामन्तव्य प्रकाश में लिखा है कि "अनादि पदार्थ तीन हैं, एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण। इन्हीं को नित्य भी कहते हैं, जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म स्वभाव भी नित्य हैं।" 'सत्यार्थ प्रकाश' के अष्टम समुल्लास में महर्षि लिखते हैं, "जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप तीनों अनादि हैं?" "प्रकृति, जीव और परमात्मा तीनों अज अर्थात् जिनका जन्म कभी नहीं होता और न कभी ये जन्म लेते अर्थात् यह तीन सब जगत् के कारण हैं।" क्या इन तीनों का भी कोई कारण हो सकता है (नहीं) इनका कारण कोई नहीं।"

जगत् के मूल तत्त्व संख्या में तीन ही क्यों हैं? तीन से न्यून वा अधिक क्यों नहीं? **यह एक गम्भीर दार्शनिक समस्या है और इसकी विस्तृत विवेचना आगे की जायेगी।** यहां तो हमारा अभिप्राय केवल इतना मात्र दर्शाना है कि इस जगत् के मूल तत्त्व महर्षि दयानन्द के मत में केवल तीन हैं। ये तीन ही क्यों हैं, इसका उत्तर यहां हम अपनी ओर से कुछ न लिखते हुए महर्षि के शब्दों में ही देते हैं। 'सत्यार्थ प्रकाश' के अष्टम समुल्लास में वे लिखते हैं, "(प्रश्न) जगत् के कारण कितने होते हैं? (उत्तर) तीन, एक निमित्त, दूसरा उपादान, तीसरा साधारण। निमित्त कारण उसको कहते हैं कि जिसके बनाने से कुछ बने, न बनाने से न बने। आप स्वयं बने नहीं दूसरे को प्रकारान्तर बना देवे। दूसरा उपादान कारण उसको कहते हैं जिसके बिना कुछ न बने, वही अवस्थान्तर रूप होके बने और बिगड़े भी। तीसरा साधारण कारण उसको कहते हैं कि जो बनाने में साधन और साधारण निमित्त हो। निमित्त कारण दो प्रकार के हैं। एक सब सृष्टि को कारण से बनाने, धारने और प्रलय करने तथा सब की व्यवस्था रखने वाला मुख्य निमित्त कारण परमात्मा। दूसरा परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेकविध कार्यान्तर बनाने वाला साधारण निमित्त कारण जीव। उपादान कारण प्रकृति परमाणु, जिसको सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं, वह जड़ होने से आप से आप न बन और न बिगड़ सकती है किन्तु दूसरे के बनाने से बनती और बिगाड़ने से बिगड़ती है। कहीं २ जड़ के निमित्त से जड़ भी बन और बिगड़ भी जाती है जैसे परमेश्वर के रचित बीज पृथिवी में गिरने और जल पाने से वृक्षाकार हो जाते हैं और अग्नि आदि जड़ के संयोग से बिगड़ भी जाते हैं परन्तु इसका नियम पूर्वक बनना वा बिगड़ना परमेश्वर और जीव के अधीन है। जब कोई वस्तु बनाई जाती है तब जिन २ साधनों से अर्थात् ज्ञान दर्शन, बल, हाथ और नाना प्रकार के साधन आदि और दिशा काल और आकाश साधारण कारण, जैसे घड़े को बनाने वाला कुम्हार निमित्त, मिट्टी उपादान और दण्ड चक्र आदि सामान्य निमित्त दिशा, काल, आकाश, प्रकाश, आँख, हाथ, ज्ञान, क्रिया आदि निमित्त साधारण और निमित्त कारण भी होते हैं। इन तीन कारणों के बिना कोई भी वस्तु नहीं बन सकती और न बिगड़ सकती है।

जो वा त्मा

वास्तव में यह एक महान् आश्चर्य है कि, अधिकांश मनुष्य अपने से भिन्न सभी पदार्थों के बारे में जानने के सदैव इच्छुक रहते हैं। परन्तु अपने बारे में कभी विचार करने का कष्ट नहीं करते। "मैं हूं" इसमें तो सभी व्यक्ति विश्वास करते हैं। गम्भारतापूर्वक कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि "मैं नहीं हूं"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
"मेरा अस्तित्व नहीं है" नित्य प्रति अपने दैनिक व्यवहार में हम इस प्रकार के वाक्यों का प्रयाग करते हैं—"मैं स्वस्थ हूं" "मैं भोजन कर रहा हूं" "मैं पुस्तक पढ़ता हूं" "यह मकान मेरा है" परन्तु बिरले व्यक्ति ही इस "मैं" के वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध में विचारते है। "मैं क्या हूं?" यह एक पुराना प्रश्न है और सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक सभी देशों के महान् विचारकों ने इस पर विचार भी किया है परन्तु वे किसी अन्तिम निर्णय पर आ गए हों, ऐसा हम नहीं समझते।

साधारण व्यक्ति इस प्रश्न की उलझन में पड़ना पसन्द नहीं करता, एक बार अपने विद्यार्थियों से मैंने यही प्रश्न किया कि 'तुम कौन हो?' प्रश्न करने से पूर्व एक निर्देश यह दिया कि प्रश्न को सुनकर जो प्रथम विचार मन में उत्पन्न हो उसे सब विद्यार्थी अपनी कापियों में अङ्कित कर लें। प्रश्न करने के उपरान्त जो उत्तर प्राप्त हुए, उनका सारांश निम्न प्रकार है—

(१) 'मैं' विद्यार्थी हूं (२) 'मैं' मोहन, सोहन, आदि हूं (३) 'मैं' ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि हूं। यह उत्तर जीवन के उस स्तर का द्योतक है जहां कि मनुष्य 'अपने' सम्बन्ध में कुछ सोचता ही नहीं। मनुष्य जब इस स्तर से ऊंचा उठकर चिन्तनशील बनता है और 'मैं' के बारे में सोचना आरम्भ करता है तो वह इस परिणाम पर पहुँचता है कि न तो "मैं" विद्यार्थी हूं, न मोहन, सोहन और न ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि। आज मैं विद्यार्थी हूं, कल प्रोफ़ेसर या वकील बन सकता हूं, आज मोहन हूं, कल अपना नाम बदल कर देवदत्त बन सकता हूं, आज ब्राह्मण हूं, कल शूद्र हो सकता हूं। 'विद्यार्थी' 'मोहन' 'ब्राह्मण' परिवर्तनशील है, अतएव 'मैं' इनमें से कोई नहीं। परन्तु मैं अनुभव करता हूं कि, इन परिवर्तनों के होने पर भी मेरा शरीर वहीं का वहीं रहता है, अतः 'मैं' वास्तव में अपना शरीर हूं। 'मैं लंगड़ा हूं' 'मैं काणा हूं' 'मैं थक गया हूं'। कौन लंगड़ा है? कौन काणा है? कौन थका हुआ है? उत्तर यही मिलेगा कि "शरीर"। "मैं' के सम्बन्ध में समस्या का यही अन्त नहीं हो जाता। "आज दिन में अधिक परिश्रम करने से 'मेरा शरीर' चूर-चूर हो गया है" इस प्रकार का वाक्य जब हम बोलते हैं तो हमारे सामने एक विकट समस्या उपस्थित हो जाती है। "मेरा शरीर का क्या अर्थ है? अभी हमने देखा है कि "मैं" शरीर को कहा जाता है। इसलिए 'मेरा' का अर्थ हुआ 'शरीर का' और 'मेरा शरीर का' अर्थ हुआ 'शरीर का शरीर'। मोहन का पुत्र स्वयं मोहन को कहना जैसा बेहूदा है उसी प्रकार 'शरीर का शरीर' कहना। अब हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि 'मैं' शरीर का नाम नहीं है। 'मेरा' और शरीर दोनों का द्वैत है, दोनों में भेद है। दूसरा निश्चय जिस पर हम पहुँचते हैं वह यह है कि 'मैं' और 'शरीर' दोनों का कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य है, और शरीर में मुझे अपनापन अनुभव होता है। ऐसा कभी अनुभव नहीं होता कि मेरा शरीर चारपाई पर पड़ा सोता रहे और 'मैं' पढ़ाने के लिए कालिज चला जाऊं।

'मैं' क्या हूं, 'मेरा' वास्तविक स्वरूप क्या है, इससे समझने के लिए उपरोक्त दो बातों पर सदैव ध्यान रखना चाहिए। जिन दो परिणामों पर हम पहुँचते हैं, वे ये हैं—

(१) 'मैं' और 'शरीर' का भेद (२) 'शरीर' में 'मैं' की अनुभूति। इन दो तथ्यों को ठीक प्रकार न समझने के कारण ही बड़े-बड़े दार्शनिक भूल कर बैठे हैं। दर्शन का इतिहास इस बात का साक्षी है कि इन दो में से किसी एक को छोड़ देने से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भ्रमात्मक सिद्धान्त प्रचलित हो गये हैं। कुछ लोगों का विचार यह है कि 'मैं' और "शरीर" में भेद नहीं है। जितनी क्रियाएं मैं करता हूं उन सब का शरीर से सम्बन्ध रहता है। यदि शरीर न रहे तो मेरा कोई अस्तित्व नहीं। और 'शरीर' का ही हमें प्रत्यक्ष है। अतः शरीर का ही नाम "मैं" है और इससे पृथक् मेरी कोई सत्ता नहीं। यह चार्वाक का सिद्धान्त था। दूसरे प्रकार के विचारकों का मत है कि "मैं" का अनुभव तो होता है पर शरीर में नहीं। शरीर की कोई सत्ता नहीं। शरीर तो आभास मात्र है। वास्तविक सत्ता 'मैं' या "आत्मा" है। ये दोनों सिद्धान्त दोषयुक्त हैं। सत्य यह है कि "मैं" और "शरीर" दोनों सत्तात्मक हैं और इनमें पारस्परिक सम्बन्ध है।

तो फिर "मैं" क्या हूं ? इस प्रश्न का सर्वसम्मत उत्तर दार्शनिक क्षेत्र में अभी तक प्राप्त नहीं हो सका। इस सम्बन्ध में जितने भी विभिन्न प्रमुख मत प्राप्त हुए हैं या हो सकते हैं उन सबका वर्णन श्री शंकराचार्य जी ने ब्रह्मसूत्र के प्रथम सूत्र के भाष्य में किया है। वे मत ये हैं—

(१) चेतनायुक्त देह का नाम ही आत्मा है। यह चार्वाक सिद्धान्त है।

(२) चेतन इन्द्रियों को ही आत्मा कहते हैं। इन्द्रियों से भिन्न आत्मा का अस्तित्व नहीं है।

(३) मन ही आत्मा है।

(४) क्षणिक विज्ञान ही आत्मा है।

(५) आत्मा शून्य को कहते हैं।

(६) आत्मा शरीर से भिन्न है और संसारी कर्ता तथा भोक्ता है।

(७) आत्मा केवल भोक्ता है, कर्ता नहीं।

(८) आत्मा है और उससे स्वतन्त्र एक और शक्ति है जिसे ईश्वर कहते हैं। वह ईश्वर सर्वांश और सर्वशक्तिमान् है।

(९) भोक्ता का भी आत्मा है।

इनमें सर्वप्रथम मत चार्वाक का है। इस मत में शरीर से स्वतन्त्र, चैतन्य कर्ता, भोक्ता आत्मा की कोई सत्ता नहीं है। शरीर ही सत्य है और चेतन शरीर को ही आत्मा की संज्ञा दी जाती है। "न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः" परलोक में जाने वाला कोई आत्मा नहीं है। ऊपर वर्णित मतों में से महर्षि दयानन्द छठे और आठवें मत में विश्वास रखते हैं। चार्वाक की भांति आत्मा की असत्ता में उनका विश्वास नहीं है। चार्वाक के इस मत के विरुद्ध कि "नैवात्मा पारलौकिकः" महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश के बारहवें समुल्लास में लिखते हैं, "जो जीवात्मा न होता तो सुख दुख का भोक्ता कौन हो सके ? जैसे इस समय सुख दु;ख का भोक्ता जीव है वैसे पर जन्म में भी होता है।" महर्षि के मत में "मैं" जीवात्मा को कहते है और वह शरीर से भिन्न सत्तात्मक पदार्थ है। जीवात्मा और शरीर दोनों सत्य हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जीवात्मा का स्वरूप

जीवात्मा का स्वरूप क्या है ? जीवात्मा से क्या अभिप्राय है ? इस प्रश्न का उत्तर महर्षि दयानन्द जी 'स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश' में इस प्रकार देते हैं:—

"जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है उसी को "जीव" मानता हूँ ।" महर्षि के जीव सम्बन्धी इस मन्तव्य को हम तीन भागों में विभक्त करते हैं। (१) जीव एक (द्रव्य) है जिसके इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुण हैं। (२) वह अल्पज्ञ है। (३) वह नित्य है। अब हम क्रमशः प्रत्येक विभाग के सम्बन्ध में कुछ विचार करना चाहते हैं।

महर्षि का जो मन्तव्य हमने ऊपर उद्धृत किया है उसमें जीवात्मा को स्पष्ट शब्दों में यद्यपि द्रव्य नहीं कहा है, किन्तु फिर भी हमने यह लिखा है कि महर्षि के विचार में जीवात्मा एक द्रव्य है। इसका कारण स्पष्ट है। "जो इच्छा द्वेष"… ज्ञानादि गुण युक्त" के और क्या अर्थ हो सकते हैं ? "जीवात्मा के कतिपय गुणों का यहाँ वर्णन किया गया है। और गुण बिना द्रव्य के स्थित नहीं हो सकते। वैशेषिक दर्शन मे गुण का लक्षण इस प्रकार वर्णन किया है—"द्रव्याश्रय्यगुणवान्…" अर्थात् गुण वह है जो किसी द्रव्य के आश्रित हो। क्या एक गुण दूसरे गुण में रह सकता है ? नहीं। गुण सदा द्रव्य का ही आश्रित होता और गुण में अन्य गुण नहीं रह सकते। स्पष्ट है कि जीवात्मा में कई गुण हैं, अतः उसे द्रव्य होना चाहिए। यदि जीवात्मा को द्रव्य न माना जाय तो उसमें गुणों की कल्पना करना तर्क सङ्गत नहीं। प्रसिद्ध पश्चिमी दार्शनिक डेकार्ट का भी यही मत था कि जीवात्मा एक द्रव्य है और चेतना इसका स्वरूप लक्षण या आवश्यक गुण है। कई दार्शनिक ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने जीवात्मा के इस स्वरूप को स्वीकार नहीं किया है। उनके मत में जीवात्मा द्रव्य नहीं है। बौद्ध मतानुसार आत्मा विचारों का प्रवाह है। यही मत ह्यूम का था। उसके विचार में आत्मा विचारों तथा प्रत्यक्षों का योगमात्र है। उसके मत को हम उसके ही शब्दों में पाठकों के सामने प्रस्तुत करते है। वह कहता है—

"There are some philosophers who imagine we are every moment intimately conscious of what we call ourself, that we feel its existence and its continuance in existence and are certain, beyond the evidence of demonstration, both of its perfect identity and simplicity. Unluckily all these possible assertions are contrary to the very experience which is pleaded for them.........For my part, when I enter most intimately in-to I call MYSELF, I always stumble on some particular percept i o n or other, of heat or cold, light or shade, love or hatred, pain or pleasure, I never can catch myself at any time without a perception, and never can observe anything but the perception. When my perceptions are removed for any time, as by sound sleep, so long are insensible of my-self and may truly be said not to exist.'

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थात् कुछ दार्शनिक ऐसे हैं जो समझते हैं कि हमें प्रति क्षण अपने आत्मा की चेतना रहती है। हम इसकी रुचि और इसकी निरन्तरता का अनुभव करते हैं। इसकी पूर्ण तादात्म्यता तथा सरलता का हमें तनिक भी सन्देह नहीं। दुर्भाग्य से ये सभी भावात्मक कथन अनुभव के विपरीत हैं। ....जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं जब कभी 'अपने' विषय में गहन विचार करता हूँ. तो में सदैव गर्मी या सर्दी, प्रकाश या छाया, प्रेम या घृणा, दुःख या सुख आदि के किसी विशेष विचार पर अटक जाता हूँ, और बिना प्रत्यक्ष या विचार के मैं कभी किसी समय अपने 'स्व' को नहीं पकड़ सकता और सिवाय विचार के और कुछ देख भी नहीं सकता। जब किसी समय (जैसे गाढ़ निद्रा में) मेरे सभी विचार समाप्त हो जायें, तो कम से कम इतने समय तक तो मुझे अपनी प्रतीति नहीं होती और एक प्रकार से मेरा अस्तित्व ही नहीं रहता।

ह्यूम ने अपने इस कथन से आत्मा के अस्तित्व का निषेध करने का प्रयत्न किया है। उसके कथन के पीछे बर्कले द्वारा प्रतिपादित प्रसिद्ध सिद्धान्त (Essest percepi (किसी वस्तु की सत्ता उसके प्रत्यक्ष पर निर्भर करती है) काम कर रहा है। द्रव्य रूप में आत्मा का अस्तित्व नहीं है, क्योंकि इस रूप में हमें उसका प्रत्यक्ष नहीं होता, यह उसके तर्क का सार है। इसी तर्क के आधार पर वह इस परिणाम पर पहुँचता है कि आत्मा द्रव्य नहीं है वरन् विवादों का एक योग मात्र है। इसी प्रकार एक अन्य दार्शनिक के मत में आत्मा 'चेतन का एक प्रवाह' है। क्या ये विचार तर्क की कसौटी पर खरे उतर सकते हैं? आत्मा को स्थायी द्रव्य न मानकर चेतना, प्रवाह या विचारों की श्रृंखला समझना एक भूल है। इस विचारधारा का तात्पर्य तो यह निकला कि आत्मा, चेतना, ज्ञान वा विचारों का एक प्रवाह है, जो नदी के प्रवाह की भाँति निरन्तर बह रहा है। जैसे प्रत्येक क्षण पानी के नये बिन्दु आते हैं और बह जाते हैं, उसी प्रकार मानसिक विचार उत्पन्न होते रहते हैं, और समाप्त होते रहते हैं। नदी के प्रवाह में जो जल बिन्दु बह गया, सो बह गया। वह अब पुनः लौटकर नहीं आ सकता। इसी प्रकार यदि आत्मा जल प्रवाह के समान समझी जाय तो एक बार उत्पन्न हुए विचार की स्मृति सम्भव नहीं होनी चाहिए। दूसरी बात यह है कि नदी का प्रवाह भी तो किसी द्रव्य पर आश्रित है। प्रतिक्षण परिवर्तित होने वाले जल प्रवाह की तह में एक स्थायी द्रव्य है जिसके ऊपर यह जल प्रवाह जारी रहता है। प्रवाह तो बदलता रहता है परन्तु नदी वहीं रहती है। ठीक उसी प्रकार मानसिक प्रक्रियाओं का एक प्रवाह है और वह क्षणिक व परिवर्तनशील है परन्तु उसकी तह में विचार करने वाला एक स्थायी द्रव्य रहता है और उसी को 'जीवात्मा' कहते हैं।

जीवात्मा द्रव्य है, यह तो सिद्ध हुआ। द्रव्य भौतिक और अभौतिक तथा नित्य और अनित्य दोनों प्रकार का हो सकता है। आत्मा को किस श्रेणी में रक्खा जा सकता है? यह तो निश्चित है कि यदि इसे भौतिक मानी जाय तो इसे अनित्य भी मानना पड़ेगा। भौतिकवादियों का यही सिद्धान्त है कि आत्मा जड़ व अनित्य है। भारतीय दर्शन में चार्वाक इसी मत का पोषक था। संसार के जितने भी मत केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हैं, वे सभी आत्मा को भौतिक व अनित्य मानते हैं। चूंकि उनके मत में प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है। इसलिए वे लोग केवल उन्हीं वस्तुओं के अस्तित्व को स्वीकार कर सकते हैं जिनका प्रत्यक्ष हो सकता है और हमें

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

केवल जड़ द्रव्यों का ही प्रत्यक्ष होता है, अतः हम केवल उन्हीं को मान सकते हैं। चार्वाक से यहाँ एक प्रश्न किया जा सकता है। वह यह, कि प्रत्यक्ष दो प्रकार का हो सकता है। वाह्य तथा आन्तरिक। आन्तरिक प्रत्यक्ष द्वारा हम आन्तरिक भावों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस प्रकार आन्तरिक भावों के ज्ञान से चैतन्य का भी प्रत्यक्ष होता है। चैतन्य बाह्य जड़ द्रव्यों में पाया नहीं जाता। अतः क्या हम नहीं कह सकते कि हमारे अन्तर्गत एक अभौतिक सत्ता है जिसे हम "आत्मा" कहते हैं और जिसका गुण चैतन्य है। इसके उत्तर में चार्वाक यह तो स्वीकार करते हैं कि चैतन्य का ज्ञान प्रत्यक्ष के द्वारा होता है, किन्तु वे यह नहीं मानते कि चैतन्य किसी अभौतिक द्रव्य अर्थात् आत्मा का गुण है। चैतन्य कहां दिखाई देता है ? शरीर में। इसलिए चैतन्य को शरीर का ही गुण मानना चाहिए। चेतन शरीर को ही आत्मा कहना चाहिए। "चैतन्य विशिष्ट देह एवं आत्मा"। यहाँ यह आक्षेप किया जा सकता है कि चैतन्य का अस्तित्व किसी भी जड़ तत्त्व में नहीं पाया जाता। अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी आदि किसी में भी चैतन्य नहीं है। और जब तत्त्वों में ही इसका अभाव है तो उनके योग से बने हुए शरीर में इसका प्रादुर्भाव कैसे हो सकता है ? चार्वाक इसके उत्तर में कहते हैं कि, यद्यपि पृथिवी आदि जड़ पदार्थों में अलग अलग चैतन्य नहीं पाया जाता तथापि जैसे कई वस्तुओं को विशेष ढङ्ग से मिला कर शराब बन जाती है और उसमें नशे की शक्ति आ जाती है उसी प्रकार ये जड़ पदार्थ विशेष ढङ्ग से मिल कर जब शरीर बन जाते हैं तो उसमें चैतन्य आ जाता है। अतएव शरीर से भिन्न आत्मा के अस्तित्व का कोई प्रमाण नहीं है। यह तो सत्य है (जैसा कि ऊपर लिखा गया है) कि यदि चेतन शरीर का ही नाम आता है तो उस अवस्था में आत्मा नित्य कदापि नहीं हो सकता, शरीर का अन्त तो प्रत्यक्ष अनुभव है। अतः शरीर के अन्त का अर्थ हुआ 'आत्मा' का अन्त। दूसरे शब्दों में आत्मा अनित्य हुआ। परन्तु महर्षि दयानन्द कहते हैं कि 'आत्मा' नित्य है।

यदि ज्ञान देह का धर्म है तो यह बताओ कि देह होते हुए भी ज्ञान का अभाव देखा जाता फिर तुम यह क्यों नहीं मानते कि ज्ञान शरीर का धर्म नहीं है।

२—मरने पर शरीर तो रहता है परन्तु उसमें प्राण आदि की चेष्टा नहीं रहती।

३—रूप आदि देह के धर्म हैं। यह मरने के उपरान्त भी रहते हैं। परन्तु स्मृति आदि देह के धर्म नहीं, इसलिए मरने पर शरीर में यह नहीं पाये जाते।

इन युक्तियों का सार यह है कि आत्मा और शरीर भिन्न सत्ताएं है और चेतना शरीर का गुण नहीं है। शराब के उदाहरण से चेतना को जड़ द्रव्यों का परिणाम मानना भी दोषयुक्त है। शराब में नशा पैदा करने का गुण इसलिये है कि उसका सेवन चेतन शक्ति करती है। बिना चेतन के शराब से नशा नहीं पैदा हो सकता। यदि हो सकता तो मुर्दे को शराब पिलाने से उसमें भी नशा पैदा हो जाना चाहिए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आत्मा जड़ देह नहीं है, यह सिद्ध हुआ। और वह है अवश्य, उनकी सत्ता है। इस लिये उसे अभौतिक ही होना चाहिए। वह अभौतिक हैं, इसलिए वह नित्य भी है।

अब तक हम इस परिणाम पर पहुँचे कि महर्षि दयानन्द के मन्तव्य में आत्मा एक द्रव्य है और वह नित्य है। इसके आगे वे कहते हैं कि वह अल्पज्ञ भी है। सर्वज्ञ केवल एक ही हो सकता है और वह ईश्वर है। ईश्वर और जीव भिन्न सत्तायें हैं। इसलिए जीव अल्पज्ञ ही हो सकता है। जीव एकदेशी है इस कारण भी वह अल्पज्ञ है। इस अल्पज्ञ, नित्य जीव में कौन कौन से गुण रहते हैं? दूसरे शब्दों में जीव के कौन कौन से लिंग और चिह्न हैं जिन्हें देख कर हम जीव के अस्तित्व की कल्पना कर सकें।

'स्वामन्तव्यामन्तव्य प्रकाश' में महर्षि ने जीव के 'इच्छा, द्वेष, सुख दुख और ज्ञान' गुण लिखकर आदि शब्द और जोड़ दिया गया है। 'सत्यार्थप्रकाश' के सप्तम समुल्लास में जीव के गुण वर्णन करने के लिये महर्षि ने न्याय और वैशेषिक को उद्-धृत किया है। न्याय के अनुसार आत्मा के छः लिंग हैं, इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख और ज्ञान। 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' में वर्णित आत्मा के लिंग पांच हैं और न्याय दर्शन में छः गिनाये गए हैं। प्रयत्न को महर्षि ने छोड़ दिया है। बाह्य दृष्टि से दोनों स्थलों में भेद दिखाई पड़ता है। परन्तु वस्तुस्थिति एसी नहीं है। अपने विचार को अधिक स्पष्ट करने के लिये हम 'न्याय दर्शन' में वर्णित गुणों को निम्न प्रकार से तीन भागों में विभाजित करते हैं:—

(१) ज्ञान (२) सुख (३) दुःख भोग

(५) इच्छा (६) द्वेष कर्म

कल्पना कीजिए, मैं एक सुन्दर पुष्प को देखता हूं। पुष्प को देखने का अर्थ है उसका ज्ञान होना। यह ज्ञान किस प्रकार और किसे होता है? पुष्प ज्ञान के लिये पुष्प का नेत्रों से सन्निकर्ष होना अनिवार्य है। तो क्या नेत्र पुष्प ज्ञान के ज्ञाता हैं? हमारा अनुभव है कि नेत्रों का पदार्थों से सम्बन्ध रहने पर भी तब तक उनका ज्ञान प्राप्त होता है, जब तक नेत्रों का मन से सम्बन्ध न स्थापित हो जाय? तो क्या मन देखने वाला है? मन स्वयं जड़ है, उसमें चेतना आत्मा के सन्निकर्ष से आती है। अतः पुष्प ज्ञान का वास्तविक ज्ञाता आत्मा है और मन तथा इन्द्रिय तो उसके कारण हैं। पुष्प का ज्ञान होते ही उसका सौंदर्य मेरे भीतर सुख की भावना उत्पन्न कर देता है अपने शत्रु के सामने उपस्थित होने पर दुःख की भावना उत्पन्न होती है जो कि क्रोध से संवेग में परिवर्तित हो जाती है। संसार के सभी पदार्थ हमें दो प्रकार से प्रभावित करते हैं—अनुकूलतया वा प्रतिकूलतया और दोनों प्रकारों से क्रमशः सुख दुःख की अनुभूति होती है। जिस पदार्थ से सुख प्राप्त होता है उसे प्राप्त करने का हम प्रयत्न करते हैं और जिसमें दुःख प्राप्त होता है उससे पृथक् होने का अथवा विकृति प्राप्त करने का प्रयत्न किया करते हैं। इन दोनों प्रकार के प्रयत्नों को क्रमशः इच्छा और द्वेष कहा जाता है। सुन्दर पुष्प को देखकर सुख होता है और हम उसे प्राप्त करने की इच्छा करते है। बीभत्स दृश्यों को देखकर दुःख उत्पन्न होता और हम उससे द्वेष करते हैं इस प्रकार स्पष्ट है कि इच्छा और द्वेष 'प्रयत्न' के दो प्रकार होते हैं। प्रयत्न जाति है। और इच्छा व द्वेष इसकी उपजातियां हैं। इस अवस्था में आत्मा के लिंगों में यदि महर्षि ने प्रयत्न को नहीं गिना तो इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। महर्षि दया-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नन्द और 'न्याय' का मत आत्मा के लिंग सम्बन्ध में एक ही है। इन छः लिंगों को हम केवल तीन नामों (ज्ञान, भोग व कर्म) के नाम से भी पुकार सकते हैं। दूसरे शब्दों में 'आत्मा' ज्ञाता, कर्त्ता और भोक्ता है।

सर्वप्रथम 'आत्मा' मन व इन्द्रियों द्वारा किसी पदार्थ का ज्ञान प्राप्त करता है, फिर उसे सुख दुःख की अनुभूति होती है और तब वह उसके लिए इच्छा व द्वेष करता है। इच्छित पदार्थ की प्राप्ति पर सुख, और अप्राप्ति पर दुख होता है। इच्छा और द्वेष के द्वारा जैसे कर्म आत्मा करता है उनका सुख व दुःख रूप में उसे फल प्राप्त होता है इस सुख दुःख का नाम ही भोग है। आत्मा के ये तीनों गुण (ज्ञान, कर्म व भोग) अभिन्न हैं। इससे हमारा अभिप्राय यह है कि आत्मा केवल ज्ञाता, केवल कर्त्ता, केवल भोक्ता नहीं है। वह तीनों हैं। यही महर्षि का मन्तव्य है। 'सत्यार्थप्रकाश' के नवम समुल्लास में ऋषिवर लिखते है—

"(प्रश्न) ये सब धर्म देह और अन्तःकरण के हैं, जीव के नहीं। क्योंकि जीव तो पाप पुण्य से रहित साक्षीमात्र है। शीतोष्णादि शरीरादि के धर्म हैं, आत्मा निर्लेप है। (उत्तर) देह और अन्तःकरण जड़ हैं, उनको शीतोष्ण प्राप्ति और भोग नहीं है। जो चेतन मनुष्यादि प्राणी उसको स्पर्श करता है उसी को शीत उष्ण का भान और भोग होता है। वैसे 'प्राण' भी जड़ है न उसको भूख न प्यास, किन्तु प्राण वाले जीव को क्षुधा, तृषा लगती है। वैसे ही मन भी जड़ है। न उसको हर्ष न शोक हो सकता है, किन्तु मन के हर्ष शोक सुख दुःख का भोग जीव करता है। जैसे बहिष्करण श्रोत्रादि इन्द्रियों से अच्छे बुरे शब्दादि विषयों का ग्रहण करके जीव सुखी दुःखी होता है, वैसे ही अन्तःकरण अर्थात् मन बुद्धि चित्त, अहंकार से संकल्प, विकल्प, निश्चय स्मरण और अभिमान का करने वाला दण्ड और मान का भागी होता है। अपने मन्तव्य को और अधिक स्पष्ट शब्दों में ऋषिवर इस प्रकार व्यक्त करते हैं—जैसे तलवार से मारने वाला दण्डनीय होता है, तलवार नहीं होती, वैसे ही देहेन्द्रिय अन्तःकरण और प्राण रूप साधनों से अच्छे बुरे कर्मों का कर्त्ता, जीव सुख दुःख का भोक्ता है। जीव कर्मों का साक्षी नहीं, किन्तु कर्त्ता भोक्ता है। महर्षि दयानन्द के इस मन्तव्य की पुष्टि मनोविज्ञान भी करता है। प्रसिद्ध मनोविज्ञान वेत्ता स्टाऊफ अपनी पुस्तक A manual of psychology' में पृष्ठ १५८ पर लिखता है, 'Cognition, fieeling and Cornation are abstractly and analytically distinct phases in any psychosis; but they are not separabl. They do not occur in isolation from each other."

अर्थात् प्रत्येक मानसिक अवस्था के विश्लेषण में ज्ञान भाव (भोग) व प्रयत्न स्पष्ट वृत्तियां हैं। परन्तु वे भिन्न नहीं हैं वे एक दूसरे से पृथक् घटित नहीं होतीं। इसका भाव यह है कि प्रत्येक मानसिक अवस्था में ज्ञानात्मक, भावात्मक और प्रयत्नात्मक तीनों वृत्तियां उपस्थित रहती हैं। यह बात दूसरी है कि किसी समय ज्ञानात्मक वृत्ति की प्रमुखता है तो किसी समय अन्य दोनों में से किसी एक की। परन्तु ऐसी कोई अवस्था नहीं होती जब कि किसी न किसी अंश में तीनों उपस्थित रहें। यहां एक बात ध्यान देने योग्य हैं। स्टाउट ने ये वृत्तियां मन की बतलाई हैं। परन्तु हम इन्हें आत्मा पर घटित कर रहे हैं। इसका कारण यह है कि वर्तमान पाश्चात्य मनोविज्ञान आत्मा का अध्ययन नहीं करता। उसका अध्ययन विषय मन है, और मन को वह चेतन मानकर आगे बढ़ता है। मन को ही वह ज्ञाता, कर्त्ता और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भोक्ता मानता है। परन्तु ऊपर दिये उद्धरण में ऋषि दयानन्द ने स्पष्ट कर दिया है कि मन जड़ है और ज्ञान, हर्ष शोक उसको नहीं होते, किन्तु उसे साधन बनाकर आत्मा ही ज्ञान हर्ष शोक आदि करता है। इसलिए वर्तमान मनोविज्ञान जिन गुणों को मन में स्थित हुआ मानता है वे वास्तव में आत्मा के ही हैं।

आत्मा के इन गुणों में महर्षि दयानन्द ने 'वैशेषिक' के आधार पर कुछ शारीरिक क्रियाओं को जोड़ दिया है। 'सत्यार्थप्रकाश' के सप्तम समुल्लास में वे लिखते '(प्राण) प्राणवायु को बाहर निकालना (अपान) प्राण को बाहर से भीतर को लेना (निमेष) आँख को मीचना (उन्मेष) आंख को खोलना (मन) निश्चय स्मरण और अहंकार करना (गति) चलना (इन्द्रिय) सब इन्द्रियों को चलाना (अन्तर विकार) भिन्न क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोकादि युक्त होना ये जीवात्मा के गुण परमात्मा से भिन्न हैं। उन्हीं से आत्मा की प्रतीति करनी, क्योंकि वह स्थूल नहीं है।' जीवात्मा के जो गुण अब तक वर्णित हुए हैं, उनके अतिरिक्त इसके सम्बन्ध में एक और बात स्पष्ट है वह यह कि जीवात्मा का ज्ञातृत्व कर्तृत्व और भोक्तृत्व तीनों परिच्छिन्न है, विभु नहीं। जीवात्मा के ये तीनों गुण परिमित हैं, अपरिमित नहीं। जीवात्मा अणु है। इस सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि:—

(प्रश्न) जीव शरीर में भिन्न विभु है वा परिछिन्न ?

(उत्तर) परिच्छिन्न, जो विभु होता जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, मरण, जन्म, संयोग, वियोग, जाना, आना कभी नहीं हो सकता। इसलिए जीव का स्वरूप, अल्पज्ञ अल्प अर्थात् सूक्ष्म है।" वेद में भी कहा गया है कि "एक (आत्मा) बाल से भी सूक्ष्म है, अणु है। दूसरा (परमात्मा) मापा नहीं जा सकता अर्थात् विभु है। एक अन्य स्थल पर कहा है कि बाल के आगे के दस हजारवें भाग के तुल्य जीवात्मा है।" जीवात्मा को अणु मानने पर यह आक्षेप किया जाता है कि जीव को अणु मानने से इसे शरीर के एक देश में मानना पड़ेगा। उस दशा में यह समस्त शरीर का ज्ञान नहीं रख सकेगा। इस आक्षेप के उत्तर में इतना कहना पर्याप्त होगा कि जिस प्रकार शरीर के एक भाग में चन्दन की एक बूंद लग जाने से समस्त शरीर में हर्ष उत्पन्न हो जाता है, अथवा जिस प्रकार घर में रक्खा हुआ दीपक समस्त घर में प्रकाश कर देता है। जीवात्मा को अणु न मानने पर दो ही विकल्प हमारे सामने रहते हैं। इसे विभु माना जाय या परिमाणी। विभु होने की अवस्था में कौन सा शरीर किस आत्मा का है, इसका निश्चय नहीं हो सकता। क्योंकि सब विभु सब शरीरों में वर्तमान रहेंगे। ऐसी अवस्था में सब आत्माओं का सब शरीरों से सम्बन्ध क्यों नहीं होता ? आत्मा को मध्यम परिमाणी मानने पर प्रत्येक शरीर के साथ इनका परिमाण बन जायगा। जिस पदार्थ का परिमाण परिवर्तनशील हो वह विनाशी होता है। अतएव जीव को भी विनाशी मानना होगा। परन्तु जीव को अणु मानने पर इन दोषों में से किसी की भी सम्भावना नहीं इसलिये जीव का परिमाण अणु है यही सिद्धान्त सत्य है। इस प्रकार अब हम इस परिमाण पर पहुंचे कि "महर्षि दयानन्द के अनुसार जीवात्मा वह अणु है जिसमें ज्ञातृत्व कर्तृत्व और भोक्तृत्व अर्थात् जानने, क्रिया करने और भोगने की शक्ति हो। जीवात्मा का यही वास्तविक स्वरूप है। ●

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पुनर्जन्म

पुनर्जन्म के सिद्धान्त को सभी युगों में लोगों ने किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है। नास्तिक तथा मुसलमान, ईसाई और यहूदी सम्प्रदाय अवश्य ही इस सत्य के अपवाद हैं। नास्तिक सम्प्रदाय के लिए तो पुनर्जन्म का प्रश्न उत्पन्न ही नहीं होता, क्योंकि इसके अनुसार जीवात्मा नश्वर है; शरीर के नष्ट होने पर जीवात्मा भी नष्ट हो जाता है, "**भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।**" जीवात्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुए हम इस सिद्धान्त का खोखलापन दर्शा चुके हैं। यहाँ हम एक भिन्न दृष्टिकोण से इस पर विचार करते हैं। यह सिद्धान्त मानता है कि मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा का जन्म नहीं होता अर्थात् वर्त्तमान जीवन ही सब कुछ है। इस सिद्धान्त को सत्य मानने से हममें निराशा तथा दुःख की भावनाएं उत्पन्न हो जाती हैं। आप स्वयं एक बात पर विचार कीजिए। मनुष्य अपने जीवनकाल में जन्म से मृत्यु पर्य्यन्त सांसारिक कार्यों में कितना अधिक व्यस्त रहता है। अनेकों को तो भोजन करने तक की फुरसत नहीं मिलती। भोजन, मकान, पशु, बच्चे, स्त्री सभी के लिए कुछ न कुछ हम हर समय करते रहते हैं। अपना लहू पसीना एक कर लाखों करोड़ों रुपये कमाते हैं; सुन्दर सुन्दर विशाल भवन बनवाते हैं। कुछ मनुष्य ऐसे भी हैं जो स्वयं कष्टमय जीवन व्यतीत कर अपनी सारी सम्पत्ति दान, परोपकार आदि में लगा देते हैं और इसी में वे सुख अनुभव करते है। यह सब किस लिए ? क्या इसीलिए कि यह सब परिश्रम हमारी मृत्यु के साथ निरर्थक हो जायगा ? यदि हम स्वयं न रहेंगे तो ये सब प्रयत्न किस के लिए ? परन्तु नहीं। एक विश्वास हमारे में ऐसा व्याप्त है जो सदैव प्रयत्नशील रहने के लिए हमें प्रेरित किया करता है। घोर से घोर नास्तिक विद्यार्थी भी यह विश्वास रखता है कि परीक्षा से पूर्व किया हुआ अध्ययन-परिश्रम व्यर्थ नहीं जाता; उसका फल अवश्य मिलता है। इसी भाँति यह भी सत्य है कि इस जन्म में जो शुभाशुभ कर्म हम यहाँ करते है उनका फल भोगने के लिए मृत्यु उपरान्त अवश्य ही हमें दूसरा शरीर धारण करना पड़ता है।

नास्तिक लोग तो जीवात्मा को अमर नहीं मानते हैं। अतः यदि वे पुनर्जन्म में विश्वास न रक्खें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। परन्तु एक ऐसा भी सम्प्रदाय है जो जीवात्मा की अमरता को सत्य मानता हुआ भी एक ही शारीरिक जीवन में विश्वास रखता है। ऐसा प्रतीत होता है कि तर्क शास्त्र से इस सम्प्रदाय की घोर शत्रुता है। पाठक तनिक विचार तो करें कि जीवात्मा की अमरता और केवल एक ही शारीरिक जीवन धारणा करने में क्या तुक है। हम अन्य प्राणियों को छोड़ते हुए केवल मनुष्यों को ही लेते हैं। यह सर्वथा सत्य है कि हम में से अनेक तो केवल चन्द घण्टों के मेहमान बनकर इस संसार में आते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो जन्म के पश्चात् कुछ मिनटों में ही अपनी जीवनलीला समाप्त कर देते हैं। थोड़े से ही सौभाग्यशाली पुरुष हैं जो सौ वर्ष की आयु तक जीवित रहते हैं अन्यथा अधिकतर व्यक्ति पचास साठ वर्ष तक अपने सांस तोड़ देते हैं। ऐसी स्थिति में विचारणीय बात यह है कि यदि यही जीवन एक मात्र शारीरिक जीवन है तो प्रश्न होता है कि अनन्त स्वर्ग, अनन्त नरक का आधार एक चार पांच वर्षीय बालक के भोलेपन से प्रेरित हुए आचार को कैसे माना जाय ? इस आयु के बच्चे को कर्त्तव्याकर्त्तव्य का कोई ज्ञान नहीं होता और नैतिक दृष्टि से उसके से कर्मों को सद् असद् नहीं कहा जा सकता। फिर उसे अनन्त

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वर्ग अथवा अनन्त नरक की प्राप्ति किस आधार पर होती है ? इस प्रकार के विचार रखने वाले लोगों को लक्ष्य में रखकर ऋषि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्दश समुल्लास में लिखते हैं—"जब मुसलमान लोग पूर्वजन्म और पूर्वकृत पाप पुण्य नहीं मानते तो किन्हीं पर निआमत अर्थात् फजल वा दया करने और किन्हीं पर न करने से खुदा पक्षपाती हो जायगा, क्योंकि बिना पाप पुण्य सुख दुःख देना केवल अन्याय की बात है।" "कोई भी जीव अनन्त पाप करने का सामर्थ्य नहीं रखता इसलिए सदैव स्वर्ग नरक में नहीं रह सकते और जो खुदा ऐसा करे तो वह अन्यायकारी और अविद्वान् हो जावे।"

जीवात्मा के शारीरिक सम्बन्ध का क्या स्वरूप है ? यह सम्बन्ध आकस्मिक है या स्वाभाविक ? उपरोक्त मत इस प्रकार का सन्तोषजनक समाधान करने में असमर्थ रहे हैं। ऋषि दयानन्द ने इस समस्या का समाधान इस प्रकार किया है कि एक शरीर के पश्चात् दूसरा शरीर जीव को अपने पूर्व कर्मों के फलानुसार मिलता रहता है। जीवात्मा का शारीरिक सम्बन्ध आकस्मिक नहीं है। इसी सिद्धान्त को पुनर्जन्म कहा जाता है। अनादि काल से जीवात्मा के शारीरिक जीवन का प्रवाह चला आया है और अनन्त काल तक चलता रहेगा। हमारे वर्तमान शरीर का तो आदि और अन्त है, परन्तु इस जन्म मरण प्रवाह का आदि और अन्त नहीं।

पुनर्जन्म विषय का ऋषि दयानन्द ने 'सत्यार्थप्रकाश' नवम सलुल्लास और "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" में विवेचन किया है। 'सत्यार्थप्रकाश' में वे लिखते हैं—"(प्रश्न) जन्म एक है व अनेक ? (उत्तर) अनेक।" अपने इस मत के समर्थन में ऋषि ने "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" में कई वेद मन्त्र प्रस्तुत किये हैं। वहीं पर निरुक्त के निम्न मन्त्र उद्धृत किये हैं—

जब मुक्ति से वापस ही लौटना पड़ता है, तो मुक्ति के लिए श्रम करना व्यर्थ क्यों नहीं ?

"मुक्ति जन्म मरण के सदृश नहीं, क्योंकि जब तक ३६००० (छत्तीस सहस्र) बार उत्पत्ति और प्रलय का जितना समय होता है, उतने समय पर्यन्त जीवों को मुक्ति के आनन्द में रहना, दुःख का न होना, क्या छोटी बात है ? जब आज खाते पीते हो, कल (फिर) भूख लगने वाली है, पुनः इसका उपाय क्यों करते हैं ? जब क्षुधा, तृषा, क्षुद्र धन, राज्य, प्रतिष्ठा, स्त्री सन्तान आदि के लिए उपाय करना आवश्यक है तो मुक्ति के लिए क्यों न करना ? जैसे मरना अवश्य है तो भी जीवन का उपाय किया जाता है, वैसे ही मुक्ति से लौट कर जन्म में आना है, तथापि उसका उपाय करना अत्यावश्यक है।"

—महर्षि दयानन्द

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः। नानायोनिसहस्राणि मयोषितानि यानि वै ॥१॥ आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः। मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा ॥२॥ अवाङ्मुखः पीड्यमानो जन्तुश्चैव समन्वितः ॥३॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थ—मैंने अनेक बार जन्ममरण को प्राप्त होकर नाना प्रकार के सहस्रों गर्भाशय का सेवन किया है ।।१।। अनेक प्रकार का भोजन किए, अनेक माताओं के स्तनों का दुग्ध पिया, अनेक माता-पिता और सुहृदों को देखा ।।२।। मैंने गर्भ में नीचे मुख ऊपर पग इत्यादि नाना प्रकार की पीड़ाओं से युक्त हो के अनेक जन्म धारण किये ।।३।। इस प्रसंग में प्रयुक्त "जन्म" और "मृत्यु" शब्दों की व्याख्या ऋषि ने इस प्रकार की है—"जीव जब शरीर से निकलता है उसी का नाम "मृत्यु" और शरीर के साथ संयोग होने का नाम "जन्म" है । "शरीर के (जीवात्मा से) संयोग का नाम "जन्म और वियोग मात्र को "मृत्यु" कहते हैं । जन्म-मरण का चक्र कब तक चलता रहता है ? इसके उत्तर में वे लिखते हैं—"इसी प्रकार नाना प्रकार के जन्म-मरण में तब तक जीव पड़ा रहता है कि जब तक उत्तम कर्मोपासना ज्ञान को करके मुक्ति को नहीं पाता, क्योंकि उत्तम कर्मादि करने से मनुष्य में उत्तम जन्म और मुक्ति में महा-कल्प पर्यन्त जन्म मरण दुखों से रहित होकर आनन्द में रहता है ।"

इसी प्रसंग में बहुधा एक प्रश्न और किया जाता है । प्रश्न यह है कि जीव शरीर से निकलने के बाद कहाँ रहता है और पुनः दूसरे शरीर में कैसे आता है ?

जीव का शरीर में प्रवेश

जीव शरीर से निकलने के बाद कहां रहता है, और पुनः दूसरे शरीर में कैसे आता है, इस प्रश्न को हम दो भागों में विभाजित करते हैं । प्रथम भाग का सत्यार्थ-प्रकाश में यह उत्तर दिया गया है:—"जब (जीव) शरीर छोड़ता तब यमालय अर्थात् आकाशस्थ वायु में रहता क्योंकि 'यमेन वायुना' वेद में लिखा है कि यम नाम वायु का है । गरुड़ पुराण का कल्पित यम नहीं ।" यही विषय 'संस्कार विधि' के अन्त्येष्टि-कर्म विधि प्रकरण में आता है, जहाँ निम्न प्रश्नोत्तर हैं—"(प्रश्न) मरण के पीछे जीव कहां जाता है ? (उत्तर) यमालय को । (प्रश्न) यमालय किसको कहते हैं ? (उत्तर) वाय्वालय को । (प्रश्न) वाय्वालय किसको कहते हैं । (उत्तर) अन्तरिक्ष को जो कि यह पोल है । (प्रश्न) क्या गरुड़ पुराण आदि में जो यमलोक लिखा है वह झूठा है ? (उत्तर) अवश्य मिथ्या है । (प्रश्न) पुनः संसार क्यों मानता है ? (उत्तर) वेद के अज्ञान और उपदेश के न होने से ।"

इन पंक्तियों में स्पष्टतः यह विचार व्यक्त किया गया है कि मृत्यु के पश्चात् जीव शरीर से निकलकर आकाशस्थ वायु में प्रवेश करता है और वहीं रहता है । गरुड़ पुराण में यह लेख आता है कि मृत्यु के समय जीव को पकड़ने के लिए यम-राज राजा चित्रगुप्त मन्त्री और बड़े भयंकर आकार वाले उसके साथी आते हैं और उसे पकड़कर यमलोक में ले जाते हैं । यमलोक से वहाँ तात्पर्य स्थान विशेष से है । यमलोक के मार्ग में वैतरणी नदी पड़ती है, जिसे जीव को पार करना पड़ता है । यह नदी इस भूलोक से करोड़ों कोस की दूरी पर है । ऋषि दयानन्द को यह असत्य वर्णन मान्य नहीं, इसलिए सत्यार्थ-प्रकाश एकादश समुल्लास में उन्होंने इसका स्पष्ट खण्डन किया है । वे लिखते हैं—"(प्रश्न) फिर मरे हुए जीव की क्या गति होती है ? (उत्तर) जैसे उसके कर्म हैं । (प्रश्न) जो यमराज राजा, चित्रगुप्त के मन्त्री, उसके

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बड़े भंयकर कज्जल के पर्वत के तुल्य शरीर वाले जीव को पकड़कर ले जाते हैं। पाप पुण्य के अनुसार नरक स्वर्ग में डालते हैं। उसके लिए दान, पुण्य, श्राद्ध, तर्पण, गोदानादि वैतरणी नदी तरने के लिए करते हैं। ये सब बातें झूठा क्योंकर हो सकती हैं। (उत्तर) ये सब बातें पोपलीला गपोड़ेहैं। जो अन्यत्र के जीव वहाँ जाते हैं। उनका धर्मराज चित्रगुप्त आदि न्याय करते हैं तो वे यमलोक के जीव पाप करें, तो दूसरा यमलोक मानना चाहिये कि वहां के न्यायाधीश उनका न्याय करें, और पर्वत के समान यमगणों के शरीर हों तो दीखते क्यों नहीं? और मरने वाले जीव को लेने में छोटे द्वार में उनकी एक अंगुली भी नहीं जा सकती और सड़क गली में क्यों नहीं रुक जाते। जो कहो कि वे सूक्ष्म देह भी धारण कर लेते हैं तो प्रथम पर्वतरत शरीर के बड़े-बड़े हाड़ पोप जी बिना अपने घर के कहां धरेंगे? जब जंगल में आग लगती है तब एकदम पिपीलिकादि जीवों के शरीर छूटते हैं। उनको पकड़ने के लिए असंख्य यम के गण आवें तो वहां अन्धकार हो जाना चाहिए और आपस में जीवों को पकड़ने को दौड़ेंगे तब कभी उनके शरीर ठोकर खा जाएंगे तो जैसे पहाड़ के बड़े-बड़े शिखर टूटकर पृथिवी पर गिरते हैं, वैसे उनके बड़े-बड़े अवयव गरुड़ पुराण के बाँचने सुनने वालों के आंगन में गिर पड़ेंगे, तो वे दब मरेंगे वा घर द्वार अथवा सड़क रुक जाएगी, तो वे कैसे निकल और चल सकेंगे?"

मृत्यु के पश्चात् आकाशस्थ वायु में जाते समय जीव के साथ स्थूल शरीर रहता है, या नहीं? इस बारे में ऋषि दयानन्द का स्पष्ट विचार यह है कि स्थूल शरीर साथ नहीं जाता केवल सूक्ष्म शरीर साथ रहता है। यही विचार ठीक भी है। परन्तु कुछ पोपों का यह कथन है कि जीव स्थूल शरीर के साथ यमलोक जाता है। इस कथन की व्यर्थता ऋषि दयानन्द ने इन शब्दों में प्रकट की है—"जो ये लोग कहते है कि दश गात्र के पिण्डों से दश अंग सपिण्डी करने से शरीर के साथ जीव का मेल हो के अंगुष्ठमात्र शरीर बनके पश्चात् यमलोक को जाता है तो मरते समय यम दूतों का आना व्यर्थ होता है। त्रयोदशाह के पश्चात् आना चाहिए जो शरीर बन जाता हो तो अपनी स्त्री सन्तान और इष्ट मित्रों के मोह से क्यों नहीं लौट आता है?"

मृत्यु के पश्चात् जीव पुनः दूसरे शरीर में किस प्रकार प्रवेश करता है, इस प्रश्न का उत्तर यह है:—"पश्चात् धर्मराज अर्थात् परमेश्वर उस जीव के पाप पुण्यानुसार जन्म देता है। वह (जीव) वायु अन्न, जल अथवा शरीर के छिद्र द्वारा दूसरे शरीर में प्रविष्ट होता है। जो प्रविष्ट होकर क्रमशः वीर्य में जा, गर्भ में स्थित हो, शरीर धारण कर, बाहर आता है। जो स्त्री के शरीर धारण करने योग्य कर्म हों तो स्त्री, पुरुष के शरीर धारण करने योग्य कर्म हों तो पुरुष शरीर में प्रवेश करता है और नपुंसक गर्भ की स्थिति समय स्त्री पुरुष के शरीर में सम्बन्ध करके रजवीर्य के बराबर होने से होता है।" (सत्यार्थप्रकाश, नवम समुल्लास) उपरोक्त बात को ठीक प्रकार समझने के लिए तीन शरार व पाँच कोशों का सामान्य ज्ञान होना आवश्यक है। हम सक्षेपतः उनके सम्बन्ध में यहाँ लिखकर स्पष्ट करते हैं। मनुष्य के तीन शरीर माने गए हैं। ऋषि दयानन्द ने चौथा तुरीय शरीर और माना है। प्रथम स्थूल शरीर है, जिसे भौतिक शरीर भी कहते हैं। रूप, त्वचा मांस हड्डी आदि से लेकर सूक्ष्म नाड़ीतन्त्र तक सभी इस स्थूल शरीर में शामिल हैं। स्थूल शरीर के ये सब भाग केवल आंखों से अथवा यन्त्र की सहायता से देखे जा सकते हैं। दूसरा सूक्ष्म

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शरीर है। इसे किसी भी इन्द्रिय से अथवा यन्त्र की सहायता से नहीं देखा जा सकता। पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पांच सूक्ष्म भूत और मन तथा बुद्धि इन सत्तरह तत्वों से मिलकर यह सूक्ष्म शरीर बनता है। मनुष्य की मृत्यु होने पर स्थूल शरीर तो नष्ट हो जाता है, परन्तु यह सूक्ष्म शरीर जन्म मरणादि भी जीव के साथ रहता है। तीसरा कारण शरीर है। वह प्रकृति रूप होने से सर्वत्र विभु और सब जीवों के लिए एक है : सत्त्व, रज और तम की साम्यावस्था को प्रकृति कहा गया है। इस समय जो कुछ जगत् में हमें दिखाई दे रहा है, वह शुद्ध प्रकृति नहीं वरन् उसका विकृत रूप है परन्तु इस विकृत रूप की तह में प्रकृति का शुद्ध रूप अर्थात् उसकी मौलिक अवस्था व्यापक रहती है क्योंकि प्रकृति अनन्त है और यह जगत् (प्रकृति का विकृत रूप) सान्त है। प्रकृति की यह अविकृत, शुद्ध, मौलिक अवस्था ही कारण शरीर कहलाता है। प्रकृति का यह मौलिक रूप सर्वव्यापक है और सर्वत्र एक सा है। जीव इसकी अपेक्षा अधिक सूक्ष्म होता है और इसमें ही स्थित रहता है। इसी कारण इसको जीव का शरीर माना गया है। यह कारण शरीर सब जीवों का एक ही है। अर्थात् मेरा कारण शरीर और संसार के समस्त जीवों का कारण शरीर एक ही है। जैसे मेरे घर का आकाश और संसार के अन्य प्रदेशों में स्थित घरों का आकाश एक है, वैसे ही सब जीवों का कारण शरीर एक है। स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर सब जीवों के भिन्न-भिन्न हैं, परन्तु कारण शरीर सब का एक सा है।

इन तीनों शरीरों को पाँच कोशों में विभक्त किया गया है। वे पाँच कोश ये हैं—[१] अन्नमय कोश [२] प्राणमय कोश [३] मनोमय कोश [४] विज्ञानमय कोश और [५] आनन्दमय कोश। शरीर की त्वचा, हड्डी, मांस, रक्त तथा नाड़ी तन्त्रादि के समुदाय को अन्नमय कोष कहते हैं। जो अन्न हम खाते हैं, उसी के भिन्न-भिन्न रसों में पर्वितित रूपों से यह कोश बनता है। शरीर के जिस भाग को स्थूल शरीर कहा गया है, उसे ही अन्नमय कोश कहते हैं इससे भिन्न और इसके भीतर प्राणमय कोश है। शरीर की समस्त क्रियाशीलता का आधार यही कोश है। प्राणमय कोश के भीतर मनोमय कोश रहता है। समस्त मानसिक क्रियाओं का केन्द्र यही कोश है। मनोमय कोश से भिन्न और उसके भीतर विज्ञानमय कोश है। इस कोश में जीव बुद्धि, चित्त, और पांच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ज्ञानादि व्यवहार करता है। ये तीनों कोश सूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत आते हैं। पांचवा कोश आनंदमय कोश कहलाता है। इसमें "प्रीति, प्रसन्नता, न्यून आनंद, अधिकानन्द और आधार कारण रूप प्रकृति है।" यह सब जीवों का एक सा है। इसी को कारण शरीर कहते हैं।

मृत्यु के पश्चात् एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर जीव किस प्रकार धारण करता है, इस प्रश्न के उत्तर में हम ऋषि दयानन्द का मत वर्णन कर चुके हैं। ऐसा ही विचार ऐतरेय उपनिषद् में इस प्रकार प्रकट किया गया है:—"पहले यह गर्भ पुरुष के शरीर में होता है, जो वीर्य के रूप में होता है...... । पुरुष इस शरीर को अपने शरीर में रखता है। फिर जब वह इसका सिंचन स्त्री के गर्भ में करता है वह उसका पहला जन्म कहलाता है।" पुरुष शरीर में जीव के प्रविष्ट होने का प्रकार यहां नहीं बतलाया गया है। इसका वर्णन हम पहिले कर चुके हैं अर्थात् जीवात्मा एक शरीर को छोड़कर [मृत्यु होने पर उससे पूर्व नहीं] ईश्वर की प्रेरणा से दूसरे के शरीर में वायु अन्न, जल अथवा शरीर के किसी छिद्र द्वारा प्रविष्ट होता है। जीव

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के कर्म यदि पुरुष के शरीर धारण करने योग्य हैं तो यह प्रथम किसी पुरुष के शरीर में प्रविष्ट होता है। शरीर में जीव अपने सूक्ष्म शरीर के साथ [जिसे वह पूर्व जन्म से साथ लाया है] प्रवेश करता है। जीव के आवागमन में इसका सूक्ष्म शरीर ही इसके साथ रहता है। कारण शरीर के सर्वव्यापक होने के कारण उसके आने-जाने का प्रश्न ही नहीं उठता और स्थूल शरीर तो मृत्यु के साथ ही जीव का साथ छोड़ देता है। शरीर में प्रवेश करने के समय चूंकि सूक्ष्म शरीर ही जीव के साथ रहता है, इसलिए इसके प्राणमय कोश, मनोमय कोश व विज्ञानमय कोश भी साथ रहते हैं। इन कोशों के साथ रहने से जीव में विकास करने की समस्त शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं। अब यह सूक्ष्म शरीर पुरुष अर्थात् पिता के शरीर से भोजन खींचकर अपना विकास करता रहता है। पिता के भोजन व उसके मानसिक विचार दोनों का इस सूक्ष्म शरीर पर प्रभाव पड़ता है। सूक्ष्म शरीर अपने प्राणमय कोश, मनोमय कोश तथा विज्ञानमय कोश की वृद्धि क्रमशः पिता के प्राणमय, मनोमय व विज्ञानमय कोश से करता है। कालान्तर में जब इस सूक्ष्म शरीर में अन्नमय कोश बनना प्रारम्भ हो जाता है, तो पिता इस सूक्ष्म शरीर को वीर्य द्वारा स्त्री (माता) के गर्भ में पहुँचा देता है। पुनः वहां कुछ काल स्थित होकर स्थूल शरीर सहित जीव माता के गर्भ से बाहर आता है।

पुनर्जन्म की सिद्धि में प्रमाण

अब हम पुनर्जन्म के पक्ष में एक युक्ति देकर कतिपय शब्द प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। तनिक अपने शरीर की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं पर विचार कीजिये। वृद्धावस्था में विद्यमान शरीर की यौवनावस्था तथा बाल्यकाल में रहे हुए शरीर से तुलना करने पर हमको इतने अधिक भेद दृष्टिगोचर होते हैं कि इन भिन्न अवस्थाओं के शरीर ही भिन्न प्रतीत होते हैं। वस्तुतः प्रतिक्षण हमारे शरीर का कोई न कोई अंश हमसे पृथक् होता है। श्वास लेते समय भीतर का वायु हमसे पृथक् होकर बाहर निकल जाता है। इसी प्रकार स्वेद, मल, मूत्रादि के रूप में शरीर का पर्याप्त भाग हमसे पृथक् होता रहता है। परन्तु साथ ही साथ इन पृथक् हुए अंशों के स्थान पर प्रकृति में से नूतन अंश हमारे शरीर में आते रहते हैं। इस आदान प्रदान के परिणाम स्वरूप कुछ काल में हमारा शरीर पूर्णतया परिवर्तित होकर एक नूतन रूप धारण कर लेता है। शारीरिक परिवर्तन के साथ मानसिक परिवर्तन भी होता रहता है। बाल्यावस्था की कल्पनायें, संवेग, इच्छाएं, प्रवृत्तियां, स्वभाव, ज्ञानादि सभी वृद्धावस्था तक पहुँचते-पहुँचते पूर्णतया परिवर्तित हो जाते हैं। इस परिवर्तन के होते हुए भी मनुष्य की तादात्म्यता में कोई अन्तर नहीं आता। अस्सी वर्षीय वृद्ध पुरुष यही अनुभव करता है कि 'मैं' वही व्यक्ति हूँ जो पचहत्तर वर्ष पूर्व अपने बाल्यकाल में था। कुछ दार्शनिकों को इस तथ्य की सत्यता में विश्वास नहीं है। प्रत्यक्ष परिवर्तन से अत्यधिक प्रभावित होकर वे यह कह उठते हैं कि इन परिवर्तनों की उपस्थिति में 'मेरो' तादात्म्यता की सत्ता सम्भव ही नही है। अस्सी वर्षीय मोहन वह मोहन नहीं है जो कि वह पाँच वर्ष की आयु में था। परन्तु क्या यह विचार सत्य है? क्या यह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सत्य नहीं है कि जो जन्म-स्थान, जन्म-तिथि, माता-पिता, सगे-संबंधी पंचवर्षीय मोहन के थे, वे ही इस अस्सी वर्षीय वृद्ध मोहन के हैं? यदि यह वृद्ध मोहन बालक मोहन से सर्वथा भिन्न सत्तात्मक व्यक्ति है तो फिर इसकी जन्म-तिथि, जन्म-स्थान, माता-पितादि भिन्न क्यों नहीं? सत्य यही है कि शारीरिक व मानसिक परिवर्तन होने पर भी 'मोहन' अपना तादात्म्य स्थिर रखता है। भाव यह निकला कि भौतिक परिवर्तन के मध्य 'मोहन' अथवा 'मैं' नामक एक नित्य अपरिवर्तनशील सत्ता विद्यमान रहती है। यह भी सत्य है कि यह अथवा जीवात्मा अपरिवर्तनशील व नित्य होने के कारण न शरीर है और न शरीर का विकार। यह भी स्पष्ट है कि शरीर के विद्यमान रहते हुए उसके भीतर जीवात्मा अवश्य रहता है और इसके अभाव में भी जीवात्मा का भाव सिद्ध है। इसका परिणाम यह निकला कि शरीर की उत्पत्ति से पूर्व और इसके विनाशोपरान्त जीवात्मा का अस्तित्व रहता है। इसे ही दूसरे शब्दों में जीव का पुनर्जन्म कहते हैं।

कतिपय व्यक्ति ऐसा कह देते हैं कि जीव और शरीर का सम्बन्ध एक आकस्मिक घटना है और इस जन्म से पूर्व आत्मा का सम्बन्ध किसी शरीर से न था, इसी प्रकार मृत्यु के पश्चात् किसी शरीर से इसका सम्बन्ध न रहेगा। यदि जीव शरीर का वर्तमान सम्बन्ध एक आकस्मिक घटना है, तो इसी प्रकार के आकस्मिक सम्बन्ध इस जन्म से पूर्व और पश्चात् सम्भव क्यों नहीं हो सकते? और यदि वर्तमान जीव शरीर सम्बन्ध का कारण जीव के पूर्व कर्म माने जायें तो उसी प्रकार उससे पूर्व भी कर्मों के कारण जीव शरीर सम्बन्ध रहा होगा और उसी भाँति वर्तमान कर्मों के आधार पर मृत्यु के पश्चात् जीव शरीर सम्बन्ध निश्चित है।

न्याय दर्शन के कई सूत्रों से पुनर्जन्म सिद्ध होता है। एक सूत्र इस प्रकार है:—

"पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धात् जातस्य हर्षभयशोकसम्प्रतिपत्तेः"।

[३-१-१९]

नवजात शिशु के प्रारम्भिक व्यवहार से पुनर्जन्म सिद्ध किया गया है। छोटे शिशु के लिए यह समस्त संसार नया है। उसकी ज्ञानेन्द्रियों का बाह्य पदार्थों से सम्बन्ध स्थापित होने के परिणामस्वरूप उसके मन में शुद्ध संवेदनायें होती हैं, जिनसे पदार्थों का वास्तविक ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता। मनोविज्ञान के आधार पर किसी पदार्थ का ज्ञान उसके प्रत्यक्ष होने पर ही सम्भव है। सम्वेदना यद्यपि प्रत्यक्ष का आधार होता है, परंतु इससे पदार्थ का ज्ञान नहीं होता। संवेदना के अर्थ लगाने को ही प्रत्यक्ष कहते हैं किन्तु छोटे शिशु में अभी अर्थ लगाने का ज्ञान या अनुभव नहीं है अतः इसके लिए प्रत्यक्ष सम्भव नहीं है। प्रत्यक्ष के अभाव में उसे किसी भी प्रकार का कोई ज्ञान बाह्य जगत् से नहीं हो सकता। परन्तु बालक का निरीक्षण करने पर हम उसे हर्ष, भय और शोकादि से युक्त पाते हैं। कभी-कभी बच्चा हँसने लगता है, कभी-कभी रोने लगता है। बिना कारण कोई कार्य होता नहीं और बाह्य जगत् से उत्पन्न अनुभव उसके हर्ष भय शोकादि का कारण हो नहीं सकता जैसा कि अभी स्पष्ट किया है। अतः स्पष्ट है कि बच्चा पूर्व जन्म में अभ्यास की हुई स्मृति के आधार पर ही हर्षादि का अनुभव करता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऐसा ही तर्क ऋषि दयानंद ने योग दर्शन के "स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा-रूढ़ोऽभिनिवेशः" सूत्र की व्याख्या करते हुए ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में दिया है। मूल सूत्र में अभिनिवेश क्लेश की व्याख्या की गई है। ऋषि दयानंद लिखते हैं कि छोटे से कृमि से लेकर बड़े विद्वान् तक सभी प्राणियों में मृत्यु भय की प्रकृति पाई जाती है। मृत्यु भय की विद्यमानता के आधार पर पुनर्जन्म की सिद्धि होती है। कैसे ? इसके लिए ऋषि दयानंद यह हेतु देते हैं—

"यदि पूर्वजन्मनि मरणानुभवो न भवेच्चेत्तर्हि तत्संस्करोपि न स्यान्नैव संस्कारेण बिना स्मृतिर्भवति स्मृत्या बिना मरणत्रासः कथं जायेत ।" अर्थात् यदि पूर्व जन्म में मृत्यु का अनुभव न हो तो उसका (जीवात्मा पर) संस्कार भी न पड़ेगा। संस्कार के बिना स्मृति नहीं होती। फिर स्मृति के बिना मृत्यु भय का अनुभव कैसे हो सकता है ? प्राणिमात्र में मृत्यु भय की व्यापकता से तो इनकार नहीं किया जा सकता। सभी प्राणी आत्म-कल्याण की यह इच्छा करते हैं कि मैं सदा जीवित रहूँ और सुखी रहूँ। आत्म-कल्याण की यह इच्छा मृत्यु को अनुभव किए बिना नहीं हो सकती। क्या मृत्यु का हम प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं ? यह सम्भव नहीं। मृत्यु का अनुभव तो मृत्यु के साथ (क्षण भर भी न पूर्व न पश्चात्) ही सम्भव है। ऐसा संभव नहीं कि मृत्यु का अनुभव कर कोई व्यक्ति पुनः जीवित होकर उसी शरीर में उस अनुभव को प्रकट करने के लिए हमारे मध्य आ जावे क्योंकि उस अवस्था में उसकी मृत्यु ही न मानी जायगी। यहाँ यह शंका उत्पन्न हो सकती है कि मरण का हमें प्रत्यक्ष तो नहीं होता, पर हम इसके भय के बारे में अन्य व्यक्तियों से सुनकर तथा पुस्तकों में पढ़कर इससे भयभीत होने लगते है। अतः मृत्यु भय का कारण इसी जन्म का ज्ञान है, इसके लिए पुनर्जन्म को मानने की आवश्यकता नहीं। परन्तु यह शंका उचित नहीं। एक छोटा अबोध बालक जिसने मृत्यु भय के बारे में न कुछ सुना है, न पढ़ा है, क्यों इससे भयभीत होता है ? पशु पक्षी अन्य प्राणी जिनके लिए पढ़ना व सुनना असम्भव हैं, क्यों मृत्यु से भय खाते हैं ? स्पष्ट है कि वर्तमान जीवन का ज्ञान व अनुभए मृत्यु भय का कारण नहीं है। अतएव मृत्यु भय का कारण इसकी स्मृति को ही मानना पड़ेगा। स्मृति बिना संस्कारों के सम्भव नहीं होती। हम उस वस्तु को स्मरण कर सकते हैं जिसके संस्कार हमारे मन पर पड़ चुके है। संस्कार उसी वस्तु के पड़ते हैं जिसका हम प्रत्यक्ष करें, अनुभव करें। अतएव मृत्यु संस्कार मृत्यु अनुभव पर ही सम्भव है। मृत्यु अनुभव बिना पूर्व जन्म के सम्भव नहीं और वर्तमान व पूर्व जन्म के होने पर भविष्य में जन्म न हो, यह असम्भव है। अतः पुनर्जन्म सिद्ध है। इसलिए ऋषि दयानंद ने ठीक ही लिखा है कि "प्राणिमात्रस्य मरण-भय दर्शनात् पूर्वापरजन्मानि भवन्तीति वेदितव्यम्" अर्थात् प्राणिमात्र में मृत्यु भय की विद्यमानता से पूर्व और बाद का जन्म होता है, यह मानना चाहिए।

न्याय दर्शन के एक और सूत्र से पुनर्जन्म सिद्ध होता है। सूत्र यह है:— 'प्रेत्याहाराभ्यासकृतात्स्तन्याभिलाषात् ।" ३-१-२२ इस पर वात्स्यायन भाष्य निम्न प्रकार है:—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जातमात्रस्य वत्सस्य प्रवृत्ति लिङ्गः स्तन्याभिलाषो गृह्यते। स च नान्तरेणाहाराभ्यासम्। कया युक्त्या दृश्यते हि शरीरिणां क्षुधा पीड्यमानानामाहाराभ्यास कृतात्स्मरणानुबन्धादाहाराभिलाषः। न च पूर्व शरीरमन्तरेणासौ जातमात्रस्योपपद्यते। तेनानुमीयते भूतपूर्वं शरीरं यमानेनाहारोऽभ्यस्त इति। स खल्वयमात्मा पूर्वशरीरात्प्रेत्य शरीरान्तरमापन्नः क्षुत्पीड़ितः पूर्वाभ्यस्तमाहारमनुस्मरन् स्तन्यमभिलषति।

अर्थात्—पैदा बच्चे की प्रवृत्ति से जानी जाने वाली स्तनपान की अभिलाषा पाई जाती है। वह आहार के अभ्यास के बिना नहीं हो सकती। किस युक्ति से, क्षुधा से पीड़ित शरीर धारियों की आहाराभ्यासकृत स्मरण के अनुबन्ध से आहार की अभिलाषा देखी जाती है। पैदा हुए की यह आहार की अभिलाषा पूर्व शरीर धारण के हुए बिना नहीं हो सकती। उससे अनुमान किया जाता है कि पहले इसको शरीर प्राप्त हो चुका है, जिसमें इसने आहार का अभ्यास किया था। वह निश्चय यह आत्मा पूर्व शरीर से मर कर अन्य शरीर में आया हुआ क्षुधा से पीड़ित पूर्व अभ्यस्त आहार स्मरण करते हुए स्तनपान की अभिलाषा करता है।

पूर्व जन्म सिद्धान्त के पक्ष में वेद, उपनिषद्, गीता, स्मृति, निरुक्त तथा दर्शन शास्त्रों में अनेक प्रमाण दिए हैं। उन सबको यहां उद्धृत करना न हमारे लिए अभीष्ट है और न सम्भव। इन सब प्रमाणों को आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान्, व्याख्याता व तार्किक श्री ठाकुर अमरसिंह आर्यपथिक तथा सुयोग्य वैदिक विद्वान् श्री पं० वैद्यनाथ शास्त्री ने अपने अद्वितीय ग्रन्थ "आर्य सिद्धान्त सागर" में संग्रह किया है। पुनर्जन्म के सम्बन्ध में इतने अधिक प्रमाणों का एक स्थान पर संग्रह हमारे देखने में अभी तक नहीं आया है। महर्षि दयानन्द द्वारा दी गई एक युक्ति की विवेचना की जा चुकी है। उन्होंने दो प्रमाण और दिए हैं। उनमें से प्रथम यह है—"वैसे ही जगत् में विचित्र सुख दुःख आदि की घटती बढ़ती देख के पूर्व जन्म का अनुमान क्यों नहीं जान लेते ?" दूसरा प्रमाण इस प्रकार है—"और जो पूर्व जन्म को न मानोगे तो परमेश्वर पक्षपाती हो जाता है, क्योंकि बिना पाप के दारिद्रयादि दुःख और बिना पूर्वसंचित पुण्य के राज्य, धनाढ्यता और निर्बुद्धिता उसको क्यों दी ?" ये दोनों अनुमान प्रमाण हैं। दूसरे प्रमाण की सत्यता प्रथम प्रमाण की सत्यता पर आधारित है। यदि यह सत्य है कि इस जगत् में सुख दुःख, पाप-पुण्य, लाभ-हानि का भेद विद्यमान है तो दूसरे प्रमाण का कुछ महत्त्व है, अन्यथा यह निरर्थक है। सामान्यतः यही विचार है कि इस जगत् के प्राणिमात्र में भेद है। एक जीवात्मा चींटी का शरीर धारण करता है तो दूसरा हाथी का, तीसरा सिंह का, चौथा किसी पक्षी का और अन्य मनुष्य का। मनुष्यों में भी शारीरिक व मानसिक भेद पाए जाते हैं। कोई सुन्दर है, कोई बिल्कुल काला-कलूटा कुरूपता की साक्षात् मूर्ति। कोई निरा गोबर गणेश। किसी को ऊँचे-ऊँचे विशाल भवनों में पुष्पों की शय्या पर भी नींद नहीं आती और किसी बेचारे दीन कंगाल को सोने के लिए सड़क का किनारा भी मयस्सर नहीं होता। ऐसे ही लोगों का विचार प्रश्न रूप ऋषि दयानन्द इस प्रकार उपस्थित करते हैः—"(प्रश्न) बड़े छोटों को एकसा ही सुख दुःख है। बड़ों को बड़ी चिन्ता और छोटों को छोटी—जैसे किसी साहूकार का विवाह राजघर में लाख रुपये का हो तो वह अपने घर से पालकी में बैठकर कचहरी में उष्णकाल में जाता हो। बाजार में होके उसको जाता देख कर अज्ञानी लोग कहते हैं कि देखो, पुण्य पाप का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

फल, एक पालकी में आनन्दपूर्वक बैठा है, और दूसरे बिना जूते पहने ऊपर नीचे से तप्यमान होते हुए पालकी को उठाकर ले जाते हैं। परन्तु बुद्धिमान् लोग इसमें यह जानते हैं कि जैसे-जैसे कचहरी निकट आती जाती है वैसे-वैसे साहूकार को बड़ा शोक और सन्देह बढ़ता जाता और कहारों को आनन्द होता जाता है। जब कचहरी में पहुँचते हैं तब सेठ जी इधर-उधर जाने का विचार करते हैं कि वकील के पास जाऊँ वा सरिश्तेदार के पास; आज हारूँगा या जीतूँगा, न जाने क्या होगा। और कहार लोग तमाखू पीते परस्पर बातें करते हुए प्रसन्न होकर आनन्द में सो जाते हैं। जो वह जीत जाय तो कुछ सुख और हार जाय तो सेठ जी दुःख सागर में डूब जायें और वे कहार जैसे के वैसे रहते हैं। इसी प्रकार जब राजा सुन्दर कोमल बिछौने पर सोता है तो भी शीघ्र निद्रा नहीं आती और मजूर कंकर पत्थर और मिट्टी ऊँचे-नीचे स्थल पर सोता है उसको झट ही निद्रा आती है। ऐसे ही सर्वत्र समझो।" इन दो परस्पर विरोधी विचारों मे कौन सत्य है? यह तो निश्चित है कि यदि दूसरा विचार सत्य है तो उस अवस्था में पूर्वजन्म का सिद्धान्त ठीक नहीं ठहर सकता। इन दोनों परस्पर विरोधी विचारों में से दूसरे के विरुद्ध अपना निर्णय देते हुए ऋषि दयानन्द लिखते हैं:— "यह समझ अज्ञानियों की है। क्या किसी साहूकार से कहें कि तू कहार बन जा और कहार से कहें कि तू साहूकार बनजा तो साहूकार कभी कहार बनना नहीं चाहेगा और कहार साहूकार बनना चाहते हैं। जो सुख दुःख बराबर होता तो अपनी अपनी अवस्था छोड़ नीच और ऊँच बनना दोनों न चाहते? देखो एक जीव विद्वान्, पुण्यात्मा, श्रीमान् राजा की रानी के गर्भ में आता और दूसरा महादरिद्र घसियारी के गर्भ में आता है। एक को गर्भ से लेकर सर्वथा सुख और दूसरे को सब प्रकार दुःख मिलता है। एक जब जन्मता है तब सुन्दर सुगन्धियुक्त जलादि से स्नान, युक्ति से नाड़ीछेदन, दुग्धपानादि यथायोग्य प्राप्त होते हैं। जब वह दूध पीना चाहता है तो उसके साथ मिश्री आदि मिलाकर यथेष्ट मिलता है। उसको प्रसन्न रखने के लिए नौकर, चाकर, खिलाना, सवारी उत्तम स्थानों में लाड़ से आनन्द होता है। दूसरे का जन्म जङ्गल में होता है तो स्नान के लिए जल भी नहीं मिलता। जब दूध पीना चाहता है तब दूध के बदले में घूंसा थपेड़ा आदि से पीटा जाता है। अत्यन्त आर्त स्वर से रोता है। कोई नहीं पूंछता इत्यादि।" अतः जगत् में सुख-दुःख, पाप-पुण्य, ऊंच-नीच के भेद का पक्ष सत्य है। जन्म काल से प्राप्त सुख-दुःख का कारण जीव के वर्त्तमान कर्म हो नहीं सकते। अतएव सिद्ध है कि इन सबका कारण पूर्वजन्म के कर्म ही हैं।

उपरोक्त दूसरे प्रमाण की सत्यता को मानने में अब कोई बाधा शेष नहीं रहती। जगत् में विद्यमान सुख-दुःख भेद का पक्ष सत्य सिद्ध हो चुका। अब यदि पूर्व जन्म को न माना जाये तो इस सुख-दुःख भेद के कारण के बारे में हमारे सामने दो ही विकल्प रह जाते हैं—या तो जीव स्वयं अपने वर्त्तमान जन्म के कर्मों द्वारा सुख दुःख उत्पन्न कर लेता है या परमात्मा अपनी इच्छानुसार जीवों को सुखी दुःखी बना देता है। प्रथम विकल्प तर्कसङ्गत नहीं है। इसलिये दूसरा विकल्प ही सत्य मानना पड़ेगा। परन्तु इसे सत्य स्वीकार करने से ईश्वर पक्षपाती बन जाता है। क्योंकि वह जीवों को बिना पूर्व कर्मों के किये सुखी दुःखी करता है? पक्षपाती होने पर ईश्वर का न्याय नष्ट होता। परन्तु वह न्यायकारी है और पक्षपात नहीं करता है। अतः यही सत्य है है कि दारिद्रयादि दुःख और राज्य धनाढ्यतादि सुख पूर्वजन्म के कर्मों का ही फल है। क्योंकि "उसका (परमात्मा का) विचार जीवों के कर्मानुसार होता है, अन्यथा नहीं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जो अन्यथा हो तो वही अपराधी अन्यायकारी होवे।" यहाँ एक प्रश्न पैदा होता है।"प्रश्न—एक जन्म होने से भी परमेश्वर न्यायकारी हो सकता है। जैसे सर्वोपरि राजा जो करे सो न्याय, जैसे माली अपने उपवन में छोटे और बड़े वृक्ष लगाता, किसी को काटता और किसी की रक्षा करता बढ़ाता है। जिसकी जो वस्तु है उसको वह चाहे जैसे रक्खे उसके ऊपर कोई भी दूसरा न्याय करने वाला नहीं जो उसको दण्ड दे सके वा ईश्वर किसी से डरे।" इस प्रश्न द्वारा ईश्वर की न्यायप्रियता की रक्षा करते हुए पूर्वजन्म को प्रसिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। परन्तु इसमें कहां तक सफलता प्राप्त हो सकी है, इसका निर्णय ऋषि दयादन्द द्वारा उक्त प्रश्न के दिए हुए उत्तर के आधार पर विज्ञ पाठक स्वयं कर लें। उत्तर यह है—"परमात्मा जिस लिए न्याय चाहता करता, अन्याय कभी नहीं करता इसलिए वह पूजनीय और बड़ा है। जो न्याय विरुद्ध करे वह ईश्वर ही नहीं। जैसे माली युक्ति के बिना मार्ग स्थान में वृक्ष लगाने, न काटने योग्य को काटने, अयोग्य को बढ़ाने, योग्य को न बढ़ाने से दूषित होता है इसी प्रकार बिना कारण के करने से ईश्वर को दोष लगे। परमेश्वर के ऊपर न्याययुक्त काम करना अवश्य है, क्योंकि वह स्वभाव से पवित्र और न्यायकारी है जो उन्मत्त के समान कार्य करे तो जगत् के श्रेष्ठ न्यायाधीश से भी न्यून और अप्रतिष्ठित हो। क्या इस जगत् में बिना योग्यता के उत्तम काम किये प्रतिष्ठा और और दुष्ट काम किए बिना दण्ड देने वाला निन्दनीय अप्रतिष्ठित नहीं होता ? इस लिये ईश्वर अन्याय नहीं करता, इसी से किसी से नहीं डरता।'

पुनर्जन्म पर आक्षेप

पुनर्जन्म के विरुद्ध एक प्रवल युक्ति यह दी जाती है कि यदि हमारा पुर्वजन्म होता है तो उसकी घटनाओं का हमें स्मरण रहना चाहिए। किन्तु पूर्वजन्म की घटनाओं की स्मृति का अभाव है, अतः पूर्वजन्म नहीं होता। पूर्वजन्म के अभाव में आगे भी कोई जन्म होना असम्भव है। इस युक्ति में पूर्वजन्म की स्मृति का अभाव उसके अनस्तित्व का कारण ठहराया गया है। हम इससे सहमत होने में असमर्थ हैं। किसी वस्तु की स्मृति उसके भाव का सूचक अवश्य है परन्तु उसका अभाव उस वस्तु के अभाव का कारण नहीं बन सकता। गत वर्ष धनञ्जय को मैंने देखा था। उसकी दी हुई पुस्तक देख कर आज मुझे उसका स्मरण हो आया। यहां उसका स्मरण उसके अस्तित्व को सिद्ध करता है। इसके विरुद्ध यह युक्ति देना कि—"मुझे धनञ्जय का स्मरण नहीं है, अतः वह है ही नहीं" ठीक नहीं है। क्योंकि सम्भव हो सकता है कि मैंने धनञ्जय को भूतकाल में कभी देखा नहीं है, अतः उसका स्मरण ही कैसे हो सकता है ? यह भी सम्भव है कि मैंने उसको देखा तो था, परन्तु अव उसे 'भूल गया'। हम अपने जीवन में न जाने कितनी बातों को भूल जाते हैं। अब से दस वर्ष पूर्व अपने विवाहोत्सव पर निमन्त्रित सभी व्यक्तियों का मुझे आज स्मरण नहीं है। परन्तु क्या इसका यह अर्थ है कि वे थे ही नहीं, उनका कोई अस्तित्व नहीं था। अतः किसी वस्तु की स्मृति का अभाव उस वस्तु के अभाव को अनिवार्यतः सिद्ध नहीं कर सकता।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परन्तु यहाँ एक शङ्का उत्पन्न हो सकती है, वह यह कि यदि किसी वस्तु की स्मृति का अभाव उसके अभाव को सिद्ध नहीं कर सकता तो क्या उसका अभाव उसके भाव को सिद्ध करता है ? जिस किसी वस्तु की हमें विस्मृति है उसके भाव को हम कैसे मान ले ? श्याम को मैंने कभी नहीं देखा है और न उसका स्मरण है इसलिए उसका अस्तित्व अवश्य है। यह युक्ति भी ठीक नहीं है। यहाँ पुनः एक आपत्ति उत्पन्न हो सकती है। यदि किसी वस्तु की स्मृति का अभाव उसकी सत्ता को सिद्ध नहीं कर सकता तो पूर्वजन्म की स्मृति का अभाव होने पर भी पूर्वजन्म की सत्ता को क्यों सिद्ध किया जा रहा है ? इस आपत्ति का आधार एक भूल है। हमें यह कदापि स्वीकार नहीं कि पूर्वजन्म होता है, क्योंकि इसकी स्मृति का अभाव है' अर्थात् हमने 'पूर्वजन्म होता है' प्रतिज्ञा को सिद्ध करने के लिए 'स्मृति का अभाव है' हेतु नहीं दिया है। यह हेतु सदोष है और इसमें साधारण सव्यभिचार हेत्वाभास व्याप्त है। यह हेत्वाभास तब उत्पन्न होता है जब हेतु किसी वस्तु के भाव और अभाव दोनों को सिद्ध करता है। जैसे 'पर्वत पर धूम्र' है क्योंकि वह ज्ञेय है। 'ज्ञेयता' धूम्र के अभाव और भाव दोनों में रहती है। हमारा अभिप्राय केवल यह है कि 'स्मृति का अभाव' दोषयुक्त हेतु को पूर्व जन्म की सिद्धि या असिद्धि के लिए प्रयुक्त करना ठीक नही है।

दूसरी बात यह है कि पूर्वजन्म की घटनाओं का स्मरण रहना सम्भव भी नहीं है। क्यों ? इसका उत्तर ऋषि दयानन्द के शब्दों में ही सुनिये। "(प्रश्न) जो अनेक (जन्म) हों तो पूर्वजन्म और मृत्यु की बातों का स्मरण क्यों नहीं ? (उत्तर) जीव अल्पज्ञ हैं, त्रिकालदर्शी नहीं इसलिए स्मरण नहीं रहता। और जिस मन से ज्ञान करता है वह भी एक समय में दो ज्ञान नहीं कर सकता। भला पूर्व जन्म की बात तो दूर रहने दीजिये इसी देह में जब गर्भ में जीव था शरीर बना पश्चात् जन्म। पाँचवें वर्ष से पूर्व तक जो-जो बातें हुई हैं उनका स्मरण क्यों नहीं कर सकता ? और जागृत व स्वप्न में बहुत सा व्यवहार प्रत्यक्ष में करके जब सुषुप्ति अर्थात् गाढ़ निद्रा होती है तब जागृति आदि व्यवहार का स्मरण क्यों नहीं कर सकता ? और तुमसे कोई पूछे कि बारह वर्ष के पूर्व तेरहवें वर्ष के पांचवें महीने के नवें दिन दस बजे पर पहली मिनट में तुमने क्या किया था ? तुम्हारा मुख, हाथ, कान, नेत्र, शरीर, किस ओर किस प्रकार का था ? और मन में क्या विचारा था ? जब इसी शरीर में ऐसा है तो पूर्व जन्म की बातों के स्मरण में शङ्का करना केवल लड़कपन की बात है।

पाठकगण यहाँ पर एक आपत्ति उठा सकते है। ऋषि दयानन्द ने ऊपर यह स्पष्ट मत प्रकट किया है कि अल्पज्ञ होने के कारण जीव जब इसी जन्म की अनेक बातें स्मरण नही रख सकता तो पूर्वजन्म की बातों का स्मरण रखना तो नितान्त असम्भव है। परन्तु पूर्वजन्म सिद्धि प्रसङ्ग में हमने ऋषि दयानन्द का यह मत उद्धृत किया है कि प्राणिमात्र को पूर्वजन्म के मरणत्रास की स्मृति रहती है। उस प्रसङ्ग में उद्धृत न्याय दर्शन के सूत्रों में भी यह स्पष्टतः दर्शाया गया है कि जन्मजात बच्चे को पूर्व जन्म की स्मृति के आधार पर ही सुःख-दुख, हर्ष-शोक का अनुभव होता है। इस प्रकार ये दो परस्पर विरोधी बातें हमारे सामने उपस्थित होती हैं। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो वस्तुतः इन दोनों कथनों में कोई विरोध नहीं है। अपने इस कथन की पुष्टि के लिए हम संस्कार के स्वरूप पर थोड़ा सा विचार करना आवश्यक समझते हैं। किसी घटना के सूक्ष्म प्रभाव को जो सूक्ष्म शरीर पर पड़ता है, उसका संस्कार कहा जाता है। सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर के भीतर होता है। वाह्य जगत् की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
घटनायें अपना सीधा प्रभाव स्थूल शरीर पर डालती हैं और उन घटनाओं का स्थूल प्रभाव स्थूल शरीर तक ही सीमित रहता है। सूक्ष्म शरीर तक इन घटनाओं का केवल सार रूप ही पहुँचता है क्योंकि उसे इतने स्थूल प्रभावों की आवश्यकता नहीं है। एक दो दृष्टान्तों से इसे स्पष्ट किया जाता है। अपने जन्म से लेकर जीवन के पचासवें वर्ष तक अपने स्थूल शरीर को जितना अन्न पहुँचाया है, यदि उसका हिसाब लगाया जाय तो मोटे तौर पर यह मात्रा लगभग दो सौ मन तक पहुँचती हैं। जल और वायु की मात्रा पृथक् रही। हमारे स्थूल शरीर (मनोमय कोश) पर तो दो सौ मन का स्थूल प्रभाव पड़ा, है परन्तु सूक्ष्म शरीर पर इसका जो प्रभाव पड़ा है उसका परिणाम रत्ती में भी नहीं आंका जा सकता। एक दूसरा दृष्टान्त ले लीजिए। हिन्दी विषय म एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण विद्यार्थी ने सर्वप्रथम हिन्दी का अक्षरज्ञान प्राप्त किया। तत्पश्चात् 'क+ल+म'=कलम; म+ग+र=मगर पाठ पढा। पुनः कक्षा 'अ' से लेकर बी०ए० तक उसने हिन्दी की सैकड़ों पुस्तकें पढ़ डालीं। और उसके दो वर्ष पश्चात् एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। कक्षा 'अ' से लेकर एम०ए० तक उसने जितनी पुस्तकें तथा उनमें वर्णित विषय पढ़ें उन सबका सूक्ष्म प्रभाव एम०ए० परीक्षा की उत्तीर्णता के रूप में विद्यमान है। उस विद्यार्थी से अब यदि यह पूछा जाय कि कक्षा दो में कौन कौन पुस्तकें पढ़ी थीं, या उससे अब पद-विन्यास तथा वाक्य विग्रह कराया जाय तो निश्चय ही वह इनमें असफल होगा। क्यों? इन स्थूल बातों की उसे अब आवश्यकता नही है। यदि इन सारी बातों को वह स्मरण रक्खे तो उसके ज्ञान में वृद्ध असम्भव है। संस्कार रूप में उन स्थूल बातों का सूक्ष्यु प्रभाव अवश्य शेष रह जाता है और अनुकूल वातावरण प्राप्त कर ये संस्कार कालान्तर में जागृत हो जाते हैं। एक शराबी बीस वर्ष में कब-कब, कहाँ-कहाँ, कितनी बार शराब पीता है, यह बात तो उसे याद नहीं रहती परन्तु उन सब बातों का सूक्ष्म प्रभाव उसके सूक्ष्म शरीर पर स्थिर रहता है। इसी कारण शराब की दूकान के सामने से गुजरते ही उसके संस्कार जागृत होकर उसे शराब पीने के स्थूल कर्म करने के लिए बाध्य कर देते हैं। इन सब दृष्टान्तों का सार यह निकला कि हमारा सूक्ष्म शरीर स्थूल घटनाओं के सूक्ष्म प्रभाव (संस्कार) को ग्रहण करता है और अनावश्यक विस्तार को छोड़ देता है। ये संचित संस्कार ही मृत्यु के पश्चात् एक जन्म से जीवात्मा के साथ जाते हैं। और इन्हीं संस्कारों के फलस्वरूप मनुष्य सुख-दुःख को प्राप्त होता है। अतः जीवात्मा एक जन्म से दूसरे जन्म में अपने साथ घटनाओं के सूक्ष्म प्रभाव (संस्कार) ही साथ लाता है, स्थूल घटनायें नहीं, अतः उन (स्थूल घटनाओं) का स्मरण भी उसको दूसरे जन्म में नहीं हो सकता। ऋषि दयानन्द के इस कथन "जीवात्मा को अल्पज्ञ होने के कारण पूर्वजन्म और मृत्यु की बातें स्मरण नहीं रहतीं" का अभिप्राय यही है कि जीवात्मा को पूर्वजन्म की स्थूल घटनाओं का स्मरण नहीं रहता। उनके कथन में प्रयुक्त "बातों" का अर्थ स्थूल घटनाएं हैं। चूंकि जीवात्मा पूर्वजन्म में संचित संस्कार अपने साथ यहाँ लाता है इसलिए पूर्वजन्म में हुए हर्ष, शोकादि की स्थूल घटनाओं के सूक्ष्म प्रभाव (संस्कार) उसके (जीवात्मा) के साथ विद्यमान रहने के परिणामस्वरूप छोटा बच्चा इस जन्म में हर्ष, शोक का अनुभव करता है। रही मृत्यु भय स्मरण की बात। यह तो हम लिख चुके हैं कि सूक्ष्म शरीर पर कर्म का सूक्ष्म प्रभाव रहता है, स्थूल पर नहीं। मृत्यु कैसे होती है, हैजे से, प्लेग से, डूबकर, जलकर इत्यादि ये तो स्थूल घटनायें हैं और इन सबका सूक्ष्म प्रभाव है मृत्यु। सूक्ष्म शरीर पर मृत्यु का सूक्ष्म प्रभाव ही रहता है। दूसरे एक मनोवैज्ञानिक नियम यह भी है कि नये अनुभव पुराने अनुभवों को

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अपेक्षा और अधिक तीव्र अनुभव कम तीव्र अनुभव की अपेक्षा शीघ्र याद आ जाते हैं और इनका प्रभाव अधिक देर तक रहता है। मैंने जो पाठ कल पढ़ा है, वह छः मास पूर्व पढ़े पाठ की अपेक्षा अधिक याद है। अपने एकमात्र पुत्र की मृत्यु का वियोग पड़ोसियों की मृत्यु के वियोग की अपेक्षा तीव्रता में अधिक होने के कारण अधिक समय तक याद रहता है। ठीक इसी प्रकार पूर्वजन्म के कर्मों में मृत्यु कर्म सबसे नूतन है और इसके दुःख की तीव्रता सब दुःखों से अधिक है। इसलिए इस दुःख का संस्कार जीवात्मा पर तीव्रता के साथ अधिक समय तक रहता है। यही कारण है कि पूर्वजन्म की मृत्यु के भय का संस्कार इस जन्म में सारी आयु रहता है और इसीलिए मृत्यु सदृश दृश्य उपस्थित होने पर मृत्यु भय के पूर्व संस्कार फूट उठते हैं और हम भय एवं दुःख अनुभव करने लगते हैं।

अतएव ऋषि दयानन्द के इस कथन में कि पूर्वजन्म की बातों का हमें स्मरण नहीं रहता और मृत्यु भय की स्मृति प्राणिमात्र में विद्यमान रहती है, कोई परस्पर विरोध नहीं है। दोनों बातें सत्य हैं। □

आर्य समाज शताब्दी मनावें

होता न आर्य समाज कहीं, सन्मार्ग हमें फिर कौन बताता
तर्क कसौटी से कौन हमें शुचि, सत्य सनातन बोध कराता
कौन कहो फिर घोर घमण्डियों, धूर्त पखण्डियों के गढ़ढाता
एक अखण्ड अगोचर ईश की कौन हमें फिर भक्ति सिखाता

कौन निराश्रित दीन-दुःखी विधवा व अनाथ को धीर बंधाता
पादरी मुल्लों के चुंगल से प्रिय राम की सन्तति कौन बचाता
शुद्धि का चक्र चला करके फिर कौन हमें बिछड़ों से मिलाता
आर्य समाज न होता तो निश्चय, हिन्दु यहां पर दृष्टि न आता

आर्य समाज न होता तो देश में कौन ! भला नव जागृति लाता
कौन ! सनातन वेद के अर्थ, सही, शुचि यज्ञ महत्व बताता
कीचड़ ही में सने रहते, शुचि हीरा हमें फिर कौन बनाता
आर्य समाज के हैं हम पुत्र तो आर्य समाज हमारी है माता

मानस मन्दिर में सबके शुचि, वैदिक ज्योति अखण्ड जगावें
कष्ट विनष्ट करें सबके सुख, शान्ति भरे, भय भ्रान्ति भगावें
कार्य करें शुभ आर्य बनें दृढ़ हो जग को फिर आर्य बनावें
होकर प्रेम विभोर सभी यह, आर्य समाज शताब्दी मनावें

—प्रकाश चन्द्र (कविरत्न) अजमेर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

धन्य धन्य है आर्य समाज !

धरती का कण-कण है प्यासा, धरती मांग रही वरदान,
धरती की है लाज लुटी सी, धरती खो बैठी ईमान ।

युद्ध द्वेष संतप्त धरा को जीवन देगा आर्य समाज,
मत भेदों में बंटे मनुज को मिला सकेगा आर्य समाज,
आर्य समाज उठा सकता है आर्य समाज सजा सकता है,
आर्य समाज बजा सकता है, टूट गये जो सारे साज ।

सभी सदा उसके अपने हैं, सबसे ही उसको है प्यार,
सबका यह कल्याण चाहता, सबका ही करता उपकार,
सबके मन में कलुष कालिमा, दूर-दूर जो हो जाए तो,
सचमुच एक बने जग सारा, एक बने सब का आधार ।

आर्य समाज सत्य-ज्ञान से सब को एक बनाता है,
एक प्रभु के ज्योतित पथ पर, सभी चलें सिखलाता है,
शुभ कर्मों से मुक्ति मिलेगी, शुभ कर्मों का करो विचार,
कर्म धर्म में समता केवल आर्य समाज बताता है ।

युग-युग से संचित पीड़ा को पीने वाला आर्य समाज,
जन-जन-मन घृणा द्वेष को धोने वाला आर्य समाज,
प्यार सिखाता, प्यार जताता, प्यार निभाता आर्यसमाज
प्रेम मन्त्र का प्रबल प्रसारक, धरती पर है आर्यसमाज ।

प्रभु से मिलना लक्ष्य हमारा, लक्ष्य सभी का केवल एक,
एक लक्ष्य के लिए भटकते, फिरते हैं नह प्राण-विवेक,
'एक' कहां है, कैसे मिलता, है बतलाता यह आर्यसमाज,
लक्ष्य सिद्धि का एक सहारा, इस धरती पर आर्य समाज ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भेद भाव की दीवारों को गिरा रहा है आर्य समाज,
मृत्युगर्त में पड़े हुओं को उठा रहा है आर्य समाज।
भूले भटके बिछड़े प्राणी, मिला रहा है आर्य समाज,
सबके मन में जीवन-दीपक, जला रहा है आर्य समाज।

युग की रक्षा इष्ट जिन्हें हो, उनको है आमंत्रण आज,
काटो सारे बन्धन दुःख के, बन्द करो सब कटुता राग,
'ओ३म्' पताका बुला रही है, उसे संभालो बढ़कर वीर,
सारी धरती पर फहराओ, शान्ति सत्य का पावन राज।

आर्य समाज देश जाति की गहरी खाई पाट रहा है,
आर्य समाज सत्य-ज्ञान को मुक्त भाव से बांट रहा है,
आर्य समाज बढ़ा है आगे, करने मानव का उद्धार,
दानव दल पर करता है वह, पूर्ण शक्ति से वज्र प्रहार।

आर्य समाज मित्र है सबका, सबका ही होवे कल्याण,
सभी सुखी हों, रहें प्रेम से, यही धर्म है सत्य महान्,
अर्थ काम को धर्म-मोक्ष से, गति देता आर्य समाज,
धरती को ही स्वर्ग बनाना, चाह रहा है आर्य समाज।

आर्य समाज सभी के मन में छेड़ रहा मधुमय संगीत,
सबको सुना रहाजीवन का, झंकृत, उन्न, पावन गीत,
सब को सत्पथ दिखलाता है, सबके कष्ट मिटाता है,
सबकी राह सरल करता है, सबकी चाह रहा है जीत।

पावनता सन्देश प्रसारक, धन्य-धन्य है आर्य समाज,
आर्य समाज यज्ञ संस्थापक, धन्य दयानन्द महाराज,
धन्य-धन्य वे जिनके बल से बढ़ता जाता, आर्य समाज,
ज्ञान ज्योति की गंगा बहती कहती जाती··· आर्य समाज······

—भारतेन्द्रनाथ

मुद्रक—प्रकाशक—संपादक पंडिता राकेश रानी द्वारा सैनी प्रिण्टर्स दिल्ली में छपा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

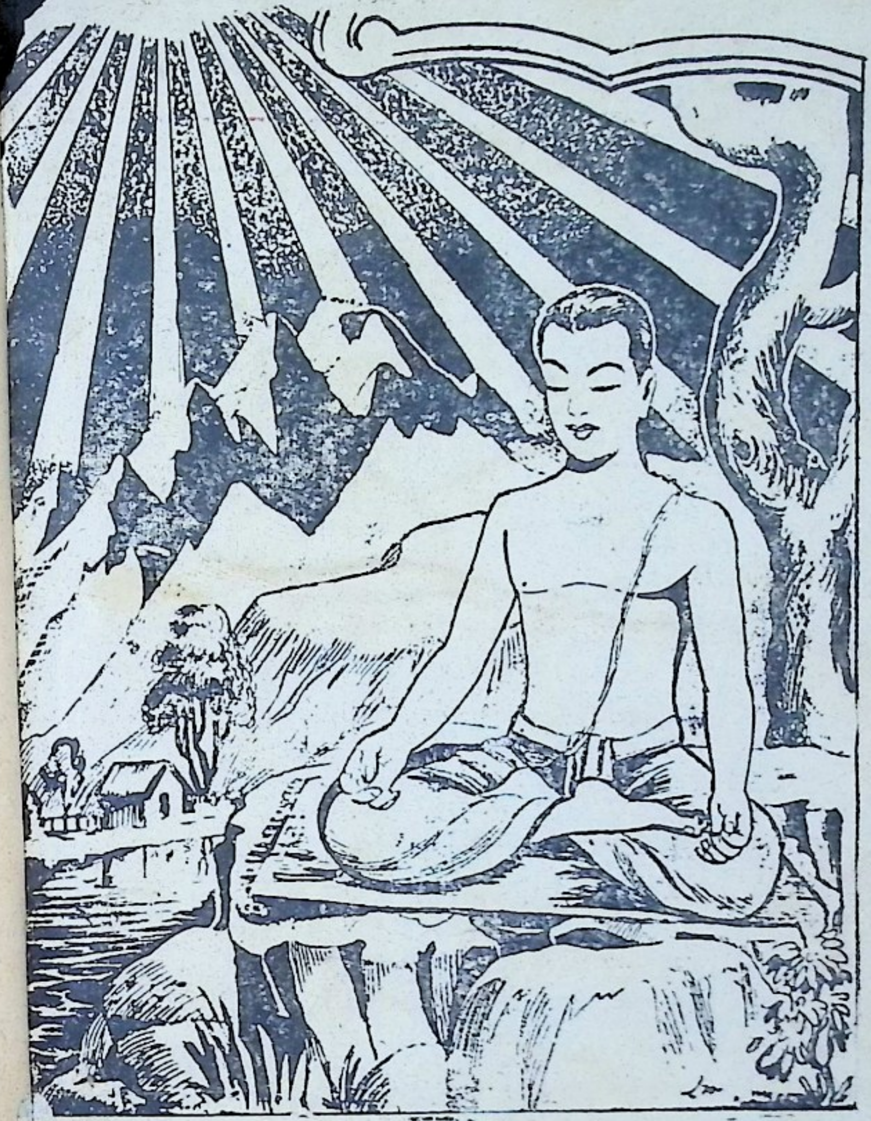

प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन प्रभु से मिलने के लिए प्रातः सायं संध्या अवश्य करनी चाहिए।

—भारतेन्द्र नाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जन-ज्ञान (मासिक)
१५६७, हरध्यानसिंह मार्ग
३१ नाई वाला, करोल बाग
नई दिल्ली-५
दूरभाष—५६६६३६

अप्रैल-मई १९७५
D.A.V.P. से विज्ञापन हेतु स्वीकृत

रजिस्टर्ड नं० D-
R. No-201

आर्यसमाज का संदेश फैलाने के लिए

प्रभावपूर्ण प्रचार पुस्तकें

१. आर्यसमाज के १०० वर्ष—भारतेन्द्र नाथ
२. आर्यसमाज के नियम—रघुनाथप्रसाद पाठक
३. आर्यसमाज क्या मानता है ?—मदनमोहन विद्यासागर
४. आर्यसमाज की मान्यताएं—रामचन्द्र देहलवी
५. नियन्त्रण : आर्यसमाज का—गंगाप्रसाद उपाध्याय

सभी का मूल्य २० पैसे : १५) सैकड़ा

६. संसार को आर्यसमाज का संदेश—२०) सैकड़ा

प्रचार पोस्टर

आर्यसमाज के नियम
आर्यसमाज का घोषणापत्र
गायत्री मंत्र
} सभी पक्के लगे ५०) सैकड़ा

सत्यार्थ प्रकाश पढ़िए ! तिरंगा—३०) सैकड़ा
घोषणा पत्र तिरंगा—२०) सैकड़ा

गायत्री मंत्र (छोटा) २०) सैकड़ा
सत्यार्थ प्रकाश २५०) सैकड़ा
स्वामी दयानन्द (जीवन) १००) सैकड़ा

दयानन्द-संस्थान, नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi